श्री जैनाचार्य–जैनधर्मदिवाकर–पूज्यश्री 'घासीलालजी महाराज' विरचितं सशब्दार्थं

कल्पसूत्रम् तथा च तपस्वी मुनिश्री मदनलालजी महाराजेन संगृहीत-

सामान्यतत्वादि महावीरान्ततीर्थंकरचरित्रसंग्रहश्च

॥ कल्पसूत्रम् ॥

(द्वितीयो भागः)

प्रथमा आवृत्ति :	वीरसंवत्	विक्रमसंवत्	इस्वीसन्
प्रति : १०००	२४९९	२०२९	१९७३

मूल्यम् रू. २५–००

मिलनेका पता :
अ. भा. श्वे. स्था.
जैनशास्त्रोद्धारसमिति
गरेडिया कूवारोड,
मु. राजकोट.

Published by :
Shri Akhil Bharat S. S.
Jain Shastroddhar Samiti,
GarediaKuva Road,-RAJKOT,
(Saurashtra), W. Ry, India.

प्रथम आवृत्तिः १०००
वीरसंवत् २४९९
विक्रम संवत् २०२९
इस्वीसन् १९७३

मुद्रक :
मणिलाल छगनलाल शाह
नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस,
घीकांटा रोड, अहमदाबाद.

पूज्य तपस्वीजी महाराज साहेब का संक्षिप्त परिचय ॥

पूज्य तपस्वीजी महाराज का जन्म मेवाड़ प्रदेश के बदनोर प्रांत के दाणीका 'रामपरा' नामक गांवमें हुवा आप तीन भाई थे आप जन्म से ही वैराग्य भाववाले थे, अतः बाल्यकाल से ही संसार से विरक्त भावो होने से बाल्यक्रीड़ा आदि मे भी आप का मन नहीं लगा। ऐसे बिरक्तता धारण करते और योग्य गुरु की शोध करते करते आप को पूज्य 'घासीलालजी' **महाराज का समागम** हुआ और योग्य गुरु का समागम होते ही आप का वैराग्य भाव उत्कट रूप से जग ऊठा वैराग्यभाव से प्रेरित होकरके पूज्यश्री से संवत् १९९६ में–आपने दीक्षा धारण की। पूज्यश्री से दीक्षित होने के पश्चात् आप साधुचर्या में विचरते हुए अनेक तपस्याये करते रहे, आपने ९२ वीरानवें दिन पर्यन्त की तपस्या की है। आप इतने लिखे पढे न होने पर भी गुरुकृपा से एवं तपस्या के बल से शुद्ध तात्विक श्रद्धा के साथ साथ थोकडे एवं शास्त्रीय गूढ तत्वों के समझने में शास्त्र का अच्छे ज्ञानधारक थे।

यह इतने तक की पूज्य आचार्य महाराज सा० घासीलालजी महाराजश्री शास्त्रोद्धार का टीका–रचना आदि कार्य कर रहे थे उस कार्य में गूढ विषयों की चर्चा में आप कभी कभी तपस्वीजी की सलाह लेते थे, और तपस्वीजी की सलाह के अनुकूल–सुधार वधारा होता था।

ऐसे विरक्त महान् घोर तपस्वी संवत् २०२८ का प्र. वैशाख सुदी ४ मंगलवार के दिन १२ बजे समाधिपूर्वक आत्मभवसे स्वर्गवास को प्राप्त हुए। इन महापुरुपने सिंह के समान संयम अंगीकार किया था। और सिंह जैसे ही संयम आराधना में अंतिम श्वास तक अप्रमत्त अवस्था में रहकर कार्य की सिद्धि प्राप्त की। अपने जीवन की अन्तिम क्षणों का तपस्वीजी को भास हो गया था, फलतः उन्होंने वैशाख वदी तेरस के दिन अन्तिम तेला की तपस्या की बाद में पारणा करके सायंकाल से उन्होने चारो आहार का पच्चक्खाण आचार्यश्री के मुखारविंद से कर लिए और अर्ज की, अभी वडा उपसर्ग है, जब तक यह उपसर्ग मीट न जाय तब तक सर्व आहार का पच्चक्खाण है।

उन महान् आत्मा का संग्रह किया हुआ यह कल्पसूत्र है जो उत्तमकोटि का मार्गदर्शक है। तो सुज्ञ जन इस में दर्शित मार्ग के अनुकूल आचरण करके परलोक के लिए अपने कल्याण के पाथेय का संग्रह करे यही अभ्यर्थना—इति सुज्ञेषु किं बहुना॥

卐

सशब्दार्थ कल्पसूत्र की विषयानुक्रमणिका

॥ अनुक्रमणिका समाप्त ॥

卐

॥ कल्पसूत्रम् ॥

(द्वितीयो भागः)

तीर्थंकराभिषेकस्य अधिकारः

मूलम्—जं समयं च णं तिसला खत्तियाणी दारयं पसूया तं समयं च णं दिव्वुज्जोएणं तेल्लुक्कं पयासियं, आगासे देवदुंदुहीओ आहयाओ, अंतोमुहुत्तं णारयजीवाणंपि दसविहखित्तवेयणा परिक्खीणा, अन्नोन्नवेरं च तेसिं उवसमियं अघणा सचंदणा कलियललियकमलसिट्ठी वुट्ठी जाया। फारा वसुहारा वुट्ठा,

पवणा य सुहफासणा मंजुला अणुकूला मलयजउप्पलसीयला मंदमंदा सोरब्भाणंदा तं दारगं फासिउं विव पवाया। देवेहिं दसद्धवण्णाइं कुसुमाइं निवारयाइं, चेलुक्खेवे कए, अंतरा य आगासे 'अहोजम्मं अहोजम्मं' ति घुट्ठं। उज्जाणाणि य अकालम्मि चेव सव्वोउयकुसुम-निहाणाणि संजायाणि। बावी-कूवतडागाइ-जलासएसु जलानि विमलानि जायाणि। जणवए य जणमणा हरिसपगरिसवसेण पवनवेगेण सरसि घणरसाविव विसप्पमाणा संजाया। वणवासिणो जंतुणो जम्मजायाणि वेराणि विहुणिय सहाहारिणो सह विहारिणो य जाया। अंबरमंडलं धाराहराडंबरविहुरं अमलं चक्कचिक्कचंचियं जायं। कोइलाइपक्खिणो सालरसालतमालपमुहसाहिसाहासिहावलंबिणो सहयारसरसमंजरीरसस्सायमा-योदंचियपंचमस्सरा मुहुरा अणंतगुणग्गामधामपहुललामजसगायगसूयमागह-

चारणविडंबिणो महुरं परं कूइउ मारभित्था ॥सू० १॥

भावार्थ—जिस समय त्रिशला क्षत्रियाणी ने पुत्र को जन्म दिया उस समय दिव्य उद्योत से तीनों लोक प्रकाशित हो गये। आकाश में देवदुंदुभियां बजने लगीं। अन्तर्मुहूर्त्त के लिए नरक के जीवों की भी दस प्रकार की क्षेत्र वेदनाएं शान्त हो गईं।

दश प्रकार की क्षेत्रवेदना–१ अनन्तशीत, २ अनन्तउष्ण, ३ अनन्तभूख, ४ अनन्तप्यास, ५ अनन्तखुजली, ६ अनन्तपराधीनता, ७ अनन्तभय, ८ अनन्तशोक, ९ अनन्तजरा, १० अनन्तव्याधि–

उन्होंने आपस का वैर त्याग दिया। मेघों के अभाव में भी, चन्दन की गन्ध से युक्त, सुन्दर कमलों से युक्त वर्षा हुई। सोने की प्रचुर वर्षा हुई। सुखद स्पर्शवाला, मनोहर, अनुकूल, मलयज चन्दन और कमल के समान शीतल, सुगंध से आनन्द देनेवाला मन्दमन्द पवन चलने लगा, मानो बाल्य अवस्था में स्थित भगवान् का स्पर्श

करनेके लिए ही चला हो। देवों ने पांच वर्णों के पुष्पों की वर्षा की, वस्त्रों की वर्षा की। 'अहो जन्म, अहो जन्म' का आकाश में घोष हुआ। उद्यान असमय में ही सब ऋतुओं के फलों के भंडार बन गये। बावडी, कूप, तालाब आदि जलाशयों का जल विमल हो गया। जैसे वायु के वेग से तालाब का जल चंचल हो उठता है, उसी प्रकार जनपद की जनता के मन हर्ष के प्रकर्ष से चंचल हो उठे। जंगली जानवर जन्मजात वैर को त्याग कर एक साथ आहार और विहार करने लगे। नभमण्डल मेघों की घटाओं से विहीन, विमल और विमानों की चमक से चमकने लगा। साल रसाल (आम्र) तथा तमाल आदि वृक्षों की चोटियों पर चढे हुए कोकिल आदि पक्षी आम की रसीली मंजरियों के रसास्वादन से जनित आनन्द से पंचम स्वर में बोलने लगे और अनन्त गुणगण के धाम भगवान् के ललाम यश का गान करनेवाले सूत, मागध और चारणों को भी मात करते हुए कूजने लगे। ये सब विषय अन्तर्मुहूर्त्त तक रहा ॥१॥

मूलम्—जं रयणिं च णं तिसला खत्तियाणी दारगं पसूया, तं रयणिं च णं भवणवइवाणमंतरजोइसियविमाणवासिदेवेहिं य देवीहिं य उवयंतेहिं य एगं महं दिव्वे देवुज्जोए देवसण्णिवाए देवकहक्कहे उप्पिं जलगभूए यावि होत्था।

अह य देवा य देवीओ य एगं महं अमयवासं च गंधवासं च चुण्णवासं च पुप्फवासं च हिरण्णवासं च रयणवासं च वासिंसु ॥२॥

भावार्थ—जिस रात्रि में त्रिशला क्षत्रियाणी ने पुत्र को जन्म दिया उस रात्रि में भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों और देवियों का भगवान् के समीप आते और ऊपर जाते समय एक महान् दिव्य देव—प्रकाश हुआ, देवों का आपस में मिलन हुआ, देवों का 'कल—कल' शब्द हुआ—अस्फुट सामूहिक शोर हुआ, तथा देवों की अत्यन्त भीड हुई।

इस के पश्चात् देवों और देवियों ने एक बहुत बडी अमृतवर्षा की सुगंधजल की वर्षा की, पुष्पों की वर्षा की, सोनेचांदी की वर्षा की और रत्नों की वर्षा की ॥२॥

मूलम्--भगवंतो तित्थयरा समुप्पज्जंति, तेणं कालेणं तेणं समएणं अहो-लोगवत्थव्वाओ अट्ठदिसाकुमारी महत्तरियाओ सएहिं २ भवणेहिं पासाय-वडिंसएहिं पत्तेयं २ चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं चउहिं महत्तरियाहिं सपरि-वाराहिं सत्तहिं अणियाहिं सत्तहिं अणियाहिवईहिं सोलसाहिं आयरक्खदेव साहस्सीहिं अण्णेहिं य बहुहिं भवणवईवाणमंतरेहिं देवेहिं देवीहिं य सद्धिं संप-रिवुडाओ महयाहयणट्टगीयवाइय जाव भोगभोगाइं भुंजमाणीओ विहरंति तं जहा भोगंकरा भोगवई सुभोगा भोगमालिणी तोयधारा विचित्ता य पुप्फमाला अणिंदिया तए णं तासिं अहोलोअवत्थव्वाणं अट्ठण्हं दिसाकुमारी महत्तरियाण

पत्तेयं २ आसणाइं चलंति। तए णं ताओ अहो लोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारी महत्तरियाओ पत्तेयं २ आसणाइं चालयाइं पासंति २ त्ता ओहिं पउंजंति २ त्ता भगवं तित्थयरं ओहिणा आभोएत्ति २त्ता अण्णमण्णं सद्दावेइ २त्ता एवं वयासी-उप्पण्णे खलु भो जंबुद्दीवे २ भारहे वासे खत्तीयकुण्डनयरे भगवं तित्थयरे तं जीयमेयं तीयपच्चुप्पण्णमणागयाणं अहोलोगवत्थव्वाणं अट्ठण्हं दिसाकुमारी महत्तरियाणं भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमाहिमं करित्तए॥ तं गच्छामो णं अहमवि भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमाहिमं करेमो त्तिकट्टु एवं वयंति २त्ता पत्तेयं २ आभिओगिए देवे सद्दावेंति २ एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! अणेग खंभसयसण्णिविट्ठं लीलट्ठियं एवं विमाणवण्णओ भाणियव्वो जाव जोयणविच्छिण्णो दिव्वे जाणविमाणे विउव्वह २ त्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति॥ तए णं

आभिओगा देवा अणेगखंभसय जाव पच्चप्पिणंति ।१। एएणं ताओ अहोलोगवत्थव्वाओ अट्ठदिसाकुमारी महत्तरियाओ हट्ठतुट्ठाओ पत्तेयं २ चउहिं सामाणिय साहस्सीहिं, चउहिं महत्तरियाहिं जाव अण्णेहिं बहुहिं देवेहिं देवीहि य सद्धिं संपरिवुडाओ तेहिं दिव्वे जाणविमाणे दुरूहंति २त्ता सव्विड्ढीए सव्व-जुईए घणमुइंगपवणप्पवाइअरवेणं ताए उक्किट्ठाए जाव देवगईए जेणेव भग-वओ तित्थयरस्स जम्मणणगरे जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणे तेणेव उवागच्छंति २त्ता भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणं तेहिं दिव्वेहिं जाण-विमाणेहिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेंति २त्ता उत्तरपुरत्थिमे दिसी-भाए इसिं चउरंगुलमसंपत्ते धरणियले ते दिव्वे जाणविमाणे ठविंति २त्ता पत्तेयं पत्तेयं चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं जाव सद्धिं संपरिवुडाओ दिव्वेहिंतो जाण-

विमाणेहिंतो पच्चोरुहंति २ त्ता सव्वड्ढीए जाव णाइएणं जेणेव भयवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छंति २त्ता भयवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेंति २ त्ता पत्तेयं २ करयलपरिग्गहीयं सिर-सावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी–णमोत्थुणं ते रयणकुच्छिधारिए जग-प्पईव दीतीए जगमंगलस्स चक्खुणो य मुत्तस्स सव्वजगज्जीववच्छलस्स हिय-कारगमग्गदेसीय अवागिड्ढी विभुप्पभुस्स जिणस्स णाणिस्स णायगस्स बुद्धस्स बोहगस्स सव्वलोगनाहस्स सव्वजगमंगलस्स–निम्ममस्स पवरकुलसमुब्भवस्स, जाईए खत्तियस्स लोगुत्तमस्स जणणी धण्णासी पुण्णासी तं कयत्थासी अम्हेणं देवाणुप्पिए ! अहे लोगवत्थव्वाओ अट्ठदिसाकुमारी महत्तरीयाओ भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमहिमं करिस्सामो, तेणं तुब्भेहिं ण भीइयव्वं इति कट्टु,

उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए अवक्कमंति २ त्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणंति २त्ता संखिज्जाइं जोयणाइं दंडे निस्सरंति, तं जहा--रयणाणं जाव संवट्टगवाए विउव्वंति २त्ता तेणं सिवेणं मउएणं मारुएणं अणुद्धुएणं भूमितलविमलकर-णेणं मणहरेणं सव्वोउअ सुरहिकुसुमगंधाणुवासिएणं पिंडिमनीहारिमेणं गंधु-द्धुएणं तिरियं पव्वाइएणं भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणस्स सव्वओ समंता जोयणपरिमंडलं से जहाणामए कम्मगदारए सिया जाव तहेव जं तत्थ तणं वा पत्तं वा कट्ठं वा कयवरं वा असुमइमचोक्खुपूइयं दुब्भिगंधं तं सव्वं आहूणिय आहूणिय एगंते एडेंति एडेत्ता जेणेव भगवं तित्थयरे माया य तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाऊए य अदूरसामंते आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ॥२॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं उड्ढ-

लोयवत्थव्वाओ अट्ठदिसाकुमारी महत्तरियाओ सएहिं सएहिं कुंडेहिं सएहिं सएहिं भवणेहिं सएहिं सएहिं पासायवडिंसएहिं वडिंसएहिं पत्तेयं पत्तेयं चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं एवं तं चेव पुव्ववण्णिय जाव विहरंति, तं जहा-[गाहा]

मेहंकरा, मेहवइ सुमेहा मेहमालिणी,
सुवच्छा वच्छमित्ता य वारिसेणा बलाहया ॥१॥

तए णं तासिं उड्ढलोअवत्थव्वाणं अट्ठण्हं दिसाकुमारी महत्तरिआणं पत्तेयं पत्तेयं आसणाइं चलंति एवं तं चेव पुव्ववण्णिअं भाणियवं जाव अम्हेणं देवाणुप्पिए ! उड्ढलोए वत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारी महत्तरीआओ भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमहिमं करिस्सामो तेणं तुब्भेहिं ण भीइयव्वं तिकट्टु, उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमंति अवक्कमित्ता जाव अब्भवद्दलए

विउव्वंति विउव्वित्ता जाव तं निहरयं णट्ठरयं भट्ठरयं पसंतरयं उवसंतरयं करेंती करित्ता खिप्पामेव पच्चुवसमंति एवं पुप्फवासं वासंति वासंतित्ता जाव कालागरूपवर जाव सुरवराभिगण जाव करेंति करित्ता जेणेव भयवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता जाव आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ॥३॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं पुरत्थिमरूअगवत्थवाओ अट्ठ दिसाकुमारी महत्तरियाओ सएहिं सएहिं कूडेहिं तहेव जाव विहरंति तं जहा-

गाहा— णंदुत्तरा य, णंदा य आणंदा णंदिवद्धणा ।
विजया य वैजयंति जयंति अपराजिया ॥१॥

सेसं तं चेव जाव तुब्भेहिं ण भीइयव्वं तिकट्टु भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाउएय पुरत्थिमेणं आयंसहत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चि-

ट्ठंति ॥४॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं दाहिणरूअगवत्थव्वाओ अट्ठदिसाकुमारी महत्तरीयाओ तहेव जाव विहरंति तं जहा—

(गाहा) समाहारा सुप्पइण्णा सुप्पबुद्धा जसोहरा।
लच्छिमई सेसवई चित्तागुत्ता वसुंधरा ॥१॥

तहेव जाव तुब्भेहिं णभीइयव्वं तिकट्टु भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाउए य दाहिणेणं भिंगारहत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ।५। तेणं कालेणं तेणं समएणं पच्चत्थिमरुअगवत्थव्वाओ अट्ठदिसाकुमारी महत्तरीआओ सएहिं सएहिं जाव विहरंति, तं जहा—

गाहा—इलादेवी सुरादेवी पुहवी पउमावई तहा।
एगणासा णवमिया भद्दा सीया य अट्ठमा ॥१॥

तहेव जाव तुब्भेहिं ण भीइयव्वं तिकट्टु, भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाउए य पच्चत्थिमेणं तालिअंटहत्थगयाओ आगायमाणीओ २ चिट्ठंति ॥५॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं उत्तरिल्लरुअगवत्थव्वाओ जाव विहरंति तं जहा—

गाहा—अलंबुसा मिस्सकेसी य पुंडरीआ य वारुणी ।
हासा सव्वप्पभा चेव सिरिहिरी चेव उत्तरओ ॥१॥

तहेव जाव वंदित्ता भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाउए य उत्तरेणं चामरहत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ॥६॥ तेणं कालेणं तेणं समएणं विदिसारूअगवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारी महत्तरीआओ जाव विहरंति तं जहा—चित्ताय चित्तकणगा सतेरा सुदामिणी तहेव जाव ण भीइअव्वं तिकट्टु वंदित्ता भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाउए य चउसु वि दिसासु दीविआ

हत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ॥७॥ तेणं कालेणं तेणं सम-
एणं मज्झिमरुअगवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारी महत्तरिआओ सएहिं सएहिं
कूडेहिं तहेव जाव विहरंति तं जहा रूआ रूअंसा सुरूवा रूवगावई तहेव जाव
तुब्भेहिं ण भीइयव्वं तिकट्टु भगवओ तित्थयरस्स चउरंगुलवज्जं णाभिणालं
कप्पंति कप्पित्ता वियरंग खणंति २ त्ता वियरगे णाभि णिहणंति २ त्ता रयणाण य
वइराण य पुरेंति २ त्ता हरितालिआए पेढं बंधंति बंधित्ता तिदिसिं तओ कय-
लीहरए विउव्वंति ॥ तए णं तेसिं कयलीहरगाणं बहुमज्झदेसभाए तओ
चउस्सालए विउव्वंति, तए णं तेसिं चउस्सालगाणं बहुमज्झदेसभाए तओ
सीहासणा विउव्वंति, तेसिं णं सीहासणाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते
सव्वो वण्णओ भाणियव्वो, तए णं तओ रूअगमज्झवत्थव्वाओ चत्तारि

दिसाकुमारी महत्तरियाओ जेणेव भगवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छंति २ त्ता भगवं तित्थयरं करयलसंपुडेणं गिण्हंति गिण्हित्ता तित्थयरमायरं च बाहाहिं गिण्हंति २ त्ता जेणेव दाहिणिल्ले कयलाहारए जेणेव चउस्सालए जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता भयवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च सीहासणे णिसीआवेंति २ त्ता सयपागसहस्सपागेहिं तिल्लेहिं अब्भिगिंति २ त्ता सुरभिणा गंधवट्टएणं उवट्टेंति २ त्ता भगवं तित्थयरकरयलपुडेणं तित्थयरमायरं च बाहाहिं गिण्हंति २ त्ता जेणेव पुरत्थिमिल्ले कयलीहरए जेणेव चउस्सालए जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता भयवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च सीहासणे णिसीयावेंति २ त्ता तिहिं उदएहिं मज्जावेंति तं जहा गंधोदएणं पुप्फोदएणं सुद्धोदएणं मज्जाविंति २ त्ता सव्वालंकारविभूसिण्हं करेंति २ त्ता

भयवं तित्थयरं करयलपुडेणं तित्थयरमायरं च बाहाहिं गिण्हंति २ त्ता जेणेव उत्तरिल्ले कयलीहरए जेणेव चउस्सालए जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता भयवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च सीहासणे णिसीयाविंति २ त्ता भगवओ भयवं पव्वयाओए २ त्ता तए णं ताओ रूअगमज्झवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारी महत्तरियाओ भगवं तित्थयरं करयलपुडेणं तित्थयरमायरं च बाहाहिं गिण्हंति २ त्ता जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणं तेणेव उवागच्छंति २ त्ता तित्थयरमायरं सयणिज्जंसि णीसीआविंति २ त्ता भयवं तित्थयरं माउए पासे ठवेंति २ त्ता आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति।८॥ ॥३

अर्थ—अब पांचवां अधिकार तीर्थंकर भगवान् के जन्म महोत्सव का कहते हैं—उस काल और उस समय में अधोलोक में रहनेवाली महत्तरिका आठ दिशाकुमारीयां अपने

अपने परिवार सहित सात अनिक सात अनिकाधिपति सोल हजार आत्मरक्षक देव और अन्य बहुत भवनपति वाणव्यंतर देव वा देवियों सहित पखरी हुई बडे नृत्य गीत व वादिंत्र सहित यावत् भोग भोगती हुई विचरती हैं। इनके नाम—१ भोगंकरा २ भोगवती ३ सुभोगा ४ भोगमालिनी ५ तोयधारा ६ विचित्रा ७ पुष्पमाला ८ अनिंदिका इस समय अधोलोक में रहनेवाली महत्तरिका दिशाकुमारीका के अपने २ आसन चलायमान होते हैं अपने आसन चलायमान हुवा देखकर वे अवधिज्ञान प्रयुंजते हैं, और भगवान् तीर्थंकर को अवधिज्ञान से देखते हैं फिर सब परस्पर मिलकर ऐसा कहते हैं अहो देवानुप्रिय ? जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में क्षत्रीयकुंड नगर में भगवान् तीर्थंकर उत्पन्न हुए हैं, और अतीत वर्तमान व अनागत अधोदिशा में रहनेवाली महत्तरिका दिशाकुमारिओं का यह जीताचार है कि तिर्थंकर का जन्माभिषेक करे, इससे अपने को भी तीर्थंकर का जन्म महोतसव करने को जाना चाहिए यों कहकर प्रत्येक आभियोगिक

देवों को बुलाती हैं और कहती है, अहो देवानुप्रिय ! अनेक स्तंभवाला और लीला-सहित पुत्तलियों वाला वगैरह वर्णनयुक्त यावत् एक योजन का चौडा विमान की विकुर्वणा करो और मुझे मेरी आज्ञा पीछे दो. वे ऐसा ही करके उनकी आज्ञा पीछी देते हैं ॥१॥ तत्पश्चात् अधोलोकमें रहनेवाली महत्तरिका आठ दिशाकुमारियां हृष्टतुष्ट होकर अपने अपने चार हजार सामानिक चार महत्तरिका यावत् अन्य बहुत देव एवं देवियों सहित परवरी हुई दिव्य यान विमान पर बैठ कर फिर सब ऋद्धि सब द्युति सहित घन मृदंग व झूसिर के शब्द से उत्कृष्ट दिव्य देवगति से जहां भगवान् तीर्थंकर का जन्म लेने का नगर है वहां आती है, वहां जन्म भवन को अपने दीव्य यान विमान से तीन वार प्रदक्षिणा करती है फिर ईशान कोन में पृथ्वी से चार अंगुल ऊपर विमान रखकर चार हजार सामानिक देव सहित यावत् अपने परिवार से परवरी हुई सब ऋद्धि द्युति यावत् मृदंगो के शब्द से जहां भगवान् तीर्थंकर व उनकी माता है वहां आती है

भगवान् तीर्थंकर व उनकी माता को तीन वार आदान प्रदक्षिणा करके दोनों हाथ जोडकर मस्तक से आवर्तना करके अंजलि सहित ऐसा बोलती हैं—अहो जगत् के प्रदीपको जन्मदेने वाली व रत्नकुक्षि धारण करनेवाली तुमको नमस्कार होवो, जगत् में मंगल करनेवाले अज्ञान से अंध बने हुए जीवों को चक्षुसमान सब जगज्जीव के वत्सल—हितकारक मार्ग दर्शानेवाले पुद्गल सुख में गृद्धता रहित रागद्वेष को जीतनेवाले ज्ञानी धर्म के नायक स्वयं सब पदार्थ को जानने वाले सबको तत्वज्ञान बताने वाले सब लोक के नाथ सब जगत् में मंगल समान निर्ममत्वी, श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न होनेवाले क्षत्रिय-कुल में जन्म ग्रहण करनेवाले और लोक में उत्तम ऐसे उत्तम पुरुष की तुम जननी हो तूम धन्य है, कृत पुण्यवाली तुम हो. अहो देवानुप्रिये ! हम अधोलोक में रहनेवाली महत्तरिका आठ दिशाकुमारी देवियां हैं, हम तीर्थंकर के जन्म का महोत्सव करेंगे । इस से तुम डरना नहीं, यों कहकर ईशानकोन में जाकर वैक्रिय समुद्घात करती है संख्यात

योजन का दंड बनाती है रत्न यावत् संवर्तक वायु की विकुर्वणा करती है फिर उस कल्याणकारी मृदु अनुद्धूत भूमितल को विमल करनेवाला मनहर सब ऋतु के सुगंधित पुष्पों की गंध का विस्तार करनेवाला और सुगंध के लानेवाला ऐसा तीच्छीं वायु से भगवान् तीर्थंकर का जन्म भवन से चारों तरफ एक एक योजन के मंडल में जो कुच्छ तृण कच्चर अशूचि व दुरभिगंध वगैरह होवे उसे लेकर दूर डाल देती हैं जैसे कोई किंकर (झाडू निकालनेवाला) काम करता हो वैसे करती है, फिर जहां भगवान् तीर्थं कर व उनकी माता हो वहां आकर पासमें गीत गाती हुई विशेष गाती हुई खडी रहती है ॥२॥ उस काल उस समय में ऊर्ध्वलोक में रहनेवाली महत्तरिका आठ दिशा-कुमारियां अपने २ कूटमें अपने २ भवन में अपने २ प्रासादावतंसक में अपने २ चार हजार सामानिक सहित यावत् विचरती हैं जिनके नाम—१ मेघंकरा २ मेघवती ३ सुमेघा ४ मेघमालिनी ५ सुवत्सा ६ वत्समित्रा ७ वारिषेणा और ८ बलाहका० उस समय

ऊर्ध्वलोक में रहनेवाली आठ दिशाकुमारियों के आसन चलते हैं तब वे अपने अवधि-ज्ञान से तीर्थंकर का जन्म हुवा देखते हैं वगैरह पूर्वोक्त कथन सब यहां कहना यावत् हम ऊर्ध्वलोक में रहनेवाली आठ दिशाकुमारियां हैं हम भगवान् तीर्थंकर का जन्म का अभिषेक करेंगे इससे तुम डरना नहीं यों कहकर ईशानकोन में जाकर यावत् बद्दलकी विकुर्वणा करती हैं यावत् पानी वर्षाकर रजका नाश करती है उसे उपशमा देती हैं सब रज को नष्ट भ्रष्ट कर फिर शीघ्रमेव ऐसे ही पुष्पों की वृष्टि करती हैं यावत् काला गुरू कुंदुरुक तुरुक्क इत्यादि धूप की सुगंध से एक योजन पर्यंत मघमघायमान करती हैं यावत् देवों के आने जैसी जगह करती है वहां से भगवान् तीर्थंकर व उनकी माता जहां होती है वहां आकर उनके पास यावत् विशिष्टतर गाती हुई खडी रहती है ॥३॥ उस काल उस समय में पूर्व में रुचक कूट पर रहनेवाली आठ दिशाकुमारियां यावत् विचरती हैं जिनके नाम—नंदुत्तरा, नंदा, आनंदा, नंदीवर्धना विजया वैजयंति, जयंति

और अपराजिता हैं, शेष सब पूर्वोक्त प्रकार जानना यावत् तुमको डरना नहीं ऐसा कहकर तीर्थंकर व उनकी माता के पास हाथ में काच रखकर गीत गाती हुई खडी रहती है ॥४॥ उस काल उस समय में दक्षिण के रुचक पर्वत पर रहनेवाली महत्तरिका आठ दिशाकुमारियां यावत् विचरती है तद्यथा—१ समाहारा २ सुप्रज्ञा ३ सुप्रबुद्धा ४ यशोधरा ५ लक्ष्मीवती ६ शेषवती ७ चित्रगुप्ता और ८ वसुंधरा वे भी पूर्वोक्त प्रकार भगवंत की माता को वंदना नमस्कार कर यावत् कहती है कि तुम डरना नहीं हम दक्षिण दिशा की महत्तरिका आठ दिशाकुमारियां तीर्थंकर का जन्म महोत्सव करेगीं यो कहकर भगवान् तीर्थंकर व उनकी माता के पास दक्षिण दिशा की तरफ हाथ में झारी लेकर गाती हुई खडी रहती हैं उस काल उस समय में पश्चिम दिशा के रुचक पर्वत पर रहनेवाली आठ दिशाकुमारियां अपने २ आवास में यावत् विचरती हैं जिनके नाम-१ इलादेवी २ सुरादेवी ३ पृथ्वीदेवी ४ पद्मावती ५ एकनासा ६ नवमिका ७ भद्रा और

८ सीता वे भी पूर्वोक्त प्रकार से तीर्थंकर की माता को कहती हैं कि तुम डरो मत यों कहकर तीर्थंकर व उनकी माता के पास पश्चिम में तालवृंत [पंखा] हाथ में लेकर गाती हुई खडी रहती है ॥५॥ उस काल उस समय में उत्तर दिशा के रुचक पर्वत पर रहने-वाली यावत् विचरती हैं जिनके नाम--१ अलम्बुषा २ मिश्रकेशा ३ पुण्डरीका ४ वारुणी ५ हासा ६ सर्वप्रभा ७ श्री और ८ ह्री वे भी तीर्थंकर की माता को वंदना नमस्कार कर उत्तर दिशा में चामर लेकर गीत गाती हुई खडी रहती है ॥६॥ उस काल उस समय में विदिशा के रुचक पर्वत पर रहनेवाली चार महत्तरिका दिशाकुमारियां यावत् रहती हैं जिनके नाम--१ चित्रा, २ चित्रकनका ३ सतेरा और ४ सुदामिनी वैसे ही यावत् डरना नहीं वहां तक सब कहना वे भगवान् तीर्थंकर व उनकी माता को वंदना नमस्कार कर उनके पास चार विदिशाओं में दीपिका हाथ में लेकर गीत गाती हुई खडी रहती हैं ॥७॥ उस काल उस समय में बीचके रुचक पर्वत पर रहनेवाली चार महत्त-

रिका दिशाकुमारी अपने २ कूट में यावत् विचरती हैं उनके नाम–१ रूपा २ रूपांसा ३ सुरूप और ४ रूपकावती ये भी पूर्वोक्त प्रकार तीर्थंकर भगवान् की माता के पास आती है और कहती है कि तुम डरना नहीं यों कहकर भगवान् तीर्थंकर की चार अंगुल छोडकर नाभी नाल का छेदन करती है, उस नाल को खड्डा में गाडती है फिर रत्नों व वज्ररत्नों से उस खड्डे को पूरा करती है उस पर हरताल की पीठिका बांधती है हरताल की पीठिका बांधकर पूर्व उत्तर व दक्षिण इन तीन दिशामें तीन कदली के घर का वैक्रिय करती हैं कदली घरके बीच में तीन चौशाल भुवन का वैक्रिय करती है इनके बीच में तीन सिंहासन का वैक्रिय करती हैं। फिर वे मध्य रुचक पर रहनेवाली चार महत्तरिका (व्यंतर जाती की देवियां) तीर्थंकर व उनकी माता के पास आती है, वहां तीर्थंकरको करतल (हथेली) में और

माता को वाहा से पकडकर दक्षिण दिशा के कदली गृह में लाती है वहां भगवान् को और उनकी माता को सिंहासन पर बैठाती है फि.र वहां शतपाक व सहस्रपाक तेल से

उनके शरीर को मर्दन करती है सुगंधित महागंधवाला गंध पूडा से उनको पीठी लगाती है वहां से उन दोनों को पूर्व दिशा के कदली गृह में चौसाल भुवन में सिंहासन पास लाती हैं वहां उस सिंहासन पर दोनों को बैठाकर तीन प्रकार के पानी से स्नान कराती है जैसेकी–१ गंधोदक २ पुष्पोदक और ३ शुद्धोदक इस प्रकार तीन प्रकार के पानी से स्नान कराये पीछे भगवान् तीर्थंकर को करतल से और उनकी माता को बांहा से पकडकर उत्तर दिशा के कदली गृह के चउसाल के सिंहासन पास आती हैं वहां उनको सिंहासन पर बैठाकर आशीर्वाद देती है कि अहो भगवन् पर्वत जितनी आयुष्य वाले होवो तत्पश्चात् वहां से भगवान् तीर्थंकर को और उनकी माता को हाथ से ग्रहण कर जहां जन्म भवन होता है वहां लाती है वहां तीर्थंकर की माता को उनके शय्या पर बैठाती है और तीर्थंकर को उनकी माता के पास बैठाती हैं फिर वे गाती हुई पास में खडी रहती है ॥३॥

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं सक्केणं देविंदे देवराया वज्जपाणी पुरंदरे सयक्कतु सहस्सक्खे मघवं पागसासणे दाहिणड्ढ लोगाहिवई बत्तीसाविमाणवाससयसहस्साहिवई, एरावणवाहणे सुरिंदे, अयरंबरवत्थधरे आलईय मालमउडे नव हेमचारुचित्तचंचलकुंडलाविलाहिज्जमाणगल्ले भासुरबोंदी पलंबणमालधरे महिड्ढीए महज्जुइए महब्बले महायसे महाणुभागे महासोक्खे सोहम्मकप्पे सोहम्मवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए सक्कंसि सीहासणंसि से णं तत्थ बत्तीसाए विमाणवाससयसाहस्सीणं चउरासीए सामाणियसाहस्सीणं तेत्तीसाए तायत्तीसगाणं चउण्हं लोगपालाणं अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाहिवईणं चउण्हं चउरासीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णोसिं च बहूणं सोहम्मकप्पवासीणं

वेमाणियाणं देवी य वण्णगाणं आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगं आणाईसरसेणावच्चं करेमाणे पालेमाणे महयाहयणट्टगीयवाइयतंतीतल-तालतुडियघणमुइंगपडुप्पवाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ ॥ तए णं तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो, आसणं चलइ। तए णं से सक्के जाव आसणं चालियं पासइ पासित्ता ओहिं पउंजइ २ त्ता भयवं तित्थयरं ओहिणा आभोएइ २ त्ता हट्ठतुट्ठ चित्तमाणंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवसविस-प्पमाणहियए धाराहय कयंबकुसुमचंचुमालइअऊसवियरोमकूवे वि असिय वर-कमलनयणवयणे पचलियवरकडगतुडियकेऊरमउडकुंडलहारविरायंतरइयवच्छे, पालंबपलंबमाणघोलंतभूसणधरे ससंभमं तुरियं चवलं सुरिंदे सीहासणाओ अब्भु-ट्ठेइ अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहई २ त्ता वेरुलिय वरिट्ठरिट्ठ अंजणणिउणो-

च्चिय मिसिमिसंत मणिरयणमंडिआओ पाउआओ ओमुअइ २ त्ता एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ २ त्ता अंजलि मउलियग्गहत्थे तित्थयराभिमुहे सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ २ त्ता वामं जाणु अंचेइ २ त्ता दाहिणं जाणुधरणि अलंसि साहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणि अलंसि निवेसयइ २ त्ता ईसिं पच्चुण्णयइ २ त्ता कडगतुडिअथंभियाओ भुयाओ साहरइ २ त्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—णमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं आइगराणं तित्थयराणं सयं संबुद्धाणं पुरिसुत्तमाणं पुरिससीहाणं पुरिसवरपुंडरियाणं, पुरिसवरगंधहत्थीणं, लोगुत्तमाणं, लोगणाहाणं, लोगहियाणं, लोगपइवाणं, लोगपज्जोयगराणं, अभयदयाणं, चक्खुदयाणं, मग्गदयाणं, सरणदयाणं, जीवदयाणं, बोहिदयाणं, धम्मदयाणं, धम्मदेसियाणं, धम्मनायगाणं, धम्मसारहीणं, धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं,

दीवोत्ताणं, सरणगइपइट्ठाणं अप्पडिहयवरनाणदंसणधराणं, वि अट्ट छउमाणं, जिणाणं, जावयाणं तिन्नाणं तारयाणं, बुद्धाणं बोहियाणं, मुत्ताणं मोअगाणं, सव्वन्नूणं सव्वदरिसीणं सिवमयलमउअमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावत्तियं सिद्धिगइणामधेयं, ठाणं संपत्ताणं, णमो जिणाणं जीयभयाणं, णमोत्थुणं भगवओ तित्थयरस्स आइगरस्स जाव संपाविओ कामस्स वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए पासउ मे भयवं तत्थगए इहगयं तिकट्टु वंदइ णमंसइ २ त्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे ।९। ॥४॥

भावार्थ—उस काल और उस समय में शक्र नामक देवेन्द्र देवराज, हाथ में वज्र धारण करनेवाले, दैत्यों को विदारने वाले, सो बार श्रावक की पडिमा-प्रतिमा के आराधक, सहस्र चक्षुओं के धारक, महामेघ जिसके वश में है ऐसा एवं पाक नामक दैत्य को शिक्षा करनेवाले,

मेरु पर्वत से दक्षिण दिशा के संपूर्ण अर्धलोक के अधिपति सौधर्म देवलोक संबंधी ३२ बत्तीस लाख विमान के स्वामी, ऐरावत गज का वाहनवाले, देवताओं में इन्द्र रज रहित निर्मल वस्त्र धारण करनेवाले, गले में माला, मस्तक पर मुकुट धारण करनेवाले नवीन सुवर्ण के झगमगाट करते हुए मनोहर चंचल दोनों कान के कुंडल से सुशोभित गंडस्थलवाले, प्रकाशमान देहवाले, लटकती हुई माला धारण करनेवाले, महर्द्धिक महाद्युतिक महाबलवंत महायशवंत, महानुभाववाले, महासुखवाले ऐसे देवेन्द्र सौधर्म देवलोक के सौधर्मावतंसक विमान में सुधर्मासभा में शक्र सिंहासन पर बत्तीस लाख विमान, चौरासी हजार सामानिक देव, तेतीस त्रायस्त्रिंशक देव, चार लोकपाल, परिवार सहित आठ अग्रमहिषियों तीन परिषदा, सात अनीक, सात अनीकाधिपति, तीन लाख छत्तीस हजार आत्मरक्षक देव और अन्य बहुत देव और देवियों का वैसे ही आभियोगिकों का अधिपतिपना, अग्रगामीपना, स्वामीपना, महत्तरिकपना, आज्ञा ईश्वर और सेनापतिपना

करते हुवे बडे २ नाद से नृत्य गीत, तंतीताल त्रुटित और मृदंग के शब्द से भोग भोगते हुवे विचर रहे हैं। उस समय शक्र देवेन्द्र का आसन चलायमान होता है, जब शक्र देवेन्द्र का आसन चलायमान होता है तब शक्रेन्द्र अवधिज्ञान प्रयुंजते है और अवधिज्ञान से भगवान् तीर्थंकर को देखते हैं देखकर देवेन्द्र शक्र हृष्टतुष्ट होते हैं, चित्त में आनंदित होते हैं उत्कृष्ट सौम्य मनवाले होते है हर्षवश से हृदय विकसायमान होता है। वृष्टि की धारा से हणाया हुवा कदंब वृक्ष के पुष्प समान विकसायमान होते हैं, विकसित रोमकूप होते हैं, श्रेष्ठ कमल के समान नयन और वदन विकसायमान होते हैं, प्रचलित श्रेष्ठ कडे त्रुटित, केयूर, मुकुट कुंडल व हृदय के हार वगैरह लम्बे लटकते हुए रहते हैं, इस प्रकार के शक्र देवेन्द्र ससंभ्रांत शीघ्रमेव अपने सिंहासन से उपस्थित होते है फिर वेरुलिय व रिष्टरत्नों से जडित अंजन समान कृष्णवर्ण की उपचित प्रदीप्त मणिरत्नों से मंडित पगरखीयां निकालते है फिर पादपीठ से नीचे उतरकर एक वस्त्र

का उत्तरासंग करते है। दोनों हाथ की अंजलि मस्तक पर स्थापित कर तीर्थंकर के सन्मुख सात आठ पांव जाते हैं वहां बाया पांव उंचा करके दाहिना पांव खडा करते है फिर तीन बार पृथ्वीतल पर मस्तक रख कर किंचिन्मात्र नमन कर कडे त्रुटित से लंबित भुजाएँ पीछी खींचकर करतल मिलाकर शिर से आवर्त देकर व मस्तक पर अंजलि स्थापित करके ऐसा बोलते हैं कि अरिहंत भगवान् को नमस्कार होवो। वे कैसे है धर्म की आदि करने वाले चार तीर्थ स्थापन करनेवाले स्वयमेव तत्वज्ञान प्राप्त करने वाले पुरुषों में उत्तम, पुरुषों में सिंह समान, पुरुषों में पुंडरिक कमल समान पुरुषों में गंध हस्ति समान लोक में उत्तम, लोक के नाथ लोक के हितकारी लोक में प्रदीप समान लोक में उद्योत करनेवाले अभयदान के दाता, ज्ञानरूप चक्षु के दाता, मोक्ष-मार्ग के दाता भयभीत प्राणियों को शरण देनेवाले, संयमरूप जीवीतव्य देनेवाले, समकितरूप बोधिबीज देनेवाले, धर्म देनेवाले, धर्म के उपदेश करनेवाले धर्म के नायक

धर्मरूप रथ के सारथि धर्म में चातुरंत चक्रवर्ती संसार समुद्र में द्वीप समान शरणागत को आधारभूत, अप्रतिहत केवलज्ञान व केवलदर्शन धारण करनेवाले, छद्मस्थपना रहित स्वयं रागद्वेष का जय करनेवाले अन्य से रागद्वेष का जय करानेवाले स्वयं संसार समुद्र से तीरनेवाले, अन्य को तिरानेवाले स्वयं तत्वज्ञान जाननेवाले अन्य को तत्वज्ञान बतलाने वाले स्वयं अष्ट कर्म से मुक्त होनेवाले और अन्य को मुक्त करानेवाले सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं उपद्रव रहित अचल रोग रहित अनंत अव्यय अव्याबाध और जहां से पुनरागमन होवे नहीं वैसी सिद्धिगति को प्राप्त करनेवाले और सातों भयों को जीतने वाले सिद्ध भगवान् को नमस्कार होवो। भगवान् तीर्थंकर धर्म के आदि करनेवाले यावत् मोक्ष प्राप्त करनेवालों को नमस्कार होवो। अहो भगवन् आप वहां रहे हुवे को भी मैं यहां रहा हुवा नमस्कार करता हूं यहां रहे हुवे आप मुझे देखते हो, यों वंदना नमस्कार कर अपने सिंहासन पर शक्रेन्द्र बैठते हैं ॥४॥

मूलम्-तएणं तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो अयमेयारूवे जाव संकप्पे समुप्पज्जित्था-उप्पणे खलु भो ! जंबुद्दीवे दीवे भयवं तित्थयरे तं जीयमेयं तीयपच्चुप्पण्णमणागयाणं सक्काणं देविंदाणं देवराईणं तित्थयराणं जम्मण-महिमं करित्तए तं गच्छामि णं अहंपि भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमहिमं करेमि तिकट्टु एवं संपेहेइ २त्ता हरिणेगमेसिं पायत्ताणियाहिवइं देवे सद्दावेई २त्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सभाए सुहम्माए मेघोघरसियगंभीरमहुरं सद्दं जोयणपरिमंडलसुघोससुस्सरं घंटं तिखुत्तो उल्लालमाणे २ महया २ सद्देणं उग्घोसमाणे २ एवं वयासी-आणवेइणं भो ! सक्के देविंदे देवराया गच्छइ णं भो ! सक्के देविंदे देवराया जंबूदीवे दीवे भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमहिमं करित्तए, तुब्भेवि णं देवाणुप्पिया ! सव्विड्ढिए सव्व

जुईए सव्वबलेणं सव्वसमुदयएणं सबायरेणं सव्वाविभूइए सव्वाविभूसाए सव्व-संभमेणं सव्वणाडएहिं सव्वरोहेहिं सव्वपुप्फगंधमल्लालंकारविभूसाए सव्व-दिव्वतुडियसद्दसण्णिणाएणं महया इड्ढीए जाव रवेणं णिअयपरियालसंपरिवुडा सयाइं २ जाणविमाणवाहणाइं दुरूढा समाणा अकालपरिहीणं चेव सक्कस्स जाव अंतियं पाउब्भवह ॥सू० ५॥

भावार्थ—उस समय शक्र देवेन्द्र को ऐसा संकल्प उत्पन्न होता है कि जम्बूद्वीप में भगवान् तीर्थंकरका जन्म हुआ है इससे अतीत वर्तमान व अनागत शक्र देवेन्द्र का यह जीताचार है कि भगवान् तीर्थंकरका जन्म महोत्सव करना इससे भगवान् तीर्थं-करका जन्म महोत्सव करने को मैं भी जाऊँ ऐसा विचार करके हरिणगमेषी नामक पदात्यानिक के अधिपति को बोलाते हैं और कहते हैं कि अहो देवानुप्रिय ! सुधर्मा

सभा में जाकर मेघ के समान गंभीर मधुर शब्द करनेवाली एक योजन की विस्तारवाली सुस्वरवाली घंटा को तीन बार बजाते हुवे बडे २ शब्द से उद्घोषणा करो कि शक्र देवेन्द्र देवराजा आज्ञा करते हैं, शक्र देवेन्द्र देवराजा जम्बूद्वीप में भगवान् तीर्थंकरका जन्म महोत्सव करने के लिए जाते हैं इससे अहो देवानुप्रिय! तुम भी सब ऋद्धि सब द्युति, सब समुदय और सब प्रकार की विभूति सहित सब विभूषा सब संभ्रम सब नाटक सब आरोह सब पुष्प, गंध, माला, अलंकार व विभूषा सब दीव्यत्रुटित शब्द सन्निपात महाऋद्धि यावत् शब्द सहित अपने २ परिवार से परवरे हुए अपने २ यान विमान पर बैठकर विलम्ब रहित शक्र देवेन्द्र के सन्मुख आवो ॥५॥

मूलम्—तए णं से हरिणगमेसी देवे पायत्ताणियाहिवई सक्केणं देविंदेणं देवरण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे जाव एवं देवोत्ति आणाए विणएणं वयणं पडीसुणेई २ त्ता सक्कस्स देविंदस्स देवरायस्स अंतियाओ पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव सभाए

सुहम्माए मेघोघरसियगंभीरमहुर य सद्दा जोयणपरिमंडल सुघोसघंटा तेणेव उवा-गच्छइ २ त्ता तं मेघोघरसियगंभीरमहुर य सद्दं जोयण परिमंडलं सुघोसं घंटं तिखुत्तो उल्लालेई। तए णं तीसे मेघोघरसियगंभीरमहुरसद्दाए जोयणपरिमंड-लाए सुघोसाए घंटाए तिखुत्तो उल्हालिआए समाणीए सोहम्मे अण्णेहिं एगूणेहिं बत्तीसविमाणावाससयसहस्सेहिं अण्णाइं एगूणाइं बत्तीसघंटासयसहस्साइं जमगसमगं कणकणरावं काओ पयत्ताइं विहुत्था तए णं से सोहम्मे कप्पे पासायविमाणनिवखुडा वडियसद्दसमुट्ठियप्पडिसुआ सयसहस्सं संकुले जाए आवि होत्था ॥६॥

भावार्थ—वह हरिणगमेषि नामक पदात्यानिक के अधिपति शक्र देवेन्द्र के पास से ऐसा सुनकर हृष्टतुष्ट होते हैं यावत् अहो देव ! वैसा करूँगा यों कहकर आज्ञा

को विनयपूर्वक सुनता है फिर शक्र देवेन्द्र के पास से निकलकर सुधर्मा सभा में आता है वहां मेघ के गर्जारव समान गंभीर मधुर शब्द से एक योजन के परिमंडलीवाली घंटा को तीन बार बजाता है तब उस मेघ घर में गंभीर मधुर शब्दका एक योजन में प्रसार करने वाली सुघोष घंटा को तीन वक्त बजा ने से अन्य एक कम बत्तीस लाख विमान की उतनी ही घंटा के समूह का एक साथ कणकणाट शब्द होता है वही शब्द सौधर्म देवलोक के विमान प्रासाद वगैरह जो गंभीर प्रदेश हैं वहां फैलता हुवा उसकी प्रतिध्वनि से लक्षगम शब्द उस घंटा के हो जाते हैं ॥सू-६॥

मूलम्—तए णं तेसिं सोहम्मकप्पवासीणं बहूणं विमाणिआणं देवाण य देवीण य एगंतरइप्पसत्तणिच्चपमत्तविसयसुहमुच्छियाणं सुसरघंटारसिअ विउलबोलतुरियचवलबोहए कए समाणे घोसणकोऊहल दिण्णकण्णए मग्ग-

चित्त उवउत्तमाणसाणं से पायत्ताणियाहिवई देवे तोसिं घंटारवंसि निसंत संतपडिसिसमाणंसि तत्थ २ तहिं २ देसे २ महया २ सद्देण उग्घोसेमाणे २ एवं वयासी (गाहा) हंदि सुणंतु भवंतो बहवे सोहम्मवासिणो देवा सोहम्मकप्पवइणो इणमो वयणहियसुहत्थं आणवेइ णं भो सक्के तं चेव जाव अंतियं पाउब्भवए।७।

भावार्थ—उस समय उस सौधर्म देवलोक में रहनेवाले बहुत वैमानिकदेव और देवियां रमने में एकांत आशक्त हो रहे थे। एकांत प्रेमानुरागरक्त बने थे विषयसुख में मूर्च्छित बने हुए थे वे मधुर शब्द वाली सुघोष घंटा से जागृत हो जाते और उद्-घोषणा सुनने के लिए कान व मन को एकाग्र बनालेते हैं वह अधिपति उस घंटा शब्द से शांत बने हुवे स्थान में बडे २ शब्द से उद्घोषणा करते हुवे ऐसा कहते हैं कि सौधर्मदेवलोक में रहनेवाले बहुत देवता व देवियां तुम यह हितकारी व सुख करनेवाले

वचन सुनो शक्र देवेन्द्र आज्ञा करते हैं यावत् उनके पास शीघ्रमेव आवो सू-७

मूलम्--तए णं ते देवा य देवीओ य एयमट्ठं सोच्चा हट्ठतुट्ठ जाव हियया-अप्पेगइया वंदणवत्तियं एवं सक्कारवत्तियं, सम्माणवत्तियं दंसणवत्तियं कोउहल-वत्तियं जिणभत्तिरागेण अप्पेगइया सक्कस्स वयणमणुवट्टमाणा अप्पेगइया अण्ण-मण्णमणुवहमाणा अप्पेगइया जीयमेय एवमाइ त्तिकट्टु जाव पाउब्भवंति।८।

भावार्थ---तब वे देव और देवियां ऐसा सुनकर हृष्टतुष्ट होते है। कितनेक वंदन करने के लिये कितनेक (आदर) करने के लिए कितनेक सत्कार के लिये सन्मान के लिये दर्शन के लिए कुतूहल के लिए जिनदेव की भक्तिके लिए कितनेक तीर्थंकरके वचनों के अनुवर्ती बनेहुए कितनेक एक एक के अनुवर्ती बने हुए कितनेक यह हमारा जीताचार है ऐसा मानकर शक्र देवेन्द्र के पास जाते हैं ॥सू-८॥

मूलम्—तए णं से सक्के देविंदे देवराया ते बहवे वेमाणिय देवा य देवीओ य अकालपरिहीणं चेव अंतियं पाउब्भवमाणे पासइ २ त्ता हट्ठे पालयं णामं अभिओगियं देवं सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! अणेगखंभसयसण्णिविट्ठं लीलट्ठिएअ सालभंजीआकालियं ईहामियउसह- तुरगणरमगरविहगवालगकिण्णररुरुसरभचमरकुंजरवणलयपउमलय भत्तिचित्त- खंभुग्गयवइररेइया परिगयाभिरामं विज्जाहरजमलजुयलं जंस जुत्त पिव अच्ची- सहस्स मालिणीयं रूवगसहस्सकलियं भिसमाणं भिब्भिसयाणं चक्खुल्लोयणलेसं सुहफासं सस्सिरियरूवं घंटावलिचलियं महुरमणहरसरं सुहकंतं दरिसणिज्जं णिउणोचिअभिसिभिसितं मणिरयणघंटियाजालपरिक्खित्तं जोयणसयसहस्स- विच्छिण्णं पंच जोयणसयमुव्विद्धं सिग्घतुरियजइणणिव्वाहिं दिव्वजाणविमाणं

विउव्वेहि २ त्ता एसमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि ॥९॥

भावार्थ—अब वह शक्र देवेन्द्र देव राजा अपने बहुत वैमानिक देवता देवियों को शीघ्रमेव अपने पास आए हुए देखकर हृष्टतुष्ट होते हैं और पालक नामक आभियोगिक देवको बुलाकर कहते हैं अहो देवानुप्रिय ! अनेक स्तंभवाला क्रीडा करती हुई पुत्तलियों से कलित ईहामृत वृषभ तुरग नर, मगर, विहग, व्यालक, किन्नर रुरु, सरभ चमर, कुंजर वनलता पद्मलता, समान चित्रवाले, स्तंभ पर उद्भवित वज्रमय वेदिका से मनोहर विद्याधरों के युगल युक्त सूर्य जैसे हजारो किरणों से कलित अतिशोभावाला तेज में कीरण डालता हुआ चक्षुओंको अवलोकन योग्य सुखकारी स्पर्शवाला सश्रीकरूपवाला घंटाकी पंक्तियोंसे चंचल मनोहर मधुर स्वरवाला सुखकारी कांत दर्शनीय निपुण कारिगरोंने बनाया हुआ मणीरत्न घंटाजालसे घेराया हुआ एक लाख योजन का विस्तार वाला पांचसौ योजनका उंचा शीघ्र त्वरित कार्य करने वाला ऐसा दीव्य यान विमान

की विकुर्वणा करो और मुझे मेरी आज्ञा पीछी दो ॥९॥

मूलम्—तए णं से पालए देवे सक्केणं देविंदेणं देवरण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ जाव वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ २ त्ता तहेव करेइ तस्स णं दिव्वस्स जाणविमाणस्स तिदिसिं तओ तिसोवाणयपडिरूवगा वण्णओ तेसि णं पडिरूवगाणं पुरओ पत्तेयं २ तोरण वण्णओ जाव पडिरूवगा तस्स णं जाणविमाणस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागं से जहा णामए अलिंगपुक्खेइवा जाव दीवियचम्मेइ वा अणेगसंकुकीलगसहस्सवितत आवड पव्वावडसेढिप्पसेढि सुत्थिय सोवत्थिय वद्धमाणपुसमाणवमच्छंडगमगरंडजारामारा फुल्लावलिपउमपत्तसागरतरंगवसंतलयपउमलयभत्तिचित्तेहिं सच्छाएहिं सप्पभेहिं समरीइएहिं सउज्जोएहिं णाणाविहं पंचवण्णेहिं मणीहिं उवसोभिए तेसिं

णं मणीणं वण्णो गंधो फासो य भाणियव्वो, से जहा रायप्पसेणइज्जा तस्स णं भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए पेच्छाघरमडंवे अणेगखंभसयसण्णिविट्ठे वण्णओ जाव पडिरूवे तस्स उल्लोए पउमलया भत्तिचित्ते जाव सव्वतवणि-ज्जमए जाव पडिरूवे तस्स णं मंडवस्स बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्जदेसभागं महं एगा मणिपेढिया अट्ठ जोयणाइं आयामविक्खंभेणं चत्तारि जोयणाइं बाहल्लेणं सव्वमणिवई वण्णओ तीसए उवरिं महं एगे सीहा-सणे वण्णओ तस्स उवरिं महं एगे विजयदूसे सव्वरयणामए वण्णओ तस्स मज्झदेसभाए एगे वइरामए अंकुसे एत्थ णं महं एगे कुंभिक्के मुत्तदामे, से णं अण्ण अण्णिहिं तदद्दुच्चत्तप्पमाणमित्तेहिं चउहिं अद्धकुंभिक्केहिं मुत्तादामेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते ते णं दामा तवणिज्जभे बूसगा सुवण्णपयरगमंडिया

णाणामणिरयणविविहहारद्धहारउवसोहिया समुइया ईसिं अण्णमण्णसंपत्ता पुव्वा-इएहिं वाएहिं मंदं मंदं एज्जमाणा २ जाव निव्वुइकरेणं सद्देणं ते पएसे आपूरेमाणा २ जाव अईव २ उवसोहेमाणा २ चिट्ठंति ॥१०॥

भावार्थ—तत्पश्चात् वह पालक देव शक्र देवेंद्र से ऐसा सुनकर हृष्टतुष्ट होता है यावत् वैक्रिय समुद्घात करके वैसा ही करता है उस दिव्य यान विमान को तिन दिशा में तीन त्रिसोपान होते हैं उन पंक्तियों के आगे तोरण कहे हैं यावत् प्रतिरूप हैं उस यान विमान के अंदर बहुत सम रमणीय भूमि विभाग कहा है जैसे मृदंग का तल होता है यावत् दीपडेका चर्म होता है उसमें अनेक खीलों जडे हुवे होते हैं आवर्त प्रत्यावर्त श्रेणी प्रश्रेणी स्वस्तिक वर्धमान पुष्यमान मच्छ के अंडे मगर के अंडे स्त्री पुरुष के जोडे कंदर्प-चेष्टा पुष्पावली पद्मपत्र सागर तरंग वसंत ऋतुकी लता पद्मलता वगैरह के चित्र-वाला कांतिप्रभा श्री व उद्योत वाली पांच प्रकार की मणियों सहित सुशोभित है उन

मणियों का वर्ण गंध रस व स्पर्श राजप्रश्नीय सूत्र से जानना उस भूमिभागके मध्य बीच में प्रेक्षागृह मंडप कहा है वह अनेक स्तंभवाला यावत् प्रतिरूप है उस प्रेक्षागृह मंडपके बहुत रमणीय भूमि विभाग के मध्य बीच में एक बडी मणिपीढिका कही है यह आठ योजन की लम्बी चौडी व चार योजन की जाडी है सर्वांग मणिमयी है वगैरह वर्णन करना उस पर एक सिंहासन वह भी वर्णन युक्त है इस पर दिव्य देवदूष्य—वस्त्र ढका है सर्वांग रजत मय वगैरह वर्णन युक्त है। उसके ऊपर मध्य बीच में एक वज्र-रत्न मय अंकुश कहा है यहां पर एक बडे कुंभी समान मुक्ताफल की माला है उसके आसपास उससे आधे प्रमाणवाली चार कुंभिका समान माला कही है, वे मालाओं तपनीय सुवर्णमय उंचे प्राकार से परिमंडित हैं विविध प्रकार के मणियों व रत्नों से विविध प्रकारके हार अर्धहार से सुशोभित है आनंद उत्पन्न करनेवाला है परस्पर किंचिन्मात्र नहीं लगता हुआ पूर्वादि दशों दिशा के वायु को घेर कर हलते हुए यावत्

निवृत्ति सुख करने वाले शब्दसे विमान के प्रदेश को पूर्ण करता हुआ यावत् अत्यंत शोभता हुआ है ॥१०॥

मूलम्—तस्स णं सीहासणस्स अवरूत्तरेणं उत्तरेणं उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णस्स चउरासीए सामाणियसाहस्सीणं चउरासीइ भद्दासणसाहस्सीओ पुरत्थिमेणं अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं, एवं दाहिणपुरत्थिमेणं अब्भिंतरपरिसाए दुवालसण्हं देवसाहस्सीणं दाहिणेणं मज्झिमपरिसाए चउदसण्हं देवसाहस्सीणं दाहिणपच्चत्थिमेणं बाहिरपरिसाए सोलसाए देवसाहस्सीणं पच्चत्थिमेणं सत्तण्हं अणियाहिवई एएणं तस्स सीहासणस्स चउद्दिसि चउण्हं चउरासीण आयरक्खदेवसाहस्सीणं एवमाइ वि भासियव्वं सूरियाभगमेणं जाव पच्चप्पिणइ ॥११॥

भावार्थ—उस सिंहासन से वायव्य कोन उत्तर व ईशान कोन में शक्र देवेन्द्र के ८४००० सामानिकदेव के चौरासी हजार भद्रासन कहे हैं पूर्वदिशा में आठ अग्र-महिषियों के आठ भद्रासन कहे हैं ऐसे ही अग्नि कोन में आभ्यन्तर परिषदा के बारह हजारदेव, के दक्षिण में मध्य परिषदा के चौदह हजार देव के नैऋत्य कोन में बाहिरकी परिषदा के सोलह हजार देव के पश्चिम में सात अनिकाधिपति के सात भद्रासन कहे हैं और उसके चारों दिशा में ३३६००० तीन लाख छत्तीस हजार आत्म-रक्षक देव के उतने भद्रासन कहे हैं यह सब सूर्याभदेव जैसे कहना यावत् इस प्रकार विमान बना करके वह पालक देव आज्ञा पीछे देता है ॥११॥

मूलम्—तए णं से सक्के देविंदे देवराया जाव हट्ठहिअए दिव्वं जिणंदाभि-गमणजुग्गं सव्वालंकारविभूसियं उत्तरवेउव्वियं रूवं विउव्वइ २ त्ता अट्ठहिं अग्गमहिसीहिं सपरिवाराहिं णट्टाणीएणं गंधव्वाणीएण य सद्धिं तं विमाणं

अणुप्पयाहिणी करेमाणे २ पुव्विल्लेणं तिसोवाणेणं दुरूहइ २ त्ता जाव सीहासणंसि पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे एवं चेव सामाणिआवि उत्तरेणं तिसोवाणेणं दुरूहित्ता पत्तेयं २ पुव्वण्णत्थेसु भद्दासणेसु णिसीयंति अवसेसा देवा य देवीओ य दाहिणिल्लेणं तिसोवाणेण दुरूहित्ता तहेव जाव णिसीअंति ॥१२॥

भावार्थ—तत्पश्चात् शक्र देवेन्द्र देवराजा यावत् हृष्टतुष्ट बनकर दिव्य जिनेंद्र के अभिगमन के योग्य सब अलंकार से विभूषित बनकर उत्तरवैक्रिय रूप करते हैं और आठ अग्रमहिषियों व उनके परिवार नृत्यानीक गंधर्वानीकसहित विमानको प्रदक्षिणा करता हुआ पूर्वके त्रिसोपानसे विमान पर चडकर पूर्वाभिमुख से सिंहासन पर बैठता है ऐसे ही सामानिक देव उत्तर दिशा के पंक्तियों से चडकर अपने अपने भद्रासन पर बैठते हैं शेष देवता व देवियां दक्षिण दिशाके पंक्तियों से चडकर यावत् अपने २ भद्रासन पर बैठते हैं ॥१२॥

मूलम्—तए णं तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णस्स दुरूढस्स समाणस्स इमे अट्ठट्ठ मंगलगा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया तयाणंतरं च णं पुण्णकलसभिंगारं दिव्वा य छत्तपडागा सचामरा य दंसणरइआलो अदरिसणिज्जा वाउद्धुय विजयवेजयंति समूसिता गगणतलमणुलिहंती पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया तयाणंतरं च णं छत्तभिंगारं, तयाणंतरं च णं वइरामयवट्टलट्ठसंठिया सुसिलिट्ठपरिघट्ठमट्ठसुपईट्ठिए विसिट्ठे अणेगवरपंचवण्णकुडभी सहस्सपरिमंडियाभिरामे वाउद्धुयविजयवेजयंतिपडागछत्ताइछत्तकलिए तुंगे गगणतलमणुलिहंतसिहरे जोयणसहस्समूसिए महइमहालइए महिंदज्झए पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिए तयाणंतरं च णं सरूवनेवत्थ परिअत्थि असुसज्जा सव्वालंकारविभूसिया पंचअणिआ पंचअणिआहिवईणो जाव संपट्ठिआ तयाणं

तरं च णं बहवे आभियोगिआ देवा य देवीओ य सएहिं २ रूवेहिं जाव निओगेहिं सक्के देविंदे २ पुरओ अमग्गओ य पासओ य अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया तयाणंतरं च णं बहवे सोहम्मकप्पवासी देवा य देवीओ य सव्विड्ढीए जाव दुरूढासमाणा मग्गओ य जाव संपट्ठिया तए णं से सक्के देविंदे देवराया तेणं पंचाणिय परिक्खित्तेणं जाव महिंदज्झएणं पुरओ पकिंच्छिज्जमाणेणं चउरासीए सामाणिय जाव परिवुडे सव्विड्ढीए जाव रवेणं सोहम्मकप्पस्स मज्झं मज्झेणं तं दिव्वं देवड्ढिं जाव उवदंसेमाणे २ जेणेव सोहम्मस्स कप्पस्स उत्तरिल्ले निज्जाणमग्गे तेणेव उवागच्छई २ त्ता जोयणसयसाहस्सीएहिं विग्गहेहिं ओवयमाणे २ ताए उक्किट्ठाए जाव देवगईए वीइवयमाणे २ तिरियमसंखिज्जाणे दीवेसमुद्दाणं मज्झं मज्झेणं जेणेव णंदीसरवरदीवे जेणेव दाहिणपुरत्थिमिल्ले रइकर

शक्रेन्द्रकृत-तीर्थंकर-जन्म-महोत्सवः

पव्वए तेणेव उवागच्छई एवं जा चेव मूरियाभस्स वत्तव्वया णवरं सल्लाहि-
गारो वत्तव्वो जाव तं दिव्वं देविड्ढिं जाव दिव्वं जाणविमाणं पडिसाहरमाणे २
जाव जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणणगरे जेणेव भगवओ तित्थयरस्स
जम्मणभवणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणं तेणं
दिव्वेण जाणविमाणेणं तिखुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ २ त्ता भगवओ तित्थ-
यरस्स जम्मणभवणस्स उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए चउरंगुलमसंपत्ते धरणियले तं
दिव्वं जाणविमाणं ठवेई २ त्ता अट्ठहिं अग्गमहिसीहिं दोहिं अणीएहिं गंधव्वा-
णिएण य णट्टाणीएण य सद्धिं ताओ दिव्वाओ जाणविमाणाओ पुरत्थिमिल्लेणं
तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरूहइ तए णं तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो
चउरासीइ सामाणियसाहस्सीओ ताओ दिव्वाओ जाणविमाणाओ उत्तरिल्लेणं

तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरूहंति अवसेसा देवा य देवीओ य ताओ दिव्वाओ जाणविमाणाओ दाहिणिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहंति ॥१३॥

भावार्थ—जब शक्र देवेन्द्र उस विमानपर आरूढ होता है तब उसके आगे आठ आठ मंगल चलते हैं तदनंतर पूर्ण कलश झारी दिव्य पताका चामर और आंखको सुखकारी देखने योग्य वायु से कंपायमान विजय वैजयंती नामक पताका गगनतलको स्पर्श करती हुई यथानुक्रम से निकलती है तदनंतर छत्र सहित भृंगार कलश चलता है तदनंतर वज्ररत्नमय, वर्तुल लष्ठ सुश्लिष्ठ घटारी मठारी विशिष्ठ अनेक प्रकारकी पांचवर्ण वाली अन्य छोटी ध्वजाओं से सुशोभित और वायुसे उडती हुई विजय वैजयंती पताका व छत्रातिछत्र वाली गगन तल को स्पर्श करती एक हजार योजनकी महेन्द्रध्वजा आगे चलती है तदनंतर अपने २ नेपथ्य (वेश) में सज्ज बने हुए व सब अलंकार से विभूषित पांच अनीक व उनके अधिपति देव अनुक्रम से चलते हैं तद-

नंतर बहुत आभियोगिक देवता व देवियों अपने रूप से यावत् कार्य से शक्र देवेन्द्र के आगे पीछे व आसपाससे चलते हैं तदनंतर सौधर्म देवलोक रहनेवाले बहुत देवता व देवियों सब ऋद्धि सहित यावत् विमान पर आरूढ हुए आगे चलते हैं तत्पश्चात् पांच अनीकसे परिक्षिप्त यावत् महेन्द्रध्वजा जिनके आगे चलती है ऐसा शक्र देवेंद्र चौरासी हजार सामानीक देव सहित यावत् परवरा हुआ सब ऋद्धि यावत् बडे २ शब्द सहित सौधर्म देवलोक के मध्य बीच में होकर दिव्य देव ऋद्धिबताता हुवा जहां सौधर्म देवलोकका उत्तरदिशाका निर्यान (नीचे उतरनेका) मार्ग है वहां एक लाख योजन का शरीर बनाकर आता हुआ उत्कृष्ट दिव्य यावत् देवगति से जाता हुआ, तीर्च्छा असंख्यात द्वीप समुद्र के मध्य बीच में होकर जहां नंदीश्वर द्वीप है वहां अग्नि कोन के रतिकर पर्वत पर आता है यों जैसे सूर्याभ देवकी वक्तव्यता कही है वैसा ही कहना विशेष में यहां शकेन्द्रका अधिकार कहना यावत् दिव्य देवऋद्धि यावत् यान विमान को साहरन करके

भगवान् तीर्थंकरका जन्म होनेका नगर एवं जहां उनका जन्म भवन होता है वहां आता है उस भवन को दिव्य यान विमान से तीन वार प्रदक्षिणा करके भगवान् तीर्थंकरके जन्म भवन से ईशान कोन में पृथ्वी तल से चार अंगुल ऊंचा दिव्य यान विमान रखता है फिर आठ अग्रमहिषियों और गंधर्वानीक ८ नृत्यानीक यों दो अनीक सहित पूर्व दिशा की पंक्तियों से नीचे उतरते हैं तत्पश्चात् शक्र देवेन्द्र के चौरासी हजार सामानीक देव उस दिव्य यान विमान के उत्तर दिशा की पंक्तियों से नीचे उतरते ह और शेष देवता व देवियों उस दिव्य यान विमान से दक्षिणकी पंक्तियों से नीचे उतरते हैं ॥१३॥

मूलम्—तए णं से सक्के देविंदे देवराया चउरासीए सामाणियसाहस्सीएहिं जाव सद्धिं संपरिवुडे, सव्विड्ढीए जाव दुंदुहि णिग्घोसणाइयरवेणं जेणेव भयवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छइ २ त्ता आलोए चेव पणामं करेइ २ त्ता भयवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ २ त्ता

करयल जाव एवं वयासी णमुत्थु ते रयणकुच्छिधारिए एवं जहा दिसाकुमारीओ जाव धण्णासि पुण्णासि तं कयत्थासि अहण्णं देवाणुप्पिए ! सक्के णामं देविंदे देवराया भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमहिमं करिस्सामि तण्णं तुब्भेहिं णो भी-इयव्वं तिकट्टु उवसोवणिं दलयई २ त्ता तित्थयर पडिरूवगं विउव्वइ २ त्ता तित्थयरमाऊए पासे ठवेइ २ त्ता पंच सक्के विउव्वइ २ त्ता एगे सक्के भयवं तित्थयरं करयलसंपुडेणं गिण्हइ, एक्के सक्के पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ दुव्वे सक्का उभओ पासिं चामरुक्खेवं करेंति एगे सक्के पुरओ वज्जपाणी पवुट्ठइ ॥१४॥

भावार्थ—तत्पश्चात् वह शक्र देवेन्द्र चौरासी हजार सामानीक सहित यावत् परवरा हुआ सब ऋद्धि यावत् दुंदुभि बजाता हुआ जहां भगवान् तीर्थंकर व उनकी माता होती है वहां आता है उनको देखते ही प्रणाम कर तीन वार आदक्षिण प्रदक्षिणा करके दोनों हाथ जोडकर ऐसा कहता है कि अहो रत्न कुक्षिको धारन करनेवाली तुमको

नमस्कार होवो यों जसे दिशाकुमारियोंने कहा वैसे ही कहना यावत् अहो देवानुप्रिय ! तू धन्या है तू पुन्य वाली है तू कृतार्थ है अहो देवानुप्रिये ! मैं शक्र नामक देवेंद्र भगवान् तीर्थंकरका जन्म महोत्सव करूँगा इससे तुम डरना नहीं यों कहकर तीर्थंकर की माता को उपस्थापिनी निद्रा देकर तीर्थंकर जैसा दूसरा रूप बनाकर उनके पास रखता है फिर पांच शक्र का वैक्रेय बनाता है जिन में से एक शकेन्द्र भगवान् तीर्थंकर को करतल से ग्रहण करता है एक शकेन्द्रपीछे रहकर छत्र धारण करता दो शकेन्द्र दोनों बाजु रह कर चामर वींजते और एक शकेन्द्र हाथ में वज्र धारणकर तीर्थंकरके आगे चलता है।१४।

मूलम्—तए णं से सक्के देविंदे देवराया अण्णेहिं बहूहिं भवणवई वाणमंतरजोइसवेमाणीएहिं देवेहिं देवीहि य सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव णाईएणं ताए उक्किट्ठाए जाव वीइवयमाणे २ जेणेव मंदरे पव्वए जेणेव पंडगवणे जेणेव अभिसेयसिला जेणेव अभिसेयसीहासणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सीहासणव-

रगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे ॥१५॥

भावार्थ—फिर वह देवेन्द्र बहुत भवनपति वाणव्यंतर ज्योतिषी व वैमानिक देव देवियों से पखरा हुआ सब ऋद्धि द्युति यावत् नाद से उत्कृष्ट दिव्य देव गतिसे मेरू पर्वत के पंडग वन में अभिषेक शिला के सिंहासन पास आता है वहां सिंहासन पर भगवान् तीर्थंकर को पूर्वाभिमुखसे बैठाता हैं ॥१५॥

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं ईसाणे देविंदे देवराया मूलपाणी वसभवाहणे सूरिंदे उत्तरड्ढलोगाहिवई अट्ठावीसइ विमाणवाससयसहस्साहिवई अरयंवरवत्थधरे एवं जहा सक्के इमं णाणत्तं महाघोसाघंटा लहुपरक्कमो पायत्ताणियाहिवई पुप्फओ विमाणकारी दक्खिणिल्ले णिज्जाणमग्गे उत्तरपुरत्थिमिल्लो रइकरपव्वओ मंदरे समोसरिओ जाव पज्जुवासइ एवं अवसिट्ठा वि इंदा

भाणियव्वा जाव अच्चुओत्ति इमं णाणत्तं (गाहा) चउरासीई असीई बावत्तरी सत्तरीय सट्ठीयपण्णा चत्तालीसा तीसा वीसा दससहस्सा एए सामाणियाणं (गाहा) बत्तीसट्ठा वीसा बारस अडचउरा सयसहस्सा पण्णा चत्तालीसा छच्च सहस्सा सहस्सारे आणय पाणय कप्पे चत्तारि सया रण्णच्चूए तिण्णि एए विमाणाणं इमे जाणविमाणकारी देवा तं जहा गाहा–पालय पुप्फय सोमणसे सिखिच्छेयणंदियावत्ते कामगमे पीइगमे मणोरमे विमल सव्वओ भद्दे सोहम्मगाणं सणंकुमाराणं बंभलोयगाणं महासुक्काणं पाणयागाणं इंदाणं सुघोसघंटाहरिणगमेसी पायत्ताणिआहिवई उत्तरिल्ला णिज्जाण भूमी दाहिणपुरत्थिमिल्ले रइकर पव्वए ईसाण माहिंदलंतसहस्सारेच्चुअगाणं इदाणं महाघोसाघंटा लहुपरक्कमोपायत्ताणीयाहिवई दक्खिणिल्ले णिज्जाणमग्गे उत्तरपुरत्थिमिल्ले-

रइकरगपव्वए परिसाओणं जहा जीवाभिगमे आयरक्खा सामाणिय चउग्गुणा सव्वेसिं जाणविमाणा सव्वेसिं जोयणसहस्सविच्छिण्णा उच्चत्तेणं सविमाण-प्पमाणा महिंदज्झया सव्वेसिं जोयणसाहस्सीया सक्कवज्जा मंदरे समोसरंती जाव पज्जुवासंति ॥१६॥

भावार्थ—उस काल उस समय में ईशान नामक देवेन्द्र देवराजा हाथ में त्रिशूल-धारण करनेवाला वृषभका वाहनवाला देवताओं का इन्द्र उत्तरार्ध लोक का अधिपति अठाईस लाख विमानका स्वामी रज रहित वस्त्र धारण करने वाला यों जैसी शकेन्द्र की वक्तव्यता कही थी वैसे ही सब वक्तव्यता यहां कहना। विशेष में महाघोष घंटा बजाता है लघुपराक्रम नामक पादात्यनीक के अधिपति देव घंटा बजाता है पुष्पक नामक विमान का वैक्रिय करता है दक्षिण दिशाके निर्यान मार्ग से उतरता है ईशान कोन रतिकर पर्वत पर ठहरता है और मेरुपर्वत पर जाता है यावत् पर्युपासना करता है ऐसे ही अच्युत

पर्यंत शेष सब इन्द्रोंका कहना। इसमें जो जो विशेषता है सो कहते हैं सौधर्मेन्द्र के ८४ हजार सामानीक देव हैं। ईशानेन्द्र के ८० हजार सनत्कुमारेन्द्र के ७२ हजार माहेन्द्र के ७० हजार ब्रह्मेन्द्र के ६० हजार लांतकेन्द्रके ५० हजार महाशुक्रेन्द्र के ४० हजार सहस्रा-रेन्द्र के ३० हजार प्राणतेन्द्र के २० हजार और अच्युतेन्द्रके १०ह जार सामानिक देव हैं।

अब विमान की संख्या कहते हैं सौधर्मेन्द्र देवलोक में ३२ लाख विमान, ईशानेन्द्र के २८ लाख विमान, सनत्कुमारेन्द्र के १२ लाख माहेन्द्र के ८ लाख ब्रह्मेन्द्र के ४ लाख लांतकेन्द्र के ५० हजार महाशुकेन्द्र के ४० हजार सहस्रारेन्द्र के ६ हजार प्राणतेन्द्र के ४०० और अच्युतेन्द्र के ३०० विमान कहे हैं अब यान विमान के नाम कहते हैं १ पालक २ पुष्पक ३ सौमणस ४ श्रीवत्स ५ नंदावर्त ६ कामगम ७ प्रीतिगम ८ मनोरम ९ विमल और १० सर्वतोभद्र। सौधर्मेन्द्र सनत्कुमारेन्द्र ब्रह्मेन्द्र महाशुकेन्द्र और प्राणतेन्द्र इन पांच इन्द्रों के सुघोष नामक घंटा है और हरिणगमेषी नामक पदात्यनीक देवता है। इनके निकलने

के द्वार उत्तर दिशा में है और अग्निकोन के रतिकर पर्वत पर विश्राम लेते हैं ईशानेन्द्र, माहेन्द्र, लांतकेन्द्र, सहस्रारेन्द्र और अच्युतेन्द्र इन पांचो के महाघोष नामक घंटा है, लघुपराक्रम नामक पदातिका अधिपति देवता है। दक्षिण दिशा में निकलने का द्वार है और ईशानकोन के रतिकर पर्वत पर विश्रामस्थान है इनकी तीनों परिषदा के देवों का कथन जीवाभिगमसूत्र से जानना। सामानिक देवों से आत्मरक्षक देव चोगुने जानना। सब के यान विमान एक लाख योजन का लम्बा चौडा और अपने २ देवलोक के विमान जितना उंचा बनाते है सबकी महेन्द्र ध्वजा एक हजार योजन की। शक्रेन्द्र तीर्थंकर के जन्म नगर में आते हैं और शेष इन्द्र अपने २ स्थान से सीधे मेरु पर्वत पर आते हैं यावत् पर्युपासना करते हैं ॥१६॥

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं चमरे असुरिंदे असुरराया चमरचंचाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए चमरंसि सीहासणंसी चउसट्ठी सामाणियसाह-

स्सीहिं तेत्तीसाए तायत्तीसएहिं चउहिं लोगपालेहिं पंचहिं अग्गमहिसीहिं स परिवाराहिं तिहिं परिसाहिं सत्ताहिं अणियाहिं सत्ताहिं अणियाहिवईहिं चउहिं चउसट्ठीहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं अण्णेहिं जहा सक्को णवरमिमं णाणत्तं दुमो पायत्ताणियाहिवई ओघस्सरा घंटा विमाणं पण्णासं जोयणसहस्साइं महिंदज्जओ पंच जोयणसहस्साइं विमाणकारी आभिओगिओ देवो अवसिट्ठं तं चेव जाव मंदरे समोसरइ पज्जुवासइ ॥१७॥

भावार्थ—उस काल और उस समय में चमरेन्द्र नामक असुरेन्द्र असुरकुमार जाति के देवों की चमरचंचा राजधानी में सुधर्मा सभामें चमर सिंहासन पर ६४ हजार सामानिक तेत्तीस त्रायस्त्रिंशक चार लोकपाल परिवार सहित पांच अग्रमहिषीयों तीन परिषदा सात अनीक, सात अनीकाधिपति, दो लाख छप्पन हजार आत्मरक्षक और अन्य बहुत

देवता एवं देवी के साथ भोग भोगता हुआ विचरता है वगैरह सब वर्णन शक्रेन्द्र जैसे ही कहना परंतु यहां पर विशेषता बताते हैं। द्रुम पदात्यानिक का अधिपति ओघस्वर घंटा पच्चास हजार योजन का विमान लम्बा चौडा पांच हजार योजन की उंची महेन्द्र ध्वजा विमान बनानेवाला आभियोगी देवता, शेष सब पूर्वोक्त प्रकार कहना। यह मेरु पर्वत पर सीधे जाते हैं।१७।

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं बलिरसुरिंदे असुरराया एवमेव णवरं सट्ठी सामाणिय साहस्सीओ चउगुणा आयरक्खा महादुमो पायत्ताणीयाहिवई महाओघरस्सरा घंटा सेसं तं चेव परिसाओ जहा जीवाभिगमे ॥१८॥

भावार्थ—उस काल और उस समय में बलि नामक असुरेन्द्र यावत् भोगोपभोग भोगता हुआ विचरता है इसका भी कथन पूर्वोक्त प्रकार से कहना। विशेष में ६० हजार सामानिक देव दो लाख चालीस हजार आत्मरक्षक देव महाद्रुम नामक पदाति अनीक का अधिपति यहां ओघस्वर घंटा और शेष पूर्वोक्त प्रकार जानना। यावत् मेरु पर्वत पर

सीधे जाते हैं। उनकी परिषदा जीवाभिगम सूत्र से जानना ॥१८॥

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं धरणे तहेव णाणत्तं छ सामाणिय साहस्सीओ छ अग्गमहिसीओ चउगुणा आयरक्खा मेघस्सरा घंटा भद्दसेणो पायत्ताणीयाहिवई विमाणं पणवीसं जोयणसहस्साइं महिंदज्झओ अड्ढाइज्जाइं जोयणसहस्साइं एवं असुरिंदवज्जियाणं भवणवासि इंदाणं णवरं असुराणं ओघस्सरा घंटा णागाणं मेघस्सरा सुवण्णाणं हंसस्सरा विज्जूणं कोंचस्सरा अग्गीणं मंजूस्सरा दिसाणं मंजूघोसा उदहीणं सुस्सरा दीवाणं महुरस्सरा वाऊणं णंदिस्सरा थणियाणं णंदीघोसा (गाहा) चउसट्ठी सट्ठी खलु छच्च सहस्साओ असुरवज्जाणं सामाणियाओ एए चउग्गुणो आयरक्खाओ दाहिणिल्लाणं पायत्ताणीयाहिवई भद्दसेणो उत्तरिल्लाणं दक्खो ॥१९॥

भावार्थ—उस काल और उस समय में धरणेन्द्र नामक नागकुमारेन्द्र यावत् मेरु पर्वत पर जाते हैं वहां तक अधिकार पूर्वोक्त जैसे कहना विशेष में छ हजार सामानिक, अढाइ हजार योजन की उंची महेन्द्र ध्वजा, ऐसे ही असुरेन्द्र सिवाय भवनवासी के सब इन्द्रों का जानना। विशेष से असुरकुमार के ओघस्वरवाली घंटा नागकुमार के मेघस्वरवाली घंटा सुवर्णकुमार के हंसस्वरवाली विद्युत्कुमार के क्रौंचस्वरवाली, अग्निकुमार के मंजूस्वरवाली, दिशाकुमार के मंजुघोषवाली उदधिकुमार के सुस्वर द्वीपकुमार के मधुरस्वरवाली वायुकुमार के नंदीस्वरवाली और स्तनितकुमार के नंदीघोषवाली घंटा है। चमरेन्द्र के ६४ हजार सामानिकदेव बलेन्द्र के ६० हजार और शेष १८ इन्द्रों के छ २ हजार सामानिक देव कहे हैं। इनसे चौगुणे आत्मरक्षक देव हैं चमरेन्द्र सिवाय दक्षिण दिशा के नव इन्द्रों का पालक नामक पदातिका स्वामी है उत्तर दिशा के बलेन्द्र का भद्रसेन नामक पदातिका स्वामी है और शेष दक्षिण दिशा के

नव इन्द्रों के दक्ष नामक पदातिका स्वामी है ॥१९॥

मूलम्-वाणमंतरजोइसिया णेयव्वा एवं चेव णवरं चत्तारि सामाणिअ साहस्सीओ, चत्तारि अग्गमहिसीओ सोलस आयरक्खसहस्सा विमाणा जोयण सहस्सं, महिंदज्झया पणवीसजोयणसयं घंटा दाहिणाणं मंजुस्सरा उत्तराणं मंजुघोसा पायत्ताणियाहिवई विमाणकारिय आभिओगा देवा जोइसियाणं सुस्सरा सुस्सरणिग्घोसाओ घंटाओ मंदरे समोसरणं जाव पज्जुवासंति ॥२०॥

भावार्थ-इस प्रकार का कथन वानव्यंतर देवता का और ज्योतिषी देवता का भी कहना इस में इतना विशेष चार हजार सामानिक देव, चार अग्रमहिषी सोलह हजार आत्मरक्षक देव एक हजार योजन का लम्बा चौडा विमान सवासो योजन की महेन्द्र ध्वजा व्यंतर जाति के दक्षिण दिशा के १६ इन्द्र के मंजुस्वरा नामक घंटा उत्तर दिशा के १६ इन्द्र

के मंजुघोषा नामक घंटा है, कटक का स्वामी भी पालदेव है ज्योतिषी में चंद्रमा इन्द्र के सुस्वरा नामक घंटा है और सूर्य के सुस्वरा निर्घोष नामक घंटा है यों १० वैमानिक के २० भवनपति के ३२ वानव्यंतर के और २ ज्योतीषी के सब मिलकर ६४ इन्द्र मेरु पर्वत पर आकर तीर्थंकर भगवान की पर्युपासना करते हैं ॥२०॥

मूलम्–तए णं से अच्चुए देविंदे देवराया महिंदे देवाहिवे आभिओगे देवे सद्दावेइ २त्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! महत्थं महग्घं महरिहं विउलं तित्थयराभिसेयं उवट्ठावेह ॥२१॥

भावार्थ—फिर अच्युतेन्द्र नामक देवेन्द्र देवता का राजा और सब देवेन्द्र का स्वामी आभियोगिक देवता को बुलाते हैं और कहते हैं कि अहो देवानुप्रिय! महाअर्थवाला महदर्घ्य, महामूल्यवाला ऐसा तीथकर का जन्म का अभिषेक करो ॥२१॥

मूलम्–तए णं से आभियोगा देवा हट्ठतुट्ठा जाव पडिसुणित्ता, उत्तरपुर-

त्थिमं दिसीभायं अवक्कमंति अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं जाव समोहणित्ता, सुवण्णमया १, रययमया २, रयणमया ३, सुवण्णरययमया ४, सुवण्णरयणमया ५, रययरयणमया ६, सुवण्णरययरयणमया ७, माट्टियामया ८ जे कलसा तेसिं कलसाणं इक्किक्काए जाईए अट्ठुत्तरसहस्सं अट्ठुत्तरसहस्सं ईक्किक्कस्स इंदस्स आसी। एवं चउसट्ठीए इंदाणं छण्णवइ-आहिय-सोलससहस्ससंजुयाइं पंचलक्खाइं कलसाणं दट्ठूण सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो इमेयारूवे अज्झत्थिए पत्थिए चिंतिए कप्पिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जितथा—'जे इमावालो सिरिसकुसुम—सुउमालो पहू एवइयाणं जलसंमियाणं महाकलसाणं महइमहालयं जलधारं कहं सहिस्सइ' त्ति। एवंविहं सक्कस्स अज्झत्थियं ओहिणा आभोइय तहा संसयनिवारणट्ठं अउलबलपरक्कमो भयवं सयपादंगुट्ठग्गेणं सीहासणस्स

एगदेसे फुसइ। तए णं भगवओ तित्थयरस्स अंगुट्ठग्गफासमेत्तेणं मेरु 'महा-पुरिसाणं चरणफासेण अहं पावणो जाओम्हि'-त्ति कट्टु हरिसिओ विव कंपिउमारद्धो ॥२२॥

भावार्थ—तदनन्तर वे आभियोगिक देव हृष्टतुष्ट हुए यावत् यह वचन सुनकर के उत्तर पूर्व दिशा की ओर ईशानकोने में जाकर वैक्रिय समुद्घात करते हैं वैक्रिय-समुद्घात करके वैक्रिय समुद्घात से आठ सहस्रसुवर्ण का कलश एवं तत्पश्चात् १ स्वर्ण के, (२) चांदी के, (३) रत्नों के, (४) सोने-चांदी के, (५) सोने-रत्नों के, (६) चांदी-रत्नों के, (७) सोने-चांदी-रत्नों के तथा (८) मृत्तिका के, इन आठ प्रकार के कलशों में से एक एक जाति के प्रत्येक इन्द्र के पास एक हजार आठ कलश थे। इस प्रकार चोंसठ इन्द्रों के कुल पांच लाख, सोलह हजार, छयानवे कलश हुए। इतने कलशों को देखकर देवेन्द्र देवराज शक्र को ऐसा आध्यात्मिक, प्रार्थित, चिन्तित, कल्पित, मनोगत

संकल्प हुआ कि शिरीष के कुसुम के समान सुकुमार यह शिशु भगवान् इतने जल-पूर्ण महाकलशों की अत्यन्त विशाल जलधारा को किस प्रकार सहेंगे ?

शक्र के इस प्रकार पांचो प्रकार के विचार अवधिज्ञान से जानकर, उनकी शंका को दूर करने के लिये, अतुल बल और पराक्रम वाले तीर्थंकर भगवान् ने अपने पैर के अंगुठे के अग्रभाग से सिंहासन के एक भाग का स्पर्श किया, तब भगवान् तीर्थंकर के अंगुठे के स्पर्शमात्र से मेरु पर्वत कांपने लगा, मानो 'महापुरुषों के चरणस्पर्श से मैं पावन हो गया' ऐसा सोचकर हर्ष से हिलने लगा हो ॥२२॥

मूलम्--जं समयं च णं मेरु कंपिउमारद्धो. तं समयं च णं पुढवी कंपिया, समुद्दो खुद्धो, सिहराणि पडिउमारद्धाणि। तेसिं सयलजगजीवजायहियय विदा-रगो भयभेरवो महासद्दो समुब्भूओ। तिहुयणंसि महं कोलाहलो जाओ। लोगा भयभीया जाया। सव्वजंतुणो भयाउला सयसयट्ठाणाओ निस्सरिय को अम्हाणं

तायगो' भविस्सइ त्तिकट्टु सरणमन्नोसिउ विव जत्थ तत्थ पलाइउमारद्धो। सव्वे देवा देवीओ यावि भउव्विग्गमाणसा जाया।

तए णं से सक्के देविंदे देवराया एवं चिंतेइ-'जण्णं अयं विसालो मेरु इमस्स कोमलाओवि कोमलस्स बालगस्स पहुणो उवरि पडिस्सइ, तो अस्स बालगस्स का दसा भविस्सइ? इमस्स बालगस्स अम्मापिऊणं समीवे कहं गमिस्सामि? किं कहिस्सामि? त्तिकट्टु सक्किंदो अट्टज्झाणोवगओ झियायइ। तओ 'केण एवं कडं' त्तिकट्टु सक्के देविंदे देवराया आसुरुत्ते मिसिमिसंते कोवग्गिणा संजलिए ओहिं पउंजइ। तए णं ओहिणा नियदोसं विण्णाय भगवओ तित्थयरस्स पायमूले करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी-णायमेयं अरहा! विण्णायमेयं अरहा! परिण्णायमेयं अरहा! सुय-

मेयं अरहा! अणुहूयमेयं अरहा! जे अईया जे य पडुप्पन्ना जे य आगमिस्सा अरहंता भगवंतो ते सव्वेऽवि अणंतबलिया अणंतवीरिया अणंतपुरिसक्कारपरक्कमा हवंति तिकट्टु वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता नियअवराहं खमावेइ ॥२३॥

भावार्थ—जिस समय मेरु पर्वत कांपने लगा, उस समय निश्चय ही सारी पृथ्वी कांप उठी, समुद्र क्षुब्ध हो गया, शिखर गिरने लगे, समस्त संसार के जीवों के हृदय को विदारण करनेवाला महान् भयंकर नाद हुआ। तीनों लोक में बडा कोलाहल हो गया। लोग डर गये। सब प्राणी भय से व्याकुल होकर, अपने-अपने स्थान से निकलकर 'कौन हमारी रक्षा करेगा' ऐसा सोचकर शरण खोजने के लिए इधर-उधर भागने लगे और सभी देवो एवं देवताओं का चित्त भी भय से कांपने लगा।

तब देवेन्द्र देवराज शक्र ने इस प्रकार विचार किया—अगर यह विशाल मेरु पर्वत, कमल से भी कोमल, बालवयवाले उन प्रभु के ऊपर गिर जायगा तो इनकी क्या दशा

होगी ? कैसे मैं इनके मातापिता के पास जाऊंगा ? क्या कहूंगा ?। इस प्रकार विचार करके शक्रेन्द्र आर्त्तध्यान से युक्त होकर चिन्ता करने लगे।

फिर 'किसने ऐसा किया है?' यह सोचकर शक्र देवेन्द्र देवराज को क्रोध आगया। क्रोध की अग्नि से वह प्रज्वलित हो गये। उनने अवधिज्ञान का उपयोग लगाया। तब अवधिज्ञान से अपना ही दोष जानकर भगवान् तीर्थंकर के चरणमूल में दोनों हाथ जोडकर और मस्तक पर आवर्त्त एवं अंजलि करके वह इस प्रकार बोले–'हे भगवन्! मैंने जाना है, हे भगवन्! मैंने अच्छी प्रकार जाना है, हे भगवन्! मैंने खूब अच्छी प्रकार जाना है, हे भगवन्! मैंने सुना है, हे भगवन्! मैंने अनुभव भी कर लिया है कि जो अर्हन्त भगवान् अतीतकाल में हो चुके हैं, जो अर्हन्त भगवान् वर्त्तमान में है, और जो अर्हन्त भगवान् भविष्य में होंगे, वे सभी अनन्तबली, अनन्तवीर्यवान्, अनन्तपुरुषकार–पराक्रम के धनी होते हैं।' इस प्रकार बोलकर उनको वन्दना की, नमस्कार

किया, वन्दना नमस्कार करके अपने अपराध को खमाया ॥२३॥

मूलम्—तए णं सव्वे इंदा हरिसवसविसप्पमाणहियया सव्विड्ढिए जाव महया रवेणं अच्चुइंदाइक्कमेण भगवं तित्थयरं तित्थयराभिसेएणं अभिसिंचिंसु।

तए णं सक्किंदेण अणुवममहावीरवाचं चियत्तणेणं कंपियमेरु 'भीमभयभेरवं उरालं अचेलयाइयं परिसहं सहिस्सइ' त्तिकट्टु य भगवओ गिव्वाणगणसमक्खं अंत्थधामं सिरीमहावीरेति नामं कयं ॥२४॥

भावार्थ—तत्पश्चात् हर्ष से विकसित चित्तवाले होकर सब इन्द्रोंने पूरे ठाठ के साथ यावत् महान् घोष करते हुए, अच्युतेन्द्र आदि के क्रम से भगवान् तीर्थंकर का अभिषेक किया।

तत्पश्चात् शक्रेन्द्र ने, अनुपम महावीरता से युक्त होने के कारण, मेरु पर्वत को

कम्पित कर देने के कारण, तथा 'यह भगवान् भविष्यत् काल में घोर भय से भयानक अचेलता आदि बडे-बडे परीषहों को सहन करेंगे' यह सोचकर, देवों के समूह के सामने भगवान् का गुणनिष्पन्न 'श्री महावीर' ऐसा नाम रक्खा ॥२४॥

मूलम्—तए णं सक्के देविंदे देवराया पंचसक्के विउव्वइ २ त्ता एगे सक्के भगवं तित्थयरं करयलपुडेणं गिण्हइ एगे सक्के पिट्ठओ य आयावत्तं धरेइ दुवे सक्का उभओ पासिं चामरूक्खेवं करेंति एगे सक्के वज्जपाणि पुरओ पगढई ॥२५॥

भावार्थ—तत्पश्चात् शक्र देवेन्द्र पांच शक्र का रूप वैक्रिय करते हैं एक शक्रेन्द्र भगवान् तीर्थंकर को करतल से ग्रहण करते हैं एक शक्रेन्द्र पीछे रहकर छत्र धारण करते हैं दो शक्रेन्द्र दोनों बाजु चामर विंजते हैं और एक शक्रेन्द्र हाथ में वज्र धारण कर खडे रहते हैं ॥२५॥

मूलम्—एएणं से सक्के चउरासीए सामाणियसाहस्सीहिं जाव अण्णेहिं य भवणवईवाणमंतरजोइसवेमाणिएहिं देवेहिं देविहि य सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए

जाव णाइयरवेणं ताए उक्किट्ठाए जाव जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मण णयरे जेणेव जम्मण भवणं जेणेव तित्थयरमाया तेणेव उवागच्छइ २ त्ता भयवं तित्थयर-माउए पासे ठवेइ २ त्ता तित्थयरपडिरूवगं पडिसाहरइ २ त्ता ओसोवणिं पडिसाहरइ २ त्ता एगं महं खोमजुयलं कुंडलजुयलं च भगवओ तित्थयरस्स ओसीसगमूले ठवेइ २ त्ता एगं महं सिरिदामगडं तवणिज्जलंबूसगं सुवण्णपयरगमंडियं णाणा मणिरयणविविहहारद्धहारउवसोहियसमुदयं भगवओ तित्थयरस्स उल्लोअंसि निक्खिवइ तए णं भगवं तित्थयरे अणिमिसाए दिट्ठीए देहमाणे २ सुहंसुहेणं अभिरममाणे चिट्ठइ ॥२६॥

भावार्थ—तत्पश्चात् वह शक्रेन्द्र ८४ हजार सामानीक यावत् अन्य भवनपति वाण-व्यंतर ज्योतिषी व वैमानिक देवता और देवियों सहित सब ऋद्धि यावत् शब्द से

उत्कृष्ट दिव्य देवगति से जहां भगवान् तीर्थंकर का जन्म नगर और जन्म भवन और जहां तीर्थंकर की माता है वहां आते हैं वहां भगवान् तीर्थंकर को उनकी माता के पास रखते हैं वहां से तीर्थंकर का जो रूप पहिले बनाकर रखते हैं उसका साहरन करते हैं अवस्थापिनी निद्रा का भी साहरन करते हैं और एक बडा क्षोम युगल (अत्युत्तम कार्पास वस्त्र) और कुंडल का युगल ये दोनों तीर्थंकर के ओसीसा के नीचे रखते हैं फिर एक बडा सौभाग्यवंत विचित्र रत्नों की माला का हार सुवर्णमय उंचा लम्बा अनेक प्रकार के मणि रत्नमय विविध प्रकार के हार अर्धहार से सुशोभित श्रीदाम कांड नामक दडा भगवंत को दिखने में आवे ऐसा रखते हैं तत्पश्चात् भगवान् तीर्थंकर को अनिमिष दृष्टि से देखते हुए आनंद करते हुए रहते हैं ॥२६॥

मूलम्—तए णं से सक्के देविंदे देवराया वेसमणं देवे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! बत्तीसं हिरण्णकोडीओ बत्तीसं सुवण्ण-

कोडीओ बत्तीसं रयणकोडीओ बत्तीसं णंदाइं बत्तीसं भद्दाइं सुभगसुभगरूवे जोयणलावण्णे य भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणंसि साहराइ २ त्ता एय-माणात्तियं पच्चप्पिणाहि तए णं से वेसमणे देवे सक्केण जाव विणएणं वयणं पडिसुणेइ २ त्ता जंभए देवे सद्दावेइ २ त्ता एवं खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया बत्तीसं हिरण्णकोडीओ जाव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणंसि साहरह २ त्ता एय-माणत्तियं पच्चप्पिणह तए णं ते जंभगा देवा वेसमणेणं देवेणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ जाव खिप्पामेव बत्तीसं हिरण्णकोडीओ जाव सुभगसोभग्गरूवं जोव्वण लावण्णं भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणंसि साहरंति २ त्ता जेणेव वेसमण-देवे तेणेव जाव पच्चप्पिण्णंति तए णं से सक्के वेसमणदेवे जेणेव सक्के देविंदे देवराया जाव पच्चप्पिणइ ॥२७॥

भावार्थ—तत्पश्चात् शक्र देवेन्द्र देवराज, वैश्रमण देव को बुलाकर ऐसा कहते हैं अहो देवानुप्रिय बत्तीस क्रोड हिरण्य बत्तीस क्रोड सुवर्ण बत्तीस क्रोड रत्न बत्तीस नंद-नामक वृत्तासन बत्तीस भद्रासन अच्छा रूप लावण्य वगैरह भगवान् तीर्थंकर के जन्म भवन में साहरन करो और मुझे मेरी आज्ञा पीछी दो तत्पश्चात् वैश्रमण शक्र देवेन्द्र के उस वचन को श्रवण करते हैं और जृंभक देवों को बुलाते हैं और उनको कहते हैं कि अहो देवानुप्रिय ! बत्तीस क्रोड हिरण्य वगैरह भगवान् तीर्थंकर के भवन में लाओ और इतना करके मुझे मेरी आज्ञा पीछी दो वैश्रमण देव के ऐसा कहने पर जृंभक देव हृष्ट-तुष्ट होते हैं यावत् बत्तीस क्रोड हिरण्य यावत् सुभग सौभाग्य रूप यौवन लावण्य वगैरह तीर्थंकर के भवन में साहरन करके जहां वैश्रमण देव रहते हैं वहां आकर उनको उनकी आज्ञा पीछी देते हैं तत्पश्चात् वह वैश्रमण देव शक्र देवेन्द्र के पास आकर उनको उनकी आज्ञा पीछी देते हैं ॥२७॥

मूलम्–तए णं से सक्के देविंदे देवराया आभिओगे देवे सद्दावेइ २ त्ता एवं वयासी खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! भगवओ तित्थयरस्स जम्मणणयरंसि सिंघाडग जाव महापहेसु महया २ सद्देणं उग्घोसेमाणा २ एवं वयह हंदि सुणंतु भवंतो बहवे भवणवइवाणमंतरजोइसवेमाणिया देवा य देवीओ य जेणं देवाणुप्पिया! तित्थयरस्स तित्थयरमाउए वा उवरिं असुहं मणं पहारेइ तस्स णं अज्जगमंजरियाइव सयलमुद्धाणं फुट्टओ त्तिकट्टु घोसणं घोसेह २ त्ता एय-माणत्तियं पच्चप्पिणह तए णं ते आभिओगदेवा जाव एवं देवो त्ति आणाए पडिसुणेंति २ त्ता सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो अंतियाओ पडिणिक्खमंति २ त्ता खिप्पामेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणणगरंसि सिंघाडग जाव एवं वयासी हंदि सुणंतु भवंतो बहवे भवणवई जाव जेणं देवाणुप्पिया! तित्थयरस्स जाव

फुट्टिहिति त्तिकट्टु घोसणं घोसंति २ त्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति तए णं त बहवे भवणवइवाणमंतरजोइसवेमाणिया देवा भगवओ तित्थयरस्स जम्मण महिमं करेंति २ त्ता जेणेव णंदीसरदीवे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता अट्ठाहियाओ महा महिमाओ करेंति २ त्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया इति पंचमाधिकार ॥२८॥

भावार्थ—तत्पश्चात् शक्र देवेन्द्र आभियोगिक (सेवक) देवों को बुलाते हैं और कहते हैं कि अहो देवानुप्रिय! भगवान् तीर्थंकर के जन्म नगर में शृंगाटक यावत् महापथ में बडे २ शब्द से उद्घोषणा करके ऐसा बोले अहो बहुत भवनपति वाणव्यंतर ज्योतिषी व वैमानिक देवता और देवियों सुनो! कि जो कोई तीर्थंकर व उनकी माता पर असुख (दुःख) करेंगे उनका मस्तक ताडवृक्ष की मंजरी समान तोड दिया जायगा ऐसी उद्घोषणा

करके मुझे मेरी आज्ञा पीछी दो तत्पश्चात् वे आभियोगिक देव उस आज्ञा को विनय-पूर्वक श्रवण करते हैं और शक्र देवेन्द्र के पास से निकल कर भगवान् तीर्थंकर के जन्म नगर में शृङ्गाटक यावत् महापथ में आकर ऐसा बोलते हैं कि अहो बहुत भवनपति यावत् वैमानिक देवों में जो कोई तीर्थंकर भगवान् का अथवा उनकी माता का बुरा चिंतवन करेगा उसका मस्तक ताडवृक्ष की मंजरी जैसे तोड दिया जायगा इस प्रकार उसकी उद्घोषणा करके शक्रेन्द्र को उनकी आज्ञा पीछी देते हैं तत्पश्चात् वे बहुत भवनपति वाणव्यंतर ज्योतिषी व वैमानिक देव भगवान् तीर्थंकर का जन्म महोत्सव करके जहां नंदीश्वर द्वीप है वहां आते है वहां अष्टान्हिक (अट्ठाइ) महोत्सव करते हैं फिर वे सब अपने २ स्थान जाते हैं इस प्रकार यह तीर्थंकर के जन्मोत्सव का पांचवा अधिकार संपूर्ण हुआ ॥२८॥

मूलम्—तएणं तिसलाए देवीए ताओ अंगपडियारियाओ तिसलं देविं नवण्हं मासाणं जाव दारगं पयायं पासइ, पासित्ता सिग्घं तुरियं चवलं वेइयं

जेणेव सिद्धत्थे राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सिद्धत्थं रायं जएणं विजएणं वद्धावेंति वद्धावित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया! तिसला देवी णवण्हं मासाणं जाव दारगं पयाया, तण्णं अम्हं देवाणुप्पियाणं पियं णिवेदेमो पियं भे भवउ। तए णं से सिद्धत्थे राया तासिणं अंगपडियारियाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ चित्तमाणंदिए हरिसवसविसप्पमाणहियए ताओ अंगपडियारियाओ महुरेहिं वयणेहिं विउलेणं पुप्फगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता मत्थयधोयाओ करेइ पुत्ताणुपुत्तियं वित्तिं कप्पेइ कप्पित्ता पडिविसज्जेइ ॥२९॥

भावार्थ—तदनन्तर त्रिशला देवी की अंगपरिचारिकाएं—दासियां नौ मास साढे सात दिन पूरे होने पर त्रिशला देवी के पुत्रजन्म को देखकर शीघ्र तुरन्त चपल और

वेगयुक्त गति से चलकर जहां सिद्धार्थ राजा थे वहां पहूंची। पहूंचकर सिद्धार्थ राजाको जय विजय ध्वनि से वधाया, वधा कर दोनों हाथ जोड मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार बोली हे देवानुप्रिय ! आज त्रिशला देवीने नौ मास साढे सात दिन पूरे होने पर एक-पुत्र को जन्म दिया है इसलिये हम हे देवानुप्रिय आपको प्रियवाक्य से निवेदन करते हैं। आपका प्रिय हो। फिर सिद्धार्थ राजा उन दासियों के मुखसे जन्मरूप इस अर्थ को सुनकर हृष्टतुष्ट हुआ, उनके चित्त में बहुत प्रसन्नता हुई, अति हर्ष के कारण उनका हृदय प्रफुल्लित हो गया, एवं उन सिद्धार्थ राजाने दासियों का मधुर वचनों से और विपुल पुष्प, गंध माल्य-फूलों की मालाओं से सत्कार किया सम्मान किया, सत्कार सन्मान करके फिर उसने उन्हें मस्तक धौत किया-अर्थात् दासीपने के कृत्य से मुक्त कर दिया और पुत्र पौत्र भोग्य योग्य आजीविका से युक्त कर दिया। अर्थात् उन्हे इस प्रकार की जीविका लगादी की जिससे उनके पुत्र पौत्र तक भी बैठे २ खा

सके। इस प्रकार की व्यवस्था करके फिर राजाने उन्हें वहां से विसर्जित कर दिया ॥२९॥

मूलम्—तए णं उदंचंतउस्सवो सिद्धत्थभूवो पच्चूसकालसमयंसि पमोय कयंबमोयगपहुजम्मणमूयगजायगनिउरंबं देण्णसेण्ण पराभवसुण्णं करीअ। नागरियसमायवणमवि रायराय कमलाविलासहासवसुसलीलाऽऽसारेहिं फारेहिं दुक्खदावाणलसमुज्जलंतकीलकवलपबलभयाओ विमोइऊण उब्भिदंताऽमंदाणंदकंदंकुरंपूरं करीअ। कारागारनिगडियजणवारं च निगडाओ मोईअ। उत्तरोत्तरोल्लसंतप्पवाहेण उस्साहेण तं खत्तियकुण्डग्गामं नयरं सब्भिंतरबाहिरियं आसित्तसम्माज्जिओवालित्तं सिंघाडगतिगचउक्कचच्चरचउम्मुहमहापह पहेसु सित्तसुइसमट्ठरत्थंतरावणवाहियं मंचाइमंचकलियं नाणाविहरागभूसियज्झयपडागमंडियं लाउल्लोइयजुत्तं गोसीससरसरत्तचंदनदद्दरदिन्नपंचंगुलितलं उवचियचंदण-

कलसं चंदणघडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागं, आसत्तोवसत्तविउलवट्टवग्घारिय-मल्लदामकलावं पंचवन्नसरससुरहिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलियं कालागुरुपवर-कुंदरुक्कतुरुक्कधूवडज्झंतमघमघंतगंधुद्धूयाभिरामं सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूयं नडनट्टगजल्लमल्लमुट्ठियवेलंबगपवगकहग पाढगलासगआरक्खगलंखतूणइल्ल-तुंबवीणिय अणेगतालायराणुचरियं कारावेइ। जूअसहस्सं मूसलसहस्सं च आणाइत्ता एगओ ठवावेइ, जण्णं अस्सिं महोच्छवंसि कोवि सगडे वा, हले वा णो वाहउ, नो वा मुसलेहिं किंचि वि खंडरत्ति ॥३०॥

शब्दार्थ—[तए णं उदंचंतउस्सवो सिद्धत्थभूवो] तत् पश्चात् सिद्धार्थ राजा उत्सव मनाने के लिये उद्यत हुए। [पच्चूसकालसमयं स] प्रातःकाल होने पर [पमोयकयंब-मोयगपहुजम्मणसूयगजायगनिउरंबं देण्णसेण्णपराभवसुण्णं करीअ] उन्होंने आनन्द

के समूह को देनेवाले भगवान् के जन्म को सूचित करनेवाले अंतःपुर के दासदासियों को तथा याचकों को दीनता रूपी सेना के पराजय से रहित कर दिया अर्थात् सदा के लिए उन्हें दरिद्रता के भार से मुक्त कर दिया [नागरियसमायवणमवि रायराय कमलाविलासहासवसुसलिलाआसारेहिं] तथा नगरनिवासी जनसमूहरूपी वन को भी कुबेर की लक्ष्मी के विलासका उपहास करनेवाले अर्थात् अत्यधिक, धनरूपी जलकी विशाल धाराएँ बरसाकर, [फारेहिं दुक्खदावानलसमुज्जलंतकीलकवलपबलभयाओ विमोइऊण उब्भिदंता अमंदानंदकंदंकुरपूरं करीअ] दुक्खरूपी दावानल की जलती हुई ज्वालाओं का ग्रास होने के प्रबल भय से मुक्त करके उत्पन्न होनेवाले अतिशय प्रमोदरूपी अंकुर समूह से सम्पन्न कर दिया [कारागारनिगडिय–जणवारं च निगडाओ मोइअ] इसके अतिरिक्त सिद्धार्थ राजाने कारागार में कैद किये हुए जो अपराधी जनों के समूह थे, उनको बेढियों से मुक्त करवा दिया [उत्तरोत्तरोल्लसंतप्पवाहेण उस्साहेण तं

खत्तियकुंडग्गामं नयरं] राजा सिद्धार्थ के उत्साह की धारा उत्तरोत्तर बढती जा रही थी। उन्होंने क्षत्रियकुण्डग्राम नगर को [सब्भिंतरबाहिरियं आसित्तसंमज्जिओवलित्तं] भीतर से भी और बाहर से भी खूब सजवाया। पहले धूल को शान्त करने के लिए भूमिको जल से सिंचवाया, फिर बुहारी से झडवाया और फिर गोबर तथा मृत्तिका से लीपवाया। [सिंघाडगतिगचउक्कचच्चरचउम्मुहमहापहपहेसु] शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख महापथ और पथों में [सित्त सुइ संमट्ठरत्थंतरावणवीहियं] रथ्याओं के मध्यभाग में तथा बाजार की गलियों में सिंचन करवाया, इनकी सफाई करवाई [मंचाइ-मंचकलियं] मचानों और मचानों पर मचानों से युक्त कर दिया। [नाणाविह रागभूसि-यज्झयपडागमंडियं] तरह तरह के रंगों से शोभित ध्वजाओं एवं पताकाओं से मण्डित करवाया। [लोउल्लोइयजुत्तं] गोबर आदि से लीपवाया खडी आदि से पुतवाया [गोसीस सरसरत्तचंदनदद्दरदिन्नपंचंगुलितलं] गोशीर्षचन्दन तथा लाल चंदन के बहुत से हाथे

लगवाये [उवचिय चन्दनकलसं] चंदन से लिप्त कलश स्थापित करवाये [चंदनघडसुक-यतोरणपडिदुवारदेसभागं] द्वार द्वार पर चंदन लिप्त घटों से रमणीय तोरण बनवाये [आसत्तोवसत्तविउलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावं] नीचे से ऊपर तक के भाग को स्पर्श करनेवाली विस्तीर्ण गोल और लम्बी फूलमालाओं के समूह से सुशोभित करवाया [पंचवण्णसरससुरहिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलियं] जहां तहां बिखरे हुए काले नीले आदि पांच वर्णों के सुन्दर और सुरभिसम्पन्न पुष्पों के समूह की शोभा से युक्त करवा दिया [कालागुरुपवरकुंदरुक्कतुरुक्कधूवडज्झंतमघमघंतगंधुद्धूयाभिरामं] तथा कालागुरु श्रेष्ठ कुन्दुरुक्क (चीडा नामक गंधद्रव्य) तुरुष्क (लोबान) तथा दशांगधूप आदि अनेक सुगन्धि द्रव्यों के जलाने से उत्पन्न हुई गन्ध, हवा से चारों ओर फैल रही थी और इस प्रकार सारे नगर को मनोहर बनवाया [सुगंधवरगंधियं] उत्तम चूर्णों से सुगन्धित करवाया [गंधवट्टिभूयं] गंध की वट्टी के समान बनवाया [नडनट्टगजल्लमल्लमुट्ठिय वेलं-

बगपवगकहगपाढगलासगआरक्खगलंखतूणइल्लतुंबवीणियअणेगतालायराणुचरियं कारा-वेइ] नटों,: नर्तकों, (स्वयं नाचनेवाले) जल्लों-वरत्रा-रस्सी पर खेल करनेवाले मल्लों, (मौष्टिकों घूसेबाजी करनेवाले एक प्रकार के मल्ल), विलम्बक (विदूषक) प्लावक (छलांगमारकर गडहे आदि को लांघनेवाले) (कथक—मजेदार कहानी कहनेवाले) (पाठक सुक्तियां सुनानेवाले, जासक-रास गानेवाले, आरक्षक—शुभाशुभ शकुन कहनेवाले नैमि-त्तिक, लंख—वांस पर खेल खेलनेवाले, तूणावंत—तूणानामक बाजा बजाकर कथा करने-वाले इन सब से नगर को युक्त करवाया [जूअसहस्सं मुसलसहस्सं च आणाइत्ता एगओ ठवावेइ] हजारों धुराएँ तथा हजारों मूसल मंगाकर एक जगह रखवा दिये [जण्णं अस्सिं महोच्छवंसि को वि सगडे वा हले वा णो वाहउ] जिससे कि इस महोत्सव में कोई भी मनुष्य गाडी और हल न जोते [नो वा मुसलेहिं किंचिवि खंडउत्ति] तथा किसी भी धान्य आदि वस्तु को न कूटे, अर्थात् सभी लोग उत्सव में सम्मिलित

होकर आनन्द का उपभोग करे ॥३०॥

अर्थ—'तए णं' इत्यादि। तब राजा सिद्धार्थ उत्सव मनाने के लिए उद्यत हुए। प्रातःकाल के अवसर पर उन्होंने आनन्द के समूह को देनेवाले भगवान् के जन्म को सूचित करनेवाले अन्तःपुर के दासदासियों को तथा भिखारियों को दीनतारूपी सेना के पराजय से रहित कर दिया। अर्थात् सदा के लिए उन्हें दरिद्रता से मुक्त कर दिया। तथा नगर निवासी जनसमूहरूपी वन को भी कुबेर की लक्ष्मी के विलास का उपहास करनेवाले अर्थात् अत्यधिक, धनरूपी जल की विशाल धाराएँ बरसा कर, दुःखरूपी दावानल की जलती हुई ज्वालाओं का ग्रास होने के प्रबल भय से मुक्त करके, उत्पन्न होनेवाले अतिशय प्रमोदरूपी अंकुर–समूह से सम्पन्न कर दिया। अभिप्राय यह है कि सिद्धार्थ राजाने कुबेर के धन से भी अधिक धन देकर नागरिकजनों को दरिद्रता के दुःख से रहित बना दिया। और आनन्द से युक्त कर दिया। इसके अतिरिक्त सिद्धार्थ

राजाने कारागार में कैद किये हुए जो अपराधी जनों के समूह थे, उनको बेडियों से मुक्त करवा दिया।

राजा सिद्धार्थ के उत्साह की धारा उत्तरोत्तर बढती जा रही थी। उन्होंने क्षत्रिय-कुंडग्राम को भीतर से भी और बाहर से भी खूब सजवाया। पहले धूल को शांत करने के लिए भूमिको जल से सिंचवाया, फिर बुहारी से झडवाया और फिर गोबर तथा मृत्तिका से लीपवाया। शृंगाटक (तिकोने स्थान), त्रिक (तीन रास्तों का संगम स्थल) चतुष्क (चार मार्गो के मिलने का स्थान—चौराहा), चत्वर (बहु रास्तों का संगम स्थल), चतुर्मुख (चार द्वारों वाला स्थान), महापथ (राजमार्ग) और पथ (सामान्य रास्ता) में जो भी मार्ग के मध्य भाग में थे, तथा बाजार की गलियां थीं, उन सबको सिंचवाया, साफ करवाया और शोधित करवाया। महोत्सव देखने के लिए लोगों को बैठने के वास्ते मंच (मचान) बनवा दिये, और उन मचानों पर भी मचान बमवा दिये। नाना प्रकार

के रंगों से विभूषित और ध्वजापताकाओं से मण्डित करवा दिया। जिन पर सिंह आदि के चिह्न बने रहते हैं और जो बडे आकार की होती हैं वे ध्वजा या वैजयन्ती कहलाती हैं। छोटी–छोटी ध्वजाएँ पताकाएँ कही जाती हैं। इन रंगों, ध्वजाओं और पताकाओं से नगर को सुशोभित करवाया। भूमितल गोबर से लींपवा दिया गया, और दीवारों पर चूना आदि से सफेदी करवा दी गई। गोशीर्ष–हरिचन्दन तथा सरस लालचन्दन के बहुत से दीवाल आदि स्थान–स्थान पर हाथे लगवा दिये। घरों के भीतर, चौकों में चन्दन के लेप से युक्त कलश रखवा दिये। नगर के द्वार–द्वार पर चन्दन लिप्त घटों के रमणीय तोरण बनवा दिये। तथा उन द्वारों को, नीचे जमीन से लगी हुई और ऊपर तक छूई हुई बहुत सी गोलाकार और लम्बाकार मालाओं के समूह से मण्डित करवा दिये, जहां–तहां बिखेरे हुए काले, नीले, पीले, लाल और शुक्ल–इन पांच वर्णों के सुन्दर और सुरभिसम्पन्न पुष्पों के समूह की शोभा से युक्त करवा दिये।

तथा–कृष्णागुरु, श्रेष्ठ कुन्दुरुक्क (चीडा–नामक गंधद्रव्य), तुरूष्क–(लोबान) तथा धूप–दशांग आदि, जो अनेक सुगंधि द्रव्यों की मिलावट से बनती है, और जिसकी गंध विलक्षण होती है, इन सब के जलाने से उत्पन्न हुई गंध, हवा से चारों ओर फैल रही थी, और इस प्रकार सारे नगर को मनोहर बनवाया। बढिया सुगंधित चूर्णों की गंध से भी सुगंधित करवाया, अर्थात् नगर को उत्कृष्ट गंध से व्याप्त करवा दिया। इस कारण यह ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे गंध–द्रव्य की बट्टी हो।

तथा–नट, नर्त्तक (स्वयं नाचनेवाले), जल्ल (वस्त्रा पर–रस्सी पर खेल करनेवाले) मल्ल, मौष्टिक (घूंसेबाजी करनेवाले एक प्रकार के मल्ल), विलम्बक (विदूषक–मुख-विकार आदि करके जनता को हंसानेवाले), प्लावक (छलांग मार कर गड़हे आदि को लांघनेवाले), कथक (मजेदार कहानी कहने वाले), पाठक (सूक्तियों सुनाने वाले), लासक [रास–गान करने वाले], आरक्षक [शुभाशुभ शकुन कहने वाले नैमित्तिक] लंख [वांस

ऊपर खेल करने वाले), तूणावन्त (तूणा नामक बाजा बजाकर कथा करने वाले),—इन सब से नगर को युक्त करवाया।

तथा हजारों जूए और हजारों मूशल मंगवाकर एक किनारे रखवा दिये, जिससे कि इस महोत्सव में, अर्थात् श्री महावीर प्रभु के जन्म के उपलक्ष्य में मनाये जाने वाले उत्सव के समय, कोई भी मनुष्य गाडी और हल न जोते, तथा किसी भी धान्य आदि वस्तु को न कूटे, अर्थात् सभी लोग उत्सव में सम्मिलित होकर आनन्द का उपभोग करें ॥३०॥

मूलम्—तए णं ललिय-सीलालंकियमहिला गिइ कुसला तिसला कमाणि-ज्जगुणजालं विसालभालं बालं विलोगिय समुच्छलंतामंदाणंदतरलतरंग-महासिनेहकरुणगिहणिमामज्जमाणमाणसा इत्थीपुरिसलक्खणणाणवियक्खणा, पईयपुत्तलक्खणा तं थविउमुवक्कमित्था किं गुणगणवज्जिएहिं बहूहिं तणएहिं?

वरमेगो वि अतंदो कुलकेरवचंदो भवारिसो असरिसुज्जलगुणो सुओ, जो पुराकय सुकयकलावेण पाविज्जइ, जेण य गंधवाहेण परिमलराजी विव माउपिइपसिद्धी दिसोदिसि वितन्निज्जइ, सोरब्भभरिया मिलाणकुसुमभार-भासुर सुरतरुणा नंदणुज्जाणामिव य तेल्लोक्कं गुणगुणेण वासिज्जइ, अतेलपूरेण मणिदीवेणेव य पगासिज्जइ, अपासिज्जइ य हिययदरीचरी चिरंतणा णाणातिमिरराई। सच्चं वुत्तं—

पत्तं न तावयइ नेव मलं पसूए, णेहं न संहरइ नेव गुणे खिणेइ।
दव्वावसाणसमए चलयं न धाइ, पुत्तो इमो कुलगिहे किल कोवि दीवो ॥

एसो लोगुत्तरगुणगणजुओ सुओ पभूयप्पमोयं जणयइ। अवि य—

सीयलं चंदणं वुत्तं, तओ चंदो सुसीयलो।
चंदचंदणओ सीओ महं णंदनसंगमो ॥२॥

सिया उ महुरा नूनं सुहाइ महुरा तओ।
तेहिं वि अस्स बालस्स संगमो महुरो महं ॥३॥
कणगं सुहयं लोए, रयणं च महासुहं।
तेहिं वि य महासोक्खो अस्स बालस्स संगमो ॥४॥३१॥

शब्दार्थ—[तए णं] उसके बाद [सा ललियसीलालंकियमहिला किइ कुसला] सुन्दर निर्दोष शील–स्वभाव अथवा सद्वृत्त से युक्त महिलाओं के कर्तव्यों में निपुण, [तिसला कमणिज्जगुणजालं विसालभालं बालं विलोगिय] उस त्रिशला देवीने मनोहर गुणगण वाले शुभलक्षणयुक्त ललाटवाले अपने पुत्र [महावीर] को देख कर [समुच्छलंता मंदाणंदतरलतरतरंगमहासिनेहवरुणगिहणिमामज्जमाणमाणसा] उछलते हुए अतिशय चंचल आनन्दरूप तरङ्गवाले महास्नेहरूपी समुद्र में तैरती हुई [इत्थी–पुरिस-

लक्खणणाणवियक्खणा] स्त्रीपुरुषों के शुभाशुभ लक्षण–परिज्ञान में कुशल एवं [पइय-पुत्तलक्खणा] बालक के लक्षण को पहचानने वाली [तं थविउमुवक्कमित्था] त्रिशला बालक की स्तुति करने लगी–[किं गुणगणवज्जिएहिं बहूहिं तणएहिं ?] गुणविहीन बहुत पुत्रों से भी क्या [वरमेगोवि अतंदो कुलकेरवचंदो भवारिसो असरिसुज्जलगुणो सुओ] किन्तु अप्रमादी, कुलरूपी कैरव–रात्रिविकासी कमल को विकसित करने में चन्द्ररूप, तेरे जैसा अनुपम उज्ज्वलगुण वाला एक ही पुत्र अच्छा है। [जो पुराकयसुकयकलावेण पाविज्जइ] जो पुत्र पूर्वजन्मोपार्जित प्रचुर पुण्यों से प्राप्त होता है। [जेण य गंधवाहेण परिमलराजी विव माउपिइपसिद्धी दिसोदिसि वितन्निज्जइ] जैसे गन्धवाह–पवनपुष्पों की सुगन्धि को दिशा–विदिशाओं में प्रसारित करता है, उसी प्रकार जो पुत्र अपने माता पिता के नाम को सर्वत्र प्रसिद्ध करता है। [सोरब्भभरियामिलाण कुसुम भार–भासुर सुरतरुणानंदणुज्जाणमिव य तेल्लोक्कं गुणगणेण वासिज्जइ] तथा हे सुपुत्र! तुम्हारे

जैसे सत्पुत्र से यह तीनों लोक गुणगण से सुवासित होते हैं जैसे सुगन्धियुक्त खिले हुए पुष्पों के गुच्छों से शोभित कल्पवृक्ष से नन्दनवन [अतेलपूरेण मणिदीवेणेव य पगासिज्जइ] तथा तैलरहित मणिदीप गृहादिक को प्रकाशित करता है उसी प्रकार तेरे जैसा पुत्र तीनों लोक को प्रकाशित करता है [अपासिज्जइ य हिययदरीचरी चिरंतणाणाणतिमिरराई] और जो त्रैलोक्यवर्ती जीवों के हृदयरूपी गुफा में संचरण करने वाले चिरकालिक अज्ञानरूप अंधकार–समूह को दूर करता है। [सच्चं वुत्तं] सच ही कहा है–

[पत्तं न तावयइ] जो पात्र को संतप्त नहीं करता [नेव मलं पसूए] मल को उत्पन्न नहीं करता [णेहं न संहरइ] स्नेह का संहार नहीं करता [नेव गुणेखिणेइ] गुणों का नाश नहीं करता [दव्वावसाणसमए चलयं न धाइ] और द्रव्य के विनाश काल में अस्थिरता को प्राप्त नहीं होता है [पुत्तो इमो कुलगिहे किल को वि दीवो] ऐसा यह पुत्र रूप दीपक कुलरूपी गृह में कोई विलक्षण ही दीपक है। [एसो लोगुत्तरगुणगण-

जुओ सुओ पभूयप्पमोयं जणयइ] यह लोकोत्तर गुणगणों से युक्त पुत्र बहुत आनन्द-दायी होता है। [अवि य] और भी कहा है—

[सीयलं चंदणं वुत्तं] इस लोक में चंदन शीतल है [तओ चंदो सुसीयलो] उसकी अपेक्षा चन्द्रमा अधिक शीतल है [चंदचंदणओ सीओ] परन्तु चन्द्र और चन्दन की अपेक्षा [महं णंदणसंगमो] पुत्र के अङ्ग का स्पर्श अत्यन्त शीतल होता है ॥२॥

[सिया उ महुरा नूणं] मिसरी मीठी होती है, [सुहाइ महुरा तओ] उससे भी मीठा अमृत होता है [तेहिं वि अस्स बालस्स, संगमो महुरो महं] और उससे भी मीठा पुत्र का स्पर्श होता है। [कणगं सुहयं लोए] सोना इस लोक में सुखदायी है [रयणं च महासुखम्] उसकी अपेक्षा रत्न अधिक सुखदायी है [तेहिं वि य महासोक्खो अस्स बालस्स संगमो] इन दोनों से भी बढकर इस अनुपम पुत्र का स्पर्शसुखदायक है ॥३१॥

अर्थ—'अह ललियसीलालंकिय'—इत्यादि।

फिर उत्सव की समाप्ति के बाद वह शील से सुन्दर, महिलाओं के कर्तव्य में कुशल, उछलती हुई अत्यंत-चंचल आनन्द रूपी तरंगों से युक्त महास्नेहरूपी समुद्र में तैरती हुई, खिले हुए कमल के समान मुखवाली, स्त्री पुरुषों के शुभाशुभलक्षण जानने वाली, तथा बालक के लक्षण को पहचानने वाली त्रिशला रानी, सुन्दर गुणों से अलंकृत, विशाल भालवाले बालककी स्तुति करने लगी-

गुणविहीन बहुत पुत्रों से भी क्या? किन्तु अप्रमादी, कुलरूपी कैरवराजीविकासी कमल को विकसित करने में चन्द्ररूप, तेरे जैसा अनुपम उज्ज्वल गुणवाला एक ही पुत्र अच्छा है, जो पुत्र पूर्वजन्मोपार्जित प्रचुर पुण्यों से प्राप्त होता है। जैसे-गन्धवाह-पवन पुण्यों की सुगन्धि को दिशा विदिशाओं में प्रसारित करता है, उसी प्रकार जो पुत्र अपने माता पिता के नाम को सर्वत्र प्रसिद्ध करता है। जैसे सुगन्धि युक्त अम्लान (खिले हुए) पुष्पों के भार से सुशोभित कल्पवृक्ष, नन्दनवन को सुवासित करता है। उसी

प्रकार आपके जैसे पुत्र अपने गुणगान से तीनों लोक को सुवासित करता है। तथा जैसे तैल रहित मणिदीप गृहादिक को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार तेरे जैसा पुत्र तीनों लोक को प्रकाशित करता है, और वह त्रैलोक्यवर्ती जीवों के हृदयरूपी गुफा में संचरण करने वाले चिरकालिक अज्ञानरूप अन्धकार समूह को दूर करता है। कहा भी है—

'जो पात्र को संतप्त नहीं करता, मल को उत्पन्न नहीं करता, स्नेह का संहार नहीं करता, गुणों का नाश नहीं करता और द्रव्य के विनाश काल में अस्थिरता को प्राप्त नहीं होता है, ऐसा यह पुत्ररूप दीपक, कुलरूपी गृह में कोई विक्षलण ही दीपक है' ॥१॥

यह लोकोत्तर गुणगणों से युक्त पुत्र बहुत आनन्ददायी होता है। और भी कहा है—

चन्दन शीतल कहा गया है, उससे भी शीतल चन्द्र है, और चन्द्र—चन्दन से भी महान् शीतल पुत्र का स्पर्श है। मिसरी मीठी होती है, उससे भी मीठा अमृत होता है, और उससे भी मीठा पुत्र का स्पर्श होता है ॥२॥

सोना इस लोक में सुखदायी है, उसकी अपेक्षा रत्न अधिक सुखदायी है, इन दोनों से भी बढकर इस अनुपम पुत्र का स्पर्श महासुखदायक है ॥३॥

टीकार्थ—देवों, असुरों और मनुष्यों के समूह से जिसका चरण–वन्दित है, ऐसे अपने बालक का मुखकमल देखकर, त्रिशला देवी के हृदय में जो भाव उत्पन्न हुआ, उसको सूत्रकार 'अह ललियसीलालंकिय–इत्यादि सूत्र–द्वारा प्रदर्शित करते हैं।

इसके बाद, सुन्दर–निर्दोष शील–स्वभाव अथवा सद्वृत से युक्त महिलाओं के कर्त्तव्य में निपुण, स्त्री–पुरुष के लक्षण–परिज्ञान में कुशल तथा जिसने अपने पुत्र के लक्षण जान लिये हैं, ऐसी उस त्रिशला देवीने, मनोहर गुणगणवाले शुभलक्षणयुक्त ललाटवाले अपने पुत्र महावीर को देखकर, उछलते हुए अतिशय चञ्चल आनन्दरूप तरङ्ग वाले महास्नेहरूपी समुद्र में तैरती हुई, पूर्वोक्त गुणगण से सुशोभित अपने उस अनुपम पुत्र की प्रशंसा करना प्रारंभ किया। वह इस प्रकार–

धैर्य, औदार्य आदि सद्गुणों से रहित बहुत पुत्रों से क्या ? अर्थात्–ऐसे निर्गुण पुत्रों का कुछ भी प्रयोजन नहीं हैं। इसकी अपेक्षा तो हे पुत्र ! तुम्हारे–सदृश अद्वितीय विशुद्ध गुणयुक्त अतन्द्र उत्साही कुलरूपी कैरव–श्वेतकमल के प्रबोधन करने में चन्द्ररूप एक ही पुत्र श्रेष्ठ है, जो पुत्र पूर्वजन्मोपार्जित पुण्य से प्राप्त होता है। हे पुत्र! तुम्हारे जैसे सत्पुत्र के द्वारा माता–पिता की ख्याति दिशाविदिशाओं में सर्वत्र फैल जाती है, जैसे–वायुद्वारा दिशा–विदिशाओं में पुष्पों की सुगन्धि। अर्थात् –जिस प्रकार वायु–द्वारा पुष्पों की सुगन्धि दिशा–विदिशाओं में सर्वत्र प्रसारित होती है उसी प्रकार तुम्हारे–जैसे सत्पुत्र से माता–पिता की ख्याति दिशा–विदिशाओं में सर्वत्र फैलती है। तथा हे पुत्र ! तुम्हारे जैसे सत्पुत्र से यह तीनों लोक गुणगान से सुवासित होते हैं, जैसे–सुगन्धियुक्त खिले हुए पुष्पों के गुच्छों से शोभित कल्पवृक्ष से नन्दनवन ! अर्थात्–जैसे कल्पवृक्ष अपने पुष्पों की सुगन्धि से समस्त नन्दनवन को

सुगन्धित करता है, उसी प्रकार तुम्हारे–जैसा सत्पुत्र अपने गुणों से इस समस्त लोक को शोभित बनाता है। तथा–हे पुत्र ! तुम्हारे–जैसे पुत्र से यह तीनों लोक प्रकाशित किये जाते हैं, जैसे तेल-विना के मणिदीप से यह घर आदि। अर्थात्-जिस प्रकार तेल रहित मणिदीप सर्वदा समानरूप से गृह आदि को प्रकाशित करता है उसी प्रकार तुम्हारे-जैसे सत्पुत्र तीनों लोकों को सतत समानरूप से प्रकाशित करता है। तथा तेरे-जैसा सत्पुत्र तीनों लोक के जीवों के हृदयरूपी कन्दरा के अभ्यन्तर में संचरण करने वाले चिरकालिक-अनादिकालीन अज्ञानरूप अन्धकार की परम्परा को दूर करता है।

फिर से कहती है-'पात्रं न तापयति' इत्यादि।

इसका अर्थ यह है-कुलरूप-वंशरूप घर में यह सत्पुत्ररूप अलौकिक दीपक निश्चय ही कोई अपूर्व विलक्षण दीपक है जो सत्पुत्ररूप दीपक पात्र को अर्थात् सज्जन पुरुषों को सन्ताप नहीं पहुंचाता है, अथवा अपने आधाररूप माता पिता आदि को अपने आचरण

से कभी भी संतप्त-दुःखित नहीं करता है, कभी भी पापाचरण नहीं करता है, स्नेह को प्रेम को अर्थात् दया को कभी भी नहीं छोडता है, इसका अभिप्राय यह है, कि वह किसी के ऊपर दया-रहित नहीं होता है, दया-दाक्षिण्य-आदि सद्गुणों का नाश वह कभी भी नहीं करता है, तथा द्रव्य के अवसान काल में, अर्थात् धनके क्षीण हो जाने पर चंचलता ·अस्थिरता को धारण नहीं करता हैं, अर्थात् किसी भी परिस्थिति में वह नीतिमार्ग का परित्याग नहीं करता हैं। इस श्लोक का अभिप्राय यह है-दीपक अपने आधारपात्र को संतप्त करता है, मल अर्थात् कज्जल उत्पन्न करता है, स्नेह-तेल का शोषण करता है, गुण का-बत्ती का नाश करता है और तेलरूप द्रव्य के अभाव-के समय में अस्थिरता को प्राप्त करता है अर्थात् बुझने लगता है। परन्तु सत्पुत्ररूप दीपक तो ऐसा नहीं होता है, वह तो सर्वथा इससे विलक्षण होता है।

अहा! यह लोकोत्तर गुणों से विभूषित सत्पुत्र अतिशय आनन्ददायी होता है।

त्रिशला रानी फिर कहती है-इस लोक में चन्दन शीतल है, उसकी अपेक्षा चन्द्रमा अधिक शीतल है, परन्तु चन्द्र और चन्दन की अपेक्षा पुत्र के अङ्ग का स्पर्श अत्यंत शीतल होता है ॥२॥

मिसरी मीठी होती है और मिसरी से अमृत अधिक मीठा होता है, परन्तु मिसरी और अमृत इन दोनों से भी बालक का स्पर्श अत्यंत मीठा है ॥३॥

तथा इस लोक में कनक–सोना सुख देने वाला है, रत्न सोने से भी अधिक सुखदायी होता है परन्तु पुत्र का स्पर्श तो इन दोनों से भी महान् सुखदायी है ।३१।

मूलम्–तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो, एक्कारसमे दिवसे विइक्कंते, निव्वत्ते सूयगे, संपत्ते बारसेहिं, विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडाविंति उवक्खडावित्ता मित्तणाइसयणसंबंधिपरियणे उवनिमंतेंति,

उवनिमंतित्ता बहूणं समणमाहणकिवणवणीमगाभिच्छुंडगारंतीणं विच्छड्डेंति, दायाएसु णं दायं पज्जाभाएंति, पज्जाभाइत्ता मित्तणाइ सयणसंबंधिपरियणे भुंजावेंति भुंजावित्ता मित्तणाइसयणसंबंधिपरियणे समक्खं इमं एयारूवं कहेंति जप्पभिइं च णं अम्हं इमं दारए गब्भं वइक्कंते तप्पभिइं च णं इमं कुलं विउलेणं हिरण्णेणं सुवण्णेणं धणेणं धण्णेणं विहवेणं ईसरिएणं रिद्धीएणं सिद्धीएणं समिद्धीएणं सक्कारेणं सम्माणेणं पुरक्कारेणं रज्जेणं रट्ठेणं बलेणं वाहणेणं कोसेणं कोट्ठागारेणं पुरेणं अंते उरेणं जणवएणं जाणवएणं जसवाएणं कित्तिवाएणं वण्णवाएणं सद्दवाएणं सिलोगवाएणं थुइवाएणं विउलधणकणगरयणमाणिमोत्तिय-संखसिलप्पवालरत्तरयणमाइएणं संतसावइज्जेणं पीई सक्कारसमुदएणं अईव-अईव परिवड्ढियं, तं होउ णं इमस्स दारगस्स गोण्णं गुणनिप्फण्णं नामधिज्जं

'वद्धमाणे' त्ति कट्टु भगवओ महावीरस्स 'वद्धमाणे' त्ति नामधिज्जं करेंति। समणे भगवं महावीरे गुत्तेणं कासवे। तस्स णं इमे तिण्णि नामधिज्जा एव-माहिज्जंति—अम्मापिउसंतिए 'वद्धमाणे' त्ति सहसमुइयाए 'समणे' त्ति अयले भयभेरवाणं खंता पडिमासतपारए अरतिरतिसहे दविए धितिविरियसंपन्ने वसग्गसहेत्ति देवेहिं से कतं णामं समणं भगवं महावीरे ॥३२॥

शब्दर्थ—[तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो] इसके बाद श्रमण भगवान महावीर के माता पिताने [एक्कारसमे दिवसे विइक्कंते] ग्यारहवां दिन बीतने पर [निव्वत्ते सूयगे] सूतक—जन्माशौच के निवृत्त होने पर, [संपत्ते बारसाहे] बारहवें दिन [विउलं असणपाणखाइमसाइमं उवक्खडाविंति] बहुतसा अशन पान, खाद्य और स्वाद्य भोजन बनवाया। [उवक्खडावित्ता] भोजन बनवाकर [मित्तणाइ सयणसबंधिपरियणे

उवनिमंतेंति] मित्रों ज्ञातिजनों, संबन्धीजनों और परिजनों को आमन्त्रित किया [उव-निमंतित्ता] आमंत्रित करके [बहूणं समणमाहणकिवणवणीमगभिच्छुंडगारंतीणं विच्छड्डेंति] बहुत से श्रमणों ब्राह्मणों, दीनों, याचकों, भिखारियों तथा गृहस्थों को भोजन–वस्त्र अदि दिया, [दायाएसु णं दायं पज्जाभाएंति] भागीदारों को उनका भाग बांटा [पज्जाभाइत्ता] बांटकर [मित्तणाइसयणसंबंधिपरियणे भुंजावेंति] मित्रों ज्ञातिजनों स्वजनों सम्बन्धीजनों और परिजनों को भोजन कराया [भुंजावित्ता] भोजन करा के फिर [मित्तनाइसयणसंबंधिपरियणसमक्खं इमं एयारूवं कहेंति] मित्रों ज्ञातिजनों, स्वजनों सम्बन्धीजनों और परिजनों के समक्ष इस प्रकार का यह वचन कहा–[जप्पभिइं च णं अम्हं इमे दारए गब्भं वइक्कंते] जब से हमारा यह बालक गर्भ में आया [तप्पभिइं च णं इम कुलं] तभी से यह कुल [विउलेणं हिरण्णेणं] विपुल हिरण्य से [सुवण्णेणं] सुवर्ण से [धणेणं] धन से [धण्णे णं] धान्यसे [विहवेणं] विभव से [ईसरिएणं] ऐश्वर्य से

[रिद्धीएणं] ऋद्धि से [सिद्धीएणं] सिद्धि से [समिद्धीएणं] समृद्धि से [सक्कारेणं] सत्कारसे से [सम्माणेणं] सन्मान से [पुरक्कारेणं] पुरस्कारसे [रज्जेणं] राज्य से, [रट्ठेणं] राष्ट्र से, [बलेणं] बल से [वाहणेणं] वाहण से [कोसेणं] कोष से [कोट्ठागारेणं] कोष्ठागारसे [पुरेणं] पुरसे [अंतेउरेणं] अन्तःपुर से [जणवएणं] जनपद से [जाणवएणं] जानपद से [जसवाएणं] यशोवाद से [कित्तिवाएणं] कीर्तिवादसे [वण्णवाएणं] वर्णवाद से [सद्दवाएणं] शब्दवाद से [सिलोगवाएणं] श्लोकवाद से [थुईवाएणं] स्तुतिवाद से [विउल धण] विपुल धन [कणग] स्वर्ण [रयण] रत्न [मणि] मणि [मोत्तिय] मोती [संख] शंख [सिलप्पवाल] शिला प्रवाल [रत्तरयण] रक्तरत्न [माइएणं] आदि [संतसावइज्जेणं] वास्तविक सम्पत्ति से [पीइ—सक्कारसमुदएणं] और प्रीति तथा सत्कार की प्राप्ति से [अईव—अईव] खूब खूब [परिवड्ढियं] वृद्धि को प्राप्त हुआ है [तं होउ णं इमस्स दारगस्स] अतएव इस बालक का [गोण्णं गुणनिप्फण्णं नामधिज्जं वद्ध-

मातापितृभ्याम् कृत भगवतोनामाभिधानम्

माणे' त्ति कट्टु] गुणमय गुणनिष्पन्न 'वर्द्धमान' नाम हो [भगवओ महावीरस्स 'वद्ध-माणे' त्ति नामधिज्जं करेंति] इस प्रकार कह कर भगवान महावीर का 'बर्द्धमान' नाम रक्खा। [समणे भगवं महावीरे गुत्तेणं कासवे] श्रमण भगवान् महवीर काश्यप गोत्रीय थे [तस्स णं इमे तिण्णि नामधिज्जा एवमहिज्जंति] उनके तीन नाम इस प्रकार कहे जाते है [अम्मापिउसंतिए 'वद्धमाणे' त्ति] माता पिता द्वारा रक्खा हुआ नाम वर्द्धमान [सहसंमुइयाए 'समणे त्ति] सह समुदिता—सह भाविनी तपश्चर्या आदि की शक्ति के कारण इसका नाम श्रमण था।

[अयले भयभरेवाणं खंता पडिमासतपारए] अचल, भय भेरव को सहने वाले क्षमा शील प्रतिमास तप में रत रहने वाले [अरति रति सहे] अरति और रति को सहने वाले [दविए] संयम वाले [धितिविरियसम्पन्ने] धृति वीर्य से सम्पन्न [परि-सहोवसग्गसहेत्ति] तथा परीषह उपसर्गों को सहने वाले होने के कारण [देवेहिं से कतं

मातापितृ-भ्याम् कृत भगवतो-नामाभि-धानम्

णामं समणे भगवं महावीरे] देवों ने नामकरण किया श्रमण भगवान् महावीर

॥ इति पंचम वाचना ॥सू० ३२॥

अर्थ—'तएणं' 'समणस्स' इत्यादि। इसके बाद श्रमण भगवान् श्री महावीर के माता पिता ने ग्यारह दिन बीत जाने पर और सूतक–जन्म संबंधी अशौच दूर हो जाने पर, बारहवें दिन बहुत सा अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, तैयार करवाया और मित्रों को, ज्ञातियों–स्वजातीय जनों को, स्वजनों–आत्मीय जनों को, संबन्धियों-पुत्र और पुत्रियों के श्वशुर आदि संबन्धियों को तथा परिजनों-दासीदास आदि परिजनों को भोजन के लिए बुलाया-निमंत्रित किया। उन्हें निमंत्रित करके बहुत-से शाक्य आदि श्रमणों ब्राह्मणों, कृपणों दीनों, वनीपकों-याचकों, भिक्षोण्डो-भिखारियों और गृहस्थों को भोजन वस्त्र आदि का दान दिया। जो लोग पैत्रिक सम्पत्ति में भागीदार थे, उन्हें सम्पत्ति का बँटवारा किया। बँटवारा करके मित्रों, ज्ञातिजनों स्वजनों, संबंधियों और परिजनों को भोजन

मातापितृभ्याम् कृत भगवतोनामाभिधानम्

—करवाया। भोजन करवाकर, मित्र ज्ञाति, स्वजन, संबंधी और परिजनों के सामने आगे कहे जाने वाले वचन कहे—'जब से हमारा यह बालक गर्भ में आया है तब से लेकर हमारा यह कुल विपुल हिरण्य से—चांदी से, सुवर्ण से—सोने से, धन से, गाय घोडा आदि से धान्य से—व्रीहि, शालि, जौ, आदि से विभव से, आनन्द से ऐश्वर्य से धन या जन के अधिपतित्व से, ऋद्धि से—सम्पत्ति से, सिद्धि से—इष्ट वस्तुओं की प्राप्ति से, समृद्धि से, बढती हुई सम्पत्ती से, सत्कार से जनता द्वारा किये जाने वाले उत्थान आदि सत्कार से, सम्मान से, आसन देने आदि रूप सम्मान, से, पुरस्कार से—सब कामों में अगुवापन से राज्य से—स्वामी, आमात्य, मित्र, कोष, राष्ट्र, दुर्ग और सेना इन सात अंगोवाले राज्य से राष्ट्र से,—देश से, बल से,—सेना से वाहन से रथ आदि वाहनों से, कोष से-रत्नों आदि के भंडार से, कोष्ठागार से-धान्य भंडार से, पुर से-नगर से, अन्तः पुर से-रनवास के परिवार से, जनपद से-देश प्राप्ति से, जानपद से-प्रजा से,

मातापितृभ्याम् कृत भगवतोनामाभिधानम्

यशोवाद से–'अहा ! यह कैसा पुण्य-भागी हैं इस प्रकार एक देश व्यापी साधुवाद से, कीर्तिवाद से-सर्वदिशाव्यापी साधुवाद से, वर्णवाद से-प्रशंसावाद से, शब्दवाद से, अर्द्धदिशाव्यापी साधुवाद से, श्लोकवाद से-सर्वत्र गुणों के बखान से, स्तुतिवाद से -बन्दीजनों द्वारा किये जाने वाले गुण कीर्तन से तथा-विपुल धन से, विपुल स्वर्ण से, विपुल कर्केतन आदि रत्नों से, विपुल चन्द्रकान्त आदि मणियों से, विपुल मोतियों से, विपुल दक्षिणावर्त्तादि शंखों से, विपुल राजपदरूप शिला से, विपुल मूगों से, विपुल लालों से, तथा आदि शब्द से विपुल चीनी वस्त्र कंबल आदि से, तथा-विद्यमान प्रधान द्रव्यों से, प्रीति से-मानसिक तुष्टि से, सत्कार से-स्वजनों द्वारा वस्त्रादि से किये हुए सत्कार से अधिकाधिक वृद्धि को प्राप्त हुआ है। इस कारण हमारे इस बालक का गुणों से प्राप्त, गुणनिष्पन्न नाम 'वर्द्धमान हो'।

इस प्रकार कहकर भगवान् श्री महावीर का नाम 'वर्द्धमान' रखा। श्रमण भगवान्

श्री महावीर काश्यपगोत्रीय थे। उनके यह तीन नाम इस प्रकार कहे जाते हैं-माता-पिता का रखा हुआ नाम 'वर्द्धमान'। सहभाविनी (जन्म-जात) तपश्चर्या आदि की शक्ति के कारण दूसरा नाम-'श्रमण'। इन्द्रादि देवों द्वारा रक्खा हुआ तृतीय नाम-'महावीर' ॥३२॥

मूलम्—तए णं भगवं महावीरे कमेण धवलदलविलसंताबितियाचंदोव्व सोम्मकरेहिं संतगुणनियरेहिं गिरिकंदरमल्लीणे चंपगपायवेव वएणं संवड्ढइ। एवं से भगवं महावीरे मऊरपक्खकागपक्खसोहीहिं सवएहिं सिसूहिं सद्धिं बालवओ अणुरूवं गोवियसरूवं कीलेइ।

एगया देवलोए देवगणालंकियाए सुहम्माए सहाए समासीणो सुणासीरो सोहम्मिंदो अणुवमगुणेहिं वद्धमाणस्स वद्धमाणस्स पहुणो परक्कमं वण्णिउं उवक्कमइ तं सोच्चा निसम्म सव्वे देवा देवीओ य हरिसवसविसप्पमाणहियया

संजाया। तत्थ कोऽवि मिच्छादिट्ठी देवो तं पहुपरक्कममहिमं असद्दहंतो इस्सा-लुओ अंगीकयदुब्भावणो मणुस्सलोगं हव्वमागम्म बालेहिं कीलमाणं भयवं नियपिट्ठम्मि समारोहिय सयवेउव्वियसत्तीए सरीरं सत्तट्ठतालतरुपरिमियं लंब-माणं विउव्विय पहुं जिघंसू उवरि आगासतलाओ अहो पाडिउमारभीय। तं दट्ठूणं तक्खणमेव पगिइभिरुणो सिसुणो सिग्घं सिग्घं पलाइउमारद्धा। चाउ-रीचंचू पहू ओहिणा देवकयं उवद्दवं मुणिय एवं चिंतेइ जं एए बाला ममं पेमालुणो अम्मापिउणो कहिस्संति, तं णं मं उवद्दवसंकुलं विण्णाय मा खेय-खिन्ना हवंतु–त्ति सिग्घं तं दुरासयं दिविसयं नमइउं तप्पिट्ठमज्झासीणो एवं पहू मूढगूढासयण्णू तप्पिट्ठुवरि नियसरीरस्स अप्फारं भारं आरोविअ तेणं सो दुरासओ देवो तारेण सरेण चिक्करिय पुढवीतले निवडिओ। तए णं देवाणं

जयज्झुणी सुरज्झुणि समजाणि। तए णं णयग्गीवो सो देवो खामिय देवाहि-
देवो समत्तो सयधामं पत्तो ॥३३॥

शब्दार्थ—[तए णं भगवं महावीरे धवलदलविलसंतबितियाचंदोव्व] तब क्रम से शुक्लपक्ष की द्वितीया का चन्द्र [सोम्मकरेहिं संतगुणनियरेहिं गिरिकंदरमल्लीणे चंपगपायवेव वएण संवड्ढइ] जैसे अपनी सौम्यकिरणों से बढता है, उसी प्रकार भगवान् महावीर सद्गुणों के समूह से तथा जैसे पर्वत की गुफा में स्थित चम्पक-वृक्ष क्रम से बढता है उसी प्रकार वय से, बढने लगे [एवं से भगवं महावीरे मऊरपक्खकागपक्ख-सोहीहिं सवएहिं सिसूहिं सद्धिं बालवओ अणुरूवं गोवियसरूवं कीलेइ] इस प्रकार भगवान् महावीर मयूरपक्ष से सुशोभित चोटी से शोभायमान समवयस्क बालकों के साथ अपने असली स्वरूप को गोपन करके, बाल्यावस्था के अनुरूप क्रीडा करने लगे।

[एगया देवलोए देवगणालंकियाए सुहम्माए सभाए] एकबार देवलोक में देव

समूह से अलंकृत सुधर्मा सभा में [समासीणो सुणासीरो सोहम्मिंदो अणुवमगुणेहिं वद्धमाणस्स वद्धमाणस्स] बैठे हुए सौधर्मेन्द्र ने अनुपम गुणों से बढते हुए वर्धमान [पहुणो] प्रभु के [परक्कमवण्णिउं उवक्कमइ] पराक्रम का वर्णन करना आरंभ किया [तं सोच्चा निसम्म सव्वे देवा देवीओ य हरिसवसविसप्पमाणहियया संजाया] उसे सुनकर और समझकर सभी देवों और देवियों का हृदय हर्ष के वशीभूत होकर खिल गया। [तत्थ कोऽवि मिच्छादिट्ठी देवो तं पहुपरक्कममहिमं] किन्तु उनमें से प्रभु के पराक्रम की महिमा पर [असद्दहंतो इस्सालुओ अंगीकयदुब्भावणो मणुस्सलोगं हव्व-मागम्म] विश्वास न करता हुआ, ईर्षालु तथा दुर्भावना को अंगीकार करनेवाला एक मिथ्यादृष्टिदेव शीघ्र मनुष्यलोक में आकर [बालेहिं कीलमाणं भयवं नियपिट्ठम्मि समारोहिय] बालकों के साथ क्रीडा करते हुए भगवान् को अपनी पीठ पर बिठाकर [सयवेउव्वियसत्तीए सरीरं सत्तट्ठतालतरुपरिमियं लंबमाणं विउव्विय] अपने वैक्रिय

शक्ति से शरीर को सात–आठ ताडवृक्षों जितना लम्बा ऊँचा बनाकर [पहुं जिघंसु उवरि आगासतलाओ अहो पाडिउ मारभीअ] भगवान् को मारने की इच्छा से उसने प्रभु को उँचे आकाशतल से नीचे गिराना आरंभ किया। [तं दट्ठूण तक्खणमेव पगिइ भीरूणो सिसुणो सिग्घं सिग्घं पलाइउमारद्धा] यह दृश्य देखकर स्वभाव से डरपोक बालक उसी समय जल्दी–जल्दी इधर उधर भागने लगे [चाउरी चंचू–पहू ओहिणा देवकयं उवद्दवं मुणिय एवं चिंतेइ] अपनी चतुराई के लिए प्रसिद्ध प्रभु ने अवधिज्ञान से इस उपद्रव को देवकृत जानकर इस प्रकार विचार किया–[जं एए बाला ममं पेमालुणो अम्मापिउणो कहिस्संति,] ये बालक मेरे स्नेहशील मातापिता से कहेंगे अर्थात् देवकृत इस संकट की बात उन्हें बतायेंगे [तेणं मं उवद्दवसंकुलं विण्णाय मा खेयखिन्ना हवंतु-त्ति] वे उसे सुनकर माता पिता मुझे संकट ग्रस्त जानकर चिन्तायुक्त न बने, इस प्रकार विचार करके [सिग्घं तं दुरासयं दिवि सयं नमइउं] शीघ्र ही उस

दुष्ट अभिप्राय वाले देव को नमाने के लिए [तप्पिट्ठमज्झासीणो एव पहू मूढगूढासयण्णू तप्पिट्ठुवरि नियसरीरस्स अप्फारं भारं आरोविय] देव की पीठ पर चढे चढे ही अपने शरीर को थोडा सा भारीकर दिया। [ते णं सो दुरासओ देवो तारेण सरेण चिक्करिय पुढवीतले निवडिओ] प्रभुके शरीर का स्वल्प भार पडने पर वह देव उसे भी सहन न कर सका वह दुरात्मादेव बहुत उच्चस्वर से चीत्कार करके पृथ्वीतल पर आ गिरा [तए णं देवाणं जयज्झुणी सुरज्झुणी समजणि] उसके गिरने पर आकाश में देवों की जयध्वनि हुई [तए णं णयग्गीवो सो देवो खामिय देवाहिदेवो पत्त सम्मत्तो सयधामं पत्तो] तत्पश्चात् भगवान् के चरणों पर शिर रखकर वह उपद्रव करनेवाला देवने भगवान् से अपना अपराध खमाया और सम्यक्त्व प्राप्त कर अपने स्थान पर चला गया।३३।

अर्थ—'तए णं' इत्यादि। नामकरण के बाद भगवान् श्रीमहावीर क्रमशः अपने सद्गुणों के समूह से उसी प्रकार बढने लगे, जैसे शुक्लपक्ष में विराजमान द्वितीया का चन्द्रमा

बढता है, तथा वय से ऐसे बढने लगे जैसे पर्वत की गुफा में स्थित चम्पक वृक्ष बढता है। इस प्रकार वह भगवान् मयूर के पांखों से युक्त चोटियों से सोहनेवाले, समान वयवाले बालकों के साथ, बाल्यावस्था के योग्य, अपने महान् शक्तिमय स्वरूप को छिपाकर क्रीडा करने लगे। एक समय देवलोक में देवगणों से सुशोभित सुधर्मा नामकी सभा में सौधर्म देवलोक के स्वामी इन्द्र बैठे हुए थे। उन्होंने अपने अनुपम गुणों से वर्धमान (बढते हुए) श्री वर्धमान प्रभुके बल–पराक्रम का वर्णन करना प्रारंभ किया। उस वर्णन किये जाने वाले पराक्रम को कानों से सुनकर और हृदय में धारण करके सब देवों और देवियों का मानस हर्ष से विकसित हो गया। उन देव–देवियों में से किसी एक मिथ्यादृष्टि देव को श्री भगवान् महावीर के पराक्रम की महिमा पर विश्वास नहीं हुआ वह ईर्षालु था, अतः उसके मन में दुर्भावना उत्पन्न हुई। वह तत्काल ही मनुष्य लोक में आया और बालकों के साथ क्रीडा करते हुए भगवान् वर्द्धमान स्वामी को अपनी पीठ पर चढा

लिया। उसने अपनी वैक्रिय शक्ति से अपने शरीर को सात–आठ ताड वृक्षों जितना लम्बा–ऊंचा बनाकर श्री महावीर स्वामी का हनन करने की इच्छा की। उसने प्रभु को उंचे आकाशतल से नीचे गिराना आरंभ किया।

यह दृश्य देखकर स्वभाव से भीरू बालक उसी समय भागने लगे। अपनी चतुराई से जगत् प्रसिद्ध श्री महावीर स्वामीने, अवधिज्ञान का उपयोग लगाकर जान लिया कि यह उपसर्ग देव का किया हुआ है। तब उन्होंने इस प्रकार सोचा–ये बालक मेरे-स्नेहशील माता–पिता से कहेंगे–अर्थात् देवकृत इस संकट की बात उन्हें बतायेंगे। उसे सुनकर माता–पिता मुझे संकट–ग्रस्त जानकर चिन्तायुक्त न बनें' इस प्रकार विचार करके शीघ्र ही उस अभिप्राय वाले देवको नमाने के लिए, देव की पीठ पर चढे–चढे ही अपने शरीर को थोडा–सा भारी करदिया। प्रभु के शरीर का स्वल्प भार पडने पर वह देव उसे भी सहन न कर सका। वह दुरात्मा देव बहुत उच्च–स्वर से

चीत्कार करके पृथ्वीतल पर आ गिरा। उसके गिरने पर आकाश में देवों की जयध्वनि हुई। तत्पश्चात् श्री भगवान् के चरणों पर शिर रखकर वह उपद्रव करने वाला देवने भगवान् से अपना अपराध खमाया और सम्यक्त्व प्राप्त कर अपने स्थान पर चलागया ॥३३॥

मूलम्—तए णं अण्णया कयाइं पहुस्स अम्मापिउणो सयलकलाकलियं-ललियवच्छल्लेणं कलाकलावं सिक्खेउं महामहेणं महोवहारेणं अणवज्जेसु वज्जेसु वज्जमाणेसु पउरपरिवारपरियरियं तं कलायरियसविहे णिंति। भयवं उ ओहिण्णू अविअणभिण्णुमुद्दाए अम्मापिऊणमणुरोहेण कलायरियपासे पट्ठिओ। पहुस्स सोहणमागमणं अवगामिय कलायरियो पसन्नो उच्चासणमज्झासीणो अहीणपमोयपीणो अहुणेव तरलतरहारो अणुगयपरिवारो रायकुमारो भासमाणो वद्धमाणो ममंतिए आगमिस्सइ त्तिकट्टु तप्पडिच्छं करीअ। किन्तु खंडिय

भगवतः कलाचार्य-समीपे प्रस्थानादि वर्णनम्

लिया। उसने अपनी वैक्रिय शक्ति से अपने शरीर को सात–आठ ताड वृक्षों जितना लम्बा–ऊंचा बनाकर श्री महावीर स्वामी का हनन करने की इच्छा की। उसने प्रभु को उंचे आकाशतल से नीचे गिराना आरंभ किया।

यह दृश्य देखकर स्वभाव से भीरू बालक उसी समय भागने लगे। अपनी चतुराई से जगत् प्रसिद्ध श्री महावीर स्वामीने, अवधिज्ञान का उपयोग लगाकर जान लिया कि यह उपसर्ग देव का किया हुआ है। तब उन्होंने इस प्रकार सोचा–ये बालक मेरे स्नेहशील माता–पिता से कहेंगे–अर्थात् देवकृत इस संकट की बात उन्हें बतायेंगे। उसे सुनकर माता–पिता मुझे संकट–ग्रस्त जानकर चिन्तायुक्त न बनें' इस प्रकार विचार करके शीघ्र ही उस अभिप्राय वाले देवको नमाने के लिए, देव की पीठ पर चढे–चढे ही अपने शरीर को थोडा–सा भारी करदिया। प्रभु के शरीर का स्वल्प भार पडने पर वह देव उसे भी सहन न कर सका। वह दुरात्मा देव बहुत उच्च–स्वर से

चीत्कार करके पृथ्वीतल पर आ गिरा। उसके गिरने पर आकाश में देवों की जयध्वनि हुई। तत्पश्चात् श्री भगवान् के चरणों पर शिर रखकर वह उपद्रव करने वाला देवने भगवान् से अपना अपराध खमाया और सम्यक्त्व प्राप्त कर अपने स्थान पर चलागया ॥३३॥

मूलम्—तए णं अण्णया कयाइं पहुस्स अम्मापिउणो सयलकलाकलियं-ललियवच्छल्लेणं कलाकलावं सिक्खेउं महामहेणं महोवहारेणं अणवज्जेसु वज्जेसु वज्जमाणेसु पउरपरिवारपरियरियं तं कलायरियसविहे णिंति। भयवं उ ओहिण्णू अविअणभिण्णुमुद्दाए अम्मापिऊणमणुरोहेण कलायरियपासे पट्ठिओ। पहुस्स सोहणमागमणं अवगमिय कलायरियो पसन्नो उच्चासणमज्झासीणो अहीणपमोयपीणो अहुणेव तरलतरहारो अणुगयपरिवारो रायकुमारो भासमाणो वद्धमाणो ममंतिए आगमिस्सइ त्तिकट्टु तप्पडिच्छं करीअ। किन्तु खंडिय

भगवतः कलाचार्य-समीपे प्रस्थानादि वर्णनम्

कलामंडिओ पंडिओ किं अखण्डकलामांडिअं तं पुरिसुत्तमं सयलाणवज्जविज्ञा-अहिट्ठाइ-देवया विहेयवंदण भयवं पाढिउं सक्किज्जा? परिसुद्धं कंचणं किं सोहिज्जा? अंबतरू तोरणेहिं किं अलंकरिज्जा? अमयं महुरदव्वेहिं किं वासिज्जा? सरस्सई पाठविहिं किं सिक्खिवज्जा? चंदम्मि धवलत्तं किं आरोविज्जा? सुवण्णं सुवण्णजलेण किं परिक्करिज्जा? जो भयवं णाणत्तिगमहालओ महाविण्णाणजलही महासामत्थणिही महाबुद्धि महाधीरो महागम्भीरो य अत्थि सो अप्पणाणिणो अंतिए पढिउं गच्छिज्जंति महं असमंजसं। एयाए पवित्तीए देवलोए सुहम्माए सहाए सक्कस्स देविंदस्स देव-रण्णो आसणं चलियं। तए णं आसणे चलिए समाणे ओहिणा आभोइय सक्किंदो सिग्घं तओ पट्ठिओ माहणरूवेण पहुसमीवे आगमिय पहुं उच्चासणे

उवणिवेसिअ जा जा पण्हाइं कलायरियाहियए संसयरूवेण ठियाई ताइं चेव पण्हाइं पुच्छेइ. तत्थ इंदेण वागरणविसयं पण्हं कयं, भगवया तं वागरिय संखेवेण सव्वं वागरणं कहियं। तओ पच्छा इंदेण णयप्पमाणसरूवं पुच्छियं तं भगवया संखेवेण आघविय सव्वं णाणमम्मं पयासियं। तओ पच्छा तेण धम्मविसए पुच्छियं। भगवया धम्मसरूवं आघवमाणेणं उवसमो आघविओ, उवसमं आघवमाणेणं विवेगो आघविओ, विवेगं आघवमाणेणं विरमणं आघवियं, विरमणं आघवमाणेणं पावाणं कम्माणं अगरणं आघवियं, तं आघवमाणेणं णिज्जरा बंधमोक्खसरूवं आघवियं ॥सू० ३४॥

शब्दार्थ—[तए णं अण्णया कयाइं पहुस्स] इसके बाद किसी समय प्रभु के [अम्मापिउणो सयलकलाकलियंपि] मातापिता ने सकलकलाओं के ज्ञान से युक्त प्रभु

कलामंडिओ पंडिओ किं अखण्डकलामंडिअं तं पुरिसुत्तमं सयलाणवज्जविज्जा-अहिट्ठाइ-देवया विहेयवंदण भयवं पाढिउं सक्किज्जा? परिसुद्धं कंचणं किं सोहिज्जा? अंबतरू तोरणेहिं किं अलंकरिज्जा? अमयं महुरदव्वेहिं किं वासिज्जा? सरस्सई पाठविहिं किं सिक्खिवज्जा? चंदाम्मि धवलत्तं किं आरोविज्जा? सुवण्णं सुवण्णजलेण किं परिक्करिज्जा? जो भयवं णाणत्तिगमहालओ महाविण्णाणजलही महासामत्थणिही महाबुद्धि महाधीरो महागम्भीरो य अत्थि सो अप्पणाणिणो अंतिए पढिउं गच्छिज्जंति महं असमंजसं। एयाए पवित्तीए देवलोए सुहम्माए सहाए सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो आसणं चलियं। तए णं आसणे चलिए समाणे ओहिणा आभोइय सक्किंदो सिग्घं तओ पट्ठिओ माहणरूवेण पहुसमीवे आगमिय पहुं उच्चासणे

उवणिवेसिअ जा जा पण्हाइं कलायरियहियए संसयरूवेण ठियाइं ताइं चेव पण्हाइं पुच्छेइ. तत्थ इंदेण वागरणविसयं पण्हं कयं, भगवया तं वागरिय संखेवेण सव्वं वागरणं कहियं। तओ पच्छा इंदेण णयप्पमाणसरूवं पुच्छियं तं भगवया संखेवेण आघविय सव्वं णाणमम्मं पयासियं। तओ पच्छा तेण धम्मविसए पुच्छियं। भगवया धम्मसरूवं आघवमाणेणं उवसमो आघविओ, उवसमं आघवमाणेणं विवेगो आघविओ, विवेगं आघवमाणेणं विरमणं आघवियं, विरमणं आघवमाणेणं पावाणं कम्माणं अगरणं आघवियं, तं आघवमाणेणं णिज्जरा वंधमोक्खसरूवं आघवियं ॥सू० ३४॥

शब्दार्थ—[तए णं अण्णया कयाइं पहुस्स] इसके बाद किसी समय प्रभु के [अम्मापिउणो सयलकलाकलियंपि] मातापिता ने सकलकलाओं के ज्ञान से युक्त प्रभु

को [ललियवच्छल्लेणं कलाकलावं सिक्खेउं] अतिशय वात्सल्य के कारण कला कलाप सीखने ने के लिये [महामहेणं महोवहारेणं अणवज्जेसु वज्जेसु वज्जमाणेसु] बडे उत्सव और बहुत उपहारों के साथ तथा मनोहर बाजों के साथ एवं [पउरपरिवार परि-यरियं तं कलायरियसविहे णिंति] तथा विपुल परिवार के साथ कलाचार्य के समीप भेजा [भयवं उ ओहिण्णू अविअणभिण्णुमुद्दाए] भगवान् अवधिज्ञानी होने पर भी अन-भिज्ञ-सी आकृति बनाये, [अम्मापिऊण मणुरोहेण कलायरियपासे पट्ठिओ] माता पिता के अनुरोध से कलाचार्य के पास जाने के लिए रवाना हुए [पहुस्स सोहणमागमणं-अवगमिय कलायरिओ पसन्नो] भगवान् का शुभागमन जानकर कलाचार्य प्रसन्न हुए [उच्चासणमज्झासीणो] ऊंचे आसन पर बैठ गये [अहीणपमोयपीणो] अतिशय प्रमोद से फूल गया [अहुणेवतरलतरहारो अणुगयपरिवारो रायकुमारो भासमाणो वद्ध-माणो] अनुपमहारका धारक परिवार समेत राजकुमार वर्द्धमान [ममंतिए आगमिस्सइ

—त्ति कट्टु तप्पडिच्छं करीअ] अभी मेरे पास आनेवाला है, ऐसा सोचकर उसकी प्रतीक्षा करने लगा [किन्तु खंडिय कलामंडिओ पंडिओ किं अखंडकलामंडियं तं पुरिसुत्तमं] किन्तु थोडी सी कला को जाननेवाला पण्डित सकल कलाओं से सुशोभित [सयलाणवज्जविज्जा अहिट्ठाइ देवया विहेय वंदणं भयवं पाढिउं सक्किज्जा ?] समस्त समीचीन विद्याओं के अधिष्ठायक देवोंद्वारा वन्दना करने योग्य त्रिशला तनय पुरुषोत्तम भगवान् को क्या पढा सकता था ? [परिसुद्धं कंचणं किं सोहिज्जा ?] पूर्णरूप से शुद्ध सुवर्ण को क्या शोधा जाता है ? नहीं क्योंकि वह स्वयं शुद्ध है [अंबतरूतोरणेहिं किं अलंकरिज्जा ?] क्या आम के वृक्ष को तोरणों से सजाया जाता है ? नहीं कारण वह पत्तों से सजा हुआ है [अमयं महुरदव्वेहिं किं वासिज्जा ?] क्या अमृत को मधुर द्रव्यों से वासित किया जाता है नहीं कारण अमृत स्वयं मधुर है [सरस्सई पाठविहिं किं सिक्खिज्जा ?] शारदा देवी को क्या पाठविधि सीखाइ जाती है ? नहीं कारण यह स्वयं शिक्षित है।

भगवतः कलाचार्य-समीपे प्रस्थानादि वर्णनम्

[चंदम्मि धवलत्तं किं आरोविज्जा ?] क्या चन्द्रमा में धवलता का आरोपण किया जाता है ? नहीं कारण चन्द्र स्वयं शुभ्र है । [सुवण्णं सुवण्णजलेण किं परिक्करिज्जा ?] क्या सुवर्ण को सुवर्ण के पानी से संस्कारित करने की आवश्यकता रहती है ? नहीं कारण स्वर्ण स्वयं स्वर्ण जल से परिष्कृत है [जो भयवं णाणत्तिगमहालओ] जो भगवान् तीन ज्ञान—मतिश्रुत-अवधि के भण्डार हैं [महाविण्णाणजलही] महान् विज्ञान के समुद्र, [महासामत्थणिहि] विशाल शक्ति के निधान [महाबुद्धि] महान् बुद्धिमान [महाधीरो] महाधीर [महागम्भीरो य अत्थि] और महान् गम्भीर है [सो अप्पणाणिणो अंतिए पढिउं गच्छिज्जंति महं असमंजसं] वे वर्द्धमान स्वामी अल्पज्ञानी कलाचार्य के पास पढने जाएँ यह अत्यन्त अयुक्त बात थी [एयाए पवित्तीए देवलोए सुहम्माए सहाए सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो आसणं चलिअं] इस प्रवृत्ति से देवलोक में सुधर्मा सभा में शक्र देवेन्द्र देवराज का आसन चलायमान हुआ [तए णं आसणे चलिए समाणे ओहिणा आभोगिय सक्किंदो सिग्घं

तओ पट्टिओ] आसन के चलायमान होने पर अवधिज्ञान का उपयोग लगाने से आसन के चलायमान होने का कारण ज्ञात हो गया। तब शक्रेन्द्र शीघ्र ही देवलोक से चला और [माहणरूवेण पहुसमीवे आगमिय पहुं उच्चासणे उवणिवेसिय] ब्राह्मण का रूप बना कर प्रभु के पास आया। प्रभु को उच्च आसन पर प्रतिष्ठित करके [जा जा पण्हाइं कलायरियहियए संसयरूवेण ठियाइं ताइं चेव पण्हाइं पुच्छेइं] जो जो प्रश्न कलाचार्य के हृदय में संशयरूप से स्थित थे वेही प्रश्न पूछे [तत्थ इंदेण वागरणविसयं पण्हं कयं] उन प्रश्नों में सर्व प्रथम इन्द्रने व्याकरण विषयक प्रश्न पूछा [भगवया तं वागरिय संखेवेण सव्वं वागरणं कहियं] भगवान् वर्द्धमान स्वामीने उस प्रश्न की उचित रूप से व्याख्या करके, थोडे ही अक्षरों में समस्त व्याकरण शास्त्र कह दिया [तओ पच्छा इंदेण णयप्पमाणसरूवं पुच्छियं] इसके बाद इंद्रने नय और प्रमाण का स्वरूप पूछा [तं भगवया संखेवेण आघविय सव्वं णायमम्मं पयासियं] भगवान ने संक्षेप में

भगवतः कलाचार्य-समीपे प्रस्थानादि वर्णनम्

उसका उत्तर देकर सम्पूर्ण न्याय शास्त्र का सार प्रकाशित कर दिया [तओ पच्छा तेण धम्मविसए पुच्छियं] इसके बाद इन्द्रने धर्म के विषय में प्रश्न पूछा [भगवया धम्म-सरूवं आघवमाणेणं उवसमो आघविओ] भगवान वर्द्धमान ने धर्म का स्वरूप बतलाते हुए उपशम—मनोनिग्रह कहा [उवसमं आघवमाणेणं विवेगो आघविओ] उपशम कहते हुए विवेक कहा [विवेगं आघवमाणेणं विरमणं आघवियं] विवेक कहते हुए विरमण कहा [विरमणं आघवमाणेणं पावाणं कम्माणं अगरणं आघवियं] विरमण कहते हुए पापकर्मों का अकरण (न करना) कहा [तं आघवमाणेणं णिज्जराबंधमोक्खसरूवं आघवियं] पापकर्मों का अकरण कहते हुए निर्जरा, बंध और मोक्ष का स्वरूप कहा ॥सू० ३४॥

अर्थ—'तए णं' इत्यादि। तदन्तर किसी समय भगवन् महावीर स्वामी के माता-पिता ने समस्त कलाओं के ज्ञाता प्रभु को भी प्रगाढ प्रेम के कारण, कलाओं का ज्ञान प्राप्त कराने के लिए महोत्सव के साथ, भारी भेंट के साथ, मनोहर गाजों—बाजों के

साथ और बहुत बडे परिवार के साथ, कलाशिक्षक के समीप पहुँचाया। भगवान् वर्द्धमान अवधिज्ञान से विभूषित होकर भी अनजान की सी चेष्टा करके, माता–पिता के आग्रह से कलाचार्य के समीप पधारे। कलाचार्य, श्री वर्द्धमान का शोभन आगमन जानकर प्रसन्न हुआ। और ऊँचे आसन पर बैठा हुआ वह हर्ष की तीव्रता से फूल उठा–पुष्ट हो गया। अद्वितीय हार के धारणहार, गंभीरता आदि गुणों से सुशोभित सिद्धार्थ महाराज के पुत्र राजकुमार वर्द्धमान अभी–अभी परिवार सहित मेरे समीप आयेंगे, इस प्रकार विचार कर कलाचार्य उनके आने की बाट जोहने लगा।

किन्तु थोडी सी कलाओं का ज्ञाता पंडित, समस्त कलाओं में निपुण, पुरुषों में उत्तम, सब श्रेष्ठ विद्याओं के अधिपति देवता के द्वारा भी वन्दनीय अर्थात् सरस्वती के द्वारा भी स्तवनीय त्रिशलानन्दन भगवान् को क्या पढाने में समर्थ हो सकता था? अर्थात् नहीं हो सकता था, क्योंकि वे तो स्वयं संबुद्ध थे। इसी अर्थ को दूसरे प्रकार से

भगवतः कलाचार्य-समीपे प्रस्थानादि वर्णनम्

कहते हैं—पूर्णरूप से शुद्ध स्वर्ण को क्या शोधा जाता है? नहीं शोधा जाता, क्योंकि वह तो स्वतः शुद्ध है। आम के वृक्ष को तोरणों से सिंगारा जाय?, नहीं, वह तो स्वयं ही पत्तों से युक्त है। अमृत को मधुर द्रव्यों से क्या वासित किया जाय?, नहीं, क्योंकि वह तो स्वभाव से ही मधुर होता है। शारदा देवी को क्या पाठविधि सिखाने की आवश्यकता होती है?, नहीं, क्योंकि वह तो स्वयं सीखी हुई है। चन्द्रमा में धवलता है। सोने का सोने के पानी से संस्कार करने की आवश्यकता है? नहीं वह तो स्वयं ही परिष्कृत है। जो भगवान् तीन ज्ञान—मतिश्रुतअवधि के भण्डार, समस्त कलाओं के सागर, विशाल शक्ति के निधान, महान् मतिमान्, महाधीर—धीरों में अग्रगण्य और अत्यधिक गंभीरता आदि गुणों से संपन्न थे, वे वर्द्धमान स्वामी, अल्पज्ञानी कलाचार्य के पास पढने जाएँ, यह अत्यन्त अयुक्त बात थी। भगवान् के कलाचार्य के समीप शिक्षा ग्रहण करने के लिए जाने की प्रवृत्ति से देवलोक में, सुधर्मा सभा में, शक्र देवेन्द्र

देवराज का आसन चलायमान हुआ।

आसन कम्पायमान होने पर अवधिज्ञान का उपयोग लगाने से आसन के कांपने का कारण ज्ञात हो गया। तब शकेन्द्र शीघ्र ही देवलोक से चला और ब्राह्मण का रूप बना कर प्रभु के पास आया। प्रभु को उच्च आसन पर प्रतिष्ठित करके, जो प्रश्न कलाचार्य के हृदय म संशय रूप से स्थित थे, वे ही प्रश्न पूछे। उन प्रश्नों में सर्वप्रथम इन्द्र ने व्याकरण संबंधी प्रश्न पूछा। भगवान् वर्द्धमान स्वामीने उस प्रश्न की उचित रूप से व्याख्या करके, थोडे ही अक्षरों में समस्त व्याकरणशास्त्र कह दिया। तभी से 'जैनेन्द्र व्याकरण' की प्रसिद्धी हुई।

व्याकरण–विषयक प्रश्न के पश्चात् इन्द्र ने नैगमादिनयों का तथा प्रत्यक्ष, परोक्ष प्रमाणों का स्वरूप पूछा। भगवान् ने संक्षेप में उसका उत्तर देकर सम्पूर्ण न्यायशास्त्र का सार प्रकाशित कर दिया। तत्पश्चात् इन्द्र ने धर्म के विषय में प्रश्न किया। भगवान्

भगवतः कलाचार्य-समीपे प्रस्थानादि वर्णनम्

श्री वर्द्धमान स्वामी ने धर्म का स्वरूप बतलाते हुए उपशम—मनोनिग्रह कहा। उपशम कहते हुए विरमण (सावद्य व्यापारों का त्याग) कहा। विरमण कहते हुए प्राणातिपात—आदि पापों का न करना कहा। पापों का न करना कह कर निर्जरा, बंध और मोक्ष का स्वरूप कहा ॥३४॥

मूलम्—एएसिं णं पण्हाणं चित्तचमक्कारपवत्तेण वागरेण तत्थट्ठिया सव्वे जणा विम्हिया जाया। कलायरिओ वि पसन्नचित्तो संजाओ। तओ पच्छा तेण चिन्तियं—अच्छेरयमिणं जं एएण दुद्धमुहेण सुउमालेण बालेण एयारिसी विज्जा कओ सिक्खिया ? जो मम मणंसि चिरकालाओ संदेहो आसी, जो य न केणवि अज्जपज्जंतं निवारिओ, सो सव्वो अज्ज अणेण निवारिओ। सच्चमेयं, जं महापुरिसम्मि एयारिसा गुणा हवंति चेव केरिसं अस्स गांभी—

रियं जं एयारिसगुणगणसंपण्णोऽवि एसो एत्थ पढिउं समागओ सच्चं अद्ध-भरिओ घडो सद्दं करेइ न पुण्णो। दुब्बलो चिक्करेइ न सूरो, कंसं गुंजेइ न कणयं महापुरिसा णियमहिमं न पयासेंति। तए णं से सक्के देविंदे देवराया णियं इंदरूवं पगडिय सयलगुणणिहिणो महावीरपहुणो अउलबलवीरियबुद्धि-पहुत्तं तत्थट्ठिए जणे परिचाइंसु जं इमो सयलगुणआलबालो सुउमालो बालो न साहारणो किंतु सव्वसत्थपारीणो सव्वजगजीवजोणीरक्खणपरायणो सिरि वद्धमाणो चरमतित्थयरो अत्थि त्ति।

तए णं से सक्के देविंदे देवराया समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए। पहू य सुस-ज्जीकयं गयमारुहिय तेण जणसमुदाएण अवलोइज्जमाणे अवलोइज्जमाणे

सप्पासायं सप्पासायं अभिगमीअ। एयारिसपवित्त पहुपवित्तिओ माउपियाईणं चेयंसि भुज्जो भुज्जो अमंदाणंदसिंधूच्छलंततरंगो न संमाओ ॥३५॥

शब्दार्थ—[एएसिं णं पण्हाणं चित्तचमक्कारपवत्तेण] इन प्रश्नों के चित्त में चमत्कार उत्पन्न करनेवाले [वागरेण तत्थट्ठिया सव्वे जणा विम्हिया जाया] उत्तर से वहां स्थित सभी जन चकित रह गये। [कलायरिओ वि पसन्नचित्तो संजाओ] कलाचार्य भी प्रसन्न चित्त हुआ। [तओ पच्छा तेण चिंतियं] उसके बाद कलाचार्य ने सोचा [अच्छेरयमिणं जं एएण दुद्धमुहेण सुउमालेण बालेण] यह आश्चर्य है कि इस दुधमुहे सुकुमार बालक ने [एयारिसी विज्जा कओ सिक्खिया ?] ऐसी विद्या किससे सीखी ? [जो मम मणंसि चिरकालाओ संदेहो आसी] मेरे मनमें चिरकाल से जो सन्देह था [जो य न केण वि अज्जपज्जंतं निवारिओ] और जिसे आज तक किसीने दूर नहीं किया था, [सो सव्वो अणेण निवारिओ] वह सब आज इसने दूर कर दिया [सच्चमेयं जं महा-

भगवतः कलाचार्य-समीपे प्रस्थानादि वर्णनम्

पुरिसम्मि एयारिसा गुणा हवंति चेव] सच है महापुरुषों में ऐसे गुण होते ही हैं [केरिसं अस्स गांभीरियं जं एयारिसगुणगणसंपण्णो वि] कैसी गम्भीरता है इस में, जो ऐसे गुण गण से संपन्न होकर भी [एसो एत्थ पढिउं समागओ] यह यहां पढने आया है [सच्चं अद्धभरिओ घडो सद्दं करेइ न पुण्णो] सच है, आधा भरा हुआ घडा ही आवाज करता है पूरा भरा नहीं [दुब्बलो चिक्करेइ न सूरो] दुर्बल ही चीत्कार करता है शूर नहीं [कंसं गुंजेइ न कणयं] कांसा आवाज करता है न कि सोना [महापुरिसा णियमहिमं न पयासेंति] महापुरुष अपनी महिमा को आप प्रकाश नहीं करते।

[तए णं से सक्के देविंदे देवराया] उसके बाद शक्र देवेन्द्र देवराज ने [णिय इंद रूवं पगडिय] अपना इन्द्र का रूप प्रकट करके [सयलगुणणिहिणो महावीरपहुणो अउल-बलवीरियबुद्धिपहुत्तं] सकलगुणों के सागर वीर प्रभु के अतुल बल वीर्य बुद्धि और प्रभाव [तत्थट्ठिए जणे परिचाइंसु] का परिचय दिया कि [जं इमो सयलगुणआलवालो

सुउमालो बालो न साहारणो] यह समस्त गुणों का आलवाल (क्यारी) सुकुमार बालक साधारण नहीं है [किंतु सव्व सत्थपारिणो सव्वजगजीवजोणीरक्खणपरायणो सिरि-वद्धमाणो चरमतित्थयरो अत्थि त्ति] किन्तु समस्त शास्त्रों में पारंगत जगत के सर्व प्राणियों की रक्षा करने में तत्पर श्री वर्द्धमान स्वामी चरमतीर्थंकर है।

[तए णं से सक्के देविंदे देवराया] इसके बाद शक्रेन्द्र देवराज ने [समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ] श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना की नमस्कार किया [वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए] वन्दना नमस्कार करके जिस दिशा से प्रकट हुए थे उसी दिशा में चले गये।

[पहू य सुसज्जीकयं गयमारुहिय तेण जनसमुदाएण] भगवान् सिंगारे हुए हाथी पर बैठ कर बार बार उस जनसमुदाय के द्वारा [अवलोइज्जमाणे अवलोइज्जमाणे सप्पासायं सप्पासायं अभिगमीअ] अवलोकन किये जाते हुए प्रसन्नता के साथ अपने

प्रासाद की ओर चले [एयारिसपवित्त पहु पवित्तिओ माउपियाइणं चेयसि भुज्जो भुज्जो अमंदाणंदसिंधूच्छलंततरलतरंगो न संमाओ] प्रभु की इस पवित्र प्रवृत्ति से माता पिता के चित्त में पुनः पुनः उत्पन्न होनेवाली तीव्र आनन्द–सागर की उछलती हुई चपल लहरें समाई नहीं ॥३५॥

अर्थ—'एएसि णं' इत्यादि। इन व्याकरण, नय, प्रमाण, एवं धर्मसंबंधी प्रश्नों के चित्त में सन्तोष उत्पन्न करने वाले उत्तर से वहां स्थित सभी लोग आश्चर्ययुक्त हो गये। कलाचार्य का अन्तःकरण भी सन्तुष्ट हुआ। तत्पश्चात् कलाचार्य ने विचार किया। क्या विचार किया सो कहते हैं–'अहा, आश्चर्यजनक है कि इस दूधमुंहे कोमल बालक ने ऐसी चित्त में चमत्कार करने वाली विद्या किस मनुष्य से सीखी है? मेरे मनमें जो शंका बहुत समय से बनी हुई थी और आज तक जिस शंका का किसी ने भी समाधान नहीं किया था, वह सब शंका आज बालक वर्द्धमान ने दूर कर दी। यथार्थ ही

है महापुरुषों के गुण चित्त में चमत्कार उत्पन्न करने वाले होते ही हैं। इस बालक की गंभीरता कैसी है कि चमत्कारिक गुणों के समूह से सम्पन्न होने पर भी यह मेरे पास शिक्षा ग्रहण करने के लिए चला आया! यह ठीक ही कहा जाता है कि, आधा भरा हुआ घडा ही आवाज करता है पूरा भरा नहीं, दुर्बल जन ही चिल्लाते हैं शूर नहीं, कांसा बजता है, किन्तु स्वर्ण नहीं बजता। इसी प्रकार महापुरुष अपनी महिमा को प्रकाशित नहीं करते!

तत्पश्चात् शक्र देवेन्द्र देवराज ने अपने इन्द्र रूप को प्रकट करके समस्त गुणों के समुद्र भगवान् महावीर के अतुल बल, वीर्य, बुद्धि और प्रभुता का वहां स्थित जनों को परिचय कराया कि–यह दया–दाक्षिण्य आदि सब गुणों के आलवाल (क्यारी) सुकुमार बाल सामान्य नहीं हैं किन्तु समस्त शास्त्रों के पारगामी तथा सारे संसार में जीवों की जो मनुष्यादि योनियां है, उनकी रक्षा करने में तत्पर श्री वर्द्धमान–नामक

अन्तिम—चौबीसवें तीर्थंकर हैं।

श्री वीर भगवान् का परिचय देने के पश्चात् शक्र देवेन्द्र देवराज ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन किया, नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके जिस दिशा से प्रकट हुए थे, उसी दिशा में चले गये। श्री वर्द्धमान स्वामी बढिया सजाये हुए गजराज पर सवार होकर साथ आये हुए, एवं शिक्षास्थान में एकत्र हुए जनसमूह द्वारा तथा परिजन समूह के द्वारा पुनः पुनः निर्निमेष दृष्टि द्वारा देखे जाते हुए प्रसन्नतापूर्वक अपने राजमहल में चले गये।

इन्द्र द्वारा किये गये प्रश्नों के समाधान, कलाचार्य को संतुष्ट करना एवं सकलजनों को प्रसन्न करना—इस प्रकार की श्री वीरस्वामी की प्रवृत्ति से माता—पिता के तथा आदि शब्द से भाई विगैरह के मन में प्रबल हर्ष—रूपी सागर की बार—बार उछलती एवं चंचल तरंगे समा न सकीं। आशय यह है कि वह हर्ष भीतर न समाया तो

आंसुओं के बहाने बाहर निकल पडा ॥३५॥

मूलम्—तए णं तं समयं भगवं महावीरं उम्मुक्कबालभावं विण्णायपरिणयमेत्तं णवंगसुत्तपडिबोहियं जाणिय अम्मापियरो सागेयपुराहिवस्स समरवीरस्स रण्णो धूयाए धारिणीए देवीए अंगजायाए जसोयाए रायवरकण्णाए पाणिं गिण्हाविंसु। तओ णं समणस्स भगवओ महावीरस्स पियदंसणेति नामं धूया जाया। सा च जोव्वणगमणुपत्ता सयस्स भायणिज्जस्स जमालिस्स दिन्ना। तीसे पियदंसणाए धूया सेसवईति नामं जाया। समणस्स भगवओ महावीरस्स पिउणो कासवगोत्तस्स सिद्धत्थेत्ति वा, सेज्जंसेत्ति वा जसंसेत्ति वा तओ नाम धेज्जा। माउणो वासिट्ठगुत्ताए तिसलेति वा, विदेहादिण्णेत्ति वा, पियकारिणीति वा तओ नामधेज्जा।

भगवओ पित्तियए सुपासे कासवगोत्ते, जेट्ठे भाया नंदिवद्धणे कासव-गोत्ते। जेट्ठा भइणी सुदंसणा कासवगोत्ता। भज्जा जसोया कोडिण्णगोत्ता। धूयाए कासवगुत्ताए अणोज्जाइ वा पियदंसणाइ वा दो नामधिज्जा। णत्तुईए कोसि-यगोत्ताए सेसवईति वा जसवईति वा दो नामधिज्जा होत्था। समणस्स भग-वओ महावीरस्स अम्मापियरो पासाविच्चिज्जा समणोवासगा यावि होत्था। तेणं बहूणं समणोवासगपरियागं पाउणित्ता अपच्छिमाए संलेहणाइए झोस-णाए झोसिय सरीरा कालमासे कालं किच्चा बारसमे अच्चुए कप्पे देवत्ताए उववण्णो, तओ णं महाविदेहे सिज्झिस्संति ॥३६॥

शब्दार्थ—[तए णं तं समयं भगवं महावीरं] इसके बाद भगवान महावीर को [उम्मुक्कबालभावं] बाल्यावस्था से मुक्त [विण्णाय परिणयमेत्तं] परिपक्व ज्ञानवाला तथा

[णवंगसुत्तपडिबोहियं] नौ-अंग-दो कान, दो नेत्र, दो नासिका, जिह्वा, त्वचा और मन बाल्यावस्था के कारण जो सोये-से थे-अव्यक्त चेतनावाले थे उन्हें जागृत हुए [जाणिय] जानकर अर्थात् यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ जानकर [अम्मापियरो] मातापिता ने [सागेयपुराहिवस्स समरवीरस्स रन्नो धूयाए] साकेतपुर के राजा समरवीर की कन्या, एवं [धारिणीए देवीए अंगजायाए जसोयाए रायवरकन्नाए पाणिं गिण्हाविंसु] धारिणी देवी की अंगजात 'यशोदा' नामक श्रेष्ठ राजकन्या के साथ पाणिग्रहण-विवाह कराया।

[तओ णं समणस्स भगवओ महावीरस्स] पश्चात् श्रमण भगवान महावीर के [पियदंसणेति नामं धूया जाया] घर प्रियदर्शना नामक कन्या का जन्म हुआ [सा च जोव्वणगमणुपत्ता] जब वह युवा हुइ तो [सयस्स भाइणिज्जस्स जमालिस्स दिन्ना] भगवान ने उसे अपने भागिनेय-भानजे जमाली को दी-जमाली के साथ उसका विवाह कर दिया [तीसे पियदंसणाए धूया सेसवईति नामं जाया] उस प्रियदर्शना नामकी

कन्या से शेषवती नामक पुत्री हुइ [समणस्स भगवओ महावीरस्स पिउणो कासव-गोत्तस्स तओ नामधेज्जा] श्रमण भगवान महावीर के काश्यपगोत्रीय पिता के तीन नाम थे [सिद्धत्थेत्ति वा, सेज्जंसेति वा, जसंसेति वा] सिद्धार्थ, श्रेयांस और यशस्वी [माउणो वासिट्ठगुत्ताए तिसलेति, वा विदेहदिण्णेति वा, पियकारिणीति वा तओ नामधेज्जा] वासिष्ठगोत्रीय माता के तीन नाम थे–त्रिशला विदेहदत्ता, और प्रियकारिणी

[भगवओ पित्तियए सुपासे कासवगोत्ते] भगवान के काका काश्यपगोत्रीय सुपार्श्व थे। [जेट्ठे भाया नंदीवद्धणे कासवगोत्ते] एवं बडे भ्राता काश्यपगोत्रीय नन्दिवर्द्धन थे। [जेट्ठा भइणी सुदंसणा कासवगोत्ता] बडी बहन सुदर्शना भी काश्यप गोत्रीय थी [भज्जा जसोया कोडिण्णगोत्ता] और उनकी पत्नी यशोदा कौडिन्यगोत्र की थी [धूयाए कासवगुत्ताए अणोज्जाइ वा पियदंसणाइ वा दो नामधिज्जा] उनकी काश्यपगोत्र की लडकी के दो नाम थे–अनवद्या और प्रियदर्शना [णत्तुईए कोसियगोत्ताए सेसवईति वा

जसवईति वा दो नामधिज्जा होत्था] उनकी दौहित्री [नातिन] कौशिक गोत्र की थी। उसके दो नाम थे–शेषवती और यशस्वती।

[समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो] श्रमण भगवान महावीर के माता पिता [पासावच्चिज्जा समणोवासगा यावि होत्था] पार्श्वापत्यीय (पार्श्वनाथ के अनुयायी) श्रमणोपासक थे [तेणं बहूणं समणोवासगपरियागं पाउणित्ता] वे दोनों बहुत वर्षोंतक श्रमणोपासक–श्रावकव्रत को पालकर [अपच्छिमाए संलेहणाए झोसणाए झोसियसरीरा] अन्तिम समय में होनेवाली मारणांतिक संलेखना–जोषणा से शरीर को जोषित करके [कालमासे कालं किच्चा बारसमे अच्चुए कप्पे] मृत्यु के अवसर पर काल करके बारहवे अच्युत नामक देवलोक में [देवत्ताए उववण्णा] देवरूप से उत्पन्न हुए। [तओ णं महाविदेहे सिज्झिस्संति] वहां से चवकर वे महाविदेह में सिद्ध होंगे ॥३६॥

अर्थ—'तए णं' इत्यादि। तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर ने बाल्यवय को

पार किया हुआ, एवं परिपक्व–विज्ञानवाला, दो कान, दो आंख, दो नाक, रसना, त्वचा और मन–यह नौ अंग जो सुप्त थे, उन्हें यौवन के कारण जाग्रत हुआ देखकर, माता-पिताने अयोध्या के राजा समरवीर की पुत्री और धारिणी नाम देवी की अंगजात यशोदा नामक श्रेष्ठ राजकन्या के साथ उसका विवाह कराया। विवाह के बाद काल-क्रम से श्रमण भगवान् महावीर को 'प्रियदर्शना' नामक एक कन्या की प्राप्ति हुई। प्रियदर्शना धीरे धीरे यौवन अवस्था में पहुंची तो भगवान् ने उसे अपने भागिनेय जमालि को दी–जमालि के साथ उसका विवाह कर दिया। प्रियदर्शना की भी कन्या शेषवती नामक हुई। श्रमण भगवान महावीर के पिता के, जो काश्यपगोत्र में उत्पन्न हुए थे, तीन नाम थे–सिद्धार्थ, श्रेयांस, और यशस्वी। वाशिष्ठ गोत्र में उत्पन्न माता के तीन नाम थे–त्रिशला, विदेहदत्ता और प्रियकारिणी।

भगवान के काका काश्यपगोत्रोत्पन्न 'सुपार्श्व' थे। बड़े भ्राता काश्यपगोत्रोत्पन्न

नन्दिवर्धन थे। बडी बहिन काश्यपगोत्रीया सुदर्शना थी। पत्नी का नाम यशोदा था, वह कौडिन्य-गोत्र में उत्पन्न हुई थी। उनकी कन्या काश्यपगोत्रीया के दो नाम थे प्रियदर्शना और अनवद्या। कौशिकगोत्र में उत्पन्न नातिक के दो नाम थे शेषवती और यशस्वती। भगवान के मातापिता भगवान् पार्श्वनाथ की शिष्यपरम्परा से संबंध रखने वाले श्रावक थे। वे बहुत वर्षोंतक श्रमणोपासकपर्याय पालकर सब से अन्त में, मरण के समय में होने वाली संलेखना-जोषणा से शरीर को जोषित करके [समाधि-मरण का सेवन करके] कालमास में काल करके बारहवें अच्युत-नामक कल्प में देवपर्याय से उत्पन्न हुए। वहां से च्यवकर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होंगे और मुक्ति प्राप्त करेंगे ॥३६॥

मूलम्-तेणं कालेणं तेणं समएणं लोगंतियदेवाणं सपरिवाराणं आसणाइं चलंति। तए णं ते देवा भगवओ निक्खमणाभिप्पायं ओहिणा आभोगिय भगवओ अंतिए आगमिय आगासे ठिच्चा भयवं वंदमाणा नमंसमाणा एवं

वयासी—जय जय भगवं! बुज्झाहि लोयनाह! सव्वजगजीवरक्खणदयट्ठयाए पवत्तेहि धम्मतित्थं, जं सव्वलोए सव्वपाणभूयजीवसत्ताणं खेमंकरं आगमेसि भद्दं च भविस्सइ-त्ति। जं सयं बुद्धस्सवि भगवओ अभिणिक्खमणत्थं देवाणं कहणं तं तेसिं देवाणं जीयं कप्पं।

तयाणं समणं भगवं महावीरे संवच्छरदाणं दलइ, तं जहा—पुव्वं सूराओ जाव जामं अट्ठसयसहस्साहियं एग कोडिं एग दिवसेणं दलइ। एवं एगम्मि-संवच्छरे तिण्णि कोडिसयाइं अट्ठासीइ कोडीओ असीइ सयसहस्साइं (३८८-८००००००) सुवण्णमुद्दाणं भगवया दिण्णाइं। तए णं से णंदिवद्धणे राया भगवं कहइ भवं एगदिवसमेत्तं रज्जं करीअ तओ पच्छा निक्खमणं करेइ तं सोच्चा भगवं मौणभावमलम्बीअ चिट्ठइ, तओपच्छा भगवं राजाभिसेएण रज्जे

ठावेइ तओ णंदिवद्धणे राया भगवं पुच्छिय भाया किं दलयामो किं पयच्छामो किंवा ते हियइच्छिए सामत्थे तएणं भगवं एवं वयासी—इच्छामि णं भाया! कुत्तियावणाओ रयहरणं पडिग्गहं च उवणेह—कासवं च सद्दावेह। तएणं से णंदिवद्धणे राया भगवओ अभिनिक्खमणमहोच्छवं करेइ ॥३७॥

शब्दार्थ—[तेणं कालेणं तेणं समएणं] उस काल और उस समय में [लोगंतिय देवाणं सपरिवाराणं आसणाइं चलंति] परिवार सहित लोकान्तिक देवों के आसन चलायमान हुए [तए णं ते देवा भगवओ निक्खमणाभिप्पायं ओहिणा आभोगिय भगवओ अंतिए आगमिय आगासे ठिच्चा] तब वे देव भगवान के दीक्षा अंगीकार करने के अभिप्राय को अवधिज्ञान से जानकर भगवान के समीप आये। और आकाश में स्थित होकर [भयवं वंदमाणा नमंसमाणा एवं वयासी—जय जय भगवं! बुज्झाहि लोगनाह!]

भगवान को वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार बोले–'जय जय हो भगवन् ! बोध प्राप्त करिये हे तीन लोक के नाथ ! [सव्वजगजीवरक्खणदयट्ठयाए पवत्तेहि धम्मतित्थं] समस्त जगत् के जीवों की रक्षा और दया के लिये धर्म तीर्थका प्रवर्तन कीजिए [जं सव्वलोए सव्वपाणभूयजीवसत्ताइं खेमंकरं आगमेसिभद्दं च भविस्सइत्ति] जो सर्वलोक में सर्व प्राणियों, भूतों जीवों और सत्त्वों के लिए क्षेमंकर होगा और भविष्य में कल्याणकर होगा। [जं सयं बुद्धस्सवि भगवओ अभिणिक्खमणत्थं देवाणं कहणं तं तेसिं देवाणं जीयकप्पं] स्वयंबुद्ध भगवान को प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिए देवों का जो कथन है वह उनका जीतकल्प है–परम्परागत आचार है।

[तयाणं समणे भगवं महावीरे संवच्छरदाणं दलइ] उसके बाद भगवान महावीर वर्षीदान देने लगे [तं जहा–पुव्वं सूराओ जाव जामं अट्ठ सयसहस्साहियं एगं कोडिं एगदिवसेणं दलइ] वह इस प्रकार–सूर्योदय से पहले एक प्रहर दिन तक एक

करोड आठ लाख स्वर्णमुद्राएँ एक दिन में दान देते थे [एवं एगम्मि संवच्छरे तिण्णि कोडीसयाइं अट्ठासीई कोडिओ असीइ सयसहस्साइं सुवण्णमुद्दाणं भगवया दिण्णाइं] इस प्रकार एक वर्ष में, तीन सौ अठासी करोड, अस्सीलाख सुवर्ण मुद्राओं का भगवान ने दान दिया [तएणं] तत्पश्चात् [से णंदिवद्धणे राया] वह नंदिवर्धन राजा [भगवं कहइ] भगवान् को प्रार्थना करके कहने लगे [भवं] आप [एगदिवसमेत्तं] एक दिवस भी [रज्जं करीअ] राज्य करके [तओ पच्छा] उसके पीछे [णिक्खमणं करेइ] निष्क्रमण करना योग्य है [तं सोच्चा] नंदिवर्धन राजा का इस वचन को सुनकर [भगवं] भगवान [मोणभावमवलम्बिय चिट्ठइ] मौन रहे [तओ पच्छा] भगवान को मौन देखकर नंदिवर्धनने [भगवं राजाभिसएण] बडे समारोह के साथ भगवान का राज्याभिषेक करके [रज्जे ठावेइ] राज्य में स्थापित किया [तओ] तत्पश्चात् [णंदिवड्ढणे राया] नंदिवर्धन राजा [भगवं पुच्छिय] भगवान को पूछने लगे [भाया किं दलयामो] हे भाई आपको

क्या देवें [किं पयच्छामो] क्या अर्पित करे [किं वा ते हियइच्छिए सामत्थे] आपके हृदय में क्या प्रिय है ? [तएणं भगवं एवं वयासी] तब भगवान ने ऐसा कहा [इच्छमि णं भाया] हे भ्रात मैं इच्छता हूं [कुत्तियावणाओ] कुत्तियावण की दुकान से [रयहरणं पडिग्गहणं च उवणेह] रजोहरण एवं पात्रादि लाकर मुझे दे [कासवं च सद्दावेह] एवं नाइको भी बुलावो [तए णं से नंदिवद्धणे राया भगवओ अभिनिक्खमणमहोच्छवं करेइ] उसके बाद नन्दिवर्द्धन राजा ने भगवान का अभिनिष्क्रमण महोत्सव किया ॥३७॥

अर्थ—'तेणं कालेणं' इत्यादि। उस काल और उस समय में अर्थात् प्रथम वर्ष बीत जाने पर और दूसरा वर्ष प्रारंभ होने पर सपरिवार लोकान्तिक देवों के आसन चलायमान हुए। आसनों के चलायमान होने के अनन्तर लोकान्तिक देव भगवान की प्रव्रज्या की इच्छा को अवधिज्ञान से जानकर भगवान के समीप उपस्थित हुए। आकाश में स्थित होकर भगवान् वीर प्रभु को वन्दना—नमस्कार करते हुए वे इस प्रकार बोले-

प्रभो ! आप की जय हो, जय हो, (आप पुनः पुनः सर्वोत्कृष्ट होकर वर्ते)। हे त्रिलोकी नाथ ! आप बोध प्राप्त कीजिये तथा जगत् के एकेन्द्रिय आदि सभी प्राणियों की रक्षा के लिए और दया के लिये धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति कीजिये। अर्थात् मरनेवाले एकेन्द्रिय आदि प्राणियों की रक्षा के लिए 'मा हन, मा हन' अर्थात् 'मत मारो, मत मारो' ऐसा, तथा 'दया करो, करुणा करो' ऐसा उपदेश कीजिये । यह धर्मतीर्थ समस्त लोक में द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय रूप प्राणियों को, भूतों (वनस्पतियों) को, जीवों (पंचेन्द्रियों) को तथा सत्वों (पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय) को कल्याणकारी है और भविष्य में भी कल्याणकारी होगा।

इस प्रकार स्वयं बोध को प्राप्त भगवान को दीक्षा ग्रहण करने के लिए लोकान्तिक देवों का जो कहना है, सो उनका जितकल्प (परंपरागत आचारमात्र) ही है। तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर ने वर्षीदान देना प्रारंभ किया। बह इस प्रकार सूर्योदय के

पहले से आरंभ करके एक प्रहर-पर्यन्त एक करोड आठ लाख सुवर्ण मुद्राएँ प्रतिदिन देते थे। इस प्रकार सबका जोड करने से एक वर्ष में तीन अरब, अठासी करोड, अस्सी लाख स्वर्णमुद्राएँ दी। तत्पश्चात् नन्दिवर्धन राजा ने भगवान् श्री महावीर की दीक्षा महोत्सव का प्रारंभ किया ॥३७॥

मूलम्—तओ णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अभिनिक्खमणनिच्छयं जाणेत्ता सक्कप्पमुहा चउसट्ठी वि इंदा भवणवइ वाणमंतर जोइसिय विमाणवासिणो देवा य देवीओ य सएहिं सएहिं परिवारेहिं परिवुडा सईयाहिं सईयाहिं इड्ढीहिं समागया। तं समयं जहा कुसुमियं वणसंडे, सरयकाले जहा पउमसरो पउमभरेणं जहा वा सिद्धत्थवणं कणियारवणं, चंपयवणं कुसुमभरेणं सोहइ तहा गगणतलं सुरगणेहिं सोहइ ॥३८॥

शब्दार्थ–[तओ णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अभिनिक्खमणनिच्छयं जाणेत्ता] तब श्रमण भगवान महावीर के अभिनिष्क्रमण का निश्चय जानकर [सक्कप्पमुहा चउसट्ठी वि इंदा भवणवइ वाणमंतरजोइसिय–विमाणवासिणो देवा य] शक्र आदि चौसठ इन्द्र, भवनपति, व्यंतर ज्योतिष्कविमानवासी देव देवियां [सएहिं सएहिं परिवारेहिं परिवुडा सईयाहिं सईयाहिं इड्ढीहिं समागया] अपने अपने परिवारों सहित और अपनी-अपनी ऋद्धि के साथ आये [तं समयं जहा कुसुमियं वणसंडं सरयकाले जहा पउमसरो] उस समय आकाश सुरगणों से ऐसा सुशोभित हुआ, जैसे शरदृऋतु में पद्मसरोवर कमलों से शोभायमान होता है [पउमभरेणं जहा वा सिद्धत्थवणं, कण्णियारवणं चंपयवणं कुसुमभरेणं सोहइ तहा गगणतलं सुरगणेहिं सोहइ] अथवा जैसे सिद्धार्थवन, कर्णिकावन एवं चंपकवन कुसुमों के भार से शोभायमान होता है ऐसा ही आकाश, देवगणों से शोभने लगा ॥३८॥

अर्थ–तब श्रमण भगवान महावीर के दीक्षा अंगीकार करने के निश्चय को जानकर

शक्र आदि चौसठ इन्द्र भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषिक, विमानवासी देव तथा देवियां अपने अपने परिवारों से युक्त तथा अपनी–अपनी विमान आदि विभूति के साथ आये। उस समय जैसे पुष्पित वनषंड तथा शरदृऋतु में कमलयुक्त सरोवर अथवा सरसों का वन, कनेर का वन एवं चम्पा का वन पुष्पों के समूह से शोभित होता है उसी प्रकार आकाशमंडल सुरसमूहों से शोभायमान हुआ ॥३८॥

मूलम्–तए णं ते चउसट्ठि वि इंदा देवा य देवीओ य वरपडहभेरिझल्लरि-संखेहिं सयसहस्सेहिं तूरेहिं तयवितयघणझुसिरेहिं चउव्विहेहिं आउज्जेहि य वज्जमाणेहिं आणट्टगसएहिं णट्टिज्जमाणेहिं सव्व दिव्वतुडियसद्दनिनाएणं महया रवेणं महइए विभूईए महया य हिययोल्लासेणं महं तित्थयरनिक्खमणमहं करिउ-मारभिंसु तं जहा-सक्के देविंदे देवराया करितुरगाइ णाणाविह चित्तचित्तियं हारद्ध-

हाराइ भूसणं भूसियं मुत्ताहलपयरजालविवद्धमाणसोहं आल्हायणिज्जं पउमकय-भत्तिचित्तं णाणाविहरयणमणिमऊखसिहाविचित्तं णाणावण्णघंटापडागपरिमंडिय-ग्गसिहरं मज्झट्ठियसपायपीढसीहासणं एगं महं पुरिससहस्सवाहिणिं चंदप्पहं सिबियं विउव्वइ, विउव्वित्ता जेणेव समणे भयवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं–पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता परिहिय बहुमुल्लाभरणखोमयवत्थं भगवं तित्थयरं सिबियाए निसियावेइ।

तए णं सक्कीसाणा दो वि इंदा दोहिं पासेहिं मणिरयणखइयदंडाहिं चाम-राहिं भवयं वीयंति। तए णं तं सिबियं पुव्वं पुलइय रोमकूवा हरिसवसविस-प्पमाणहियया मणुस्सा उव्वहंति, पच्छा असुरिंदा सुरिंदा णागिंदा सुवण्णिंदा य

उव्वहंति तत्थ तं सिबियं पुव्वदिसाए सुरिंदा, दाहिणाए दिसाए नागिंदा, पच्छिमदिसाए असुरकुमारिंदा उत्तरदिसाए सुवण्णकुमारिंदा उव्वहंति ॥३९॥

शब्दार्थ—[तए णं ते चउसट्ठी वि इंदा देवा य देवीओ य] तत्पश्चात् उन चोसठ इन्द्रों ने, देवों ने और देवियों ने भगवान महावीर का दीक्षा महोत्सव मनाना आरंभ किया। [वरपडहभेरिझल्लरिसंखेहिं सयसहस्सेहिं तूरेहिं तयवितयघणझुसिरेहिं चउव्विहेहिं आउज्जेहिं य वज्जमाणेहिं] बडे बडे ढोल बजने लगे, भेरियां बजने लगी, झालरों और शंखों की ध्वनि होने लगी। लाखों मृदंग आदि वाद्य बजने लगे। वीणा आदि तत पटह आदि वितत कांसे के ताल आदि घण, और बांसुरी आदि शुषिर, इस प्रकार चार प्रकार के वाद्य बज उठे [आणट्टगसएहिं णट्टिज्जमाणेहिं] उत्तम उत्तम सैकडों नर्तक नाटच करने लगे [सव्वदिव्वतुडियसद्दनिनाएणं] समस्त दिव्य बाजों के शब्दों की ध्वनि से [महया रवेणं] महान् शब्दों से [महईए विभूईए महया य हिय-

इन्द्रादिदेवैः कृत निष्क्रमण महोत्सवः

योल्लासेणं] महती सम्पत्ति से, महती विभूति से तथा महान् हार्दिक उल्लास से [महं तित्थयरनिक्खमणमहं करिउ मारभिंसु, तं जहा–] सभी ने तीर्थंकर भगवान का महान् दीक्षा महोत्सव करना आरंभ किया–वह इस प्रकार–

[सक्के देविंदे देवराया करितुरगाइ णाणाविहचित्तचित्तियं] शक्र देवेन्द्र देवराज ने हाथी, घोडा आदि अनेक प्रकार के चित्रों से चित्रित [हारद्धहाराइभूसणभूसियं] हार और अर्धहार आदि आभूषणों से आभूषित [मुत्ताहलपयरजालविवद्धमाणसोहं] मोतियों के समूहों के जालों [गवाक्षों] से शोभित [आल्हायणिज्जं पल्हायणिज्जं] चित्त में आनन्द उत्पन्न करनेवाली और आल्हाद उत्पन्न करनेवाली [पउमकयभत्तिचित्तं] कमलों द्वारा की हुइ रचना से अद्‌भूत [नाणाविह रयणमणिमऊखसिहाविचित्तं] अनेक प्रकार के रत्नों और मणियों की किरणों से जगमगाती हुइ [णाणावण्णघंटापडागपरिमंडियग्गसिहरं] विविध रंगों के घण्टाओं और पताकाओं से जिसका शिखर शोभित हो रहा है

ऐसी तथा [मज्झट्ठियसपायपीठसीहासणं] जिस के मध्य में पादपीठ से युक्त सिंहासन रचा गया है ऐसी [एगं महं पुरिससहस्सवाहिणिं चंदप्पहं सिबियं विउव्वइ] एक बडी हजारपुरुष वाहिणी चन्द्रप्रभा नामकी शिबिका की विकुर्वणा की [विउव्वित्ता] विकुर्वणा करके [जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता] जहां श्रमण भगवान महावीर थे वहीं शक्र आये। आकर [समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, करित्ता] तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणपूर्वक श्रमण भगवान् महावीर को [वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता] वन्दना की नमस्कार किया, वन्दना नमस्कार करके [परिहियबहुमुल्लाभरणखोमयवत्थं भयवं तित्थयरं सिबियाए निसियावेइ] बहुमूल्य आभरण और क्षौमवस्त्र धारण किये हुए भगवान तीर्थंकर को शिबिका में बिठलाये।

[तए णं सक्कीसाणा दो वि इंदा दोहिं पासेहिं मणिरयणखइयदंडाहिं चामराहिं भयवं वीयंति] तब शक्रेन्द्र और ईशान दोनों इन्द्र दोनों बगलों में खडे होकर मणियों और

इन्द्रादिदेवैः कृत निष्क्रमण महोत्सवः

रत्नों से जडे हुए दंडवाले चामर भगवान पर वींजने लगे। [तए णं तं सिवियं पुव्वं पुलइयरोमकूवा हरिसवसविसप्पमाणहियया] उस शिबिका को पहले तो पुलकितरोम-कूपवाले और हर्ष से विकसित हृदयवाले [मणुस्सा उव्वहंति] मनुष्य वहन करते हैं [पच्छा सुरिंदा असुरिंदणागिंदा सुवण्णिंदा य उव्वहंति] उसके बाद सुरेन्द्र असुरेन्द्र, नागेन्द्र और सुपर्णेन्द्र वहन करने लगे [तत्थ णं तं सिबियं पुव्वदिसाए सुरिंदा, दाहिणाए दिसाए नागिंदा, पच्छिमदिसाए असुरकुमारिंदा उत्तरदिसाए सुवण्णकुमारिंदा उव्वहंति] उनमें से शिबिका के पूर्व दिशा के भाग को सुरेन्द्र दक्षिण दिशा के भाग को नागेन्द्र पश्चिम दिशा के भाग को असुरकुमारेन्द्र एवं उत्तर दिशा के भाग को सुपर्णकुमारेन्द्र वहन करते हैं ॥३९॥

अर्थ—देवों के आने के पश्चात् उन चौसठ इन्द्रों ने, देवों ने और देवियों ने भगवान् महावीर का दीक्षा महोत्सव मनाना आरंभ किया। बडे बडे ढोल बजने लगे भेरियों

बजने लगीं झालरों और शंखों की ध्वनि होने लगी। लाखों मृदंग आदि वाद्य बजने लगे। वीणा आदि तत, पटह आदि वितत, कांसे के ताल आदि घन और बांसुरी आदि शुषिर, इस प्रकार के वाद्य बज उठे। कहा भी हैं—

'ततं वीणादिकं ज्ञेयं विततं पटहादिकम् ।
घनं तु कांस्यतालादि, वंशादि शुषिरं मतम् ॥१॥इति॥

वीणा आदि को तत, पटह (ढोल) आदि को वितत, कांसे के ताल आदि को घन और बांसुरी आदि को शुषिर माना गया है ॥१॥

उत्तम—उत्तम सैकडों नर्तकनाट्य करने लगे। समस्त बाजों के शब्दों की ध्वनि से, महान् शब्दों से, महती सम्पत्ति से, महती विभूति से तथा महान् हार्दिक उल्लास से सभी ने तीर्थंकर का महान् दीक्षामहोत्सव करना आरंभ किया। वह इस प्रकार—शक्र देवेन्द्र देवराज ने शिबिका (पालकी) की विकुर्वणा की, अर्थात् वैक्रियशक्ति से

पालकी का निर्माण किया। वह पालकी कैसी थी, सो कहते हैं-हाथी घोडे आदि के बहुत प्रकार के चित्रों से युक्त थी। हार (अठारह लडों का), अर्द्धहार (नौ लडों का) आदि भूषणों से भूषित थी। मोतियों के समूहों के जालों (गवाक्षों) से उसकी शोभा बढ रही थी। चित्त में आनन्द उत्पन्न करने वाली और अतिशय मानसिक आह्लाद उत्पन्न करने वाली थी। कमलों द्वारा की गई रचना से अनुपम थी। अनेक प्रकार के कर्केतन आदि रत्नों तथा वैडूर्य आदि मणियों की किरणों की दीप्ति से जगमगी रही थी। विविध रंगों के घंटाओं और पताकाओं से उसके शिखर का अग्रभाग सुशोभित था। उसके बीच में पादपीठ सहित सिंहासन रक्खा था। इस प्रकार की एक बडी हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य चन्द्रप्रभा नामकी शिबिका वैक्रियशक्ति से उत्पन्न की।

शिबिका की विकुर्वणा करके शक्रेन्द्र जिस जगह श्रमण भगवान महावीर थे, उसी जगह आये। आकर श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिण-पूर्वक

वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके महा मूल्यवान् क्षौम वस्त्रों को धारण किये हुए भगवान् तीर्थंकर को शिबिका में बिठलाये। तत्पश्चात् शक्र और ईशान यह दोनों इन्द्र भगवान के दाहिने बांये पार्श्व–भाग में (खडे होकर) मणियों और रत्नों के डंडो वाले चामर भगवान् श्री वीर स्वामी पर बींजने लगे। तदनन्तर श्री वीर भगवान् जिसमें विराजमान थे, उस पालकी को पहले रोमांचित और हर्ष के वश उल्लसित हृदयवाले मनुष्योंने उठाया। बाद में वैमानिकों के इन्द्र, सौधर्म, चमर और बलि नामक असुरेन्द्र, धरण और भूतानन्द नामक नागकुमारेन्द्र, वेणुदेव और वेणुदालि नामक सुवर्णकुमारेन्द्र–ये छह भवनपतियों के इन्द्र क्रमशः वहन करने लगे। शिबिका को वहन करने वाले सुरेन्द्रों, असुरेन्द्रों, नागकुमारेन्द्रों तथा सुवर्णकुमारेन्द्रों में से सुरेन्द्र सौधर्मादि उस वीराधिष्ठित शिबिका को पूर्व दिशा की तरफ से वहन किये, भूतानन्द नामक नागकुमारेन्द्रो पश्चिम दिशा की तरफ से, धरण और असुरेन्द्र चमर

इन्द्रादि-
देवैः कृत
निष्क्रमण
महोत्सवः

बलि दक्षिण की तरफ से वहन किये और वेणुदेव तथा वेणुदालि नामक दोनों सुवर्णकुमारेन्द्र उत्तर की ओर से वहन करते हैं ॥३९॥

मूलम्—तए णं ते मणुया सुरिंदा असुरकुमारिंदा णागकुमारिंदा सुवण्णकुमारिंदा य तं सिबियं उव्वहमाणा उत्तरखत्तियकुंडपुरसन्निवेसस्स मज्झंमज्झेण निग्गच्छंति निग्गच्छित्ता जेणेव णायसंडे उज्जाणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता ईसिरयणिप्पमाणं अच्छोप्पेणं भूमिभागेणं सणियं सणियं पुरिससहस्सवाहिणिं चंदप्पहं सिबियं ठवेंति। तए णं समणे भगवं महावीरे ताओ सिबियाओ सणियं सणियं पच्चोयरइ, पच्चोयरित्ता सीहासणवरे पुव्वाभिमुहे संनिसण्णे। तओ पच्छा उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हारद्धहाराइयं, सव्वालंकारं ओमुयइ। तए णं वेसमणे देवे जंतुवायपडिए समणस्स

भगवओ महावीरस्स हंसलक्खणे सेयवत्थे आभरणालंकाराइं पडिच्छइ ॥४०॥

शब्दार्थ—[तए णं ते मणुया सुरिंदा असुरकुमारिंदा णागकुमारिंदा सुवण्णकुमारिंदा य तं सिवियं] उसके बाद वे मनुष्य–सुरेन्द्र, दोनों असुरेन्द्र, दोनों नागकुमारेन्द्र और दोनों सुपर्णकुमारेन्द्र उस शिबिका को [उव्वहमाणा उत्तरखत्तियकुंडपुरसन्निवेसस्स मज्झं मज्झेण निग्गच्छंति निग्गच्छित्ता] वहन करते हुए उत्तरक्षत्रियकुण्डपुर संन्निवेश के बीचोंबीच से निकले। निकलकर [जेणेव णायसंडे उज्जाणे तेणेव उवागच्छंति] जहां ज्ञातखण्ड उद्यान था वहां पहुंचे [उवागच्छित्ता ईसि रयणिप्पमाणं अच्छोप्पेणं भूमिभागेणं सणियं सणियं] पहुंचकर उन्होंने एक हाथ से कुछ कम धरती के ऊपर धीरे धीरे [पुरिससहस्सवाहिणिं चंदप्पहं सिवियं ठवेंति] पुरुष सहस्रवाहिणी चन्द्रप्रभा शिबिका को स्थापित किया [तए णं समणे भगवं महावीरे ताओ सिवियाओ सणियं सणियं पच्चोयरइ] तब श्रमण भगवान महावीर उस शिबिका से धीरे–धीरे नीचे उतरे

सुरेन्द्रादीनां शिबिका वहनम्

[पच्चोयरित्ता सीहासणवरे पुव्वाभिमुहे संनिसण्णे] उतरकर श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्व की ओर मुख करके विराजे [तओ पच्छा उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए उवागच्छइ] तदनन्तर भगवान उत्तर पूर्वदिशा–ईशानकोण में जाते हैं। [उवागच्छित्ता हारद्धहाराइयं सव्वा-लंकारं ओमुयइ] जाकर हार, अर्द्धहार आदि समस्त अलंकारों को उतारने लगे [तए णं वेसमणे देवे जंतुवायपडिए समणस्स भगवओ महावीरस्स हंसलक्खणे सेयवत्थे आभरणालंकाराइं पडिच्छइ] तब वैश्रमण देव उडते जंतु की तरह अचानक आ पहुंचे और उन्होंने हंस के समान उजले श्वेत वस्त्र में उन अलंकारों को ले लिये ॥४०॥

अर्थ—तत्पश्चात् वे मनुष्य, सुरेन्द्र, दोनों असुरकुमारेन्द्र, दोनों नागकुमारेन्द्र, एवं दोनों सुपर्णकुमारेन्द्र श्री वीर भगवान् द्वारा आश्रित पालकी को वहन करते–कंधों पर धारण करते हुए उत्तरक्षत्रिय कुण्डपुर नगर के बीचोंबीच होकर निकले। निकल कर जहां ज्ञातखण्ड नामक उद्यान था, वहीं आये। आकर के एक हाथ से कुछ

कम ऊपर–अधर में, धीरे–धीरे, उस पुरुषसहस्रवाहिनी (हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य) चन्द्रप्रभा नामक पालकी को ठहराया। तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर उस शिविका में से धीरे धीरे उतरे। उतर कर श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्वदिशा में मुख करके विराजमान हुए। तत्पश्चात् भगवान वीर प्रभु उत्तर-पूर्व दिशा के अन्तराल में ईशानकोण में पधारे। पधारकर हार, अर्धहार आदि समस्त अलंकारों को उतारने लगे। तब वैश्रवण देव उडते जन्तु की तरह अचानक आपहुंचे और उन्होंने हंस के समान उजले श्वेत वस्त्र में उन अलंकारों को ले लिये ॥४०॥

मूलम्–तेणं कालेणं तेणं समएणं जेसे हेमंताणं पढमे मासे पढमे पक्खे मग्गसिरबहुले, तस्स णं मग्गसिरबहुलस्स दसमीए तिहीए सुव्वएणं दिवसेणं, विजएणं मुहुत्तेणं, हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं चंदेणं जोगमुवगएणं पाईण गामिणिए छायाए बियत्ताए पोरिसीए छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं भगवं महावीरे दाहिणेणं

सुरेन्द्रादीनां शिविका वहनम्

हत्थेणं दाहिणे, वामेणं हत्थेणं वामं, पंचमुट्ठियं लोयं करेइ तओ सग्गाहिवे देविंदे देवराया भगवं सदोरयमुहपत्तिं रयहरणं गोच्छगं पडिग्गयं देवदूसं वत्थं पडिग्गहियं च पडिच्छइ। तओ साहुवेसं गहिय सिद्धाणं नमोक्कारं करेइ, करित्ता 'सव्वं मे अकरणिज्जं पावकम्मं' त्ति कट्टु सीहावित्तीए सामाइयं चरित्तं पडिवज्जइ। तं समयं च णं देवासुरपरिसामणुयपरिसा य आलेक्खचित्तभूयाविव चिट्ठइ। तए णं से सक्के देविंदे देवराया जंतुवायपडिए समणस्स भगवओ महावीरस्स केसाइं वयरामएणं थालेणं पडिच्छइ, जं समयं च णं भयवं सामाइयं चरित्तं पडिवज्जइ तं समयं च णं भगवओ वद्धमाणस्स चउत्थे मणपज्जवनाणे समुप्पण्णे। तेल्लुकं पयासियं।

भगवतः सर्वालङ्कार-त्यागपूर्वकं सामायिक चारित्र-प्रतिपत्तिः

तए णं सक्कप्पमुहा चउसट्ठी वि इंदा सव्वे देवा य देवीओ य भगवं 'जयउ

भयवं! पालउ समणं धम्मं, नासउ सुक्कज्झाणेणं अट्ठविहकम्मसत्तू, पराजयउ-रागद्दोसमल्लं, आरोहउ मोक्खसोहं' इच्चाइ रूवेण अभिणंदमाणा अभिणंद-माणा अभिथुणमाणा अभिथुणमाणा आगासे जयज्झुणि कुणमाणा २ जामेव-दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया। तए णं समणं भगवं महावीरे मित्त-णाइणियगसयणसंबंधिपरियणं पडिविसज्जेइ, सयं च इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ—'जमहं बारसवासाइं वोसट्ठकाए चत्तदेहे जे केइ दिव्वा वा मणुस्सा वा तेरिच्छिया वा उवसग्गा समुप्पज्जिस्संति तं सम्मं सहिस्सामि खमिस्सामि तितिक्खिस्सामि अहियाइस्सामि नो णं कस्सवि साइज्जं इच्छिस्सामि' त्ति ॥४१॥

शब्दार्थ—[तेणं कालेणं तेणं समएणं] उस काल और उस समय में [जे से हेमं-ताणं पढमे मासे पढमे पक्खे मग्गसिरबहुले] जो हेमन्त का प्रथम मास था, प्रथम

भगवतः सर्वालङ्कार-त्यागपूर्वकं सामायिक चारित्र-प्रतिपत्तिः

पखवाडा (पक्ष) था अर्थात् मार्गशीर्ष का कृष्णपक्ष था [तस्स णं मग्गसिरबहुलस्स दसमीए तिहीए सुव्वएणं दिवसेणं] उस मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष की दसमी तिथि में सुव्रत दिन में [विजएणं मुहुत्तेणं] विजय मुहूर्त्त में [हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं] उत्तराफाल्गुणी नक्षत्र के साथ [चंदेण जोगमुवगएणं पाइणगामिणीए छायाए वियत्ताए] चन्द्रमा का योग होने पर छाया जब पूर्व की ओर जा रही थी [पोरसीए छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं भगवं महावीरे] और जब दिन का एक प्रहर शेष रह गया था, ऐसे समय में, निर्जल षष्ठ भक्त (चोवीहार बेला) के साथ भगवान महावीर ने [दाहिणेणं हत्थेणं दाहिणं वामेणं हत्थेणं वामं पंचमुट्ठियलोयं करेइ] दाहिने हाथ से दाहिणी तरफ का और बायं हाथ से बांयी तरफ का पंचमुष्टिक लोच किया [तओ सग्गाहिवे देविंदे देवराया] तब स्वर्ग का अधिपति देवेन्द्र देवराज ने [भगवं] भगवान को [सदोरयमुहपत्तिं] सदोरकमुखवस्त्रिका [रयहरणं] रजोहरण [गोच्छगं] गोछा [पडिग्गयं] पात्रा एवं [देवदूसं वत्थं] देवदूष्यवस्त्र

भगवतः सर्वालङ्कार-त्यागपूर्वकं सामायिक चारित्र-प्रतिपत्तिः

[पडिच्छइ] दिया [तओ साहुवेसं गहिय] तत्पश्चात् भगवान के साधुवेष ग्रहण करने से एक अंतमुहूर्त्तपर्यन्त तीनों लोकों में प्रकाश हुवा तत्पश्चात् भगवान श्रीने [सिद्धाणं णमोक्कारं करेइ] श्रीसिद्ध भगवान् को नमस्कार किया [करित्ता सव्वं मे अकरणिज्जं पावकम्मं त्तिकट्टु] नमस्कार करके 'मेरे लिए समस्त पापकर्म अकरणीय है' इस प्रकार कह कर [सीहवित्तीए सामाइयं चरित्तं पडिवज्जइ] सिंहवृत्ति से सामायिक चारित्र अंगीकार किया [तं समयं च णं देवासुरपरिसा मणुयपरिसा य आलेक्खचित्तभूयाविव चिट्ठइ] उस समय देवों की परिषद्, और मनुष्यों की परिषद् चित्रलिखित के समान रह गई [तएणं से सक्के देविंदे देवराया जंतुवायपडिए समणस्स महावीरस्स केसाइं वयरामएणं थालेणं पडिच्छइ] तब वह शक्र देवेन्द्र देवराज अचानक आकर श्रमण भगवान महावीर के केशों को वज्ररत्नमय थाल में लिये और [जं समयं च णं भयवं सामाइयं चरित्तं पडिवज्जइ तं समयं च णं भगवओ वद्धमाणस्स चउत्थे मणपज्जवनाणे समुप्पण्णे] जिस

भगवतः सर्वालङ्कार-त्यागपूर्वकं सामायिक चारित्र-प्रतिपत्तिः

समय भगवान ने सामाइक चारित्र अंगीकार किया उसी समय भगवान वर्द्धमानस्वामी को चौथा मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न हो गया, [तेल्लुकं पयासियं] तीनों लोक प्रकाशित हुए।

[तएणं सक्कप्पमुहा चउसट्ठी वि इंदा सव्वे देवा य देवीओ य भगवं] तत्पश्चात् शक्र वगैरह चौसठ इन्द्र सब देव और देवियां भगवान का अभिनन्दन करते हुए कहने लगे [जयउ भयवं! पालउ समणधम्मं] भगवन्! जयवंता हों, श्रमणधर्म का पालन करें [नासउ सुक्कज्झाणेण अट्ठविह कम्मसत्तू] शुक्लध्यान से आठ प्रकार के कर्मशत्रुओं का विनाश करें [पराजयउ रागद्दोसमल्लं] रागद्वेषरूपी मल्लों का पराजय करें [आरोहउ मोक्खसोहं] मुक्ति-महल पर आरोहण कीजिए [इच्चाइरूवेण अभिणंदमाणा अभिणंदमाणा अभिथुणमाणा अभिथुणमाणा आगासे जयज्झुणिं कुणमाणा २ जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया] इस प्रकार बारबार अभिनन्दन एवं स्तुति करते हुए और बारबार जयनाद करते हुए जिस दिशा से प्रकट हुए थे उसी दिशा में चले गये

भगवतः सर्वालङ्कार-त्यागपूर्वकं सामायिक चारित्र-प्रतिपत्तिः

[तएणं समणे भगवं महावीरे मित्तणाइणियगसयणसंबंधिपरियणं पडिविसज्जेइ] तब श्रमण भगवान महावीर ने मित्रो, ज्ञातिजनों, निजजनों, संबंधिजनों और परिजनों का विसर्जन किया [सयं च इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ] और स्वयं ने इस प्रकार का अभिग्रह ग्रहण किया [जमहं वारसवासाइं वोसट्ठकाए चत्तदेहे जे केइ दिव्वा वा माणुस्सा वा तेरिच्छिया वा उवसग्गा समुप्पज्जिस्संति] मैं बारह वर्ष पर्यन्त कायोत्सर्ग करके, देहममत्व का परित्याग करके, जो भी कोई देव सम्बन्धी, मनुष्यसम्बन्धी और तिर्यंच सम्बन्धी उपसर्ग उत्पन्न होंगे [तं सम्मं सहिस्सामि खमिस्सामि तितिक्खिस्सामि अहियाइस्सामि नो णं कस्स वि साइज्जं इच्छिस्सामि त्ति] उन्हें सम्यक् प्रकार से सहन करूंगा, क्षमा करूंगा, तितिक्षा करूंगा निश्चल रहूंगा। मैं किसी की सहायता की अपेक्षा नहीं करूंगा ॥४१॥

अर्थ—'तेणं कालेणं' उस काल उस समय में जो प्रसिद्ध हेमन्तऋतु के चार

भगवतः सर्वालङ्कार-त्यागपूर्वकं सामायिक चारित्र प्रतिपत्तिः

सासों में प्रथम मास मार्गशीर्ष था, प्रथम पक्ष—मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष था, उस मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष की दशमी तिथिमें, सुव्रत नामक दिन में, विजया नामक मुहूर्त्त में हस्तनक्षत्र से उपलक्षित उत्तरा नक्षत्र अर्थात् उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर, छाया जब पूर्व दिशा की ओर जा रही थी, अर्थात् अपराह्न के समय में, एक प्रहर जब शेष था, अर्थात् दिन के चौथे प्रहर में, जलपान—रहित (चौवीहार) षष्ठभक्त के साथ, भगवान् महावीर ने दाहिने हाथ से दाहिनी ओर का और बांयें हाथ से बांयी तरफ का पंचमुष्टिक लोच किया। तव स्वर्ग के अधिपति देवेन्द्र देवराजने भगवान को सदोरक-मुखवस्त्रिका, रजोहरण, गोछा और देवदूष्यवस्त्र अर्पण किया तदनन्तर भगवान ने साधुवेष धारण किया साधुवेष ग्रहण करने से एक अन्तर्मुहूर्त्त पर्यन्त तीनों लोक में प्रकाश हुआ, भगवान्ने साधुवेष ग्रहण करके सिद्धों को नमस्कार किया। नमस्कार करके 'मेरे लिए समस्त प्राणातिपात आदि पाप—सावद्यकर्म अकर्तव्य हैं, इस प्रकार ज्ञ—परिज्ञा से जान-

भगवतः सर्वालङ्कार-त्यागपूर्वकं सामायिक-चारित्र-प्रतिपत्तिः

कर और प्रत्याख्यान–परिज्ञा से त्यागकर सिंहवृत्ति से सामायिक चारित्र अंगीकार किया। उस समय देवों और असुरों का समूह तथा मनुष्यों का समूह चित्रलिखित के समान स्तब्ध रह गया। श्री वीर प्रभु के चारित्र–ग्रहण के पश्चात् शक्र देवेन्द्र देवराज अचानक ही आ पहुंचे और उन्होंने श्रमण भगवान् महावीर के केशों को हीरे के थाल में ले लिये। जिस समय भगवान् ने सामायिक चारित्र को अंगीकार किया, उसी समय भगवान् वर्धमान को चौथा, अर्थात् मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल रूप पांच ज्ञानों में से चौथा मनः पर्ययज्ञान उत्पन्न हो गया।

तब शक्र आदि चौसठ इन्द्र सभी देव और देवियों श्री वीर प्रभु का इस प्रकार अभिनन्दन करने लगे–'भगवान् सर्वोत्कृष्ट होकर वर्ते। साधु धर्म का पालन कीजिए, आठ प्रकार के कर्मरिपुओं के शुक्ल ध्यान से दूर कीजिए, रागद्वेष रूपी मल्लों का मानमदन कीजिए, मुक्तिमहल पर आरोहण कीजिए।' इत्यादि रूप से चित्तोत्साहजनक

भगवतः सर्वालङ्कार-त्यागपूर्वकं सामायिक चारित्र-प्रतिपत्तिः

वचनों से पुनः पुनः अभिनन्दन तथा स्तवन करते हुए, आकाश में जय–जयकार करते हुए, जिस दिशा से प्रकट हुए थे उसी दिशा में चले गये।

शक्र आदि के चले जाने के पश्चात् श्रवण भगवान महावीर ने मित्रजनों, सजातियों, निजजनों (पुत्रादिकों) स्वजनों (काका आदि को), संबंधीजनों, (पुत्र-पुत्री आदि के श्वसुर आदि नातेदारों) तथा परिजनों (दासीदास–वगैरह) को बिसर्जित किया और स्वयं इस प्रकार का अभिग्रह–नियम ग्रहण किया–'मैं बारह वर्षों तक कायोत्सर्ग किये, देहममत्व का त्याग किये, देवों संबंधी, मनुष्यों सम्बंधी अथवा तिर्यचों संबंधी जो भी उपसर्ग उत्पन्न होंगे उन उत्पन्न हुए उपसर्गों को मानसिक दृढता के साथ निर्भय भाव से सहन करूंगा, विना क्रोध के क्षमा करूंगा, अदीन भाव से सहन करूंगा, और निश्चल रहकर सहन करूँगा। उन उपसर्गों के सहन करने आदि में किसी देव या मनुष्य की सहायता की अभिलाषा भी नहीं करूँगा ॥४१॥

भगवतः सर्वालङ्कार-त्यागपूर्वक सामायिक चारित्र-प्रतिपत्तिः

मूलम्—तए णं समणे भगवं महावीरे इमेयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हित्ता वोसट्ठकाए चत्तदेहे मुहुत्तसेसे दिवसे कुम्मारग्गामं पट्ठिए। तए णं सिरिवद्धमाणसामी जाव नयनपहगामी आसी ताव णंदिवद्धणपमुहा उम्मुहा जणा निय नियलोयणपुडेहिं पहुदरिसणामयं पिबमाणा पहरिसमाणा आसी। अह य पहू जहा तहा दिट्ठिसरणिओ विप्पकिट्ठो जाओ तहा तहा दारिद्दाणं विव सव्वेसिं सोक्करिसहरिसो पणट्ठुमारभीअ, गिम्हकालम्मि सरोवराणं जलमिव हरिसोल्लासो सोसिउ मुवाकमीअ, वारिविरहेण पफुल्लं कमलकुलं विव सव्वेसिं हिययदुस्सहेण पहुविरहेण मलिणं जायं, तमुज्जीविउ पवत्तो सोंडीरो सीयलमंदसुगंधिसमीरो वि भुयंगमसासायइ, पुव्वं जाओ तद्दिक्खमहोच्छवणंदणवणे तद्दरिसणकप्पतरुतले इट्ठसिद्धीए आणंदलहरीओ जायाओ ताओ सव्वाओ

प्रभुविरहे नन्दिवर्धनादीनां विलापवर्णनम्

पहुविरहवडवाणलम्मि पणट्ठाओ। पहुस्स दुस्सहो विरहो चंदविरहो चगोरमिव, हिययनिखायं सल्लमिव अखिले जणे वहिए करीअ। परिओ वित्थरिएण फारेण पहुविरहंधयारेण आययलोयणेसु समाणेसु वि तत्थट्ठिया जणा अनयणा जाया, पाईणा समीईणा पहुपगासणवीणा तत्थच्चा सोहा निव्वाण दीवगिहसोहेव नासीअ। पहुम्मि विरहिए समाणे पयंसि गलिए नईपुलिणमिव. रसे गलिए दलमिव जणमणो मलिणो संजाओ, जणनयणाओ फारा वारिधारा पाउसम्मि वुट्ठि धाराविव वहिउमारभीअ, पहुवग्गओ अरिमद्दणो नंदिवद्धणो नरिंदो पक्खलंताऽऽभरणो पडंतपमूणसमूहो छिण्णाणोगहो विव विगयचेयणो अवणियले सव्वंगेण घसत्तिपडिओ. तं दट्ठूणं सव्वे सामंतप्पभियओ अवि सामंतओ अवणियले निवडिया। तए णं विलीणचेयणो नंदिवद्धणो भूवो

कहंपि चेयणायारेण सीयलोवयारेण चेयणं णीओ अवि अईव वहिओ भवीअ, निरंतरईसिउसिणसलिलोच्छलिय धारामोयणाइं लोयणाइं पमज्जिअ पज्जदुक्ख-भायणं सयमप्पाणमेव निंदीअ धी ! धी ! अम्हाणं पावविवागं, अमू बंधुविरहो पागसासणी असणीविव अम्हे णिहणइ। एवं दुस्सहपहुविरहदुक्खेण खिण्णो पयाभिणंदणो णंदिवद्धणो राया मुत्तकंठमाकंदीअ। अस्सा हत्थिण्णोवि अस्सूइं पमुंचमाणा अत्थोगसोगमाइणो भवीअ। तयाणिं णच्चसूरेहि मऊरेहि वि नच्चं विसरियं, विडविणो कुसुमाइं चईअ, काणणविहरणपरायणहरिणा उपात्ताइं तणाइं, कणभक्खिणो पक्खिणो य आहारं परिहरीअ। एवं सव्वेसु पाणिसु पहुविरहविहुरेसु सो णरवरो पहुं चेयसा चिंतमाणो तओ एवं वयासी—जत्थ तत्थ य स सघत्थ तुमं चेवावलोयए विउत्तो सित्ति तुं वीर ! दुक्खाएवाणुमिज्जइ ॥४२॥

शब्दार्थ—[तए णं समणे भगवं महावीरे इमेयारूवे अभिग्गहं अभिगिण्हित्ता] तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर इस प्रकार के इस अभिग्रह को ग्रहण करके [वोसट्ठ-काए चत्तदेहे मुहुत्तसेसे दिवसे कुम्मारग्गामं पट्ठिए] शरीर की शुश्रूषा और ममता का त्याग किये हुए एक मुहूर्त दिन शेष रहने पर कुर्मारग्राम की ओर विहार किया। [तएणं सिरि वद्धमाणसामी जाव नयणपहगामी आसी ताव] उसके बाद जब तक श्री वर्धमान स्वामी नयनपथगामी थे—दिखाई देते थे तब तक [णंदिवद्धणपमुहा उम्मुहा जणा णिय-णियभोयणपुडेहिं पहुदरिसणामयं पिबमाणा पहरिसमाणा आसी] नन्दिवर्द्धन आदि सब जन अपने अपने नयन पुटों से प्रभुदर्शन का अमृत—पान करते हुए हर्षित रहे, [अहय पहू जहा तहा दिट्ठिसरणिओ विप्पकिट्ठो जाओ तहा तहा दारिद्दाणं विव सव्वेसिं सोकरिसहरिसो पणट्ठुमारभीअ] किन्तु प्रभु ज्यों ज्यों नजरों से ओझल होते गये त्यों-त्यों दरिद्रों के समान सबका उत्कर्षहर्ष समाप्त होने लगा [गिम्हकालम्मि सरोवराणं

जलमिव हरिसोल्लासो सोसिउ मुवाकमीअ] जैसे ग्रिष्म के समय में सरोवरों का जल सूखने लगता है, उसी प्रकार उन का हर्ष सूखने लगा [वारिविरहेण पफुल्लं कमल-कुलं विव सव्वेसिं हिययदुस्सहेण पहुविरहेण मलिणं जायं] जैसे पानी के बिना विकसित कमल मुरझा जाता है उसी प्रकार सब का हृदय दुस्सह प्रभु विरह से मुरझाने लगा [तमुज्जीविउं पवत्तो सोंडीरो सीयलमंदसुगंधि समिरोवि भुयंगमसासायइ] उसे ताजा करने केलिये प्रवृत्त हुआ चतुर पवन शीतलमंद और सुगन्धित होने पर भी सांप के श्वास के समान जहरीला प्रतीत होने लगा। [पुव्वं जाओ तद्दिक्खमहोच्छवनंदणवणे तद्दरिसणकप्पतरुतले इट्ठसिद्धीए आणंदलहरिओ जायाओ] पहले भगवान् वर्धमान स्वामी के दीक्षा ग्रहण के निमित्त हुए उत्सवरूपी नन्दनवन में श्री वर्द्धमान स्वामी के दर्शनरूप कल्पवृक्ष के मूल में इष्टसिद्धि से आनन्द की जो लहरे उत्पन्न हुइ थीं [ताओ सव्वाओ पहुविरहवडवानलम्मि पणट्ठाओ] वह सब प्रभु के विरहरूप वडवानल

में भस्म हो गई। [पहुस्स दुस्सहो विरहो चंदविरहो चंगोरमिव] जैसे चन्द्रमा का वियोग चकोर को व्यथित करता है उसी प्रकार [हिययनिखायं सल्लमिव अखिले जणे वहिए करीअ] उसी प्रकार भगवान् का विरह हृदय में चुभे हुए कांटे के समान सभी जनों को व्यथित करने लगा [परिओ वित्थरिएण कारेण पहुविरहंधयारेण आययलोयणेसु समाणेसु वि तत्थट्ठिया जणा अनयणा जाया] सब ओर फैले हुए विशाल प्रभु विरह के अन्धकार के कारण दीर्घनयन होने पर भी दीक्षास्थान पर विद्यमान जन नेत्र हीन जैसे हो गये [पाईणा समीईणा पहुपगासणवीणा तत्थच्चा सोहा निव्वाणदीवसिहगिहसोहेव नासीअ] पहले की वहां की प्रभु के प्रकाश से नूतन और सलौनी शोभा उसी प्रकार नष्ट हो गई, जैसे दीपशिखा के बुझ जाने पर घर की शोभा नष्ट हो जाती है। [पहुम्मि विरहिए समाणे पयंसि गलिए नईपुलिणमिव रसे गलिए दलमिव जणमणो संजाओ] जैसे पानी के बह कर निकल जाने पर नदी का तट शोभा-

हीन हो जाता है, और जैसे रसभाग सूख जाने पर पत्ता मलिन—फीका निष्प्रभ हो जाता है, उसी प्रकार लोगों का मन फीका होगया [जणनयणाओ फारा वारिधारा पाउसम्मि वुट्ठिधाराविव वहिउमारभीअ] वर्षाॠतु की पानी की धारा की तरह लोगों के आंखों से आंसुओं की धारा बहने लगी [पहुवरग्गजो अरिमद्दणो नंदिवद्धणो नरिंदो पक्खलंता आभरणो पडंतपसूणसमूहो छिण्णाणोगहोविव विगयचेयणो अवणियले सव्वंगेण धसत्ति पडिओ] भगवान् के भ्राता शत्रुओं के मर्दक नन्दिवर्धनराजा बेसुध होकर धडाम से सर्वांग से कटे वृक्ष की तरह धरती पर गिड पडे, उनके सभी आभूषण ऐसे गिर पडे मानो वृक्ष के फल झड गये हो [तं दट्ठूणं सव्वे सामंतप्पभियओ आवि समंतओ अवणियले निवडिया] उन्हें गिरा देखकर सभी सामन्तगण आदि भी इधर उधर धरती पर गिर पडे [तएणं विलीणो णंदिवद्धणो भूवो कहंपि चेयणायारेण सियलोवयारेण] चेयणं णीओऽवि अईव वहिओ भवीअ] उसके बाद संज्ञाहीन नन्दिवर्द्धन राजा

प्रभुविरहे नन्दिवर्धनादीनां विलापवर्णनम्

॥१८८॥

किसी प्रकार चेतना उत्पन्न करनेवाले शीतलोपचार से होश में आये भी तो अतीव व्यथा का अनुभव करने लगे [निरंतरईसिउसिणसलिलोच्छलिय धारामोयणाइं लोयणाइं पमज्जिय पज्जदुक्खभायणं सयमप्पाणमेव निंदीअ—धी ! धी ! अम्हाणं पावविवागं] अनवरत हल्के से उष्ण जल की उछलती धारा बहाने वाले नेत्रों को पोंछकर वह अतीव दुःख के पात्र अपनी आत्मा की इस प्रकार निंदा करने लगे धिक्कार है- धिक्कार है हमारे पाप के परिणाम को ! [अमू बंधुविरहो पागसासणी असणी विव अम्हे णिहणइ] यह बन्धु-वियोग इन्द्र के वज्र की तरह हमें चोट पहुँचा रहा है [एवं दुस्सह पहुविरहदुक्खेण खिण्णो पयाभिणंदणो णंदिवद्धणो राया मुत्तकंठ माकंदीअ] इस प्रकार प्रभु के दुस्सह विरह के दुख से खिन्न और प्रजा को आनन्द देने वाले नंदिवर्द्धन राजा मुक्त कण्ठ से आक्रन्दन करने लगे [अस्सा हत्थिणे अवि अस्सूइं पमुंचमाणा अत्थोगसोगमाइणो भवीअ] घोडे और हाथी आंसू बहाते हुए प्रबल शोक करने लगे [तयाणि नच्चसूरेहि मऊरेहि वि नच्चं

प्रभुविरहे नन्दि- वर्धनादीनां विलाप- वर्णनम्

विसरीयं] उस समय नृत्यकरने में शूर मयूर भी नाचना भूल गये [विडविणी कुसुमाइं चईअ] वृक्ष फूलों का त्याग करने लगे [काणणविरहणपरायणहरिणा उपात्ताइं तणाइं] वन में विचरण करने में परायण हरिणों ने मुख में ग्रहण किये तृणों को भी त्याग दिया और [कणभक्खिणो पक्खिणोय आहारं परिहरीअ] कण भक्षण करने वाले पक्षियों ने चुगना बंद कर दिया [एवं सव्वेसु पाणिसु पहुविरहविहुरेसु सो नरवरो पहुं चेयसा चिंतमाणो तओ एवं वयासी] इस प्रकार सभी प्राणिगण प्रभु के विरह से व्यथित होगए उसके बाद भगवान् के विरह से दुःखी राजा नंदिवर्द्धन मन ही मन भगवान् का चिन्तन करते हुए बोले—

[जत्थ तत्थ य सधत्थ तुमं चेवावलोयए] हे भ्रात! मैं यत्र तत्र सर्वत्र तुझे ही देखता हूँ [विउत्तो सित्ति तुं वीर! दुक्खाएवाणु मिज्जंति] अतः कौन कहता है कि तुम्हारा वियोग हो गया है किन्तु जब अंतर में दुःख होता है तब लगता है कि तुम्हारा वियोग

प्रभुविरहे नन्दि-वर्धनादीनां विलाप-वर्णनम्

हो गया है। [एवं भासमाणो णदिवद्धणो राया स णिसंतं पट्ठिओ] इस प्रकार बोलते हुए नंदीवर्धन राजा ज्ञात खण्ड उद्यान से अपने भवन की ओर रवाना हुए ॥४२॥

अर्थ—'तए णं' इत्यादि। दीक्षा ग्रहण करने के अनन्तर श्रमण भगवान महावीर पूर्वोक्त अभिग्रह को अंगीकार करके शरीर की शुश्रूषा के त्यागी हुए और देह संबंधी मोह से रहित हुए, जब अनुमान दो घडी दिन शेष था, तब 'कुर्मार' ग्राम की ओर विहार किये। उस समय, जितने समय तक श्री वर्धमान स्वामी दिखाई देते रहे, उतने समय तक नन्दिवर्धन आदि जन भगवान् श्री वर्धमान प्रभु को देखने के लिए उनकी ओर मुंह उठाए हुए नेत्र-पुटों से उनके दर्शनरूपी अमृत का पान करते रहे और प्रसन्न होते रहे, किन्तु बाद में श्री वर्धमान स्वामी जैसे-जैसे दृष्टिपथ से दूर होते चले गये, वैसे-वैसे दीनों के समान वहां खडे हुए सभी लोगों का वह उत्कृष्ट आनन्द दूर होने लगा। जैसे ग्रीष्म ऋतु में सरोवरों का जल सूखने लगता है, उसी प्रकार उनका हर्षो-

ल्लास सूखने लगा। जैसे जल के अभाव से विकसित कमलों का समूह शोभाविहीन हो जाता है, उसी प्रकार वहां स्थितजनों के हृदय दुस्सह प्रभु-विरह से श्री बर्धमान स्वामी के वियोग से मुरझा गया। सब के हृदय को प्रफुल्लित करने के लिए प्रवृत्त हुआ सुन्दर, शीतल, मन्द और सुगंधिक समीर (पवन) भी सांप के श्वास के समान संतापर्वक हो उठा। पहले भगवान् वर्धमान स्वामी के दीक्षा ग्रहण के निमित्त हुए उत्सवरूपी नन्दनवन में, श्री वर्धमान स्वामी के दर्शन रूप कल्पवृक्ष के मूल में इष्ट सिद्धि से आनन्द की जो लहरें उत्पन्न हुई थी, वह सब प्रभु के विरहरूप वडवानल में भस्म हो गई। जैसे चन्द्रमा का वियोग चकोर को व्यथित करता है, उसी प्रकार भगवान् का वियोग लोकों को व्यथित करने लगा। अथवा जैसे हृदय-प्रदेश में चुभा हुआ शल्य व्यथा पहुंचाता है, वैसे ही वह वियोग सब को व्यथा देने लगा। सब ओर फैले:हुए विशाल प्रभु विरह के अन्धकार के कारण दीर्घनयन होने पर भी दीक्षास्थान

प्रभुविरहे नन्दि वर्धनादीनां विलाप-वर्णनम्

पर विद्यमान जन नेत्रहीन जैसे हो गये! प्रभु के विराजने से नवीन वहां की पहले वाली शोभा, अर्थात् भगवान् वर्धमान के विराजने के स्थान की वह रमणीयता उसी प्रकार नष्ट हो गई, जैसे दीपक के बुझ जाने पर भवन की शोभा नष्ट हो जाती है। जैसे पानी का बहाव समाप्त हो जाने पर नदी के तट की शोभा मलीन हो जाती है अथवा रस–भाग के सूख जाने पर पत्ते निष्प्रभ हो जाते हैं, उसी प्रकार लोगों के हृदय मलीन उत्साहहीन हो गये। लोगों के लोचनों से महती अश्रुधारा ऐसी प्रवाहित होने लगी, जैसे वर्षाकाल में वर्षा की धारा वह रही हो। भगवान् के ज्येष्ठभ्राता, शत्रुओं के विजेता नन्दिवर्धन राजा, जिनके आभूषण नीचे गिर रहे थे, इस प्रकार सब अवयवों से धरती पर धड़ाम से गिर गये, जैसे झरते हुए पुष्पों वाला वृक्ष कट कर गिर गया हो धरतीपर गिरने के बाद वह मूर्छित हो गये। फिर–मूर्छा दूर करने वाले शीतल उपचार से–पंखा आदि के द्वारा हवा करने आदि से होश में आये भी तो अत्यंत ही दुःखी

प्रभुविरहे नन्दि-वर्धनादीनां विलाप-वर्णनम्

हुए। वह लगातार किंचित उष्ण जल की धारा के समान अश्रुधारा बहाने वाले नेत्रों को पोंछकर अत्यन्त दुःखित अपने आत्मा की ही निन्दा करने लगे—हमारे पाप के परिणाम को धिक्कार है। यह बन्धुवियोग हमको इन्द्र के वज्र के समान व्यथा पहुँचा रहा है। इस प्रकार असह्य प्रभु वियोग श्री वर्धमान स्वामी के विरह—जनित खेद से दुःखित हो कर अपनी प्रजा को आनन्दित करने वाले नन्दिवर्धन राजा चिल्ला—चिल्ला कर रुदन करने लगे। उस समय में अश्व और हस्ती भी आंसू बहाते हुए अत्यन्त शोक के भागी हुए। श्री वर्धमान स्वामी से वियोग के समय नाचने में निपुण मयूर नृत्य करना भूल गये ! वृक्षोंने फूलों का परित्याग कर दिया, अर्थात् वे भी प्रभु के विरह से फ़लों की शोभा से रहित हो गए, तथा वन में विहार करने वाले मृगों ने मुख में लिया हुआ घास भी त्याग दिया। कण का भक्षण करने वाले पक्षियों ने कणभक्षण करना भी छोड दिया इस प्रकार समस्त प्राणीगण भगवान् के वियोग से व्यथित हुए

प्रभुविरहे नन्दिवर्धनादीनां विलापवर्णनम्

तत्पश्चात् भगवान् के विरह से दुःखी नन्दिवर्ध राजा श्री वर्धमान स्वामी को हृदय से स्मरण करते हुए कहते है।

"यत्र तत्र च सर्वत्र, त्वामेवाऽऽलोकयाम्यम् ॥
वियुक्तोऽसीति त्वं, वीर! दुःखादेवानुमीयते" ॥१॥

अर्थात्-हे भ्राता में जहां तहां सब जगह तेरे को ही देखता हूँ. अतः कौन कहता है कि तेरा वियोग हुआ है, मुझे तो चारों ओर तूं ही तूं दिखाई दे रहा है परंतु हे वीर ! जब अंतर में दुःख होता है तब अनुमान करता हूं कि तेरा वियोग हो गया है। इस प्रकार मन ही मन बोलते हुए नन्दिवर्धन राजा ज्ञातखण्ड उद्यान से अपने भवन की ओर रवाना हुए ॥४२॥

मूलम्—तत्थ णंदिवद्धणेण वुत्तं हे वीर ! अम्हे तं विणा सुण्णं वणं विव पिउकाणणं विव भयजणणं भवणं कहं गमिस्सामो।

हवंति एत्थ सिलोगा—

तए विना वीर ! कहं वयामो। गिहेऽहुणा सुण्णवणोवमाणे ॥
गोट्ठी सुहं केण सहायरामो। मोक्खामहे केण सहाऽह बंधू ॥१॥
सव्वेसु कज्जेसु य वीर-वीरे,-च्चामंतणाद्दंसणओ तवज्ज !
पेमप्पकिट्ठइ भजीअ मोयं। णिराऽऽसया कं अह आसयामो ॥२॥
अइप्पियं बंधव ! दंसणं ते, सुहंजणं भावि कयम्ह अक्खिणं।
नीरागचित्तोऽवि कयाह अम्हे। सरिस्ससी सव्वगुणाभिराम ॥३॥

इच्चेवं भुज्जो भुज्जो विलपंताणं तेसिं सव्वेसिं अच्छवो मोत्तियमालव्व फारा अस्सुहारा निस्संदिउ मुवाकमीअ। तह य अच्छिसुत्तियाओ अस्सुबिंदु-मुत्ताहलाणिं परिओ विकिरिउ मारभीअ। एवं सोगमयं समयं निरिक्खिय

दिनमणी वि मंदधिणी जाओ। एगो अवरस्स दुक्खं परोप्परं दट्ठुं दूयया इत्ति विभाविय विय सहस्स किरणो अत्थमिओ। सूरे अत्थमिए धरा य अंधयारा आच्छायणं धरीअ। जणा य सोगाउरा विच्छायवयणा सयं सयं गिहं पडिगया।४३।

शब्दार्थ—[तत्थ णंदिवद्धणेण वुत्तं] उन शोकाकुल लोगो में से नंदिवर्द्धन ने कहा– हे वीर ! [अम्हे तं विणा सूणणं वणं विव पिउकाणणं विव भयजणणं भवणं कहं गमिस्सामो] हे वीर ! तुम्हारे विना सुनसान वन के समान और स्मशान के समान भयंकर भवन–राजभवन में हम किस प्रकार जाएँगे ? [हवंति य एत्थ सिलोगा–] इस विषय में श्लोक भी है–[तए विणा वीर ! कहं वयामो] हे वीर। तुम्हारे विना हम कसे जाए ? [गिहे अहूणा सुण्णवणोवमाणे] इस समय राजभवन तो सुनसान वन के समान जान पडता है [गोट्ठीसुहं केण सहायरामो] हे वीर ! हम किसके साथ गोष्ठी (वार्तालाप) के सुख का अनुभव करेंगे ? [भोक्खामहे केण सहाऽहबंधू] हे बन्धो ! हम

किस के साथ बैठकर भोजन करेंगे [सव्वेसु कज्जेसु य वीर--वीरे त्त्चामंतणादंसणओ तवज्ज] हे आर्य ! सभी कार्यों में 'हे वीर, हे वीर इस प्रकार तुम्हें संबोधित करके, तुम्हारे दर्शन करके [पेमप्पकिट्ठीइ भजीअ मोयं] तुम्हारे प्रेमकी प्रकृष्टता से आनन्द भोगते थे [णिरासया कं अह आसयामो] किन्तु आज हम निराधार हो गये । अब किसका आश्रय लेंगे [अइप्पियं बंधव ! दंसणं ते सुहं जणं भावि कयऽम्ह अक्खिणं] हे बन्धु ! मेरे नेत्रों के लिए सुखद अंजन के समान तथा अत्यन्त प्रिय तुम्हारा दर्शन अब कब होगा ? [नीराग चित्तोऽवि कयाह अम्हे सरिस्ससी सव्वगुणाभिरामा] हे सर्वगुणाभिराम ! तुम विरक्त चित्त होकर भी कब हमें स्मरण करोगे ?

[इच्चेवं भुज्जो भुज्जो विलपंताणं] इस तरह बार बार विलाप करते हुए नन्दिवर्धन तथा अन्य लोगों के नेत्रों से [तेसिं सव्वेसिं अच्छओ मोत्तियमालव्वफारा अस्सुहारा निस्संदिउमुवाकमीअ] उन सभी जनों के नेत्रों से मोतियों की माला के

समान बडी बडी आंसुओं की धारा निकलने लगी [तहय अच्छिसुत्तियाओ विंदु मुत्ताहलाणि परिओ विकिरिउमारभीअ] अतएव आंखों रूपी सीपों से अश्रुरूपी मोती इधर-उधर बिखरने लगे। [एवं सोगमयं समयं निरिक्खिय दिनमणीवि मंदधिणी जाओ] इस प्रकार का शोक अवसर जानकर मानो सूर्य भी मन्दकिरण अस्तोन्मुख हो गया [एगो अवरस्स दुक्खं परोप्परं दट्ठुं दूयइत्ति विभावियविव सहस्स किरणो अत्थमिओ] एक दूसरे के दुःख को देखकर परस्पर दुःखी होता है, मानो यही सोचकर सूर्य अस्ताचलकी ओर चला गया। [सूरे अत्थमिए धराय अंधयारा आच्छायणं धरीअ] सूर्य के अस्त हो जाने पर पृथ्वी ने अंधकार रूपी काले वस्त्र को धारण कर लिया [जणा य सोगाउरा विच्छायावयणा सयं सयं गिहं पडिगया] सभी लोग शोक से व्याकुल एवं मुरझाये चेहरे से अपने अपने घर पर चले गये ॥४३॥

अर्थ—शोकाकुल लोगों में से नन्दिवर्धन ने इस प्रकार विलाप के वचनों का उच्चा

प्रभुविरहे नन्दिवर्धनादीनां विलाप वर्णनम्

रण किया 'हे वीर ! तुम्हारे विना सुनसान वन के समान भयंकर भवन राजभवन में हम किस प्रकार जाएंगे। इस विषय में श्लोक भी है—'तए विना' इत्यादि। हे वीर तुम्हारे बिना अब शून्य वन के सदृश भवन में हम किस प्रकार जाएं? हे बन्धु इस समय हम वह गोष्ठी का सुख तत्व विचारण से होने वाला आनन्द किस के साथ अनुभव करेंगे और किस के साथ भोजन करेंगे ? ॥१॥

हे आर्य सभी कामों में 'हे वीर' इस प्रकार तुम्हें संबोधित करके और तुम्हारे दर्शन करके तथा तुम्हारे प्रेम की प्रचुरता से हम आनन्द लाभ किया करते थे। अब तुम्हारे वियोग में हम निराधार हो गये हैं। हाय किसका आधार लें ? २॥

हे बन्धु हमारे नेत्रों के लिए सुखजनक अंजन के समान तथा अत्यन्त प्रिय तुम्हारा दर्शन फिर कब होगा ? हे समस्त गुणों से सुन्दर ! राग रहित चित्तवाले होकर भी तुम हमें कब स्मरण करोगे ? ॥३॥

इस तरह बार–बार दुःखमय वचन उच्चारण करने वाले नन्दिवर्धन आदि सभीजनों के नेत्रों से मोतियों की माला के समान महती आसुओं की धारा निकलने लगी। अत एव आंखों रूपी सीपों से अश्रु रूपी मोती इधर उधर विखरने लगे। इस प्रकार का शोक अवसर जानकर मानों सूर्य भी मन्द किरण एवं अस्तोन्मुख हो गया। एक दूसरे के दुःख को देखकर परस्पर दुःखी होता है मानो यही सोचकर सूर्य अस्ताचल की ओर चला गया सूर्य के अस्त हो जाने पर पृथ्वी ने अंधकार रूपी काले वस्त्र को धारण कर लिया, अर्थात् अंधकार से ढक गई। सभी लोग शोक से आकुल थे अतएव सबके चहरे फीके पड गये थे। वे अपने–अपने स्थान पर चले गए ॥४३॥

मूलम्–जया णं समणे भगवं महावीरे खत्तियकुंडग्गामाओ निग्गच्छित्ता कुम्मारगामस्स समीवं समणुपत्ते, तया णं सूरो अत्थमिओ, सूरे अत्थमिए साहूणं विहरणं अकप्पाणिज्जंति कट्टु भयवं गामासण्णतरुयले

बारसपोरिसिए काउसग्गे ठिए। भयवं य जाव जीवं परीसहसहनसीले आसि, अओ इंददिण्णे देवदूसेण वि वत्थेण भगवया हेमंते वि सरीरं नो पिहियं। इंददिण्णं देवदूसं वत्थं जं भगवया धरियं तं 'सव्वतित्थयराणं इमो कप्पो' त्ति कट्टु धरियं। अभिणिक्खमणसमए जं भगवओ सरीरं सुगंधिदव्वेण चंदणेण य चच्चियं आसि, तग्गंधलुद्धा मुद्धा सुगंधप्पिया भमरपिवीलियाइ जंतुणो साहियं चाउम्मासं जाव पहुसरीरं ओलग्गिय ओलग्गिय मंसं रुहिरं च चोसीअ, परं भगवया णो ते णिवारिया। तओ पच्छा बीए दिवसे कोऽवि गोवो बलिवद्दे पहुसमीवे ठविय पहुं कहीअ-हे भिक्खू! इमे मे बलिवद्दा रक्खणिज्जा, न कहिंपि गच्छिज्जं' त्ति कहिय सो गोवो भोयणपाणट्ठं णियगिहे गओ। भुत्तपीओ सो पहुपासे आगमिय बलिवद्दे अदट्ठूणं तेसिं गवेसणाए अहोरत्तं वणं

वणं भमीअ। एवं गवेसणाए जया नो लद्धा बलिवद्दा तया सो पहुसमीवे आगच्छइ। तत्थ चरियतणे तत्थ ठिए बलिवद्दे पासइ। तए णं से गोवे आसुरत्ते मिसमिसेमाणे पहुमेवं कहीअ—

'रे भिक्खु! किं मम बलिवद्दे संगोविय मए सह हासं करेसि? भुंजाहि एयस्स फलं' ति कहिय जाव भयवं तज्जेउं तालेउं च समुज्जयइ ताव दिवि सक्कस्स आसणं चलइ। तए णं से सक्के देविंदे देवराया ओहिणा भगवओ उवसग्गं आभोगिय मणुस्सलोए हव्व मागमिअ तं गोवं एवं वयासी—'हं भो! गोवा! अपत्थियपत्थया! दुरंतपंतलक्खणा हीणपुण्ण! चाउद्दसिया! सिरिहिरिधिइकित्तिपरिवज्जिया! अधम्मकामया! अपुण्णकामया! नरयनिगोयकामया! अधम्मकंखिया! अधम्मपिवासिया! अपुण्णकंखिया! अपुण्णपिवासिया! नरयनिगोय-

कंखिया ! नरय निगोयपिवासिया ! किमट्ठं एरिसं पावकम्मं करिसि ? जं तिलोयनाहं तिलोय-वंदियं तिलोयसुहयरं तिलोयहियकरं भगवं उवसग्गेसि' त्ति कट्टु तं तज्जिउं तालिउं हणिउं उवाकमीअ। तं दट्ठुं करुणावरुणालए भगवं सक्कं देविंदं देवरायं पडिसेहिअ। तए णं से सक्के देविंदे देवराया पहुं एवं वयासी—'पहू ! देवाणुप्पियाणं अग्गेवि बहवे दुस्सहा परीसहोवसग्गा आवडिस्संति, अओऽहं तं निवारिउं तुम्हाणं अंतिए चिट्ठामि। सक्किंदस्स तं वयणं सोच्चा भगवया कहियं—'सक्का ! जे य अईया, जे य अणागया, जे य पडुप्पण्णा तित्थयरा ते सव्वेवि सएण उट्ठाणकम्मबलवीरिय-पुरिसक्कार-परक्कमेणं कम्माइं खवेंति असहेज्जा चेव विहरंति, नो णं देवासुरणागजक्खरक्खसाकिन्नरकिंपुरिसगरुल-गंधव्वमहोरगाईणं साहिज्जं इच्छंति' त्ति णो णं सक्का ! ममं कस्सावि साहेज्ज-

पओयणं। एवं सोच्चा सक्के देविंदे देवराया नियमवराहं खमाविय वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए ॥४४॥

शब्दार्थ—[जयाणं समणे भगवं महावीरे खत्तियकुंडग्गामाओ निग्गच्छित्ता] जब श्रमण भगवान महावीर क्षत्रियकुण्डग्राम से विहारकर [कुम्मारगामस्स समीवं समणुपत्ते] कुमार ग्राम के समीप पहुँचे [तया णं सूरो अत्थमिओ] तब सूर्य अस्त हो गया [सूरे अत्थमिए साहूणं विहरणं अकप्पणिज्जंति कट्टु भगवं गामासण्णतरुयले काउसग्गे ठिए] सूर्य के अस्त हो जाने पर साधुओं को विहार करना नहीं कल्पता, यह सोचकर भगवान् ग्राम के समीप में एक वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग करके स्थित हो गये।

[भगवं य जावजीवं परीसहसहनसीले आसी] भगवान् जीवनपर्यन्तशीत उष्ण आदि परीषहों को सहन करने वाले थे [अओ इंददिण्णेण देवदूसेण वि वत्थेण भगवया

हेमंते वि सरीरं नो पिहियं] अतएव उन्होंने इन्द्र के द्वारा दिये हुए देवदूष्य वस्त्र से हेमंत ऋतु में भी शरीर नहीं ढका [इंददिण्णं देवदूसं वत्थं जं भगवया धरियं तं सव्वतित्थयराणं इमो कप्पो, त्ति कट्टु धरियं] इन्द्र का दिया हुआ देवदूष्य वस्त्र जो भगवान ने धारण किया सो समस्त तीर्थंकरों का यह कल्प है, ऐसा समझकर ही धारण किया था [अभिणिक्खमणसमए जं भगवओ सरीरं सुगंधिदव्वेण चंदणेण य चच्चियं आसी] दीक्षा के समय भगवान का शरीर सुगंधी द्रव्यों से तथा चंदन से चर्चित था [तग्गंधलुद्धा मुद्धा सुगंधप्पिया भमरपिवीलियाइ जंतुणो] अतः उस सुगंध के लोभी मुग्ध एवं सुगंध प्रिय भ्रमर आदि जन्तुओंने [साहियं चाउम्मासं जाव पहु-सरीरं ओलग्गिय ओलग्गिय मंसं रुहिरं च चोसीअ] चारमास से भी कुछ अधिक समय तक प्रभु के शरीर में चिपट चिपट कर उनका मांस और रुधिर चूसा, [परं भगवया णो ते णिवारिया] परन्तु भगवान् ने उनका निवारण नहीं किया

[तओ पच्छा कोऽवि गोवो बलिवद्दे पहुसमीवे ठविय पहुं कहीअ] तत्पश्चात् एक गुवाल अपने बैलों को प्रभु के समीप खडा करके बोला—हे भिक्खू ! [इमे मे बलिवद्दा रक्खणिज्जा न कहिंपि गच्छिज्ज त्ति] हे भिक्षु ! मेरे इन बैलों की रखवाली करना, ये कहीं चले न जायें [कहिय सो गोवो भोयणपाणट्ठं णिय गिहे गओ] इस प्रकार कहकर वह गुवाल भोजन पानी के निमित्त अपने घर चला गया [भुत्तपीओ सो पहुपासे आगमिय बलिवद्दे अदट्ठूणं तेसिं गवेसणाए अहोरत्तं वणं वणं भमीअ] खा पीकर वह प्रभु के पास आया। बैले दिखाई न दिये । तब वह दिन-भर और रातभर सारे वन में बैलों की खोज करता रहा [एवं गवेसणाए जया नो लद्धा बलिवद्दा तया सो पहुसमीवे आगच्छइ] इस प्रकार खोज करने पर भी जब बैल नहीं मिले तो वह वापस भगवान् के पास लौट आया [तत्थ चरियतणे तत्थ ठिए बलिवद्दे पासइ] उसने देखा बैल घास खाकर तृप्त हुए वहां बैठे हैं । [तएणं से गोवे आसुरत्ते

मिस मिसेमाणे पहु मेवं कहीअ–] तब वह गुवाल बहुत क्रुद्ध हुआ और मिसमिसाता प्रभु से इस प्रकार बोला—

["रे भिक्खू ! किं मम बलिवद्दे संगोविय मए सह हासं करेसि ?] अरे भिक्षु ! मेरे बैलों को छिपाकर क्या मेरे साथ उपहास करता है ? [भुंजाहि एयस्स फलं"] ले इसी हांसी का फल भोग" [त्ति कहिय जाव भयवं तज्जेउं च समुज्जयइ] इस प्रकार कह कर वह ज्यों ही भगवान् की तर्जना और ताडना करने को उद्यत हुआ [ताव दिवि सक्कस्स आसणं चलइ] यों ही उसी समय शक्र का आसन चलायमान हुआ [तएणं से सक्के देविंदे देवराया ओहिणा भगवओ उवसग्गं आभोगिय मणुस्सलोए हव्वमागमिय तं गोवं एवं वयासी–] तब शक्र देवेन्द्र देवराज अवधिज्ञान से भगवान् पर उपसर्ग आया जान कर तत्काल मनुष्यलोक में आये और ग्वाले से बोले–[हं भो ! गोवा ! अपत्थियपत्थया !] अरे गोप अप्रार्थित का प्रार्थित [दुरंतपंतलक्खणा] कुलक्षणी

[हीण पुण्ण] पुण्य हीन [चाउद्दसिया] काली चौदस का जन्मा [सिरिहिरिधिइकित्ति-परिवज्जिया] श्री ह्री धृति और कीर्ति से परिवर्जित [अधम्मकामया] अधर्मका इच्छुक [अपुण्णकामया] पाप का अभिलाषी [नरयनिगोयकामया] नरक और निगोद का इच्छुक [अधम्मकंखिया] अधर्मकांक्षी [अधम्मपिवासिया] अधर्म का प्यासा [अपुण्णकंखिया ?] अपुण्य का कांक्षा करने वाला [नरयनिगोयकंखिया] नरक निगोद की कांक्षा करनेवाला [नरय निगोयपिवासिया !] नरक निगोद का प्यासा [किमट्ठं एरिसं पावकम्मं करिसि ?] तूं किस लिये यह पाप कर्म कर रहा है ? [जं तिलोयनाहं] जो त्रिलोक के नाथ [तिलोयवंदियं] त्रिलोक वन्दित [तिलोयसुहयरं] त्रिलोक के सुखकर [तिलोयहियकरं] तीन लोक का हित करनेवाले [भगवं उवसग्गेसि'–त्ति तं तज्जिउं तालिउं हणिउं उवाकमीअ] भगवान् को उपसर्ग करता है इस प्रकार कह कर शक्र उसे तर्जन करने ताडन करने और मारने को उद्यत हुए। [तं दट्ठुं करुणावरुणालए भगवं

सक्कं देविंद देवरायं पडिसेहीअ] यह देखकर दया के सागर भगवान ने शक्र देवेन्द्र देवराज को रोक दिया [तए णं से सक्के देविंदे देवराया पहुं एवं वयासी] तब वह शक्र देवेन्द्र देवराज भगवान् से इस प्रकार बोले–[पहू ! देवाणुप्पियाणं अग्गे वि बहवे दुस्सहा परिसहोवसग्गा आवडिस्संति] भगवन् ! आप देवानुप्रिय को आगे भी बहुत से दुस्सह परीषह और उपसर्ग आएंगे [अओऽहं ते निवारिउं तुम्हाणं अंतिए चिट्ठामि] अतः उसका निवारण करने के लिये मैं आप के पास रहता हूँ। [सक्किंदस्स तं वयणं सोच्चा भगवया कहियं] शक्रेन्द्र का कथन सुनकर भगवान् बोले [सक्का ! जे य अईया ! जे य अणागया, जे य पडुप्पण्णा तित्थयरा ते सव्वेवि सएण उट्ठाण–कम्म–बल वीरिय पुरिसक्कारपरक्कमेणं कम्माइं खवेंति असहेज्जा चेव विहरंति] हे शक्र! जो तीर्थंकर अतीत काल में हुए है, भविष्यत् में होंगे और वर्तमान में है वे सभी अपने उत्थान कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार और पराक्रम से कर्मों का क्षय करते हैं असहाय ही विचरते

हैं। [नो णं देवा सुर, नाग, जक्ख, रक्खस, किंनर, किंपुरिस, गरुल, गंधव्वमहोरगाइणं साहिज्जं इच्छंति] देवों, असुरों, नागों, यक्षों, राक्षसों, किन्नरो, किंपुरुषों गरुडों, गन्धर्वों और महोरगों आदि देवों की सहायता की इच्छा नहीं करते [त्ति नो णं सक्का! ममं कस्सवि साहेज्जपओयणं] हे शक्र! मुझे किसी की सहायता का प्रयोजन नहीं है। [एवं सोच्चा सक्के देविंदे देवराया निय अवराहं खमाविय वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए] इस प्रकार सुनकर शक्र देवेन्द्र देवराज ने अपना अपराध खमाया और वन्दना नमस्कार कर जिस दिशा से प्रकट हुआ था उसी दिशा में चला गया ॥४४॥

भावार्थ—जिस समय श्रमण भगवान् महावीर क्षत्रिय कुण्डग्राम से विहार कर कुर्मार ग्राम के समीप गये, उस समय सूर्य अस्त हो गया, सूर्य अस्त हो जाने पर साधुओं को विहार करना नहीं कल्पता, ऐसा नियम है, ऐसा जानकर भगवान् महावीर

स्वामी, कुर्मार ग्राम के समीप एक वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग करके स्थित हो गये।

भगवान् जीवनपर्यन्त शीत, उष्ण आदि परीषहों को सहन करने वाले थे। उन्होंने इन्द्र के द्वारा दिये हुए देवदूष्य वस्त्र से हेमन्त ऋतु में भी, शरीर रक्षा के हेतु से शरीर को आच्छादित नहीं किया।

कहा भी है—

आयावयंति गिम्हेसु, हेमंतेसु अवाउडा।
वासासु पडिसंलीणा, संजया सुसमाहिया॥ दशवै. अ. ३. गा. १२

इन्द्र द्वारा दिया गया देवदूष्यं वस्त्र जो भगवान् ने ग्रहण किया सो सभी तीर्थकरों का, इन्द्र के द्वारा अर्पित किये गये वस्त्र को ग्रहण करना आचार है ऐसा जानकर ग्रहण किया दीक्षा के अवसर पर भगवान् के शरीर का सुगन्धित द्रव्यों से कस्तूरी—कुंकुम आदि

से, तथा श्रीखण्ड चन्दन से लेपन किया गया था, उनकी सुगन्ध में आसक्त, अतएव मोह को प्राप्त एवं सुगंध के अनुरागी भ्रमर आदि जन्तु, चार मास से भी कुछ अधिक समय तक प्रभु के शरीर में बार-बार चिपटकर उनके मांस और रुधिर को चूसते थे, मगर भगवान् ने मांस और रुधिर चूसने वाले उन जन्तुओं को हटाया तक नहीं। कारण की भगवान् कैसे होते हैं इसके लिये शास्त्रकारोंने कहा है-

परीसह रिउदंता, धूयमोहा जिइंदिया।
सव्वदुक्खपहीणट्ठा, पक्कमंति महेसिणो ॥ दशवै अ. ३ गा. १३

तत्पश्चात् कोई गुवाल बैलों को प्रभु के पास खडा कर के प्रभु से बोला- हे भिक्षु! मेरे इन बैलों की देखरेख करना जिससे कहीं चले न जाएँ। इस प्रकार कहकर वह गुवाल भोजन पानी के लिए अपने घर चला गया। खाने-पीने के पश्चात् वह अपने घर से भगवान् के निकट आया तो उसे वहां बैल न दिखे। तब

वह बैलों की खोज में दिनभर और रात–भर निकट वर्ती प्रत्येक वन में भटका। इस प्रकार खोज करने पर भी बैल न मिले तो वह गुवाल लौटकर भगवान् के पास आया। आकर उसने देखा कि बैल घास खाकर तृप्त हुए वहां बैठे हैं।

बैलों को देखने के अनन्तर गुवाल एकदम क्रोध से लाल हो गया। क्रोध से जलता हुआ ऊपर नीचे पैर पटकता हुआ वह श्री वीर प्रभु से बोला–'रे भिक्षु! मेरे बैलों को छिपाकर मेरे साथ हांसी करता है? ले, इस हांसी का फल भोग, इस प्रकार कहकर ज्यों ही वह भगवान् की तर्जना (तर्जनी अंगुली उठाकर भर्त्सना) करने और ताडना करने (थप्पड, आदि से मारने) को उद्यत होता है, त्यों ही स्वर्ग लोक में शक्र का आसन कांपने लगा, आसन कांपने पर शक्र देवेन्द्र देवराज ने अवधिज्ञान से भगवान् वीर स्वामी पर आये हुए उपसर्ग को जानकर, और उसी समय मनुष्य लोक में आकर उस गुवाल से कहा–रे गुवाल! अरे जिसकी कोई इच्छा नहीं करता उसकी अर्थात्

मृत्यु की इच्छा करने वाले ! अरे दुष्ट फ़लदायक और अशोभन लक्षणों वाले । (जिनसे शुभ–अशुभ समझा जाय वह लक्षण सामुद्रिक शास्त्र में प्रसिद्ध हथेली आदि की रेखाएँ तिल, मषा आदि अथवा चेष्टाएं लक्षण कहलाती है) अरे हीन पुण्य वाले कृष्ण चतुर्दशी को जन्म लेने वाले । अर्थात् पापी ! अरे श्री (शोभा या वैभव) ह्री (लज्जा) धृति (धैर्य) कीर्ति (ख्याति) से सर्वथा शून्य ! अरे अधर्म के कामी ! अरे अपुण्य और नरक–निगोद के कामी ! अरे । अधर्म की कांक्षा करने वाले । अधर्म के प्यासे । अरे अपुण्य की कांक्षा करने वाले । अरे अपुण्य के प्यासे ।, अरे नरक निगोद की आकांक्षा करने वाले अरे नरक–निगोद के प्यासे । किस प्रयोजन से तूं ऐसा पाप कर्म कर रहा है ? जो त्रिलोक के नाथ, त्रिलोकवन्दित, त्रिलोक के प्रमोदकारी, त्रिलोक के कल्याणकारी भगवान् महावीर स्वामी को उपसर्ग करता है ? इस प्रकार कहकर इन्द्र, गुवाल को तर्जन करने ताडन करने और मारने को उद्यत हुए ।

यह देखकर दया के सागर भगवान् श्री वीर स्वामी ने शक्र देवेन्द्र देवराज को रोक दिया। तब वह शक्र देवेन्द्र देवराज वीर भगवान् से इस प्रकार वचन बोले— स्वामिन् ! देवानुप्रिय को अर्थात् आप को आगे भी अनेक कष्ट परीषह और उपसर्ग (परीषह शीत, उष्ण आदि, उपसर्ग देवादिकृत कष्ट) आएंगे। मैं उनका प्रतीकार करने के लिए देवानुप्रिय के पास रहता हूं। तब शक्रेन्द्र के वचन सुनकर भगवान् महावीर स्वामी ने कहा—हे शक्र ! जो अतीत कालीन, भविष्यत् कालीन और वर्तमान कालीन तीर्थंकर हैं वे सभी अपने ही उत्थान (चेष्टा—विशेष) कर्म (चलना आदि क्रिया) वल (शरीर की शक्ति) वीर्य (जीव संबंधी सामर्थ्य) पुरुषकार (पुरुषार्थ), और पराक्रम (कार्य में सफल हो जाने वाला पुरुषार्थ) से कर्मों का क्षय करते हैं। दूसरे की सहायता के विना ही विचरते हैं देवों असुरों नागों, यक्षों राक्षसों, किन्नरों, कि पुरुषों गरुडों गन्धर्वों और महारोगों की अपेक्षा नहीं करते। इस कारण हे शक्र। मुझे किसी की सहायता से

प्रयोजन नहीं है। इस प्रकार के वचन सुनकर शक्र देवेन्द्र देवराज ने अपना अपराध खमाकर वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना और नमस्कार करके जिस दिशा से प्रादुर्भूत हुए थे, उसी दिशा में चले गये ॥सू० ४४॥

मूलम्—तए णं समणे भगवं महावीरे कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए फुल्लुप्पलकमलकोमलुम्मीलियम्मि अह पंडुरे पहाए रत्तासोगप्पगासे किंसुय-सुयमुह गुंजद्धरागसरिसे, कमलागर-संडबोहए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते—सदोरय मुहपत्तिं पडिलेहित्ता, सदोरय मुहपत्तिं मुहेबंधीअ पडिलेहिज्ज गोच्छगं, गोच्छगलइयंगुलिओ, वत्थाई पडिलेहए रयहरणं पडिलेहित्ता पात्तगं पडिलेहए। कहियमवि-

पंच्चयत्थं च लोगस्स नाणविहविगप्पणं। जत्तत्थं गहणत्थं च, लोगे लिंग-

पओयणं कुम्मारगामाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहं सुहेणं विहरमाणे जेणेव कोल्लागसन्निवेसे तेणेव उवागच्छइ। तए णं से समणे भगवं महावीरे छट्ठक्खमणपारणे भिक्खायरियट्ठाए बहुलस्स माहणस्स गिहं अणुपविट्ठे। तेण बहुलेण माहणेण भत्तिबहुमाणेण खीरं दिण्णं, तत्थ णं तस्स बहुलस्स तेणं दव्वसुद्धेणं दायगसुद्धेणं पडिग्गहियसुद्धेणं तिविहेणं तिकरणसुद्धेणं भगवम्मि पडिलाभिए समाणे गिहंसि य इमाइं पंच-दिव्वाइं पाउब्भूयाइं तं जहा—वसुहारा वुट्ठा दसद्धवण्णे कुसुमे निवाइए, चेलुक्खेवे कए, आहयाओ देव दुंदुहीओ, अंतरावि य णं आगासंसि अहोदाणं अहोदाणं त्ति घुट्ठे य। तए णं से समणे भगवं महावीरे कोल्लागाओ संनिवेसाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जणवयविहारं विहरइ ॥४५॥

षष्ठक्षपण-पारणार्थं बहुल-ब्राह्मणगृहे-गमनादि वर्णनम्

शब्दार्थ—[तएणं] तत्पश्चात् [समणे भगवं महावीरे] श्रमण भगवान् महावीर [कल्लं] दूसरे दिन [पाउप्पभायाए रयणीए] जिस में प्रभात प्रकट हो चुका है, ऐसी रजनी के होने पर [फुल्लुप्पलकमलकोमलुम्मीलियंमि अहपंडुरे पहाए] तथा विकसित कमल पत्रों एवं चित्र मृग के नयनों का उन्मीलन जिस में हो चुका है, ऐसे शुभ्र आभायुक्त प्रातः काल के होने पर, तथा [रत्तासोगप्पगास किंसुय सुयमुह गुंजद्धराग सरिसे कमलागरसंडबोहए] रक्त अशोक के प्रकाश तुल्य पलाश पुष्प के समान, शुक के मुख के समान और गुंजा के आधे भाग की ललाई के समान, कमल वनों को विकसित करनेवाला प्रभात होने पर [उट्ठियम्मि सूरे] आकाश में सूर्य का उदय होने पर [सहस्स रस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते] सहस्र किरणवाला दिनकर जब अपने तेजसे आकाश में चमकने लगा तब [सदोरयमुहपत्तिं पडिलेहित्ता] दोरा के साथ मुहपत्ति का प्रतिलेखन कर [सदोरयमुहपत्तिं मुहेबंधिअ] सदोरक मुखवस्त्रिका मुख पर बांध कर के

षष्ठक्षपण-पारणार्थं बहुल-ब्राह्मणगृहे गमनादि वर्णनम्

[पडिलेहिज्ज गोच्छगं] गोच्छा का प्रतिलेखन किया [गोच्छगलइयंगुलिओ] गोच्छक को अंगुलियों से ग्रहण करके [वत्थाई पडिलेहए] वस्त्र को ग्रहण किया [रयहरणं पडिलेहित्ता] रजोहरण का प्रतिलेखन करके [पात्तगं पडिलेहए] पात्रा का प्रतिलेखन किया। [कहियमवि] कहा भी है—

[पच्चत्थं च लोगस्स] लोगों में प्रतीति—विश्वास के लिये [नाणाविहविगप्पणं] वर्षाकल्प आदि समय में संयम पालने के लिये [जत्तत्थं गहणत्थं च] केवलज्ञानादि ग्रहण के लिये एवं भव्य जीवों को श्रुतज्ञान का लाभ देने के लिये [लोगे लिंगपओयणं] लोक में साधु-चिन्ह—धर्मचिन्ह की आवश्यकता है [तएणं समणे भगवं महावीरे कुम्मारगामाओ निग्गच्छइ] उसके बाद श्रमण भगवान् महावीर कुमारग्राम से निकलते हैं [निग्गच्छित्ता पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे] निकलकर पूर्ववर्ती तीर्थंकरों की परम्परा के अनुसार विचरण करते हुए तथा एक ग्राम से दूसरे ग्राम [सुहं सुहेणं विहरमाणेणं]

सुखपूर्वक विहार करते हुए [जेणेव कोल्लागसंनिवेसे तेणेव उवागच्छइ] जहां कोल्लागसंनिवेश था वहां पधारे [तए णं से समणे भगवं महावीरे छट्ठक्खमणपारणे भिक्खायरियट्ठाए बहुलस्स माहणस्स गिहं अणुप्पविट्ठे] वहां श्रमण भगवान् महावीर ने षष्ठ भक्त [बेले] के पारणे के दिन भिक्षाचर्या के लिए भ्रमण करते हुए बहुल नामक ब्राह्मण के घर में प्रवेश किया [तेण बहुलेण माहणेण भत्तिबहुमाणेण पडिग्गाहे खीरं दिण्णं] बहुल ब्राह्मण ने भक्ति और अत्यन्तसत्कार के साथ भगवान् के पात्र में खीर का दान दिया [तत्थ णं तस्स बहुलस्स तेणं दव्वसुद्धेणं दायगसुद्धेणं पडिग्गाहगसुद्धेणं तिविहेणं तिकरणसुद्धेणं] वहां उस ब्राह्मण के घर में द्रव्यशुद्ध, दायकशुद्ध, एवं प्रतिग्राहक शुद्ध इस प्रकार तीन करण शुद्धदान से [भगवंमि पडिलाभिए समाणे गिहंसि य इमाइं पंच दिव्वाइं पाउब्भूयाइं तं जहा] भगवान को बहराने पर यह पांच दिव्य प्रकट हुए [वसुहारा वुट्ठा] वसुधारा—स्वर्ण की वृष्टि हुई [दसद्धवण्णे कुसुमे निवाइए] पांच

पष्ठक्षपण-
पारणार्थं
बहुल-
ब्राह्मणगृहे-
गमनादि
वर्णनम्

वर्णों के फूलों की वर्षा हुइ [चेलुक्खेवे कए] वस्त्रों की वर्षा हुई [आहयाओ दुंदुहीओ] आकाश में दुंदुभि बजी और [अंतरा वि य णं आगासंसि अहोदाणं अहोदाणं ति घुट्ठे] आकाश में 'अहोदानं, अहोदानं,' इस प्रकार का घोष हुआ। [तए णं से समणे भगवं महावीरे कोल्लागाओ संनिवेसाओ पडिनिक्खमइ] उसके बाद श्रमण भगवान् महावीर कोल्लाग संनिवेश से निकले [पडिनिक्खमित्ता जणवयविहारं विहरइ] और निकल कर जनपद में विचरने लगे ॥४५॥

भावार्थ—शक्र के चले जाने के पश्चात् श्रमण भगवान् महावीरने दूसरे दिन में प्रभात प्रकट हो चुका है, ऐसी रात्री के होने पर तथा कमलपत्रों के विकास एवं चित्रमृग के नयनों का जिस में उन्मीलन हो चुका है ऐसे शुभ्र आभायुक्त प्रातः काल होने पर तथा रक्त अशोक के प्रकाश तुल्य पलाश पुष्प के समान शुक के मुख समान एवं गुंजा के अर्ध भाग की ललई के समान कमलवनों को विकसित करनेवाला

प्रभात होने पर आकाश में सूर्य का उदय होने पर सहस्त्र किरणवाला सूर्य जब अपने तेजसे आकाश में चमकने लगा, तब सदोरक मुहपत्ति का प्रतिलेखन किया, एवं सदोरक मुहपत्ति को मुख पर बांध करके गोछे का प्रतिलेखन किया गोछे को अंगुलियों से ग्रहण करके वस्त्र को धारण किया रजोहरण का प्रतिलेखन करके पात्रा का प्रतिलेखन करके गोछे से पात्रा को पुंज्या इस प्रकार साधुसमाचारी किया कहा भी है–

[पच्चत्थं च लोगस्स] इत्यादि कहने का भाव यह है की लोगों में प्रतीति–विश्वास के लिये तथा वर्षाकल्प आदि समय में संयम पालने के लिये केवलज्ञानादिको ग्रहण करने के लिये और भव्य जीवों को श्रुतज्ञान का लाभ देने के लिये साधुचिन्ह धारण करना आवश्यक है इस आगमोक्त नियमानुसार साधु समाचारी करके कुमारग्राम से विहार किया और पूर्ववर्ती तीर्थंकरों की परम्परा से विचरते हुए, एक गांव से दूसरे गांव सुखपूर्वक विहार करते हुए जहां कोल्लाग सन्निवेश था वहां पधारे। कोल्लाग

सन्निवेश में श्रमण भगवान् महावीर ने षष्ठभक्त (बेले) के पारणे के दिन भिक्षाचर्या के लिए भ्रमण करते हुए बहुलनामक ब्राह्मण के घर में प्रवेश किया। बहुल ब्राह्मण ने भक्ति और अत्यंत सत्कार के साथ भगवान् को खीर का दान दिया। दान ग्रहण करने के अनन्तर अशनादि रूप द्रव्य से शुद्ध द्रव्य और भाव से शुद्ध, दाता के कारण तथा अतिचार रहित तप और संयम से सम्पन्न ग्राहक (पात्र) के शुद्ध होने से, इस प्रकार द्रव्य, दाता, और पात्र, तीनों शुद्ध होने से तथा दाता के मन-वचन-काय रूप तीनों करण शुद्ध होने से भगवान् वीर को बहराने पर उस बहुल ब्राह्मण के घर में आगे कही जानेवाली पांच देवकृत वस्तुएँ प्रगट हुई। वे इस प्रकार हैं-(१) देवों ने स्वर्ण की वृष्टि की। (२) पंचवरण के कुसुम वरसाये। (३) वस्त्रों की वर्षा की। (४) दुंदुभियां बजाई। (५) आकाश में 'अहोदान, अहोदान' का उच्चस्वर से नाद किया। तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर कोल्लाग सन्निवेश से निकले और निकलकर जनपद-विहार विचरने लगे ॥४५॥

षष्ठक्षपण-
पारणार्थं
बहुल-
ब्राह्मणगृहे-
गमनादि
वर्णनम्

मूलम्—तए णं से विहरमाणे भगवं पढमंमि चाउमासम्मि अत्थियं गामं समणुपत्ते। तत्थ णं मूलपाणिजक्खस्स जक्खाययणे राओ काउसग्गे ठिए। दुल्लक्खे सो जक्खो सयपगडिं अणुसरंतो भगवं उवसग्गे इतत्थ पुव्वं सो दंसमसगाइं समुप्पाइय पहुं तेहिं दंसीअ। तेण उवसग्गेण अक्खुद्धं सज्झाणलुद्धं विलोइय विच्छिए उप्पाइय तेहिं दंसीअ। तेण वि अवियलं अविकंपियं पासिय विउव्विएण महाविसेण महासीविसेण भगवओ सरीरम्मि दंसीअ तेण वि वायजाएण अयलमिव अवियलं दट्ठूणं तेण वि रिच्छा विउव्विया। ते य पखरणखरधाएहिं उवद्दवीअ। तओ वि अणुव्विग्गं सयज्झाणलग्गं दट्ठूणं विउव्विएहिं घुरुघुरायमाणेहिं सुलग्गमुहखुरेहिं सुयरेहिं फालीअ। तेण वि अविसण्णं झाणणिसण्णं विलोइय सज्जो समुप्पाइएणं कुलिसग्गतिक्खदंतग्गेणं

करिणा उवद्दवीअ। तेण वि दढं थिरं अवियलं दट्ठूणं विउव्विएहिं खरतर-नरवरदाढेहिं वग्घेहिं उवद्दवीअ। तेण वि अवियलियं पासिय विउव्विएहिं केस-रीहिं खरयरनहरदाढग्गघाएहिं उवद्दवीअ। तेण पुणो वि थिरं थिरसरीरं विलो-इय पगडीए अईयवियरालेहिं वेयालेहिं उवद्दवीअ। एवं सो दुरासओ जक्खो पुण्णं रत्तिं जाव उवसग्गे कारं-कारं खेयखिण्णो विसण्णो जाओ, परं भयवं अविसण्णे अणाइले अव्वहिए अदीणमाणसे तिविहमणवयकायगुत्ते चेव सव्वे वि उवसग्गे सम्मं सहीअ, खमीअ तितिक्खीय अहियासीअ। तए णं से जक्खे ओहिणा पहुं मनसा वि अविचलियं दढं आभोगिय अगाहं खमासायरं पहुं सयावराहं खमाविय वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता सयं ठाणं गओ। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे तत्थ णं अट्ठाहिं मासद्धखमणेहिं

चाउम्मासं वइक्कमिय अत्थियाओ गामाओ पडिनिक्खमइ। पडिनिक्खमित्ता पवणुव्व अप्पडिहयविहारेणं विहरमाणे सेयंबियं णयरिं पट्ठिए ॥४६॥

शब्दार्थ—[तए णं से विहरमाणे भगवं पढमंमि चाउमासम्मि अत्थियं गामं समणुपत्ते] उसके बाद विहार करते हुए भगवान प्रथम चातुर्मास अस्थिक ग्राम में पधारे [तत्थ णं सूलपाणिजक्खस्स जक्खाययणे राओ काउसग्गे ठिए] वहां शूलपाणि नामक यक्ष के यक्षायतन में रात्रि के समय कायोत्सर्ग में स्थित हुए। [दुल्लक्खे सो जक्खो सयपगडिं अणुसरंतो भगवं उवसग्गे। इतत्थ पुव्वं सो दंसमसगाइं समुप्पाइय पहुं तेहिं दंसीअ] दुष्ट भावनावाले उस यक्षने अपनी प्रकृति का अनुसरण करते हुए भगवान को उपसर्ग किया। पहले तो उसने डांस मच्छर उत्पन्न करके उन से प्रभु को डसवाया। [तेण उवसग्गेण अक्खुद्धं सज्झाणलुद्धं विलोइय विच्छिए उप्पाइय तेहिं दंसीअ] उस उपसर्ग से भी भगवान को अक्षुब्ध और धर्मध्यान में लुब्ध—लीन देखकर बिच्छुओं को

उत्पन्न करके उन से डंसवाया। [तेण वि अवियलं अविकंपियं पासिय विउव्विएण महाविसेण महासीविसेण भगवओ सरीरम्मि दंसीअ] उस उपसर्ग से भी अचल और अकम्पित देखकर विकुर्वणा से उत्पन्न किये हुए अत्यन्त विष वाले महान् सर्प से भगवान के शरीर को डंसवाया। [तेण वि वायजाएण अयलमिव अवियलं दट्ठूणं तेण रिच्छा विउव्विया] जैसे पवन समूह से पर्वत अचल रहता है उसी प्रकार भगवान को सर्पदंश से भी अचल देखकर उसने रीछों के रूप बनाये [ते य पखरण खरधाएहिं उवद्दवीअ] रिछों के रूप में उसने तीखें नाखूनों से भगवान को कष्ट दिया [तओ वि अणुविग्गं सयज्झाणलग्गं दट्ठूणं विउव्वेएहिं घुरुघुरायमाणेहिं सुलग्गमुहखुरेहिं सुयरेहिं फालीय] उस से भी अनुद्विग्न और ध्यान में संलग्न देखकर विकुर्वणाजनित, घुरघुराते हुए, कांटे की नौंक के जैसे तीखे दांतवाले शूकरों से विदारण करवाया [तेण वि अविसण्णं झाणणिसण्णं विलोइय सज्जो समुप्पाइएणं कुलिसग्गतिक्खदंतग्गेणं करिणा उव-

द्दवीअ] उससे भी विषाद को अप्राप्त और ध्यानमग्न भगवान को देखकर शीघ्र ही उत्पन्न किये हुए वज्र की नोंक के समान तीखे दांतों के अग्रभाग वाले हाथी से भगवान को कष्ट दिया [तेण वि दढं थिरं अवियलं दट्ठूणं विउव्विएहिं खरतरनखरदाढेहिं वग्घेहिं उवद्दवीअ] उस से भी भगवान को दृढ स्थिर एवं अविचल देखकर विकुर्वणा से उत्पन्न किये हुए अतिशय तीक्ष्ण नख और दाढोंवाले व्याघ्रों से उपसर्ग करवाया [तेण वि अवियलं पासिय विउव्हिएहिं केसरीहिं खरयरनहरदाढग्गघाएहिं उवद्दवीअ] उस से विचलित न हुए देखकर विकुर्वणा से उत्पन्न किये हुए केसरीसिंहों द्वारा तीक्ष्णतर नखों और दाढों के अग्रभाग से उपसर्ग करवाया। [तेण पुणो वि थिरं थिरसरीरं विलोइय पगडीए अईव वियरालेहिं वेयालेहिं उवद्दवीअ] उस उपसर्ग से भी भगवान को स्थिर चित्त और स्थिरकाय देखा तो स्वभाव से अत्यन्त विकराल वेतालों से उपसर्ग करवाया [एवं सो दुरासओ जक्खो पुण्णं रत्ति

जाव उवसग्गे कारं कारं खेयखिन्नो विसण्णो जाओ] इस प्रकार वह दुराशय यक्ष सारी रात उपसर्ग करवा करवा कर खेदखिन्न और विषादयुक्त हो गया [परं भयवं अविसण्णे अणाइले अव्वहिए अदीणमाणसे तिविह मनवयकायगुत्ते चेव ते सव्वे वि उवसग्गे सम्मं सहीअ, खमीअ, तितिक्खीय, अहियासीअ] परन्तु भगवान ने विषाद रहित कलुषता रहित व्यथा रहित दीनता रहित तथा मनवचन काया से गुप्त जितेन्द्रिय रहकर ही उन सब उपसर्गों को सम्यग् प्रकार से सहन किया बिना क्रोध के सहन किया अदीन भाव से सहन किया और निश्चलता के साथ सहन किया [तए णं से जक्खे ओहिणा पहुं मणसा वि अविचलियं दढं आभोगिय अगाहं खमासायरं पहुं सयावराहं खमाविय वंदइ नमंसइ] तब यक्ष ने अवधिज्ञान से प्रभु को मन से भी चलित न हुआ तथा दृढ जानकर अथाग क्षमा के सागर प्रभु से अपने अपराध के लिए क्षमा मांग कर वन्दन नमस्कार किया [वंदित्ता नमंसित्ता सयं ठाणं गओ] वन्दना नमस्कार करके

अपनी जगह चला गया। [तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे] उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर ने [तत्थ णं अट्ठाहिं मासद्धखमणेहिं चाउम्मासं वइक्कमिय अत्थियाओ गामाओ पडिनिक्खमइ] उस अस्थिक ग्राम में चातुर्मास किया और चातुर्मास में अर्द्धमासखमण किया। इस प्रकार भगवान आठ अर्धमासखमणों से चातुर्मास व्यतीत करके अस्थिक ग्राम से निकले [पडिनिक्खमित्ता पवणुव्व अप्पडिहयविहारेणं विहरमाणे सेयंबियं णयरिं पट्ठिए] निकलकर वायु के समान अप्रतिबद्ध विहार से विचरते हुए भगवान श्वेताम्बीनगरी की ओर पधारे ॥४६॥

भावार्थ—तत्पश्चात् क्रम से विहार करते हुए श्री वीर प्रभु पहले चौमासे में अस्थिक नामक ग्राम में पधारे। वहां शूलपाणि नामक यक्ष के यक्षायतन में, रात्रि के समय, कायोत्सर्ग करके स्थित हुए। वह यक्ष दुष्ट भावनावाला था। उसने अपने स्वभाव के अनुसार भगवान् को उपसर्ग दिया। उसने डांसों और मच्छरों के अनेक समूह वैक्रिय

शक्ति से उत्पन्न करके भगवान् को उनसे कटवाया। भगवान् डांस–मच्छरों के द्वारा उत्पन्न किये उपसर्ग से क्षुब्ध न हुए, और प्रशस्त ध्यान में लीन रहे तो उसने विच्छुओं को उत्पन्न करके उनसे डसवाया। इस उपसर्ग से भी भगवान् को विचलित या कंपित हुए न देख उसने वैक्रियशक्ति से उत्पन्न किये गये उग्र विषवाले विशालकाय सर्प से भगवान् के शरीर में डसवाया। भगवान् इससे अकंपित रहे, जैसे पवन के समूह से पर्वत अकंपित रहता है, तब उस यक्ष ने भालुओं–रीछों की विकुर्वणा की। भालुओंने अनेक तीक्ष्ण नखों से भगवान् को उपद्रव किया। यक्षने देखा कि भगवान् उससे भी त्रास को प्राप्त न हुए और आत्मध्यान में लीन हैं। तो उसने विकुर्वणा से उत्पन्न किये हुए घुरघुर शब्द करते हुए, कांटे की नौक के सदृश तीक्ष्ण दांतों वाले शूकरों से भगवान् को विदारण करवाया। उससे भी भगवान को विषाद न हुआ और वे ध्यान में स्थिर रहे तो उसने तत्काल ही वज्र के अग्रभाग के जैसे तीखे दन्ताग्रभागों वाले

हाथियों द्वारा उपसर्ग किया। उस पर भी भगवान् को दृढ, स्थिर अतएव मन वचन काय से अविचल देखकर यक्षने अत्यन्त तीखे नाखूनों, एवं दांतों वाले व्याघ्रों द्वारा उपसर्ग किया। तब भी प्रभु अविचल रहे तो यक्ष ने अतिशय तीखे नखों और दाढों के अग्रभाग वाले सिंहों द्वारा उपसर्ग करवाया, तब भी भगवान् का न तो चित्त ही चंचल हुआ, और न शरीर ही। वे कार्योत्सर्ग से विचलित न होकर जब स्थिर ही बने रहे, तो यह देखकर यक्ष ने स्वभाव से विकराल वैतालनामक व्यन्तरदेवों के द्वारा भगवान् को सताया। इस प्रकार उस दुष्ट स्वभाववाले यक्षने सारी रात भगवान् को उपसर्ग किये। उपसर्ग करके वह स्वयं थक गया, इस कारण उसे विषाद हुआ, परन्तु भगवान् महावीर को विषाद नहीं हुआ। वे द्वेष से अछूत रहे। उन्होंने उद्वेग का अनुभव नहीं किया। उनके मनमें दीनता का प्रवेश न हुआ। वे कृत–कारित–अनुमोदना–रूप तीनों करणों से युक्त मन, वचन, काय से गुप्त रहे, और यक्ष द्वारा किये हुए समस्त उपसर्गों को

निर्भय भाव से, शान्तिपूर्वक अदीनता के साथ तथा निश्चल रूप से सहन करते रहे। तब उस यक्षने अवधिज्ञान से जाना कि प्रभु तो मन से भी ध्यान से विचलित नहीं हुए। यही नहीं, उनकी प्रबल स्थिरता भी उसने देखी तब अथाह क्षमा के सागर दूसरों द्वारा किये अपकार को सहन करनेवाले एवं गुण के समुद्र भगवान् से अपने अपराध की क्षमा मांगी। उन्हें वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना और नमस्कार करके वह अपने स्थान पर चला गया। उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर ने उस अस्थिक ग्राम में आठ अर्धमास क्षपण (पन्द्रह-पन्द्रह दिन के आठ बार के) तपश्चरण करके वह चातुर्मास व्यतीत किया। चातुर्मास व्यतीत करके भगवान् अस्थिक ग्राम से निकले और वायु के समान अप्रतिबद्ध-विहार करते हुए श्वेताम्बी नामक नगरी की ओर पधारे ॥४६॥

मूलम्-अह य सेयंबियाए णयरीए दो मग्गा संति-एगो वंको बीओ

उज्जू य। तत्थ जे से उज्जुमग्गे तत्थ एगा वियडा महाडवी अत्थि। तीए वियडाए महाडवीए चंडकोसिओ णामं एगो दिट्ठीविसो कालोव्व महाविगरालो कालो वालो णिवसमाणो आसी। सो य नियकूरयाए तेण मग्गेण गमणागमणं कुणमाणे पंथजणे दिट्ठीए जालेमाणे घाएमाणे मारेमाणे दंसेमाणे विहरइ। सो तीए महाडवीए परिभमिय परिभामिय जं कंचि सउणगमवि पासइ तं पि णं डहइ। तस्स विसप्पहावेण तत्थ तणाणि वि दड्ढाणि, णय पुणो नवीणाणि तणाणि समुब्भवंति एएणं महोद्दवेण सो मग्गो आरुद्धो आसी। तेण उज्जु-मग्गेण गच्छमाणं भगवं गोवदारगा एवं वइंसु—'रे भिक्खू! एएण उज्जुणा मग्गेण मा गच्छाहि, वंकेण गच्छाहि, जे णं कण्णो तुट्टइ तेण कण्णभूसणेण वि किं पओअणं? उज्जुमग्गे महाडवीए एगो महाविगरालो दिट्ठीविसो सप्पो

चिट्ठइ। सो तुमं भक्खिहिइ' तं सोच्चा पहू णाणबलेण चिंतीअ—जं सो सप्पो जइवि उग्गकोहपगडी तहवि सुलहबोही अत्थि, जीवस्स कंचि वि अणिट्ठकरिं पयडिं तिव्वत्तणेण उदयावलियं पविट्ठं दट्ठूणं जणा तं परिवट्टणसंभवबाहिरं मन्नंति, वत्थुओ सो तहा भविउं न अरिहइ, मणस्स कोऽवि अंसो जया वियडो होइ तया सो उचिएण उवाएण परिवट्टिउं सक्किज्जइ। एयावइयं चेव नो किंतु अणिट्ठंसस्स जावइयं तिव्वं बलं पडिकूले विसए हवइ तं तावइयं चेव अणुकूले वि विसए परिवट्टिउं सक्किज्जइ, काइवि बलवई चित्तट्ठिई इट्ठा वा अणिट्ठा वा होउ, सा अइसइओवओगियाए गेज्झा एव, जओ दुविहाऽवि चित्तट्ठिई समाणसामत्थवई हवइ, परमिमो भेओ एगा वट्टमाणक्खणे सुहे पओइया अन्नाय असुहे, तहं वि दुण्हं कज्जसाहणसामत्थं तुल्लं चेव

गणणिज्जं। जीए सत्तीए सुहा वा असुहा वा परिणामा हवंति। सा सत्ती अवस्सं इच्छणिज्जा एवं मुणेयव्वा। जहा—आमन्नाणं साउपक्कन्नयाए पायणे अणेगोवओगिवत्थूणं भासरासी करणे य समत्था सत्ती एगाओ चेव अग्गिओ समुब्भवइ तहा सुहा असुहकायव्व परायणा सत्ती अप्पणो एगओ एव अंसाओ उब्भवइ, परं तीए सत्तीए उवओगं सुहे असुहे वा कुज्जा। इच्चेयावइयं अवसिस्सइ। मणुस्साणं एयारिसो वियारो भमभरिओ दीसइ, जं तिव्वा अणिट्ठपवित्तिगरी सत्ती भुज्जो भुज्जो धिक्करिय बाहिं करणिज्जेति, परं तेण सह एयं विस्सरंति जं मणुस्सस्स जा सत्ती जावइयं अणिट्ठं काउं सक्केइ सा चेव सत्ती इट्ठमवि तावइयं चेव काउं सक्केइ, जहा जो चक्कवट्टी जीए सत्तीए सत्तम नरय पुढवि जोग्गाइं जावइयाइं हिंसाइ कूरकम्माइं अज्जिउं सक्केइ, सो चेव चक्क-

वट्टी जइ तं सत्तिं कज्जे संजोएइ, तो तावइयाइं चेव अहिंसाइ सुहकम्माइं अज्जिय मोक्खमावि पत्तुं सक्कइ। जे जीवा सुहमसुहं वा किं पि काउं न सक्केंति जे य तेयहीणा गलिबलिवद्दा विव होंति जे य जडा विव जगसत्ताए आहणिज्जंति। जेसिं पामरयाए भोगलालसाए दारिद्दस्स पमायस्स य अवही एव नत्थि एयारिसा जीवा न किं पि काउं सक्केंति। जेसु पुण अत्तबलसोरियाइयं होइ ते सुहे असुहे वा पज्जाए होंतु इच्छणिज्जा एव। जओ असुहपज्जाए वि तं अत्तबलाइयं जे ण अप्पंसेण निव्वत्तं तस्स अप्पंसस्स सत्ती वि खओवसमभावेण चेव जीवेण पाविज्जइ। सा सत्ती निमित्तं पाविय जहिट्ठं परिवट्टिउं सक्किज्जइ, अओ तत्थ गमणे लाहो एव-त्ति चिंतिय भगवं तेणेव उज्जुणा मग्गेण पट्ठिए। जया भयवं तीए अडवीए पविट्ठे। तया तत्थ धूली पाणिणं

गमणागमणाभावाओ चरणाइचिंधरहिया जहट्ठिया चेव। जलनालियाओ जलाभावेण सुक्काओ। जुण्णा रुक्खा तव्विसजालाए दड्ढा सुक्का य। सडिय-पडियजुण्णपत्ताइ संघाएण भूमिभागो आच्छाइओ, वम्मीयसहस्सेहिं संकंतो लुत्तमग्गो य आसी। कुडीरा सव्वे भूमिसाइणो संजाया। एयारिसीए महा-डवीए भगवं जेणेव चंडकोसियस्स वम्मीयं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तत्थ काउसग्गेण ठिए ॥४७॥

शब्दार्थ—[अह य सेयंबियाए णयरीए दो मग्गा संति–एगो वंको बीओ उज्जू] श्वेताम्बी नगरी के दो मार्ग थे एक टेढा और दूसरा सीधा [तत्थ जे से उज्जुमग्गे तत्थ एगा वियडा महाडवी अत्थि] जो मार्ग सीधा था, उसमें एक विकट महाअटवी पडती थी [तीए विषडाए महाडवीए चंडकोसीओ नामं एगो दिट्ठिविसो कालोव्व महाबिगरालो

चण्डकौ-शिक वल्मि-कपार्श्वे भगवतः कायोत्सर्गः

कालो वालो णिवसमाणो आसि] उस भयानक जंगल में चण्डकोशिक नाम का काल के जैसा विकराल काला दृष्टि विष सर्प रहता था [सो य निनिय कूरयाए तेण मग्गेण गमणाऽऽगमणं कुणमाणे पंथजणे दिट्ठीए जालेमाणे मारेमाणे दंसेमाणे विहरइ] वह अपनी क्रूरता से उस रास्ते से आने जानेवाले पथिकों को अपनी दृष्टि के विष से जलाता घात करता मारता और डंसता था [सो तीए महाऽवीए परिभमिय परिभमिय जं कंचि सउणगमवि पासइ तं पि णं डहइ] वह उस जंगल में घूम घूम कर जिस किसी पक्षी को भी देखता, उसी को भस्म कर देता था [तस्स विसप्पहावेण तत्थ तणाणि वि दड्ढाणि] उसके विष के प्रभाव से वहां का घास भी जल गया था [ण य पुणो नवीणाणि तणाणि समुब्भवंति] उस विष के कारण वहां नया घास भी नहीं उगता था। [एएण महोवद्दवेण सो मग्गो ओरुद्धो आसी] इस महान उपद्रव के कारण वह मार्ग रुक गया था अर्थात् उधर से कोई आता जाता नहीं था [तेण उज्जुमग्गेण गच्छ-

चण्डकौशिक वल्मिकपार्श्वे भगवतः कायोत्सर्गः

माणं भगवं गोवदारगा एवं वइसु] उस सीधे मार्ग से भगवान को जाते देखकर ग्वाल बालकों ने इस प्रकार कहा–[रे भिक्खू ! एएण उज्जुणा मग्गेण मा गच्छाहि, वंकेण गच्छाहि] अरे भिक्षु ! इस सरल रास्ते से मत जाओ; किन्तु टेढे रास्ते से जाओ [जे णं कण्णो तुट्टइ तेण कण्णभूसणेण वि किं पओअणं ?] जिससे कान टूट जाय, उस कान के गहने से क्या लाभ ? [उज्जुमग्गे महाडवीए एगो महाविगरालो दिट्ठिविसो सप्पो चिट्ठइ] इस सीधे मार्ग में महा अटवी में अत्यन्त भयंकर दृष्टिविष सर्प रहता है [सो तुमं भक्खिहिइ] वह तुम्हें खा जायगा [तं सोच्चा पहू णाणबलेण चिंतीअ] यह सुनकर भगवान ने ज्ञानबल से सोचा [जं सो सप्पो जइ वि उग्गकोहपगडी तहवि सुलहबोही अत्थि] यद्यपि वह सर्प भयंकर क्रोधी है फिर भी वह सुलभबोधि है [जीवस्स कंचिवि अणिट्ठकरिं पयडिं तिव्वत्तणेण उदयावलियं पविट्ठं दट्ठूणं जणा तं परिवट्टणसंभवबाहिरं मन्नंति] जीव की किसी अनिष्टकारी प्रकृति को तीव्रता के साथ उदया-

वस्था में प्रविष्ट देखकर लोग यह मान लेते हैं कि इसकी प्रकृति में परिवर्तन आना संभव नहीं है। [वत्थुओ सा तहा भविउं न अरिहइ] किन्तु वास्तव में यह बात नहीं है [मणस्स कोऽवि अंसो जया वियडो होइ तया सो उचिएण उवाएण परिवट्टिउं सक्किज्जइ] मन का कोई भी अंश जब विकृत हो जाता है तो उचित उपाय से उसे बदला जा सकता है [एयावइयं चेव नो किंतु अणिट्ठंसस्स जावइयं तिव्वं बलं पडिकूले विसए हवइ तं तावइयं चेव अणुकूलेऽवि विसए परिवट्टिउं सक्किज्जइ] यही नहीं, अनिष्ट अंश का जितना बल प्रतिकूल विषय में होता है उतना ही तीव्र और अनुकूल विषय में भी पलटा जा सकता है [काइवि बलवइ चित्तठिई इट्ठा वा अनिट्ठा वा होउ] चित्त की कोई भी बलवती स्थिति, चाहे वह इष्ट हो या अनिष्ट हो [सा अइसइ ओवओगियाए गेज्झा एव] अतिशय उपयोगी रूप में ही उसे ग्रहण करना चाहिये [जओ दुविहा वि चित्तट्ठिई समाण सामत्थवई हवइ] कारण यह है कि दोनों (इष्ट और अनिष्ट)

चण्डकौशिक वल्मिकपार्श्वे भगवतः कायोत्सर्गः

प्रकार की चित्तस्थिति समान शक्ति संपन्न होती है [परमिमो भेओ—एगा वट्टमाणक्खणे सुहे पओइया अन्नाय असुहे] दोनों में अन्तर यही है कि एक वर्तमान में शुभ में प्रयुक्त हो रही है और दूसरी अशुभ में [तह वि दुण्हं कज्जसाहणसामत्थं तुल्लं चेव गणणिज्जं] फिर भी दोनों का अपने अपने कार्य को सिद्ध करने का सामर्थ्य तो समान ही गिना जाना चाहिये [जीए सत्तीए सुहा वा असुहा वा परिणामा हवंति, सा सत्ती अवस्सं इच्छणिज्जा एव मुणेयव्वा] जिस मूलभूत शक्ति से शुभ या अशुभ परिणाम उत्पन्न होते हैं वह शक्ति अवश्य ही वांछनीय है ऐसा समझना चाहिये [जहा—आमन्नाणं साउपक्कन्नयाए पायणे अणेगोवओगिवत्थूणं भासरासी य समत्था सत्ती एगाओ चेव अग्गिओ समुब्भवइ] उदाहरण के लिए अग्नि की शक्ति को लीजिए एक ही अग्नि की शक्ति कच्चे अन्न को अच्छी प्रकार पकाती भी है और अनेक उपयोगी वस्तु को भस्म भी करती है। यह दो प्रकार की शक्ति अग्नि से ही उत्पन्न होती है [तहा सुहाऽ-

सुहकायव्व परायणा सत्ती अप्पणो एगओ एव अंसाओ उब्भवइ] इसी प्रकार शुभ और अशुभ कर्तव्य में प्रयुक्त होनेवाली शक्ति आत्मा के एक ही अंश से उत्पन्न होती है। [परं तीए सत्तीए उवओगं सुहे असुहे वा कुज्जा, इच्चेयावइयं अवसिस्सइ] यह बात दूसरी है कि उस शक्ति का उपयोग शुभ में करना या अशुभ में करना, यही शेष रहता है। यह व्यक्तियों के अधीन है। [जं तिव्वा अणिट्ठपवित्तिगरी सत्ती भुज्जो भुज्जो धिक्कारिय बाहिं करणिज्जेत्ति मणुस्साणं एयारिसो वियारो भमभरियो दीसइ] 'तीव्र अनिष्ट वृत्ति को उत्पन्न करनेवाली शक्ति का बार बार धिक्कार कर बहिष्कार करना चाहिये' मनुष्यों का यह विचार भ्रम पूर्ण है [परं तेण सह एयं विस्सरंति जं मणुस्सस्स जा सत्ती जावइयं अनिट्ठं काउं सक्केइ सा चेव सत्ती इट्ठमवि तावइयं चेव काउं सक्कइ] ऐसा विचार करनेवाले लोग भूल जाते है कि मनुष्य की जो शक्ति जितना अधिक अनिष्ट कर सकती है, वही शक्ति उतना ही अधिक इष्ट साधन भी कर सकती है।

[जहा जो चक्कवट्टी जीए सत्तीए सत्तमनरय पुढवि जोग्गाइं जावइयाइं हिंसाइ कूरकम्माइं अज्जिउं सक्केइ] जो चक्रवर्ती जिस शक्ति से सातवें नरक में जाने योग्य जितने हिंसादि क्रूर कर्मों का अर्जन कर सकता है [सो चेव चक्कवट्टी जइ तं सत्तिं इट्ठकज्जे संजोएइ] वही चक्रवर्ती यदि उस शक्ति को अच्छे कार्य में लगाता है [तो तावइयाइं चेव अहिंसाइ सुहकम्माइं अज्जिय मोक्खमवि पत्तुं सक्केइ] और उस शक्ति से अहिंसा आदि शुभ कर्म का उपार्जन करता है तो वह उस शक्ति से मोक्ष भी प्राप्त कर सकता है। [जे जीवा सुहमसुहं वा किंपि काउं न सक्केंति] जो जीव सामर्थ्य विहीन हैं—शुभ या अशुभ कुछ भी नहीं कर सकते [जे य तेयहीणा गलिबलिवद्दा विव होंति] जो गलियार बैल की तरह तेजोहीन होते हैं [जे य जडा विव जगसत्ताए आहणिज्जंति] जो जड की भांति जगत् की सत्ता से दबे रहते हैं [जेसिं पामरयाए भोगलालसाए दारिद्दस्स पमायस्स य अवही एव नत्थि] जिनकी पामरता की भोगलालसा की दरिद्रता की और

प्रमाद की कोइ सीमा ही नहीं है [एयारिसा जीवा न किंपि काउं सक्केंति] ऐसे प्राणी कुछ भी नहीं कर सकते [जेसु अत्तबलसोरियाइयं होइ ते सुहे असुहे वा पज्जाए होंतु इच्छणिज्जा एव] जिन में आत्मबल है, शौर्य आदि गुण हैं वे चाहे शुभ अवस्था में हों या अशुभ अवस्था में हो वांछनीय ही है [जओ असुहपज्जाएवि तं अत्तबलाइयं जेण अप्पंसेण निव्वत्तं, तस्स अप्पंसस्स सत्ती वि खओवसमभावेण चेव जीवेण पाविज्जइ] क्योंकि अशुभ अवस्था में भी वह आत्मबल आदि जिस आत्मांश से निष्पन्न हुए है, उस आत्मांश की शक्ति भी क्षयोपशम भाव से ही जीव को प्राप्त होती है [सा सत्ती निमित्तं पाविय जहिट्ठं परिवट्टिउं सक्किज्जइ] वह शक्ति निमित्त पाकर इच्छानुसार बदली जा सकती है [अओ तत्थ गमणे लाहो एव त्ति चिंतिय भगवं तेणेव उज्जुणा मग्गेण पट्ठिए] अतएव वहां जाने में लाभ ही है यह सोचकर भगवान ने उसी सीधे मार्ग से प्रस्थान किया [जया भगवं तीए अडवीए पविट्ठे तया तत्थ धूली पाणिणं गम-

णागमणाभावाओ चरणाइ चिंधरहिया जहट्ठिया चेव] जब भगवान उस अटवी में प्रविष्ट हुए तो वहां की धूल प्राणियों का गमनागमन न होने से चरण चिन्ह आदि से रहित, ज्यों कि त्यों थी। [जलनालियाओ जलाभावेण सुक्काओ] जल की नालियां जलाभाव से सूख गइ थी [जुण्णा रुक्खा तव्विसजालाए दड्ढा सुक्का य] पुराने पेड चंडकौशिक के विष की ज्वालाओं से जल गये थे और सूख गये थे [सडियपडिय जुण्णपत्ताइ संघाएण भूमिभागो आच्छाइओ] भूभाग सडे पडे जीर्ण पत्तों के ढेर से ढक गया था। [वम्मीयसहस्सेहिं संकंतो लुत्तमग्गो य आसी] हजारों बांबियों से व्याप्त था और मार्ग लुप्त हो गया था [कुडीरा सव्वे भूमिसाइणो संजाया] वहां की सभी छोटी छोटी कुटियां धराशाही हो गइ थी [एयारिसीए महाडवीए भगवं जेणेव चंडकोसियस्स वम्मीयं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तत्थ काउसग्गेण ठिए] ऐसी महाअटवी में जहां चण्डकौशिक की बांबी थी वहां पहुंच कर भगवान उस बांबी के पास कायोत्सर्गपूर्वक स्थित हो गये ॥४७॥

चण्डकौशिक वल्मिकपार्श्वे भगवतः कायोत्सर्गः

भावार्थ—श्वेताम्बी नगरी के दो मार्ग थे-एक चक्कर काटकर और दूसरा सीधा था। इन दोनों में जो सीधा रास्ता था उस में एक भयानक जंगल पडता था। उस भयानक जंगल में चंडकौशिक नामक एक सांप रहता था। वह दृष्टिविष था, अर्थात् उसकी दृष्टि में विष था। जिस पर वह दृष्टि पडे वह भस्म हो जाय। वह मृत्यु के जैसा अत्यंत भयंकर और काले रंग का था। वह सर्प अपने दुष्ट स्वभाव के कारण उस महाटवी के मार्ग से गमन-आगमन करनेवाले पथिकों को अपनी दृष्टि से जलाता हुआ पूंछ से ताडना करता हुआ, प्राणहीन बनाता हुआ, और दांतों से प्रहार करता हुआ रहता था। वह उस अटवी में बार-बार इधर-उधर घूमता हुआ जिस किसी पक्षी को भी देखता, उस आकाशचारी पक्षो को भी अपने दृष्टिविष से भस्म कर देता था। ऐसी स्थिति में जमीन पर चलने वाले मनुष्य आदि प्राणियों का तो कहना ही क्या? उस चण्डकौशिक सर्प के विष के प्रभाव से विष की ज्वालाएँ फैलने से, उस अटवी का

घास–फुस भी भस्म हो गया था। भस्म होने के बाद नया घास उगता नहीं था। चंडकौशिक के बिषजनित इस उपद्रव के कारण अटवी का वह मार्ग रुक गया था कोई आवागमन नहीं करता था। उसी सीधे मार्ग से भगवान को जाते देख गुवालों के लडकों ने भगवान् से कहा–हे भिक्षु! इस सीधे रास्ते से मत जाओ, चक्करदार रास्ते से जाओ। जिससे कान ही टूट जाय, उस कान के आभूषण से क्या प्रयोजन? अर्थात् इस सीधे रास्ते से क्या लाभ जब कि इस से जाने पर लक्ष्य स्थान पर पहुंचने से पहले ही प्राणों से हाथ धोना पडे? यह सीधा रास्ता कान तोड देनेवाले गहने के समान है। इस रास्ते में एक महाविकराल दृष्टिविष सर्प है। वह तुम्हें खा जायगा। गुवालों के लडकों की बात सुनकर श्री महावीर स्वामीने अपने ज्ञानबल से विचार किया–'यद्यपि चंडकौशिक सर्प उग्र क्रोध स्वभाववाला है, फिरभी है सुलभ बोधि है। जीव की किसी भी अनर्थकारिणी प्रकृति को, उग्र रूप से, उदयावलि का में आई देख-

चण्डकौशिकवल्मिकपार्श्वे भगवतः कायोत्सर्गः

कर लोग मान लेते हैं कि उसमें परिवर्तन होना संभव नहीं हैं. किन्तु यथार्थ में वह अपरिवर्तनीय नहीं होती। जब चित्त का कोई भी अंश विकारयुक्त हो जाता है तो उचित उपाय से उसे विकृत अवस्था से अविकृत अवस्था में पलटा जा सकता है। इतना ही नहीं कि चित्त के विकृत अंश को बदलकर अविकृत बनाया जा सकता है, किन्तु उस विकृत अंश का जितना सामर्थ्य प्रतिकूल अनिष्ट विषय में होता है, उतने ही सामर्थ्य के साथ उसका अनुकूल इष्ट विषय में भी झुकाव हो सकता है। चित्त की कोई भी स्थिति क्यों न हो, अगर उस में बल है, वह सामर्थ्यशालिनी है, तो चाहे वह अनुकूल हो अथवा प्रतिकूल हो, अर्थात् वह कुमार्गगामिनी हो या सुमार्गगामिनी हो, उस उत्कर्ष प्राप्त शक्ति को उपयोगी ही मानना चाहिये। कारण यह है कि चित्त की यह दोनों प्रकार की स्थितियां तुल्य सामर्थ्यवाली होती है। दोनों में भेद है तो केवल यही कि पहली चित्तस्थिति वर्तमान में शुभफलजनक कार्य में, फिर भी

उन दोनों चित्तस्थितियों में शुभ-अशुभ फल को उत्पन्न करने की शक्ति तो समान ही है। अतएव जिस शक्ति के कारण शुभ या अशुभ परिणाम उत्पन्न होते हैं, वह मूलभूत शक्ति निस्सन्देह अपेक्षित ही हैं। जैसे अग्नि की शक्ति कच्चे चावल आदि अन्नों को भली भांति पकाने में समर्थ होती है, और अनेकानेक उपयोगी वस्तुओं को भस्म करने में भी समर्थ होती हैं, वह द्विविध शक्ति एक ही अग्नि से उत्पन्न होती हैं उसी प्रकार शुभ और अशुभ कर्तव्य में प्रयुक्त होनेवाली शक्ति भी आत्मा के एक ही अंश से उत्पन्न होती है। अलबत्त उसका शुभ कार्य में उपयोग करना यही शेष रहता है। यह व्यक्तियों के अधीन है। सबला अनिष्ट-प्रवृत्ति जनक शक्ति बार-बार धिक्कार देकर दूर करने योग्य हैं। ऐसा जो लोग विचार करते हैं, वे यह भूल जाते हैं कि 'मनुष्य की जो शक्ति, जितना अनिष्ट कर सकती है, वही उतना इष्ट भी कर सकती है। इस विषय में चक्रवर्ती का उदाहरण लीजिए। कोई चक्रवर्ती जिस शक्ति से सातवीं

नरक भूमि में जाने योग्य जितने प्राणातिपात आदि क्रूर कर्म उपार्जन करने में समर्थ होता है, वही चक्रवर्ती उसी शक्ति को अगर शुभ में लगा दे तो उतने ही अहिंसा आदि को उपार्जन करके मोक्ष भी पा सकता है। जो प्राणी शुभ और अशुभ, दोनों में से किसी भी एक को उग्र शक्ति के साथ करने में असमर्थ होते हैं, और जो निस्तेज हैं, वलियार बैल के समान है, जो जड की भांति जगत् की शक्ति से अभिभूत हो जाते हैं और जिन की पामरता, भोगकामना, दरिद्रता और प्रमाद की कोई सीमा ही नहीं है, ऐसे प्राणी क्या कर सकते है ? उनसे कुछ भी नहीं हो सकता। इनके विपरीत, जिन जीवों में आत्मबल है, शूरता आदि है, वे शुभ या अशुभ किसी भी पर्याय में क्यों न हो, समानरूप से वांछनीय है। क्यों कि अशुभ पर्याय में भी जो आत्मबल आदि जिस आत्मांश से उत्पन्न हुआ है, उस आत्मांश की शक्ति अनर्थकारी सामर्थ्य भी क्षयोपशम के द्वारा ही जीव को प्राप्त होत है। वह क्षयोपशममावर्जनित

शक्ति, कारण मिलने पर इच्छानुसार परिवर्तित की जा सकती है, अतः जहां चंडकौशिक रहता है, वहां जाने में लाभ हो सकता है। इस प्रकार विचार कर श्री वीर प्रभु उसी सीधे मार्ग से रवाना हुए।

जिस समय भगवान् महावीर उस भयानक अटवी में प्रविष्ट हुए, उस समय वहां की धूल पैरों आदि के निशानों से रहित थी, क्यों कि वहां किसीका भी आवागमन नहीं होता था, अतएव वह ज्यों कि त्यों थी। वहां की जल की नालियां जलाभाव के कारण सूखी पड़ी थीं। कितने ही पुराने पेड़ चंडकौशिक के विष की ज्वाला से भस्म हो गये थे और कितने ही सूख गये थे। अटवी का भूभाग सडे पडे और सूखे पत्तों के ढेरों से आच्छादित हो गया था और हजारों बावियों से व्याप्त था। मार्ग कहीं दिखाई नहीं देता था। वहां के सभी कुटीर धराशाइ [जमीन दोस्त] हो गये थे। ऐसी दुरभि अटवी में भगवान् वहीं पहुंचे; जहां चंडकौशिक की बांबी थी। वहां पहुंचकर भगवान्

चण्डकौशिक वल्मिकपार्श्वे भगवतः कायोत्सर्गः

उस बांवी के पास ही कायोत्सर्ग पूर्वक स्थित हो गये ॥४७॥

मूलम्—तए णं से चंडकोसिए विसहरे कुद्धे समाणे बिलाओ बाहिरं निस्सरीय काउस्सग्गट्ठियं पहुं दट्टूणं चिंतीअ केरिसो इमो मच्चुभयविप्पमुक्को मणुस्सो जो खाणूविव थिरत्तणेण ठिओ, संपइ चेव इमं अहं विसजालाए भासरासी करोमि त्ति कट्टु कोहेणं धमधमंतो आसुरुत्तो मिसिमिसेमाणो विसग्गिं वममाणो फणं वित्थारयंतो भयंकरेहिं फुक्कारेहिं दिट्ठिं फोरेमाणो मूरं निज्झाइत्ता सामि पलोएइ। सो न डज्जइ जहा अण्णे, एवं दोच्चंपि तच्चंपि पलोएइ तहवि सो न डज्झइ, ताहे पहुं पायंगुट्ठम्मि डसइ, डसित्ता मा मे उवरि पडिज्ज त्ति कट्टु पच्चोसक्कइ। तहवि पहू न पडइ। काउसग्गाओ लेसमवि न चलइ। एवं दोच्चंपि तच्चंपि डसइ, तहवि णो पडइ, ताहे अम-

चण्डकौशिकस्य भगवदुपरि विषप्रयोगः चण्डकौशिकप्रतिबोधश्च

रिसेणं पहुं पलोयंतो अच्छइ। एवं तं भगवं संतमुहं अउलकंतिमंतं सोम्मं सोम्मवयणं सोम्मदिट्ठिं माहुरियगुणजुत्तं खमासीलं पिच्छंतस्स तस्स ताणि विसभरियाणि अच्छीणि विज्झाइयाणि। तओ कोहपुंजरूवो सो चंडकोसिओ थद्धो जाओ। पहुस्स संतिबलेण तस्स कोहो समिओ। तस्स कोहजालाए उवरिं पहुणा खमाजलं सित्तं तेण सो संतो संत सहावो संजाओ। एयारिसं संतिसंपन्नं चंडकोसियं दट्ठूणं पहू एवं वयासी—हे चंडकोसिय ! ओबुज्झ, ओबुज्झ, कोहं ओमुंच ओमुंच पुव्वभवे कोहवसेणेत्र कालमासे कालं किच्चा सप्पो जाओ। पुणोऽवि पावं करेसि, तेण पुणोऽवि दुग्गइं पावेहिसि। अओ अप्पाणं कल्लाणमग्गे पवत्तेहि—त्ति। एवं पहुस्स अमियसमं पबोहवयणं सोच्चा चंडकोसिओ वियारसायरे पडिओ पुव्वभवजाइं सरइ। तेण सो निय-

चण्डकौशिकस्य भगवदुपरि विषप्रयोगः चण्डकौशिकप्रतिबोधश्च

पुव्वभवे कोहपगडीए णियमरणं विण्णाय पच्छायावं करिय हिंसयपगडिं विमुं-चिय संतसहावो संजाओ। तए णं से सप्पे तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता सुहेण झाणेण कालमासे कालं किच्चा उक्कोसओ अट्ठारस सागरोवमट्ठिइए सह-स्साराभिहे अट्ठमे देवलोए उक्कोसट्ठिइओ एगोवयारो देवो जाओ। महाबिदेहे सो सिज्झिस्सइ ॥४८॥

शब्दार्थ—[तए णं से चंडकोसिए विसहरे कुद्धे समाणे बिलाओ बाहिरं निस्स-रिय काउसग्गट्ठियं पहुं दट्ठूणं चिंतिअ] तब वह चण्डकौशिक सर्प क्रुद्ध होकर बिल से बाहर निकला और कायोत्सर्ग में स्थित प्रभु को देखकर सोचने लगा—[केरिसो इमो मच्चुभयविप्पमुक्को मणुस्सो जो खाणू विव थिरत्तणेण ठिओ] कौन है यह मौत के भय से मुक्त मानव जो ठूंठ की भांति स्थिर होकर खडा है ? [संपइ चेव इमं अहं

विसजालाए भासरासी करोमि–त्ति कट्टु] मैं इसको अभी विष की ज्वाला से भस्म कर देता हूं। ऐसा सोचकर [कोहेण धमधमंतो आसुरुत्तो मिसिमिसे माणो विसग्गि वममाणो फणं वित्थारयंतो भयंकरेहिं फुक्कारेहिं दिट्ठिं फोरेमाणो सुरं निज्झाइत्ता सामिं पलोएइ] क्रोध से धमधमाता हुआ अत्यन्त क्रुद्ध हुआ, विष की ज्वालाओं का वमन करता हुआ फण फैलाता हुआ भीषण फूत्कार करता हुआ सूर्य की ओर देख-कर प्रभु की ओर देखनेलगा [सो न डज्झइ जहा अण्णे] किन्तु उसका भयंकर विष-दृष्टि से भी भगवान् अन्य की तरह जले नहीं [एवं दोच्चंपि तच्चंपि पलोएइ तहवि सो न डज्झइ] सर्प ने दूसरी बार और तिसरी बार भी देखा, फिर भी प्रभु जले नहीं [ताहे पहुं पायंगुट्ठम्मि डसइ] तब उसने प्रभु के पाव के अंगूठे में डंस लिया [डसित्ता 'मा मे उवरि पडिज्ज' त्ति कट्टु पच्चो सक्कइ] डंसकर 'यह मेरे ऊपर ही न गिरपडे' यह सोच कर दूर सरक गया [तहवि पहू न पडइ] फिर भी भगवान् गिरे नहीं [काउस्सग्गाओ

लेसमवि न चलइ] और न कायोत्सर्ग से ही चलित हुए [एवं दोच्चंपि तच्चंपि डसइ, तहवि णो पडइ, ताहे अमरिसेणं पहुं पलोयंतो अच्छइ] यह देखकर वह दूसरी बार और तीसरी बार भी प्रभु को डंसा फिर भी भगवान् न गिरे तब वह अत्यन्त क्रोध भरी दृष्टि से भगवान् को देखने लगा [एवं तं भगवं संतमुद्दं अउलकंतिमंतं सोम्मं सोम्मवयणं सोम्मदिट्ठिं माहुरियगुणजुत्तं खमासीलं पिच्छंतस्स तस्स ताणि विसभरियाणि अच्छीणी विज्झाइयाणि] शांतमुद्रावाले, अतुलकान्ति के धनी सौम्य, सौम्यमुख, सौम्यदृष्टि मधुरता के गुण से युक्त और क्षमाशील भगवान् को देखनेवाले उस चंडकौशिक की विषभरी आंखे शांत हो गई। [तओ कोहपुंजरूवो सो चंडकोसिओ थद्धो जाओ] क्रोध का पिण्ड वह चण्डकौशिक स्तब्ध रह गया [पहुस्स संतिबलेण तस्स कोहो समिओ] प्रभु की शान्ति के बल से उसका क्रोध शांत हो गया [तस्स कोहजालाए उवरिं पहुणा खमाजलं सित्तं, तेण सो संतो संतसहावो संजाओ] उसकी क्रोध ज्वाला पर

भगवान् ने क्षमा का जल सींच दिया इस कारण वह शांत और शान्तस्वभावी हो गया [एयारिसं संतिसंपन्नं चण्डकोसियं दट्ठूणं पहू एवं वयासी—] इस प्रकार चंडकौशिक को शान्ति संपन्न देखकर प्रभु ने इस प्रकार कहा—[हे चंडकोसिय ! ओबुज्झ, ओबुज्झ, कोहं ओमुंच, ओमुंच,] हे चण्डकौशिक ! बोध पाओ ! बोध पाओ ! क्रोध को छोडो, छोडो ! [पुव्वभवे कोहवसेणेव कालमासे कालं किच्चा तुवं सप्पो जाओ] पूर्व भव में क्रोध के वशीभूत होकर ही कालमास में काल करके तुम सर्प हुए। [पुणोऽवि पावं करेसि तेण पुणोवि दुग्गइं पावेहिसि, अओ अप्पाणं कल्लाणमग्गे पवत्तेहि—त्ति] अब फिर पाप कर रहे हो तो फिर दुर्गति पावोगे, अतएव अपने आपको कल्याण—मार्ग में प्रवृत्त करो [एवं पहुस्स अमियसमं पबोहवयणं सोच्चा चंडकोसिओ वियारसायरे पडिओ पुव्वभवजाइं सरइ] प्रभु के अमृत के समान यह प्रबोध वचन सुनकर चण्ड-कौशिक विचार सागर में डूब गया। उसे पूर्व के जन्म का स्मरण हो आया [तेण सो

चण्डकौ-शिकस्य भगवदुपरि-विषप्रयोगः चण्डकौ-शिकप्रति बोधश्च

णियपुव्वभवे कोहपगडीए णियमरणं विण्णाय पच्छायावं करिय हिंसयपगडिं विमुंचिय संतसहाओ संजाओ] उस से वह पूर्व भव में क्रोध–प्रकृति से अपना मरण जानकर पश्चात्ताप करके और हिंसक प्रकृति का त्याग करके शांत स्वभाव हो गया [तए णं से सप्पे तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता सुहेण झाणेण कालमासे कालं किच्चा] तत् पश्चात् वह सर्प अनशन से तीस भक्त छेदन करके अर्थात् पंद्रह दिन का अनशन करके शुभध्यान के साथ काल मास में काल करके [उक्कोसओ अट्ठारससागरोवमट्ठिइए सहस्सारा-भिहे अट्ठमे देवलोए उक्कोसट्ठिइओ एगावयारो देवो जाओ] अठारह सागरोपम की उत्कृष्ट स्थितिवाले सहस्रार नामक आठवे देवलोक में उत्कृष्ट स्थितिवाला एकावतारी देवहुआ [महाविदेहे सो सिज्झिस्सइ] वह महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त करेगा ॥४८॥

भावार्थ—वीर भगवान् के कायोत्सर्ग में स्थित हो जाने के पश्चात् दृष्टिविष चंडकौशिक नामक सर्प क्रोध से युक्त होकर अपने विल से बाहर निकला। बाहर

निकलकर कायोत्सर्ग में स्थित प्रभु को देखकर वह विचार करने लगा—यह मृत्यु के भय से रहित मनुष्य कैसा हैं जो मेरे बिल के समीप खड़ा है ? यह ठूंठ के समान अडिग रूप से खडा हुआ है। यह भले खड़ा है, परन्तु इसको अभी—अभी विष के उग्र तेज से राख का ढेर कर देता हूं। इस प्रकार विचार कर चण्डकौशिक रोषवश घमघमाट करने लगा। एकदम कुपित हो गया। क्रोध से जल उठा। विषरूपी अग्नि को निकालनेलगा। भयानक फण फैलाकर, नेत्र फाड़कर और सूर्य की ओर देखकर भगवान् की तरफ देखने लगा। किन्तु विष भरे नेत्रों से देखने पर भी प्रभु भस्म न हुए, जैसे दूसरे प्राणी नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार उसने दूसरी बार भी देखा और तीसरी बार भी देखा। फिर भी वीर भगवान् भस्म न हुए। तब उस सर्प ने पैर के अंगूठे में काट खाया। काट कर उसने सोचा—'यह कहीं मेरे शरीर पर न गिर पडे' अतएव वह दूर तक सरक गया। मगर अंगूठे में डसने पर भी भगवान् नहीं गिरे। यही नहीं,

चण्डकौशिकस्य भगवदुपरि-विषप्रयोगः चण्डकौशिकप्रतिबोधश्च

किन्तु वे कायोत्सर्ग से लेश मात्र भी चलायमान न हुए। तब क्रोधयुक्त होकर दूसरी बार और तीसरी बार भी प्रभु को डंसा, तथापि प्रभू गिरे नहीं। तत्पश्चात् वह रोष के साथ प्रभु को देखता रहा। शांत आकार वाले, अनुपम कांति से मन्डित, मृदुस्वभाव वाले, मधुरता से अलंकृत और क्षमाशील भगवान् वीर स्वामी को देखते हुए चंडकौशिक सर्प की, प्रलयकाल की आग के समान, विष से परिपूर्ण आंखें बुझ गई अर्थात् शांत हो गई। तब क्रोध का पुंज उग्र क्रोधी चंडकौशिक सर्प कुंठित हो गया। वीर प्रभु की शांति के प्रभाव से उसका क्रोध शांत हो गया। चंडकौशिक की क्रोध-ज्वाला पर भगवान् महावीर ने क्षमा का जल सींच दिया, अर्थात् अपनी क्षमा एवं शांति के प्रभाव से प्रभु ने उसके क्रोध को नष्ट कर दिया। क्षमा का जल सींचने से वह आकृति से भी शांत हो गया और प्रकृति से भी शांत हो गया। इस प्रकार चडकौशिक को शांत देखकर वीर प्रभु ने उससे कहा—हे चंडकौशिक ! तुम बूझो, बूझो बोध प्राप्त करो, बोध

प्राप्त करो, क्रोध को तज दो, तज दो, अर्थात् पूरी तरह–त्याग दो, क्योंकि पूर्व भव में क्रोध के कारण ही तुम काल मास में काल करके सांप हुए हो। इस भव में भी वही क्रोध रूप पाप कर रहे हो, इस पाप का आचरण करने से आगामी भव में भी नरक आदि गर्हित गति प्राप्त करोगे, क्योंकि क्रोध दुर्गति का कारण है, अतः तुम अपनी आत्मा को मोक्ष के मार्ग में लगाओ। इस प्रकार के वीर भगवान् के बोध जनक उपदेश को सुनकर चंडकौशिक विचारों के समुद्र में डूब गया। उसे अपनी पूर्वभव संबंधी जाति का स्मरण हो आया। पूर्व भव के जाति स्मरण से उसे विदित हो गया कि मैं क्रोध–प्रकृति के कारण ही काल धर्म को प्राप्त हुआ था तब उसने पश्चात्ताप किया और अपने हिंसक स्वभाव को त्याग कर शांत स्वभाव धारण कर लिया। तत्पश्चात् वह तीस भक्त अनशन से छेद कर, प्रशस्त ध्यान के साथ, काल मास में काल करके, अठारह सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति वाले सहस्रार नामक

आठवें देवलोक में अठारह सागरोपम की स्थिति वाला, एक ही भव करके मोक्ष में जाने वाला देव हुआ। देवायु की समाप्ति के पश्चात्, वहां से च्युत होकर वह महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध होगा ॥४८॥

मूलम्—एवं णं समणं भगवं महावीरे चंडकोसियसप्पोवरि उवयारं किच्चा ताओ अडवीओ पडिनिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता उत्तरवायालाभिहे गामं समागच्छइ। तत्थ एगो णागसेणो नामं गाहावई परिवसई तस्स एगो एव पुत्तो आसी। सो विदेसगओ बारस वरिसाओ अकालवुट्ठी विव अकम्हा गिहे समागओ। अओ सो णागसेणो पुत्तागमणमहोच्छवम्मि विविह असण-पाणखाइमसाइमाइं उवक्खडावेइ, उवक्खडावित्ता मित्तणाइणियग—सयण-संबंधिपरियणे भुंजावेइ। तेणं कालेणं तेणं समएणं भगवं पक्खोववासपारणगे

भिक्खायरियाए तस्सगिहं अणुप्पविट्ठे। तए णं नागसेणो गाहावई भगवं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठ० आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता पाय-पीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता पाउयाओ ओमुयइ, ओमुइत्ता एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ, करित्ता भगवं सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहीणं करेइ करित्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता जेणेव भत्तघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयहत्थेणं तेण नागसेणेण उक्किट्ठेणं भत्तिबहुमाणेणं भगवं विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं पडिलाभेसामि ति-कट्टु तुट्ठे पडिलाभेमाणे तुट्ठे पडिलाभिए त्तितुट्ठे। तए णं तस्स नागसेणस्स तेणं दव्वसुद्धेणं दायगसुद्धेणं पडिग्गाहसुद्धेणं तिविहेणं तिकरणसुद्धेणं भगवंमि पडिलाभिए समाणे संसारे परित्तीकए गिहंसि य इमाइं पंचदिव्वाइं पाउब्भूयाइं

तं जहा—वसुहारा वुट्ठा १, दसद्धवण्णे कुसुमे णिवाइए २, चेलुक्खेवे कए ३, आहयाओ दुंदुहीओ ४, अंतराऽवि य णं आगासंसि अहोदाणं २ ति घुट्ठे य ॥४९॥

शब्दार्थ—[एवं णं समणे भगवं महावीरे चंडकोसियसप्पोवरि उवयारं किच्चा] इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर चंडकौशिक सर्प पर उपकार करके [ताओ अडवीओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता उत्तरवायालाभिहे गामे समागच्छइ] उस अटवी से बाहर निकले। निकलकर उत्तरवाचाल नामके ग्राम में पधारे [तत्थ एगो नागसेनो नामं गाहावाई परिवसई] वहां नागसेन नामका एक गाथापति रहता था [तस्स एगो एव पुत्तो आसी] उसके एक ही पुत्र था [सो विदेसगओ बारसवरिसाओ अकाल वुट्ठी विव अकम्हा गिहे समागओ] वह विदेश गया हुआ था। बारह वर्ष बाद अकालवृष्टि के समान वह अचानक ही घर आ गया। [अओ सो नागसेणो पुत्तागमणमहोच्छवम्मि विविह असणपाणखाइमसाइमाइं उवक्खडावेइ] इसलिए नागसेन ने पुत्र के आगमन

वाचालग्रामे नागसेनगृहे भगवतो भिक्षा-ग्रहणम्

के उत्सव में विविध प्रकार के अशन, पान, खादिम और स्वादिम बनवाये [उवक्खडावित्ता मित्तनाइ णियगसयणसंबंधिपरियणे भुंजावेइ] और बनवाकर मित्रों ज्ञातिजनों निजकजनों स्वजनों संबन्धी जनों और परिजनों को भोजन जिमाया। [तेणं कालेणं तेणं समएणं भगवं पक्खोववासपारणगे भिक्खायरियाए तस्स गिहं अनुपविट्ठे] उस काल और उस समय में भगवान् अर्द्धमासखमण के पारणे के दिन आहार के लिये नागसेन के घर में प्रविष्ट हुए [तए णं नागसेणो गाहावई भगवं एज्जमाणं पासइ] तत्पश्चात् नागसेन गाथापतिने भगवान् को अपने घर पधारे हुए देखा और [पासित्ता] देखकर [हट्ठतुट्ठ० आसणाओ अब्भुट्ठेइ] उसको बहुत हर्ष हुआ भगवान् को देखकर उसके मनमें तृप्ति हुइ आनंद से उसका चित्त उल्लसित होने लगा वह शीघ्र ही आसन से ऊठा और [अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ] उठकर पादपीठ से होकर वह उससे नीचे उतरा [पच्चोरुहित्ता पाउयाओ ओमुयइ] उतरकर अपने पैरों से पादु-

वाचालग्रामे नागसेनगृहे भगवतो भिक्षा-ग्रहणम्

काए उतारी [ओमुइत्ता एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ] पादुकाएँ उतारकर उसने एक-शाटिक उत्तरासंग धारण किया [करित्ता भगवं सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ] वस्त्र धारण करके वह भगवान् के सामने सात आठ पग चला [अणुगच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिणं करेइ] चलकर उसने तीनबार आदक्षिण प्रदक्षिणा की [करित्ता वंदइ नमंसइ] बाद में उसने भगवान को वंदना की नमस्कार किया [वंदित्ता णमंसित्ता जेणेव भत्त-घरे तेणेव उवागच्छइ] पंचांग नमनपूर्वक नमस्कार करके जहां रसोई घरथा वहां पर आया [उवागच्छित्ता] आकरके [सयहत्थेणं] अपने हाथ से [तेण नागसेणेण उक्किट्ठेणं भत्तिबहुमाणेणं भगवं] नागसेन ने उत्कृष्ट भक्ति और बहुमान के साथ भगवान् को [विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं पडिलाभेस्सामित्ति कट्टु तुट्ठे, पडिलाभेमाणे तुट्ठे] विपुल अशनपान खाद्य और स्वाद्य का दान दूंगा ऐसा विचार कर प्रसन्नचित्त हुआ देते समय दान दे रहा हूं ऐसा विचार कर अधिक से प्रसन्न हुआ [पडिलाभिएत्ति

वाचालग्रामे
नागसेनगृहे
भगवतो
भिक्षा-
ग्रहणम्

तुट्ठे] दान देकर में आज भगवान् को अशनादि दिया हूं ऐसा सोचकर अधिक प्रसन्न हुआ [तए णं तस्स नागसेणस्स तेणं दव्वसुद्धेणं दायगसुद्धेणं पडिग्गाहग-सुद्धेणं तिविहेणं तिकरणसुद्धेणं भगवम्मि पडिलाभिए समाणे] तब द्रव्य शुद्ध, दायक शुद्ध, प्रतिग्राहकशुद्ध—त्रिकरणशुद्ध आहार भगवान् को बहराने पर [संसारे परित्तीकए] अपना संसार अल्प किया [गिहंसि य इमाइं पंच दिव्वाइं पाउब्भूयाइं तं जहा] नागसेन के घर में यह पांच दिव्य वस्तु प्रगट हुई वे इस प्रकार हैं-[१—वसुहारा वुट्ठा २—दसद्धवण्णे कुसुमे णिवाइए ३ चेलुक्खेवे कए ४ आहयाओ दुंदुहिओ, ५ अंतराऽवि य णं आगासंसि अहोदाणं ति घुट्टे य] १ सोने की वर्षा हुई २ पांचरंग के फूलों की वर्षा हुई ३ वस्त्रों की वर्षा हुई ४ दुंदुभियों का घोष हुआ और ५ आकाश में अहोदान अहोदान की ध्वनि हुई ॥ ४९ ॥

भावार्थ—इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर ने चंडकौशिक को प्रतिबोध देकर

मोक्ष का भागीबनाकर उसका उपकार किया। तदनन्तर जिस अटवी में चंडकौशिक रहता था, उस अटवी से प्रभु बाहर निकले। बाहर निकलकर उत्तर वाचाल नामक ग्राम में पधारे। उस ग्राम में नागसेन नाम का एक गृहस्थ रहता था। उसका एकाकी पुत्र विदेश गया हुआ था। बारह वर्ष के बाद, अकाल-वर्षा के समान, अचानक ही वह घर आ पहुंचा। पुत्र के आगमन की खुशी के उपलक्ष्य में नागसेन ने बड़ा भारी उत्सव मनाया। उसमें नाना प्रकार के अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य भोजन पाचकों से बनवाये। बनवाकर मित्रों को, सजातियों को, पुत्र आदि निजक जनों को, काका आदि स्वजनों को, रिश्तेदारों को, तथा दास-दासी आदि परिजनों को जिमाया। उस काल उस समय में भगवान वीर प्रभु अर्धमास खमण के पारणक के दिन भिक्षाचर्या (गोचरी) के लिए उस गाथापति के घर में प्रविष्ट हुए। नागसेन गाथापति ने भगवान् को अपने घर पधारे हुए देखा और देखकर उसको बहुत हर्ष हुआ भगवान् को देखकर

वाचालग्रामे नागसेनगृहे भगवतो भिक्षा-ग्रहणम्

उसके मनमें तृप्ति हुइ आनंद से उसका मन उल्लसित होने लगा वह शीघ्र ही आसन से ऊठा और उठकर पादपीठ से होकर वह उससे नीचे उतरा उतरकर अपने पैरोंसे पादुकाएं उतारकर (पगरखियां निकालकर) मुखपर उसने एकशाटिक उत्तरासंग धारण किया वस्त्र धारण करके वह भगवान् के सामने सात आठ पग चला चलकर उसने तीनबार आदक्षिण प्रदक्षिणा की बादमें उसने भगवान् को वंदना की नमस्कार किया पंचांग नमनपूर्वक नमस्कार करके जहां रसोई घर था वहां पर आया आकरके अपने हाथ से नागसेन गाथा-पति ने उत्कृष्ट भक्ति और बहुमान से भगवान् को विपुल अशनपान खाद्य और स्वाद्य का दान दूंगा ऐसा विचार कर प्रसन्न चित्त हुआ दान देते समय में आज भगवान् को अशनादि दे रहा हूं ऐसा सोचकर अधिक प्रसन्न हुआ दान देने के बाद भगवान् को आज में अशनादि दान दिया ऐसा सोच कर प्रसन्न चित्त हुवा तब द्रव्यशुद्ध दायकशुद्ध और प्रतिग्राहकशुद्ध इस प्रकार त्रिविध शुद्ध और त्रिकरण (मन, वचन, काय) से शुद्ध आहार

भगवान् को बहराने से अपना संसार अल्प किया, नागसेन के घर में आगे कही जानेवाली पांच दिव्य वस्तुओं का प्रादुर्भाव हुआ, अर्थात् पांच दिव्य वस्तुएं प्रगट हुइ। वे यह हैं–(१) देवों ने स्वर्ण की वर्षा की (२) पांच वर्णों के पुष्पों की वर्षा की (३) वस्त्रों की वृष्टि की (४) दुंदुभियां बजाई (५) आकाश में 'अहोदान अहोदान' की घोषणा की ॥४९॥

मूलम्-तए णं से समणे भगवं महावीरे तओ गामाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता सेयंबियाए नयरीए मज्झं मज्झेणं विहरमाणे जेणेव सुरहिपुरं णयरं तेणेव उवागच्छइ। तए णं महारण्णे सुण्णागारे रत्तीए काउसग्गे ठिए। तत्थ णं भगवओ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि माई मिच्छादिट्ठी एगे संगमाभिहे देवे अंतियं पाउब्भूए। तए णं से देवे आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसिमाणे काउसग्गट्ठियं पहुं एवं वयासी–हे भो भिक्खू! अपत्थियपत्थया! सिरिहिरि-

धिइकित्तिपरिवज्जिया ! धम्मकामया ! पुण्णकामया ! सग्गकामया ! मोक्ख-कामया ! धम्मकंखिया धम्मापिवासिया ! णो णं तुमं ममं जाणासि ? अहं तुमं धम्माओ परिभंसेमि 'त्ति कट्टु पउरं रयपुंजं उप्पाडिय पहुस्स सासोच्छासं निरुंधइ। तह वि पहुं अक्खुद्ध दट्ठूणं पच्छा से तिक्खतुंडाओ महापिवीलियाओ विउव्विय ताहिं दंसावेइ, निदंसावेइ, उवदंसावेइ तेणं पहुसरीराओ पबलरुहिरधारा निस्सरइ, तहवि पहू नो चलेइ। तओ पच्छा तिक्ख विस-भरियकंटयाइं विच्छियसयसहस्साइं विउव्विय पहुं उवसग्गेइ। पच्छा तेण विगरालसुंडे तिक्खदंते दंती विउव्विए। से णं सुंडीए भयवं उट्ठाविय अहे पाडेइ, तओ छुरियतिक्खदंतग्गेण विदारिय पाएहिं मद्देइ। तओ से भयभेरवेण पिसायरूवेण भीसेइ। तओ सीहं विउव्विय पहू सरीरं फालेइ। तए णं भगवओ

उपकाराप-
कार विषये
भगवतः
समभावः

उवरिं महाभारं लोहमयं गोलयं पक्खिवेइ। एवं सप्परिच्छमूयरभूयपेयाइ कएहिं णाणाविहेहिं उवसग्गेहिं उवसग्गिओऽवि भगवं अविचलिए अकंपिए अभीए अतसीए अत्तत्थे अणुव्विग्गे अक्खुभिए असंभंते तं उज्जलं महं विउलं घोरं तिव्वं चंडं पगाढं दुरहियासं वेयणं समभावेण सम्मं सहेइ खमेइ तितिक्खेइ अहियासेइ नो णं मणसा वि तस्स असुहं चिंतेइ, तुसिणीए धम्मज्झाणोवगए चेव विहरइ। एवं से संगमं देवं जणवयविहारं विहरमाणं भगवं पच्छा गामिय छम्मासं जाव उवसग्गीय तहावि बहुस्स वज्जरिसह नारायसंघयणत्तणेण न पाणहाणी जाया। एवं णं विहरमाणे भगवं संवच्छरं साहियं मासं सचेलए, तओ परं एकया हेमंते भगवं देवदूसं पासे ठवित्ता काउसग्गे ठिए तं समए एगो सीयपीडिओ जणो आगमीय देवदूसं वत्थं गहिय गओ, अओ भगवं

उपकारापकार विषये भगवतः समभावः

अचेलए होत्था।

तए णं से समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे बीयं चाउम्मासं रायगिहस्स णयरस्स नालंदाभिहाणे पाडगे मासमासक्खमणतवेणं ठिए। तत्थ णं पढममासक्खमणपारणगे विजयसेट्ठिणा भगवं पडिलाभिए१। एवं बितियपारणगे णंदसेट्ठिणा, तइयपारणगे सुणंदसेट्ठिणा, चउत्थपारणगे बहुलमाहणेण पडिलाभिए संसारेपरित्तीकए। सव्वत्थ पंचदिव्वाइं पाउब्भूयाइं। एवं तइयं चाउम्मासं चंपाए नयरीए दुदुमासक्खमणेण ठिए३। चउत्थं चाउम्मासं चउम्मासक्खमणेणं पिट्ठचंपाए ठिए४। पंचमं चाउम्मासं भद्दिलपुरम्मि नयरे नाणाविहाभिग्गह जुत्तेणं चाउम्मासक्खमणेणं ठिए५। छट्ठं पुण चाउम्मासं भद्दिलपुरम्मि णयरे नाणाविहाभिग्गहजुत्तेणं चाउम्मासियतवेणं ठिए ६। सत्तमं

चाउम्मासं आलंभियाए णयरीए चाउम्मासियतवेण ठिए ७। अट्ठमं चाउम्मासं रायगिहे णयरे चाउम्मासियतवेण ठिए ८॥५०॥

शब्दार्थ—[तएणं से समणे भगवं महावीरे तओ गामाओ निग्गच्छइ] उसके बाद श्रमण भगवान् महावीर उस उत्तर वाचाल गांव से बाहर निकलते हैं [निग्गच्छित्ता सेयंबियाए नयरीए मज्झं मज्झेण विहरमाणे जेणेव सुरहिपुरं णयरं तेणेव उवागच्छइ] निकलकर श्वेताम्बिका नगरी के बीचों बीच से चलकर जहां सुरभिपुर नामका नगर था वहीं पधारते हैं [तए णं महारण्णे सुण्णागारे रत्तीए काउसग्गे ठिए] और एक महारण्य में जाकर सूने घर में रातभर का कायोत्सर्ग करके स्थित हो गये। [तत्थ णं भगवओ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि माई मिच्छादिट्ठी एगे संगमाभिहे देवे अंतियं पाउब्भूए] वहां मध्यरात्रि के समय मायी मिथ्यादृष्टि संगम नामक एक देव भगवान् के निकट प्रकट हुआ [तए णं से देवे आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे

काउस्सग्गट्ठियं पहुं एवं वयासी] उसके बाद वह देव शीघ्र ही रुष्ट हो गया। क्रुद्ध, कुपित रौद्राकार धारक और दांत पीसता हुआ वह देव कायोत्सर्ग में स्थित भगवान् महावीर से इस प्रकार बोला—[हं भो भिक्खू! अपत्थियपत्थया! सिरिहिरी—धिइ—किति परिवज्जिया] अरे भिक्षु! मौत की कामना करनेवाले! श्री, ह्री धृति और कीर्ति से शून्य! [धम्मकामया] धर्म की अभिलाषा करने वाला [पुण्णकामया] पुण्य की कामना वाला [सग्गकामया] स्वर्ग का अभिलाषी [मोक्खकामया] मोक्ष का इच्छुक [४ धम्मपिवासिया] धर्म का पिपासु ४ [नो णं तुमं ममं जाणासि?] तू मुझे नहीं जानता है? [अहं तुमं धम्माओ परिभंसेमि] देख, मैं तुझे अभी धर्म से भ्रष्ट करता हूं [त्ति कट्टु] ऐसा कह कर [पउरं रयपुंजं उप्पाडिय पहुस्स सासोच्छासं निरुंधइ] उसने विशाल धूल का पटल उडाकर भगवान् के श्वासोच्छ्वास को रोक दिया [तह वि पहुं अक्खुद्धं दट्ठु णं पच्छा से तिक्खतुंडाओ महापिवीलियाओ विउव्विय ताहिं

उपकाराप-
कारविषये
भगवतः
समभावः

दंसावेइ निदंसावेइ, उवदंसावेइ] तब भी भगवान् बर्धमान स्वामी को क्षुब्ध हुआ न देखकर उसने तीखे मुखवाली बडी बडी चीटियों की विकुर्वणा करके उन से डंसवाया, खूब डंसवाया और पूरी तरह डंसवाया। [तेण पहुसरीराओ पबलरुहिरधारा निस्सरेइ, तहवि पहू नो चलइ] ससे प्रभु के शरीर से रुधिर की प्रबल धारा वह निकली, फिर भी प्रभु चलायमान न हुए। [तओ पच्छा तिक्खविसभरियकंटयाइं विच्छिय सयं सहस्साइं विउव्विय पहुं उवसग्गेइ] उसके बाद उग्र विष से परिपूर्ण कांटों वाले लाखों बिच्छुओं की विकुर्वणा कर प्रभु को उपसर्ग करवाया [पच्छा तेण विगरालसुंडे तिक्खंदंते दंती विउव्विए] उसके बाद भयानक सूंड वाले और तीखे दांतों वाले हाथी की विकुर्वणा की [से णं सुंडाए भयवं उद्धाविय अहे पाडइ] उस हाथी ने सूंड से भगवान् को ऊपर उठा कर नीचे गिराया [तओ छुरियतिक्खदंतग्गेण विदारिय पाएहिं मद्देइ] और फिर छुरी की तरह तीक्ष्ण दांतों से विदारण कर के पावों से कुचला [तओ

उपकारापकार विषये भगवतः समभावः

से भयभेरवेण पिसायरूवेण भीसेइ] उसके बाद उस देवने भयंकर पिशाच का रूप बनाकर डरवाया [तओ सीहं विउव्विय पहुसरीरं फालेइ] फिर सिंह की विकुर्वणा करके प्रभु के शरीर को फाडा [तए णं भगवं उवरिं महाभारं लोहमयं व गोलयं पक्खिवेइ] उसके बाद भगवान् के ऊपर बहुत भारी लोहे का गोला फैंका। [एवं सप्परिच्छसूयरभूयपेयाइकएहिं नाणाविहेहिं उवसग्गेहिं उवसग्गिओऽवि भगवं अविचलिए] इसी प्रकार सर्प शूकर, भूत, प्रेत, आदि द्वारा किये गये नाना प्रकार के उग्र उपसर्गों से भी भगावान् विचलित न हुए [अकंपिए अभीए अतसिए अत्तत्थे अणुव्विग्गे अक्खुभिए असंभंते तं उज्जलं महं विउलं घोरं तिव्वं चंडं पगाढं दुरहियासं वेयणं समभावेण सम्मं सहेइ] वे अकंपित, अभीत अत्रासित, अत्रस्त, अनुद्विग्न अक्षुभित और असंभ्रांत रहे। उन्होंने उस उज्ज्वल, महती, विपुल, घोर; तीव्र, चण्ड, प्रगाढ, एवं दुस्सह वेदना को समभाव से सम्यक् प्रकार से सहन किया [खमेइ तिति-

उपकारापकार विषये भगवतः समभावः

क्खेइ अहियासेइ नो णं मणसावि तस्स असुहं चिंतेइ] क्षमा किया, तितिक्षा की और अध्यास किया। मन से भी उस देव का अशुभ नहीं सोचा [तुसिणीए धम्मज्झाणोवगए चेव विहरइ] मौन भाव से धर्मध्यान में लीन होकर ही विचरते रहे। [एवं से संगमे देवे जणवयविहारं विहरमाणं भगवं पच्छागमिय छम्मासं जाव उवसग्गीअ] इस प्रकार उस संगम देव ने जनपद विहारकरते हुए भगवान् के पीछे जाकर छमास तक उपसर्ग किये [तहावि पहुस्स वज्जरिसहनारायसंघयणत्तणेय न पाणहाणी जाया] तथापि प्रभु का वज्र ऋषभनाराच संहनन होने से प्राणहानि नहीं हुई। [एवं णं विहरमाणे भगवं संवच्छरं साहियमासं सचेलए] इस प्रकार विचरण करते हुए भगवान् एकमास अधिक एक वर्ष पर्यन्त सचेलक रहे [तओ परं] तत्पश्चात् [एकया] एक समय [हेमंते] हेमन्त ऋतु के समय [भगवं] भगवान् [देवदूसं] देवदूष्य वस्त्र को [पासे ठवित्ता] बाजू पर रखकर के [काउसग्गे ठिए] कायोत्सर्ग—ध्यान करने में

बैठे [तं समयं] उस समय [एगो सीय पीडिओजणो] शीत से पीडित कोइ मनुष्य [आगमीय] आकर [देवदूसं वत्थं गहिय गओ] देवदूष्य वस्त्र को उठाले गया [अओ अचेलए होत्था] अतः तत्पश्चात् फिर से देवदूष्य वस्त्र ग्रहण न करने से भगवान् अचेलक हो गये।

[तए णं से समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे] उसके बाद श्रमण भगवान् महावीर पूर्ववर्ती तीर्थंकरों की परम्पराका अनुसरण करते हुए ग्रामानुग्राम विचरते हुए [बीयं चाउम्मासं रायगिहस्स णयरस्स नालंदाभिहाणे पाडगे मासमासक्खमणतवेणं ठिए] दूसरे चोमासे में राजगृह नगर के नालंदा नामक पाडे में मासखमण तपस्या के साथ स्थित हुए। [तत्थ णं पढममासक्खमणपारणगे विजयसेट्ठिणा भगवं पडिलाभिए] वहां पहले मासखमण के पारणे के दिन विजय सेठ ने आहारदान दिया। [एवं बितियपारणगे णंदसेट्ठिणा] इसी प्रकार दूसरे पारणक के दिन नन्द सेठ ने [तइय पारणगे सुनंदसेट्ठिणा] तीसरे पारणक के दिन सुनन्द सेठ ने और

[चउत्थ पारणगे बहुलमाहणेण पडिलाभिए] चौथे पारणक के दिन कोल्लाग सन्निवेश में बहुल ब्राह्मणने आहार दिया। [संसारे परित्तीकए] और अपना संसार अल्प किया [सव्वत्थ पंच दिव्वाइं पाउब्भूयाइं] सब जगह पांच दिव्य प्रकट हुए । [एवं तइयं चाउम्मासं चंपाए नयरीए दुदुमासक्खमणेण ठिए ३] इसी प्रकार प्रभु तीसरे चातुर्मास में चंपा नगरी में दो दो मास खमण कर के स्थित हुए [चउत्थं चाउम्मासं चउम्मासक्खमणेण पिट्ठिचंपाए ठिए] चौथे चातुर्मास में चारमास के चौमासी तप के साथ पृष्ठचंपा में स्थित हुए [पंचमं चाउम्मासं भद्दिलपुरम्मि नयरे नानाविहाभिग्गहजुत्तेण चाउम्मासक्खमणेणं ठिए] पांचवें चौमासे में भद्दिलपुर नगर में चौमासी तपस्या एवं नानाविध अभिग्रह के साथ स्थित हुए [छट्ठं पुण चाउम्मासं भद्दिलपुरम्मि नगरे नानाविहाभिग्गहजुत्तेणं चाउमासक्खमणेणं ठिए] छठे चातुर्मास में भी भद्दिलपुर नगर में विविध प्रकार के अभिग्रह के एवं चौमासी तप के साथ स्थित हुए [सत्तमं चाउम्मासं आलंभियाए

णयरीए चाउम्मासिय तवेण ठिए] सातवें चौमासे में आलंभिका नगरी में चौमासी तप के साथ स्थित हुए [अट्ठमं चाउम्मासं रायग्गिहे नयरे चाउम्मासिय तवेण ठिए] आठवें चौमासे में राजगृह नगर में चौमासी तप के साथ स्थित हुए ॥५०॥

भावार्थ—नागसेन गाथापति के घर आहार ग्रहण करने के श्रमण भगवान् महावीर उस उत्तरवाचाल गांव से बाहर निकले निकल कर श्वेताम्बिका नगरी के बीचों बीच से चलकर जहां सुरभिपुर नामका नगरथा वहीं पधारते हैं। वहां पर महा अटवी में जाकर एक शून्य मकान में सम्पूर्ण रात्री तक के कायोत्सर्ग में स्थित हुए। वहां भगवान् महावीर स्वामी के समीप, पूर्वरात्री–अपररात्रिकाल के समय अर्थात् मध्यरात्री में एक मायावी और मिथ्यादृष्टि संगम नामक देव प्रकट हुआ। वह एकदम ही लाल नेत्रोंवाला हो गया, रूष्ट हो गया क्रुद्ध हो गया और भयानक आकार से युक्त हो गया। क्रोध से जलते हुए उस देव ने कायोत्सर्ग में स्थित प्रभु से यह वचन कहे–'हं भो! इस प्रकार के अपमान-

सूचक संबोधन के साथ वह बोला अरे मृत्यु की इच्छा करने वाले! अरे लक्ष्मी, लज्जा, धैर्य और ख्याति से हीन। अरे धर्म पुण्य स्वर्ग और मोक्ष की कामना करने वाले! अरे धर्म पुण्य स्वर्ग और मोक्ष की लालसा करनेवाले! अरे धर्म पुण्य स्वर्ग और मोक्ष के प्यासे! तू मुझ संगम देव को नहीं जानता? ले, मैं तुझे धर्म से भ्रष्ट करता हूं।' इस प्रकार कहकर उसने बहुत बड़ा धूलि–समूह वैक्रिय शक्ति से उडाकर प्रभु के श्वासोच्छ्वास का निरोधकर दिया। इतने पर भी प्रभु को क्षोभरहित देखकर उसने तीखे मुखवाली लाखों चीटियों की विकुर्वणा करके प्रभु को उनसे कटवाया, खूब कटवाया और पूरी तरह सभी अंगों में कटवाया। इससे प्रभु के शरीर से रुधिर की तेज धारा बहने लगी। फिर भी भगवन् कायोत्सर्ग से विचलित नहीं हुए! तब संगम देव ने भयानक सूंडवाले और तीखे दांतोवाले हस्ती की विकुर्वणा की। संगम देव द्वारा वैक्रिय शक्ति से उत्पन्न किये गये हाथी ने भगवान् को उपर ऊठाकर नीचे

धरती पर पटका। नीचे पटककर उसने छुरों के समान तीक्ष्ण दांतों के अग्रभाग से प्रभु के शरीर को विदारण करके पैरों से कुचला फिर भी भगवान् कायोत्सर्ग से विचलित न हुए। तब भगवान् को अडग देखकर संगम देव ने अत्यंत ही भयानक पिशाच का रूप बनाकर उन्हें भयभीत करना चाहा फिर भी भगवान् चलायमान न हुए। तब प्रभु को क्षोभरहित देखकर सिंह की विकुवर्णा की और उस सिंह से प्रभु के शरीर को विदारण करवाया। इतने पर भी प्रभु कायोत्सर्ग से लेश मात्र भी नहीं डिगे। तब उसने भगवान् ऊपर अत्यधिक भारवाला लोहे का गोला तेजी के साथ फैंका, इस पर भी भगवान् अकंप बने रहे। इसी प्रकार जैसा कि पहले शूलपाणि यक्ष के उपसर्ग–वर्णन में कहा गया है, उसी प्रकार इस संगम देव ने भी सांप, वीछु, रींछ, शूकर, भूत, प्रेत आदि को वैक्रियशक्ति से उत्पन्न करके भगवान् को उपसर्ग दिया, मगर भगवान् कायोत्सर्ग से चलित न हुए, कम्पित न हुए, निर्भय रहे, त्रास, को प्राप्त न

हुए, अतएव त्रास से वर्जित रहे या 'अत्तत्थ' अर्थात् आत्मस्थ ही बने रहे, उद्वेगहीन रहे, क्षोभहीन रहे, विस्मय हीन रहे। इन उपसर्गों से उत्पन्न हुई ज्वलंत, महान्, प्रचुर, भयंकर, उग्र, कठोर, गाढी, एवं दुस्सह वेदना को समाधान से सहन किया उन्होंने न किसी को प्रिय, न किसी को द्वेष्य-द्वेष का पात्र-समझा। अपकारी और उपकारी पर समान बुद्धि रखी। इस वेदना को भगवान् ने सम्यक् प्रकार से निर्भय भाव से सहन किया, क्रोध भाव से क्षमा किया। दीनता न लाकर तितिक्षा की, निश्चल रहकर अध्यास किया। मन से भी संगम देव का अनिष्ट नहीं सोचा, बल्कि मौन धारण करके धर्मध्यान में मग्न ही रहे। इस प्रकार जनपद में विचरते हुए भगवान् के पिछे -पिछे लगकर संगमदेवने छह महीनों तक उपसर्ग किया। परन्तु भगवान् वज्रऋषभनाराचसंहनन वाले होने से उनकी प्राणहानि नहीं हुई। इस प्रकार जनपद में विचरते हुए भगवान् वीर स्वामी एक मास अधिक एक वर्ष तक, अर्थात् तेरह मास तक

देवदूष्य वस्त्र को धारण किये रहे–सचेलक रहे, तत्पश्चात् एक समय हेमंत ऋतुके समय में भगवान् देवदूष्य वस्त्र को बाजू पर रखकर कायोत्सर्ग में स्थित थे, उस समय शीत से पीडित कोई मनुष्य आकर भगवान् ने बाजू पर रखा हुवा उस देवदूष्य वस्त्र को लेकर चला गया अतः उसके पीछे देवदूष्य वस्त्र को पुनः धारण न करने से भगवान् अचेल हो गये।

अचेलक होने के पश्चात् भगवान् महावीर ने पूर्ववर्त्ती जिनों तीर्थंकरों–की परम्परा का पालन करते हुए और एक गांव से दूसरे गांव विचरते हुए, दूसरे चौमासे में राजगृह नगर के नालन्दा नामक पाडे में, मास–मास खमण करके स्थित हुए। पहले मासखमण के पारणे में विजय–सेठ ने भगवान् को आहार–दान दिया। (१)। विजय सेठ के ही समान, दूसरे मासखमण के पारणे में नन्द सेठ ने, आहार वहराया। (२) तीसरे मास खमण के पारणे में सुनन्द सेठ ने (३)। और चौथे मासखमण। के पारणे के दिन कोल्लाकसन्निवेश में बहुल ब्राह्मण ने भगवान् को वहराया, ये चारों ने अपना

संसार को अल्प किया। (४), इन चारों पारणों के अवसर पर स्वर्ण वर्षा आदि पांच-पांच दिव्य, पदार्थ प्रकट हुए। इसी प्रकार तीसरा चातुर्मास चम्पा नगरी में हुआ। इस चार्तुमास में भगवान् ने दो-दो मास का पारणा किया ३। चौथे चौमासे में पृष्ठ चम्पा नगरी में रहे। वहां चौमासी तप किया ४। पांचवां चौमासा भद्रिका नगरी में किया, और वहां भी चौमासी तप किया। फिर भगवान् ने भद्रिका नगरी में नाना प्रकार के अभिग्रहों से युक्त चौमासी तपस्या के साथ छठा चौमासा किया। सातवां चर्तुमास आलम्भिका नगरी में चौमासी तप से व्यतीत किया। आंठवां चर्तुमास राजगृह नगर में चौमासी तपश्चरण के साथ किया ॥५०॥

मूलम्—तए णं समणे भगवं महावीरे रायगिहाओ नयराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता कढिणकम्मक्खवणट्ठं अणारियदेसं समणुपत्ते। तत्थ णं नवमं चाउम्मासं चाउम्मासतवेण ठिए। तत्थ णं भगवं इरियासमिइसमिए

इत्थीजणकए भोगपत्थणारूवे अणुकूलपरीसहे मिलिच्छजणकए पडिकूल परीसहे य सहमाणे तितिक्खेमाणे अहियासेमाणे तुसिणाए चेव वेरग्गमग्गे विहरीअ। केणवि वंदिओ णमंसिओ निंदिओ तिरक्किओ वा न तुट्ठे न रुट्ठे समभावेण भावियप्पा चेव चिट्ठीअ। छक्कायपरिवालगो भगवं सव्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता सयसयकम्मप्पभावेण चाउरंतसंसारकंतारे परिभमंति त्ति संसारवेचित्तं विभावेमाणे विहरीअ। दव्वभावोवाहिपडिया अण्णा-णिणो जीवा पावाइं कम्माइं बंधंति त्ति कट्टु भगवं पावकम्म–कलावाओ परम्मुहो आसी। बालाय भगवं दट्ठूणं लट्ठिमुट्ठीहिं हणियहणियकंदिंसु। अणारिया य भगवं दंडेहिं ताडिंसु केसग्गे करिसिय करिसिय दुक्खं उप्पाइंसु, तहवि भगवं नो दोसीअ। अगारत्थेहिं संभासिओवि भगवं तेहिं सद्धिं परिच्चयं

परिच्चज्ज मोणभावेण सुहज्झाणनिमग्गे चेव विहरीअ। भगवं सहिउं असक्के परिसहोवसग्गे न गणीअ नच्चगीएसु रागं न धरीअ। दंडजुद्धमुट्ठिजुद्धाइयं सोच्चा न उक्कंठीअ। कामकहासंलीणाणं इत्थीजणाणं मिहो कहासंलावे सुणिय भगवं रागदोसरहिए मज्झत्थभावेण असरणे एव विहरीअ। घोराइघोरेसु संकडेसु किंचिवि मणोभावं न विगाडिय संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरीअ। भगवं परवत्थमवि न सेवित्था गिहत्थपाए न भुंजित्था असणपाणस्स मायन्ने रसेसु अगिद्धे अपडिण्णे आसी। अच्छिपि पमज्जीअ नोऽविय गायं कंडूईअ। विहरमाणे भगवं तिरियं पिट्ठिओ नो पहीअ। सरीरप्पमाणं पहं अग्गे विलोइअ ईरियासमिईए जयमाणे पंथपेही विहरीअ। सिसिरंमि बाहू पसारित्तु परक्कमीअ न उण बाहू कंधेसु अवलंबीअ। अण्णे मुणिणोऽवि एवमेव रीयंतु त्ति

कट्टु माहणेण अपडिन्नेण भगवया एस विहि बहुसो अणुक्कंतो ॥८१॥

शब्दार्थ—[तएणं समणे भगवं महावीरे रायगिहाओ णयराओ पडिनिक्खमइ] इसके बाद श्रमण भगवान् महावीरस्वामी राजगृह नगर से निकले [पडिनिक्खमित्ता कढिणकम्मक्खवणट्ठं अणारियदेसं समणुपत्ते] और निकलकर कठिन कमा का क्षय करने के लिए अनार्यदेश में पधारे [तत्थ णं नवमं चाउम्मासं चाउम्मासतवेण ठिए] वहां चौमासी तप के साथ चौमासे में स्थित हुए [तत्थ णं भगवं इरियासमिइसमिए इत्थीजणकए भोगपत्थणारूवे अनुकूलपरिसहे] वहां ईर्यासमिति से युक्त भगवान् स्त्रियों द्वारा किये गये भोग प्रार्थनारूप अनुकूल परीषहों को [मिलिच्छजणकए पडिकूल-परिसहे य सहमाणे] म्लेच्छाजनों द्वारा किये गये प्रतिकूल परीषहों को सहन करते हुए [तितिक्खेमाणे अहियासेमाणे तुसिणीए चेव वेरग्गमग्गे विहरीअ] तितिक्षण करते हुए अध्यास करते हुए मौनयुक्त हो वैराग्यभाव से मार्ग में विचरते रहे। [केणवि

वांदिओ णमंसिओ निंदिओ तिरक्किओ वा न तुट्ठे न रुट्ठे समभावेण भावियप्पा चेव चिट्ठीय] किसी ने वन्दना की नमस्कार किया तो न तुष्ट हुए। किसी ने निन्दा की या तिस्कार किया तो रुष्ट न हुए। समभाव सें भावितात्मा होकर ही रहे। [छक्काय-परिवालगो भगवं 'सव्वेपाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता सयसयकम्मप्पभावेण चाउरंतसंसारकंतारे परिभमंति] षट्काय के रक्षक भगवान् सभी प्राण सभी भूत, सभी जीव और सभी सत्त्व, अपने-अपने कर्मों के प्रभाव से चारगतिरूप संसार अटवी में परिभ्रमण कर रहे हैं' ['-त्ति संसारवेचित्तं विभावेमाणे विहरीअ] इस प्रकार संसार की बिचित्रता का विचार करते हुए विचरे [दव्वभावोवाहिपडिया अण्णाणिणो जीवा पावाइं कम्माइं बंधंति त्ति कट्टु भगवं पावकम्म-कलावाओ परम्मुहो आसी] द्रव्य और भाव उपाधि में पडे हुए अज्ञानी जीव पाप कर्मों का बन्ध करते हैं। ऐसा सोचकर भगवान् पाप समूह से विमुख थे। [बाला य भगवं दट्टु णं लट्ठि-मुट्ठीहिं हणिय हणिय

कंदिंसु] अनार्य देश के बालक भगवान् को देखकर लाठी और मुट्ठी से मार–मार कर हल्ला करते थे चिल्लाते थे [अणारिया य भगवं दंडेहिं तार्डिसु] अनार्यलोग भगवान् को डंडों से मारते थे। [केसग्गे करिसिय करिसिय दुक्खं उप्पाइंसु तहवि भगवं नो दोसीअ] उनके बालों के अग्रभाग को खींच खींच कर कष्ट उत्पन्न करते थे, फिर भी भगवान् ने उनपर द्वेष नहीं किया [अगारत्थेहिं संभासिओवि भगवं तेहिं परिचयं परिच्चज्ज मोणभावेण सुहज्झाणनिमग्गे चेव विहरीअ] गृहस्थों के भाषण करने पर भी भगवान् उनके साथ परिचय का परित्याग करते हुए मौन भाव से शुभध्यान में मग्न ही रहते थे [भगवं सहिउं असक्के परीसहोवसग्गे न गणीअ] जिस परीषह को सहन करना अशक्य था उनको भी भगवान् ने कुछ नहीं गिना [नच्चगीएसु रागं न धरीअ] नृत्य और गीतों में राग धारण नहीं किया [दंडजुद्धमुट्ठिजुद्धाइयं सोच्चा न उक्कंठीअ] दण्डयुद्ध और मुष्टि युद्ध आदि की बात सुनकर उत्कण्ठा प्रगट नहीं की [काम कहा-

संलीणाणं इत्थी जणाणं मिहो कहासंलावे सुणिय भगवं रागदोसरहिए मज्झत्थभावेण असरणे एव विहरीअ] काम-कथा में लीन स्त्री जनों की आपस की बाते सुनकर भगवान् रागद्वेष रहित, मध्यस्थ भाव से अशरण [आश्रय रहित] ही विहार करते रहे [घोराइघोरेसु संकडेसु किंचि वि मणोभावं न विगडिय संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरीअ] घोर और अति घोर संकट आने पर भी लेश भर भी मन के भाव को विकृत न करते हुए संयम और तप से आत्मा को वासित करते हुए विचरे [भगवं परवत्थमवि न सेवित्था] भगवान् ने परवस्त्र का सेवन नहीं किया। [गिहत्थपाए न भुंजित्था] और गृहस्थ के पात्र में भोजन नहीं किया [असणपाणस्स मायण्णे रसेसु अगिद्धे अपडिन्ने आसी] वे भोजन-पाणी की मात्रा के ज्ञाता थे, रसों में अनासक्त थे, अप्रतिज्ञ-इहलोक और परलोक की कामना से रहित थे [अच्छिंपि नो पमज्जिअ, नोऽवि य गायं कंडूईय] उन्हीं ने कभी आंख तक की भी सफाई नहीं की और न काया को ही खुज-

लाया [विहरमाणे भगवं तिरियं पिट्टओ य नो पेहीय] विहार करते समय न वे इधर उधर देखते थे, न पीछे की ओर देखते थे [सरीरप्पमाणं पहं अग्गे विलोइय इरिया-समिईए जायमाणे पंथपेही विहरीअ] सामने शरीरप्रमाणमार्ग को देखते हुए ईर्यासमिति पूर्वक यतना करते हुए चलते थे [सिसिरंमि बाहू पसारित्तु परक्कमीअ] शिशिरऋतु में दोनों भुजाएं फैलाकर संयम में पराक्रम प्रकट करते थे। [नउण बाहू कंधेसु अवलं-बीअ] भुजाओं को अपने कंधों पर नहीं रखते थे [अण्णे मुणिणोऽवि एवमेव रीयंतु त्ति कट्टु माहणेण अपडिन्नेण भगवया एस विही बहुसो अणुक्कंतो] अन्य मुनि भी इसी प्रकार विचरें, यह सोचकर अप्रतिज्ञ–कामना रहित माहन भगवान् वर्धमान ने अनेक बार इसी विधि का अनुसरण किया ॥५१॥

भावार्थ—राजगृह नगर में आठवां चातुर्मास बिताने के बाद श्रमण भगवान् महावीर ने राजगृह नगर से विहार किया। कठोर कर्मों का क्षय करने के लिए विचरते

हुए प्रभु अनार्य देश में पधारे। वहां चौमासी तप के साथ नौवां चौमासा किया। इर्यासमिति और उपलक्षण से भाषासमिति आदि सभी समितियों से सम्पन्न तथा तीन गुप्तियों से गुप्त भगवान् स्त्रीजनों द्वारा की गई भोग–प्रार्थनारूप अनुकूल परीषहों को तथा अनार्य जनों द्वारा कृत तर्जना–ताड़ना आदि रूप प्रतिकूल परीषहों को क्रोध के बिना सहते हुए, दीनता के विना तितिक्षण करते हुए, निश्चल भाव से अध्यास करते हुए मौन का अवलम्बन किये हुए ही निरतिचार चारित्र के मार्ग में तत्पर रहे। किसी मनुष्य ने उन्हें वन्दन किया और नमस्कार किया तो वन्दना करने वाले और नमस्कार करने वाले पर वे यत्किंचित् भी तुष्ट–प्रसन्न नहीं हुए, किसी ने निन्दा की–गर्हा की, अनादर किया, तो ऐसा करने पर जरा भी रूष्ट या अप्रसन्न नहीं हुए। उन्होंने सभी पर समान भाव धारण किया। 'मेरे लिए न कोई द्वेष का पात्र है, न कोई राग का पात्र है' इस प्रकार की भावना से आत्मा को भावित करते रहे। षड्जीवनिकाय के

रक्षक श्री महावीर प्रभु 'सभी द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय, और चतुरिन्द्रिय रूप प्राण, वनस्पतिकाय रूप भूत, पंचेन्द्रियरूप जीव, पृथ्वीकाय–अप्काय–तेजस्काय–वायुकायरूप सत्व, अपने–अपने कर्म के परिपाक के अनुसार चार गति रूप संसार के दुर्गम मार्ग में परिभ्रमण कर रहे हैं, अर्थात् कभी नारक, कभी तिर्यञ्च, कभी नर और कभी अमर [देव] रूप से जन्म–मरण कर रहे हैं' इस प्रकार संसार की भयावह विचित्रता का विचार करते हुए संयम–मार्ग में विचरते रहे। हिरण्य–सुवर्ण आदि द्रव्य–ऊपाधि, तथा आत्मा की दुष्परिणति रूप भाव–उपाधि–में आसक्त अज्ञानी प्राणी प्राणातिपात आदि पाप कर्मों का बन्ध करते हैं, ऐसा जानकर श्री वीर भगवान् पापों से विमुख अर्थात् निवृत्त थे। अनार्थ देश के लड़के श्री वीर प्रभु को देखकर लट्ठियों मुट्ठियों से मार–मार कर बार–बार ताड़ना तर्जना करके अपना अपराध छिपाने के लिए उलटे रोने लगते थे। अनार्य–म्लेच्छ लोग भगवान् को डंडों से मारते थे, बार–बार बालों के अग्रभाग को

खींच-खींचकर सताते थे। फिर भी भगवान् ने उन अनार्यों के प्रति जरासाभी द्वेष नहीं किया और गृहस्थों द्वारा संभाषण करने पर भी भगवान् उनके साथ जाति कुल आदि संबंधी परिचय नहीं करते थे। मौन धारण किये हुए धर्म ध्यान में लीन होकर विहार करते थे। वीर भगवान् ने दुस्सह परीषहों [भूख—प्यास आदि की बाधाओं] तथा उपसर्गों [देवों, मनुष्यों तथा तिर्यंचों द्वारा कृत उपद्रव] को कुछ न समझा, अर्थात्—समभाव से सहन किया। नृत्य—गीतों में राग धारण नहीं किया। कहीं दण्ड-युद्ध हो रहा हो या मुष्टिदण्ड [घूंसेबाजी] हो रहा हो तो उसका वृत्तान्त सुनकर कभी उत्कंठा नहीं उत्पन्न की। काम संबंधी बातचीत करने में प्रवृत्त स्त्रीजनों के पारस्परिक वार्तालाप को सुनकर भगवान् राग—द्वेष से रहित ही बने रहे और मध्यस्थ भाव से, आश्रय रहित होकर विचरे। भयानक और अत्यंत भयानक संकट आने पर भी भगवान् चित्तवृत्ति को तनिक भी विकारयुक्त न करके सतरह प्रकारके संयम और बारह

प्रकार के तप की आराधना से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे। भगवान् ने अत्यधिक शीत पडने पर भी, शीत निवारण के लिए पराये वस्त्र को कभी धारण नहीं किया, तथा गृहस्थ के पात्र में भोजन नहीं किया। आहार और पानी के परिमाण को जानने वाले भगवान् मधुर आदि रसों में गृद्धि से सर्वथा रहित थे। इहलोक और परलोक संबंधी प्रतिज्ञा से रहित थे; अर्थात् उन्हें न इस लोक संबंधी कोइ कामना थी, न परलोक संबंधी ही। वे सर्वथा कर्म निर्जरा की भावना से उग्र तप संयम की आराधना करने में तत्पर थे। उन्होंने नेत्रों को भी कभी जल से साफ नहीं किया। खुजली आने पर भी शरीर को नहीं खुजलाया। जनपद विहार करते हुए भगवान् ने कभी तिरछा-इधर-उधर, या पिछे की तरफ नहीं देखा। सामने की तरफ शरीर परि-मित-साढे तीन हाथ भूमि-मार्ग को देखते हुए विहार करते थे। शीत काल में अपनी दोनों भुजाएँ। फैलाकर संयम में आत्मबल का प्रयोग करते थे, कंधो पर

भुजाएँ नहीं स्थापित करते थे। भगवान् ने इस प्रकार का जो–उत्कृष्ट और अनुपम आचार पालन किया, उसका हेतु बतलाते हैं-अन्य मुनिजन भी इस प्रकार विहार करें, इस हेतु से अहिंसक और अप्रतिज्ञ [इहलोक–परलोकसंबंधी प्रतिज्ञा से रहित] भगवान् ने मूलगुणों एवं उत्तरगुणों की आराधना आचार का बार–बार उत्कर्ष के साथ पालन किया ॥५१॥

भगवओ विहारट्ठाणाणि

मूलम्–कयाइ भगवं आवेसणेसु वा सहासु वा पवासु वा, एगया कयाइ सुण्णासु पणिअसालासु पलियट्ठाणेसु पलालपुंजेसु वा, एगया आगंतुयागारे आरामागारे णगरे वा वसीअ। सुसाणे सुण्णागारे रुक्खमूले वा एगया वसीअ। एएसु ठाणेसु तहप्पगारेसु अण्णेसु ठाणेसु वा एवं वसमाणे समणे भगवं तत्थ तत्थ आहारं आहारेंति

भगवं महावीरे राइंदियं जयमाणे अप्पमत्ते समाहिए झाईअ। तत्थ तस्सुवसग्गा नीया अणेगरूवा य हविंसु, तं जहा-संसप्पगा य जे पाणा ते, अदुवा पक्खिणो भगवं उवसग्गिंसु। पहुरूवमोहियाओ इत्थियाओ य भगवं उवसग्गिंसु। सत्तिहत्थगा गामरक्खगा य किंपि अवयमाणं भगवं चोरसंकाए सत्थाभिघाएण उवसग्गिंसु। भगवंते सव्वे उवसग्गे अहियासीअ। अह य इहलोइयाइं परलोइयाइं अणेगरूवाइं पियाइं अप्पियाइं सद्दाइं, अणेगरूवाइं भीमाइरूवाइं अणेगरूवाइं सुब्भिदुब्भिगंधाइं, विरूवरूवाइं फासाइं सया समिए रइं अरइं अभिभूय अवाई समाणे सम्मं अहियासीअ।

सुण्णागारे राओ काउसग्गे ठियं भगवं कामभोगे सेविउकामा परत्थी सहिया एगचरा समागया पुच्छंति—'कोऽसि तुमं' त्ति, तया कयावि भगवं न

किंपि वयइ तुसिणीए संचिट्ठइ, तया अवायए भगवम्मि कुद्धा रुट्ठा समाणा नाणाविहं उवसग्गं करेंति, तंपि भगवं सम्मं सहीअ। कयावि 'को एत्थ' त्ति पुच्छिए भगवं वदीअ अहमंसि भिक्खू' त्ति सोच्चा स कसाएहिं तेहिं आहच्च–अपसरेहि एत्तो'–त्ति कहिय भगवं अयमुत्तमे धम्मे त्ति कट्टु ततो तुसिणीए चेव निस्सरीअ जंसि हिमवाए सिसिरे पवेयए मारुए पवायन्ते अप्पगे अणगारा निवायं ठाणमेसंति अण्णे 'संघाडीओ' पविसिस्सामोत्ति वयंति एगे य इंधणाणि समादहमाणा चिट्ठंति। केइ पिहिया अइदुक्खं हिमगसंफासं सहिउं सक्खामो त्ति सोयंति, तंसि तारिसगंसि सिसिरंसि दविए भगवं अपडिण्णे समाणे वियडे ठाणे तं सीयं सम्मं अहियासीअ। एस विही 'अण्णे मुणिणो वि एवं रियंतु' त्ति कट्टु अप्पडिन्नेण मइमया भगवया बहुसो अणुक्कंतो ॥८२॥

शब्दार्थ—[कयाइ भगवं आवेसणेसु वा सहासु वा पवासु वा] कभी भगवान् शिल्पकारों की शालाओं में उतरे, कभी सभाओं में, कभी प्रपाओं में [एगया कयाइ सुण्णासु पणियसालासु पलियट्ठाणेसु पलालपुंजेसु वा] कभी सूनी दुकानों में, कभी कारखानों में, कभी पलाल के पुंजों में, [एगया आगंतुयागारे आरामागारे णगरे वा वसीअ] कभी धर्मशालाओं में, कभी आरामगृहों में कभी बगीचों में कभी घरों में कभी नगर में रहते थे तो कभी [सुसाणे सुन्नागारे रुक्खमूले वा एगया वसीअ] स्मशान में शून्य गृहों में और कभीवृक्ष के नीचे रहते थे [एएसु ठाणेसु तहप्पगारेसु अण्णेसु ठाणेसु वा वसमाणे समणे भगवं] इन स्थानों में अथवा इसी प्रकार के अन्य स्थानों में रहते हुवे श्रमण भगवान् [तत्थ तत्थ कालावसरे] वहां पर आहार के योग्य समय पर [आहारं आहरेइ] आहार पाणी करते थे, गृहस्थी के घर पर नहीं एवं [भगवं महावीरे राइंदियं जयमाणे अप्पमत्ते समाहिए झाईअ] भगवान् श्रीमहावीर प्रभु रातदिन यतना करते हुए अप्रमत्त और समाधियुक्त रहे। [तत्थ तस्सुवसग्गा नीया अनेगरूवा य हविंसु तं जहा–] इन स्थानों पर भगवान् को अनेक

प्रकार के उपसर्ग हुए। वे इस प्रकार हैं–[संसप्पगा य जे पाणा ते अदुवा पक्खिणो भगवं उवसग्गिंसु] संसर्पण करनेवाले सर्प आदि जो प्राणी थे, उन्होंने तथा पक्षियों ने भगवान् को उपसर्ग किया। [पहुरूवमोहियाओ इत्थियाओ य भगवं उवसग्गिंसु] प्रभु के रूप पर मोहित होकर स्त्रियों ने प्रभु को उपसर्ग किया [सत्ति हत्थगा गामरक्खगा य किं वि अवयमाणं-भगवं चोरसंकाए सत्थाभिघाएण उवसग्गिंसु) शक्ति नामक शस्त्र हाथ में लिये हुए ग्राम-रक्षक कुछ भी नहीं बोलते हुए भगवान् को चोर समझ कर शस्त्र का आघात करके उपसर्ग देते थे [भगवं ते सव्वे उवसग्गे अहियासीअ] भगवान् ने उन सभी उपसर्गों को अच्छी तरह समभाव से सहन किया [अहय इहलोइयाइं परलोइयाइं अणेगरूवाइं-पियाइं अप्पियाइं सद्दाइं] इह लोग और परलोक संबन्धी अनेक प्रकार के प्रिय एवं अप्रिय शब्दों को [अणेगरूवाइं भीमाइरूवाइं] विविध प्रकार के भयंकर आदि रूपों को [अणेगरूवाइं सुब्भिदुब्भिगंधाइं] भांति भांति की सुगन्ध दुर्गन्ध को [विरूवरूवाइं

फासाइं सया समिए रइं अरइं अभिभूय अवाई समाणे सम्मं अहियासीअ] तथा तरह तरह के स्पर्शों को सदा समितियुक्त, तथा रति अरति का अभिभव करके, मौन रहकर सम्यग् प्रकार से सहन करते रहे।

[सुण्णागारे राओ काउसग्गे ठियं भगवं कामभोगे सेविउकामा परत्थीसहिया एगचरा समागया पुच्छंति–] कभी कभी सूने घरमें रात्रि के समय काम भोग सेवन के की कामना करनेवाले परस्त्री के साथआये हुए जार पुरुष कायोत्सर्ग में स्थित भगवान् से पूछते थे–['कोऽसि तुमं' त्ति] तू कौन है ? [तया कयावि भगवं न किंपि वयइ तुसिणीए संचिट्ठइ] तो भगवान् कभी भी कुछ भी उत्तर नहीं देते थे चुपचाप रहते थे। [तया अवायए भगवम्मि कुद्धा रुट्ठा समाणा नाणाविहं उवसग्गं करेंति] उस समय मौन रहने वाले भगवान् पर वे क्रुद्ध होकर नाना प्रकार के कष्ट उन्हें देते थे [तं पि भगवं सम्मं सहीअ] उस कष्ट को भी भगवान् ने सम्यक् प्रकार सहन किया। [कया वि

'को एत्थ' त्ति पुच्छए भगवं वदीय–अहमंसि भिक्खू' त्ति सोच्चा सकसाएहिं तेहिं आहच्च–] यहां कौन हैं ? इस प्रकार पूछने पर कदाचित् भगवान् उत्तर देते थे–मैं भिक्षुक हूं।' यह सुनकर वे कषाययुक्त हो जाते और मारपीट करते-[अपसरेहि एत्तो' त्ति कहिय भगवं अयमुत्तमे धम्मे' त्ति कट्टु तत्तो तुसिणीए चेव निस्सरीअ]–हठ यहां से' इस प्रकार कहे गये भगवान् यही उत्तम धर्म है' ऐसा सोचकर बिनाबोले ही वहां से निकल जाते थे। [जंसि हिमवाए सिसिरे पवेयए मारुए पवायंते अप्पेगे अणगारा निवायं ठाणमेसंति] जिस शीतलवायुवाली शिशिरऋतु में, कंप कँपी उत्पन्न करनेवाली हवा चलने पर कोई–कोई अनगार वायुरहित स्थान की गवेषणा करते थे [अण्णे 'संघाडीओ' पविसिस्सामोत्ति वयंति] और कोई कोई कहते थे कि 'हम संघाटी–चादर ओढेंगे' [एगेय इंधणाणि समादहमाणा चिट्ठंति] तथा कोई कोई संन्यासी आदि शीत निवारण के लिए ईधन जलाते थे [केइ पिहिया अइदुक्खं हिमगसंफासं सहिउं सक्खामो

त्ति सोयंति] कोई कोई सोचते थे कि वस्त्रओढने पर ही इस शीत के कष्ट को सहन कर सकते हैं [तंसि तारिसगंसि सिसिरंसि दविये भगवं अपडिण्णे समाणे] ऐसे शिशिर के समय में भी भगवान् मुक्ति के अभिलाषी और अप्रतिज्ञ रहकर [वियडे ठाणे तं सीयं सम्मं अहियासीअ] सम्यक् प्रकार से उस शीत को सहन करते थे [एस विही 'अण्णे मुणिणो वि एवं रियंतु' त्ति कट्टु अपडिन्नेण मइमया भगवया बहुसो अणुक्कंतो] 'अन्य मुनि भी इस प्रकार आचरण करें' ऐसा सोचकर अप्रतिज्ञ एवं मतिमान् भगवान् ने अनेक बार इस प्रकार के आचार का पालन किया ॥सू५२॥

भावार्थ——कभी कभी भगवान् शिल्पियों की शालाओं में कभी सभा–स्थलों में और कभी–कभी प्याउओं में उतरते थे। कभी–कभी जनशून्य दुकानों में, कभी कारखानों में कभी पलाल के पुञ्जों में, कभी धर्मशालाओं में, कभी उपवन में बने घरों में, कभी वृक्षों के नीचे उतरते थे। इन सब स्थानों में तथा इसी प्रकार के अन्य स्थानों

में रहते हुए भगवान् महावीर यथा समय उस उस स्थान पर गोचरीलाकर आहारपानी करते थे एवं दिन-रात यतना करते हुए, प्रमादहीन होकर और समाधि में लीन रहकर धर्मध्यान ही करते रहते थे। इन स्थलों में ठहरते समय भगवान् को देवों आदि द्वारा भांति-भांति के उपसर्ग हुए। जैसे-सर्पादि तथा द्वीन्द्रिय आदि चलने-फिरने वाले प्राणी अथवा गीध आदि पक्षी स्थाणु की तरह अचल भगवान् को उपसर्ग करते थे। कभी-कभी प्रभु के रूप पर मोहित होकर स्त्रियां प्रभु को उपसर्ग करती थीं। तथा शक्ति नामक अस्त्र हाथ में लिये ग्रामरक्षक-कोतवाल आदि कुछ भी न बोलने वाले भगवान् को चोर की आशंका करके अर्थात् चोर समझकर शस्त्रों का प्रहार करके उपसर्ग करते थे, परन्तु भगवान् इन सभी उपसर्गों को सम्यग् रीति से सहन करते थे। तथा-भगवान् इहलोक संबंधी मनुष्यादिकृत तथा परलोक संबंधी अर्थात् देवादिकृत अनेक प्रकार के अनुकूल एवं प्रतिकूल शब्दों को, विविध प्रकार के भयानक पिशाच आदि के रूपों को 'आदि' शब्द से देवांगना

आदि के मनोहर रूपों को, तरह-तरह की सुगंध और दुर्गंध को, तथा अमनोज्ञ और उपलक्ष से मनोज्ञ स्पर्शों को, सदैव समितियुक्त होकर, राग-द्वेष को त्यागकर, मौन भाव से अपने सुख-दुःख को प्रकाशित न करते हुए, निश्चलरूप से सहन करते थे। कभी-कभी ऐसा ऐसा प्रसंग आता था कि भगवान् सुने घर में रात्रि के समय कायोत्सर्ग में स्थित रहते थे, उस समय व्यभिचारी पुरुष परस्त्री के साथ कामभोग सेवन करने के लिए वहां आते और भगवान् से पूछते-कौन हैं तू? तब भगवान् कुछ उत्तर नहीं देते, मौन साधे रहते। तब कुछ भी उत्तर न देने वाले भगवान् पर वे क्रोधित होते, रूष्ट होते और भगवान् को अनेक प्रकार से लट्ठी मुट्ठी आदि से ताडना करते। उस उपसर्ग को भी भगवान् सम्यग् रूप से सह लेते थे। कभी किसी ने पूछा-'कौन हैं यहां? इस प्रश्न के उत्तरमें वीर प्रभु ने कहा-मैं भिक्षु हूं, वह शब्द सुनकर वे जार पुरुष क्रोध आदि कषायों से युक्त हो जाते और ताडना करके कहते-'दूर जा यहां से' इस प्रकार

कहने पर भगवान् सोचते–'ताडना आदि को सह लेना उत्कृष्ट धर्म है, और यह सोचकर वे चुपचाप, बिना कुछ कहे, निकल जाते थे। शीतल वायु से युक्त शिशिर ऋतु में, शीतलता के कारण मनुष्यों को कमकंपी उत्पन्न करने वाली हवा चलती थी। उस समय कितने ही साधु ऐसे स्थान खोजते फिरते थे जहां वायु का प्रवेश न हो। कोई–कोई जन शीत की भीति से कहते थे–'हम तो शीत को रोकने वाले वस्त्र में दुबक जाएँगे।' कई संन्यासी लोग आग में ईंधन जलाकर तापते थे। कोई सोचते थे–वस्त्र ओढने से ही महाकष्टकर सर्दी सहन की जा सकती है। ऐसे शीतकाल में भी मोक्ष के अभिलाषी भगवान् इहलोक–परलोक संबंधी समस्त कामनाओं से दूर रहकर सर्दी के भयवाले स्थान में वृक्ष के नीचे रहकर उस दुस्सह शीत को अचल भाव से सहन करते थे। 'मेरे सिवाय अन्य मुनि भी इस प्रकार विहार करें–संयम की साधना करें' ऐसा विचार करके भगवान् वीर स्वामी ने बारम्बार इस आचार का पालन किया ॥५२॥

मूलम्—तओ भगवं पुणोऽवि चिंतेइ—'बहुयं कम्मं मम निज्जरेयव्वं अत्थि, अओ अनारियबहुलं लाढदेसं वच्चामि, तत्थ हीलणानिंदणाईहिं बहुयं कम्मं निज्जरिस्सइ' त्ति कट्टु लाढदेसं पविसीअ। तत्थ पविसमाणस्स भगवओ मग्गे चोरा मिलिया। ते य भगवं दट्ठूणं 'अवसउणं जायं जं मुंडिओ मिलिओ, एयं अवसउणं एयस्स चेव वहाए भवउ' त्ति कट्टु भगवं लट्ठिमुट्ठिप्पहारेहिं बहुसो हणिंसु। अह दुच्चरलाढचारी भगवं तस्स देसस्स वज्जभूमिं च समणुपत्ते। तत्थ णं से विरूवरूवाइं तणसीयतेयफासाइं दंसमसगे य सया समिए सम्मं सहीअ। पंतं सेज्जं पंताइं असणाइं सेवीअ। तत्थ भगवओ बहवे उवसग्गा समागया, तं जहा—लूहे भत्ते संपत्ते, जाणवया लूसिंसु, कुक्कुरा हिंसिंसु निवाडिंसु। अप्पा चेव उज्जुया जणा लूसएणं डसमाणे सुणए य निवारेंति।

बहवे उ 'समणं कुक्कुरा डसंतु' त्ति कट्टु सुणए छुछुकारेंति। तत्थ वज्जभूमीए बहवे फरुसभासिणो कोहसीला वसंति। तत्थ अण्णे समणा लट्ठिं नालियं च गहाय विहरिंसु, तहवि ते सुणिएहिं पिट्ठभागे संलुंचिज्जिसु। अओ लाढेसु दुच्चरगाणि ठाणाणि संति त्ति लोए पसिद्धं, तत्थ वि अभिसमेच्च भगवं 'साहूणं दंडो अकप्पणिज्जो' त्ति कट्टु दंडरहिए वोसट्ठकाए गामकंडगाणं सुणगाणं च उवसग्गे अहियासीअ। संगामसीसे णागोऽव से महावीरे तत्थ पारए आसी। एगया तत्थ गामंतियं उवसंकममाणं अपत्तगामं भगवं अणारिया पडिनिक्खमित्ता एयाओ परं पलेहित्ति कहिय लूसिंसु। हयपुव्वोऽवि भगवं पुणो पुणो तत्थ विहरीअ। तत्थ केइ अणारिया भगवं दंडेणं केइ मुट्ठिणा केइ कुंताइफलेणं केइ लेलुणा केइ कवालेण हंता हंता कंदिसु। एगया

ते लुंचियपुव्वाणि मंसूणि उट्टंभिय विरूवरूवाइं परिसहाइं दाऊणं कायं लुंचिंसु, अहवा पंसुणा उवकिरिंसु उच्छालिय णिहणिंसु अदुवा आसणाओ खलइंसु, तहवि पणयासे भयवं वोसट्ठकाए अपडिन्ने दुक्खं सहीअ। एवं तत्थ से संवुडे महावीरे फरुसाइं परिसहोवसग्गाइं पडिसेवमाणे संगामसीसे सुरोव्व अयले रीइत्था। एसविही मइमया माहणेण अपडिन्नेण भगवया 'एवं सव्वेऽवि रीयंतु' त्ति कट्टु बहुसो अणुक्कंतो ॥५३॥

शब्दार्थ—[तओ भगवं पुणो अवि चिंतेइ] तत्पश्चात् भगवानने पुनः विचार किया [बहुयं कम्मं मम निज्जरेयव्वं अत्थि अओ अनारियबहुलं लाढदेसं वच्चामि] मुझे बहुत से कर्मों की निर्जरा करनी है, अतः अनार्य बहुल लाढ देश में जाना चाहिये [तत्थ हीलणनिंदणाइहिं बहुअं कम्मं निज्जरिस्सइ' त्ति कट्टु लाढदेशं पविसीअ] वहां

हीलना एवं निंदना आदि होने से बहुत कर्मों की निर्जरा होगी।' ऐसा सोचकर भगवान् ने लाढ देश में प्रवेश किया [तत्थ पविसमाणस्स भगवओ मग्गे चोरा मिलिया] लाढ देश में प्रवेश करते ही भगवान् को मार्ग में चोर मिले [ते य भगवं दट्टूणं अवसउणं जायं जं मुंडिओ मिलिओ एयं अवसउणं एयस्स चेव वहाए भवउ' त्ति कट्टु] उन्होंने भगवान् को देखकर विचार किया कि हमें यह मुंड़ा मिला अतः अपशुकन हो गया यह अपशकुन इसी मुंडे के वध के लिए हो, ऐसा सोचकर [भगवं लट्ठिमुट्ठिप्पहारेहिं बहुसो हणिंसु] चोरोंने भगवान् को लाठी और मुट्ठि से खूब मारा [अह दुच्चरलाढचारी भगवं तस्स देसस्स वज्जभूमिं सुब्भभूमिं च समणुपत्ते] भगवान् ने उसे सम्यक् प्रकार से सहन किया। तदनन्तर दुर्गम लाट देश में बिहार करने वाले भगवान् हुए क्रमशः लाट देश की वज्रभूमि तथा शुभ्रभूमि में पधारे [तत्थ णं से विरूवरूवाइं तणसीयतेयफासाइं दंसमसगे य सया समिए सम्मं सहीअ] वहां भगवान् ने

कंटक, शीत और उष्ण आदि के स्पर्शों को तथा डांस मच्छर आदि के दंखों को समाधि में लीन रहकर सम्यग्ग् प्रकार से निरंतर सहन किया [पंतं सेज्जं पंताइं असणाइं सेवीअ] कष्ट कर निवासस्थानों का तथा निरस कष्टकर अशन आदि का सेवन किया [तत्थ भगवओ बहवे उवसग्गा समागया] वहां भगवान् पर बहुत उपसर्ग आये [तं जहा-लूहे भत्ते संपत्ते, जाणवया लूसिंसु, कुक्कुरा हिंसिंसु निवाड़िंसु] जैसे-वहां लूखा भोजन मिला, वहां के लोगों ने मारपीट की, कुत्तों ने काटा और निचे गिरा दिया [अप्पा चेव उज्जुया जणा लूसएण उसमाणे सुणए य निवोरेंति] कोई विरले सीधे लोग ही मारने वालों को एवं काटने वाले कुत्तों को रोकते थे [बहवे उ 'समणं कुक्करा डसंतु' त्ति कट्टु सुणए छुछुकारेंति] बहुत से तो यही सोचते थे कि इस श्रमण को कुत्ते काटें तो अच्छा, ऐसा सोचकर वे कुत्तों को छुछुकारते थे। [तत्थ वज्जभूमीए बहवे फरुसभासिणो कोहसीला वसंति] उस वज्रभूमि में बहुत से रूखा बोलने वाले और क्रोधशील लोग

रहते थे [तत्थ अण्णे समणा लट्ठिं नालियं च गहाय विहरिंसु, तहवि ते सुणएहिं पिट्ठ-भागे संलुंचिज्जिंसु] दूसरे श्रमण वहां डंडा और लाठी लेकर विचरते थे, फिर भी कुत्ते उन्हें पीछे से नोंच लेते थे, [अओ लाढेसु दुच्चरगाणि ठाणाणि संति—त्ति लोए पसिद्धं] अत एव लोगों में यह बात फैल गइ थी कि लाट देश में ऐसे स्थान हैं जहां चलना कठिन है। [तत्थ वि अभिसमेच्च भगवं 'साहूणं दंडो अकप्पणिज्जो' त्ति कट्टु] वहां जाकर भी भगवान् ने साधुओं को डंडा रखना कल्पता नहीं ऐसा सोचकर [दंड रहिए वोसट्ठकाए गामकंटगाणं सुणगाणं च उवसग्गे अहियासीअ] दंड रहित काया की ममता का त्याग कर दुर्जनों और श्वानों के उपसर्गों को सहन किया [संगामसीसे नागोव्व से महावीरे तत्थ पारए आसी] संग्राम के बीच हाथी की भांति महावीर उन उपसर्गों को पार करने वाले हुए [एगया तत्थ गामंतियं उवसंकमाणं अपत्तगामं भगवं अणारिया पडिनिक्खमित्ता एयाओ परं पलेहित्ति कहिय लूसिंसु] एक समय भगवान् गांव के

समीप पहुंचे और गांव में पहुंच भी नहीं पाये कि अनार्य लोक बाहर निकल निकल कर 'भाग जाओ यहां से दूर' ऐसा कहकर मारने लगे [हयपुव्वोऽवि भगवं पुणो पुणो तत्थ विहरीअ] जहां पहले भगवान् को मारा गया था वहां भगवान् पुनः पुनः विचरण करते थे [तत्थ केइ अणारिया भगवं दंडेण केइ मुट्ठिणा केइ कुंताइफलेणं केइ लेलुणा केइ कवालेण हंता हंता कंदिंसु] परिणाम स्वरूप उन अनार्यों में से कंइ लोग भगवान् को डंडे से, कंइ लोग मुट्ठी से कंइ लोग भाले आदि से, कंइ मिट्टी के ढेले से और कइ ठिकरियों से मार मार कर चिल्लाते थे [एगया ते लुंचियपुव्वाणि मंसूणि उट्टंभिय विरूवरूवाइं परिसहाइं दाऊणं कायं लुंचिंसु] कभी–कभी वे पहले नोचे हुए बालों को पकडकर नाना प्रकार के परीषह को देकर शरीर को नौंचते थे [अहवा पंसुणा उवकिरिंसु उच्छालिय णिहणिंसु] अथवा भगवान् को धूल से भर देते थे और उपर उछालकर पटक देते थे। [अदुवा आसणाओ खलइंसु तहत्ति पणयासे भगवं वोसट्ठकाए अपडिन्ने

दुक्खं सहीअ] अथवा आसन से धक्का देते थे फिर भी निर्जरार्थी भगवान् काया की ममता का त्याग कर तथा अप्रतिज्ञ (निरपेक्ष) होकर दुःखों को सहन कर लेते थे [एवं तत्थ से संवुडे महावीरे फरूसाइं परिसहोवसग्गाइं पडिसेवमाणे संगामसीसे सुरोव्व अयले रीइत्था] इस प्रकार भगवान् महावीरने वहां संग्राम के अग्रभाग में शूर पुरुष की तरह कठोर परीषहों और उपसर्गों को सहन करते हुए निश्चल भाव से विहार किया [एस विही मइमया माहणेण अपडिन्नेण भगवया 'एवं सव्वेऽवि रीयंतु' त्ति कट्टु बहुसो अणुक्कंतो] अन्य मुनि जन भी ऐसा ही परीषह सहन करें' इस प्रकार विचार कर माहण एवं अप्रतिज्ञ–निरपेक्ष भगवान् ने बार बार इस विधिका पालन किया ॥५३॥

भावार्थ—अनार्य देश में भांति २ के उपसर्ग सहन करने के अनन्तर भगवान् ने पुनः चिन्तन किया–मुझे अभी बहुत से कर्मों का क्षय करना है। अतएव मुझे उस लाट देश में विहार करना चाहिए, जहां अनार्य लोगों की बहुलता है। लाट देश में

अनादर होने से और गालियां खाने से तथा इसी प्रकार का अन्य अवांछित व्यवहार होने से मेरे बहुत कर्मों का क्षय हो जायगा। ऐसा सोचकर उन्होंने लाट देश में विहार किया। लाट देश में प्रवेश किया ही था कि मार्ग में चोर मिल गये। चोरों ने भगवान् को देखकर समझा कि हमें यह मुंडा मिला अतः अपशकुन हो गया, यह अपशकुन इसी मुंडे के वध के लिए हो, ऐसा सोचकर चोरों ने श्री वीर प्रभु को वार-वार यष्टि और मुष्टि से मारा। वह सब उपसर्ग भगवान् ने सम्यक् प्रकार से सहन किये। इसके बाद दुर्गम लाट देश में विहार करने वाले भगवान् क्रमशः लाट देश की वज्रभूमि नामक प्रदेश में तथा शुभ्र भूमि नामक प्रदेश में पधारे। उस वज्रभूमि और शुभ्र भूमि में भगवान् महावीर स्वामी ने अनेक प्रकार के कांटों आदि तथा सर्दी और गर्मी के एवं दंशमशक आदि के कष्टों को समितियुक्त होकर, सम्यक् प्रकार से निरन्तर सहन किया। उस लाट देश की वज्रभूमि एवं शुभ्र भूमि में भगवान्

महावीर स्वामी को बहुत उपसर्ग आये। जैसे वहां भगवान् को रूखा सुखा आहार मिला। लाट के लोगों ने भगवान् को लट्ठी मुट्ठी आदि से ताडित किया। प्रभु वीर को कुत्तों ने काटा और नीचे पटक दिया। वहां के अधिक लोग तो, 'कुत्ते इस श्रमण को काटें,' ऐसा सोचकर कुत्तों को छुछुकारते ही थे–काटने के लिए उत्साहित ही करते थे। अधिकांश लोग उस वज्र शुभ्रभूमि में रूक्ष और कठोर बोल ही बोलते थे, और स्वभाव के क्रोधी थे। लाट देश की उस वज्र भूमि में बौद्ध आदि श्रमण कुत्तों के भय से बचने के लिए डंड़ा लेकर और यष्टि अर्थात् अपने शरीर के प्रमाण से चार अंगुली लम्बी लकडी लेकर चलते थे, फिर भी कुत्ते पीछे की तरफ से उन श्रमणों को नोच लिया करते थे। इस कारण यह बात प्रसिद्ध हो गई थी कि लाट देश में ऐसे स्थान हैं, जहां चलना बडा कठिन है। ऐसे लाट देश में भी जाकर भगवान् ने कभी डंडा नहीं लिया। उन्होंने विचार किया कि डंडा धारण करना साधुओं को कल्पता नहीं है।

भगवान् तो देह की ममता से रहित होकर दुष्टजनों और कुत्तों के किये हुए उपसर्गों को सहन करते थे। जैसे हाथी संग्राम के मोर्चे पर आगे ही बढता जाता है, उसी प्रकार भगवान् महावीर प्रभु भी आगे ही बढते गये और उपसर्गों के पारगामी हुए।

एक बार लाट देश की दुर्गम भूमि में ग्राम के समीप पहुंचे हुवे, भगवान् को देखकर म्लेच्छ लोग गांव के बाहर निकलकर इस जगह से दूर भाग जाओ–यहां से लौट जाओ' इस प्रकार कहकर भगवान् को यष्टि और मुष्टि आदि से मारने लगे। जहां पहले भगवान् पर प्रहार हुए थे, उन्हीं स्थानों में भगवान् कर्मों का क्षय करने के लिए बार–बार विचरते थे। उस लाट देश में कोई अनार्य जन डंडे से, कोई भाले आदि शस्त्रों की नौंक से, कोई मिट्टी के ढेले से और कोई पत्थर से और कोई ठीकरों से भगवान् को मारते और कोलाहल करते थे। कभी–कभी वे पहले शरीर के बालों को खींच–खींच कर भगवान् को नाना प्रकार के कष्ट देते थे। शरीर को विदारण कर देते थे।

अथवा धूलि से आच्छादित कर देते थे। अथवा धूल ऊपर उछाल कर ताडना करते थे, अथवा आसन से नीचे गिरा देते थे। इतने सब उपसर्ग होने पर भी वे उन उपसर्गों को निःस्पृह होकर सहन करते थे। इस प्रकार भगवान् ने संवर युक्त होकर कठोर शीत उष्ण आदि के परीषहों तथा मनुष्यादिकृत उपसर्गों को सहन करते हुए, संग्राम के अग्रभाग में शूर पुरुष के समान, स्थिर भाव से विहार किया। इस विधि—कल्प का मतिमान् 'माहन' अर्थात् किसी को कष्ट मत दो, इस प्रकार का उपदेश देने वाले तथा अप्रतिज्ञ भगवान् महावीर ने 'मेरे ही समान सब श्रमण परीषह सहन करके आचरण करें ऐसा विचार कर बार—बार पालन किया ॥५३॥

मूलम्—तए णं भगवं रोगेहिं अपुट्ठेऽवि ओमोयरियं सेवित्था। अहय सुणगदंसणाईहिं पुट्ठे थि, काससासाइएहिं रोगेहिं अपुट्ठे वि भाविसंकाए णो से तेइच्छं साइज्जीअ भगवं संसोहणं वमणं गायब्भंगणं सिणाणं संबाहणं

दंतपक्खालणं च कम्मबंधणं परिण्णाय नो सेवीअ। गामधम्माओ विरए अवाइ माहणे रीइत्था। सिसिरम्मि भगवं छायाए आसीणे झाईअ। गिम्हे य आयावीअ, आयावे उक्कुडुए अच्छीय। अह य भगवं ओयणं मंथुं कुम्मासं चेयाणि तिण्णि लूहाणि सीयलाणि पडिसेवीअ अट्ठमासे जाव इत्था। तओ य भगवं अद्धमासे मासं साहिए दुवेमासे छम्मासे य असणाइयं परिहाय राओवरायं अपडिन्ने विहरित्था. पारणगेवि गिलाणमन्नं भुंजित्था। एगया कयावि छट्ठेण कयावि अट्ठमेणं दसमेणं दुवालसमेणं समाहिं पेहमाणे अपडिन्ने भगवं भुंजित्था। णच्चा य से महावीरे णो चेव पावगं सयमकासी अन्नेहिं वा णो कारित्था। करंतंपि णाणु जाणित्था। गामं नगरं वा पविस्स भगवं परट्ठाए कडं घासमेसित्था, सुविसुद्धं तमे-सिय आययजोगयाए सेवित्था भिक्खायरियाए भमंते भगवं वायसाइए

रसेसिणो सत्ते घासेसणाए चिट्ठंते पेहाए सयंताओ निवत्तीअ। अह य पुरओ ठियं समणं वा माहणं वा गामपिंडोलगं वा अतिहिं वा सोवागं वा पेहाए णिवट्टमाणे अप्पत्तियं परिहरंते अहिंसमाणे सया समिए मंदं मंदं परक्कमिय अन्नत्थ घासमेसित्था सूइयं वा असूइयं वा उल्लं वा सुक्कं वा सीयपिंडं पुराण-कुम्मासं अदुवा वक्कसं पुलागं वा जं किंचि लद्धे तं आहरित्था. लद्धे वा अलद्धे वा पिंडे दविए समभावेण रीइत्था। उक्कुडुपाइ आसणत्थे भगवं अकुक्कए अपडिन्ने उड्ढमहो तिरियलोयसरूवं समाहिय झाणं झाइत्था। छउमत्थेवि भगवं अकसाई विगयगेही सद्दरूवाईसु असुच्छिए विपरक्कममाणे सइंपि पमायं णो कुव्वित्था। आयसोहीए आयतजोगं सयमेव अभिसमागम्म अभिनिव्वुडे आवकहं अम्माइल्ले भगवं समिए आसी। एसो विही मइमया माहणेण अप-

डिण्णेण भगवया 'अण्णोवि मुणिणो एवं रियंतु' त्ति कट्टु बहुसो अणुक्कंतो ॥८४॥

शब्दार्थ—[तए णं भगवं रोगेहिं अपुट्ठेऽवि ओमोयरियं सेवित्था] उसके बाद भगवान् ने रोगों से अस्पृष्ट होकर भी उनोदरी तप का सेवन किया [अहय सुणगदंसणाईहिं पुट्ठे वि, कासंसासाइएहिं रोगेहिं अपुट्ठे वि भाविसंकाए णो से तेइच्छं साइज्जीअ] इसके अतिरिक्त श्वानदशन आदि से स्पृष्ट होकर भी और श्वास, खांसी आदि रोगों से स्पृष्ट न होकर भावी रोग की आशंका से भी भगवान् ने चिकित्सा न करवाई [भगवं संसोहणं वमणं गायब्भंगणं सिणाणं संबाहणं दंतपक्खालणं च कम्मबंधणं परिण्णाय नो सेवीअ] मलाशय का संशोधन, वमन, मालिश, स्नान मर्दन और दंतधावन को कर्मबन्धन का कारण जानकर सेवन नहीं किया [गामधम्माओ विरए अवाई माहणे रीइत्था] मैथुन से विरत और मौनधारी होकर माहन विचरे [सिसिरम्मि भगवं छायाए आसीणे झाईअ] शिशिर ऋतु में भगवान् वृक्ष की छाया में बैठकर ध्यान करते थे

[गिम्हे य आयावीअ] ग्रीष्म ऋतु में आतापना लेते थे [आयावे य उक्कुडुए अच्छीय] आतापना लेते समय उत्कुटुक आसन से बैठते थे [अहय भगवं ओयणं मंथु कुम्मासं चेयाणि तिण्णि लूहाणि सीयलाणि पडिसेविय अट्ठमासे जावइत्था] भगवान् ने ओदन मंथु [बेर का चूरा] और कुल्माष [उडद] इन तीन ठंडी और वासी वस्तुओं का सेवन करके आठ मास बिताये [तओय भगवं अद्धमासं साहिए दुवे मासे छम्मासे य असणाइयं परिहाय राओवरायं अपडिण्णे विहरित्था] भगवान् ने अर्धमास, मास ढाइ मास और छमास तक अशन आदि का परित्यागकरके, अप्रतिज्ञ (अपेक्षा रहित) होकर विहार किया [पारणगेवि गिलाणमन्नं भुंजित्था] पारणे के समय भी वासी (ठंढा) भोजन किया [एगया कयावि छट्ठेण कयावि अट्ठमेणं दसमेणं दुवालसमेणं समाहिं पेहमाणे अपडिण्णे भगवं भुंजित्था] कभी बेला कभी तेला, कभी चोला, कभी पंचोला, करके समाधि को देखते हुए अप्रतिज्ञ भगवानने विहार किया [णच्चा य से महावीरे

णो चेव पावगं सयमकासी] पाप के परिणाम को जान कर महावीरने न स्वयं पाप किया [अन्नेहिं वा णो कारित्था] न दूसरों से करवाया [करंतंपि णाणुजाणित्था] न करनेवाले का अनुमोदन ही किया [गामं णगरं वा पविस्स भगवं परट्ठाए कडं घासमेसित्था] ग्राम या नगर में प्रवेश करके भगवान् ने दूसरों के निमित्त बनाये गये आहार की एषणा की [सुविसुद्धंतमेसिय आययजोगयाए सेवित्था] एवं निर्दोष आहार की एषणा करके भगवान् ने उसका सम्यक् मन वचन काय के योग के व्यापार के साथ अर्थात् समभाव से सेवन किया [भिक्खायरियाए भमंते भगवं वायसाइए रसेसिणो सत्ते घासेसणाए चिट्ठंते पेहाए सयंताओ निवत्तीअ] भिक्षा के लिए भ्रमण करते हुए भगवान् रसके अभिलाषी अर्थात् रस लोलुप कौवे आदि प्राणियों को आहार की खोज करते हुए देखकर स्वयं ही उसस्थान से दूर हो जाते थे [अहय पुरओ ठियं समणं वा माहणं बा गामपिण्डोलगं वा अतिहिं वा सोवागं वा पेहाए] सामने खडे हुए श्रमणों

को, ब्राह्मणों को, भिखारीयों को अतिथि अथवा चाण्डाल को देखकर [गिवट्टमाणे] वापसलौट जाते थे [अप्पत्तियं परिहरंते] अविश्वास को उत्पन्न न करते [अहिंसमाणे] तथा हिंसा से बचते हुए [सया समिए] सदा समितियुक्त [मंदं मंदं परक्कमिय] धीरे धीरे चलकर [अन्नत्थ घासमेसित्था] दूसरी जगह आहारकी गवेषणा करते थे [सूइयं वा असूइयं उल्लं वा सुक्कं वा सीयपींडं पुराणकुम्मासं अदुवा बक्कसं पुलागं वा जं किंचि लद्धं तं आहरित्था] दूसरे स्थान पर भी चाहे व्यंजन आदि से संस्कार किया हुआ आहार मिले या असंस्कारित आहार मिले, गीला मिले या भुने हुए चने आदि रूखा सूखा मिले, वासी मिले या पुराने उडद मिले, चने आदि के छिलके मिले या निस्सार अन्न मिले जो कुछ भी कल्पनीय मिले जाय उसी का आहार करते थे। [लद्धे वा अलद्धे वा पिंडे दविए समभावेण रीइत्था] भिक्षाचर्या में आहारमिला तो और न मिला तो संयमशील भगवान् मध्यस्थभाव में ही विचरते थे। [उक्कुडुयाइ आसण-

त्थे भगवं अकुक्कुए अपडिण्णे उड्ढमहोतिरियलोयसरूवं समाहिय झाणं झाइत्था] उकडू आदि आसनों से स्थित भगवान् वीर प्रभु मुख आदि किसी अंग पर विकार नहीं होने देते थे। इहलोक और परलोक की प्रतिज्ञा से रहित होकर तीनों लोकों के स्वरूप का मनोयोग पूर्वक चिन्तन करके धर्मध्यान में संलग्न रहते थे [छउमत्थे वि भगवं अकसाइ विगयगेही सद्दरूवाइसु अमुच्छिए विपरक्कममाणे सइंपि पमायं णो कुव्वित्था] छद्मस्थ होकर भी भगवान् ने कषायहीन अनासक्त, शब्द एवं रूप आदि में मूर्च्छा न करते हुए विशेषरूप से पराक्रम करते हुए एकबार भी प्रमाद नहीं किया [आय-सोहीए आयतजोगं सयमेव अभिसमागम्म अभिनिव्वुडे आवकहं अम्माइल्ले भगवं समिए आसी] आत्म शोधन पूर्वक स्वतः आयतयोग—ज्ञानपूर्वक सम्यग्योग व्यापार का आश्रयलेकर यावज्जीवनिवृत्तिमय अमायी और समित रहे [एसो विही मइमया माह-णेण अपडिण्णेण भगवया 'अण्णेवि मुणिणो एवं रीयंतु' त्ति कट्टु बहुसो अणुक्कंतो]

'अन्य मुनि भी इसी प्रकार आचरण करें यह सोचकर बुद्धिवान्, माहन, अप्रतिज्ञ भगवान् ने अनेक बार इस आचारका पालन किया ॥५४॥

भावार्थ—तब भगवान् वीर प्रभु ने ज्वर आदि रोगों से अछूते होने पर भी ऊनोदर [भूख से कम खाने रूप] तप का सेवन किया। कभी कुत्ता आदि ने काट खाया तो भी तथा सांस और खांसी आदि रोगों से रहित होने पर भी आगे कहीं ये रोग न हो जायें इसलिए उनके निवारण के हेतु भगवान् ने चिकित्सा का कदापि अनुमोदन नहीं किया। भगवान् वीर मलाशय आदि की शुद्धि, वमन [उल्टी–कै] शरीर की मालीश, स्नान, शारीरिक थकावट को मिटाने के लिए मर्दन और दातौन करने को कर्म बन्धन का कारण जानकर कभी सेवन नहीं करते थे। मैथुन के त्यागी मौनी, अहिंसा परायण होकर विचरते थे। शीत ऋतु में भगवन् वृक्ष आदि की छाया में बैठकर धर्मध्यान में लीन रहते थे, और ग्रीष्म ऋतु में प्रचंड सूर्य की आतापना लेते

थे । आतापना लेते समय उकडू आसन से बैठते थे । भगवान् ने ओदन [भक्त], मंथु-बोर आदि का चूरा और उड़द, इन तीन और रूखे और बासी अन्नों का ही सेवन करके आठ महीने बिताये । भगवान् ने अर्धमास [एक पक्ष], एक मास, कुछ दिन अधिक दो मास और छह मास तक अशन पान खादिम और स्वादिम आहारों का परित्याग किया और अप्रतिज्ञ होकर निरन्तर विहार करते रहे । पारणा में वासी अन्न का सेवक किया । कभी-कभी भगवान् चित्त की स्वस्थता का विचार करके अप्रतिज्ञ भाव से बेला करके आहार करते थे, कभी तेला करके, कभी चौला करके और कभी-कभी पंचोला करके, पाप के दुष्ट फल को जानकर महावीर स्वामी ने प्राणातिपात आदि पापकर्मों का स्वयं सेवन नहीं किया, दूसरों से सेवन नहीं कराया और पापों का सेवन करनेवाले का अनुमोदन नहीं किया' ग्राम अथवा नगर में प्रवेश करके महावीर भगवान् ने दूसरे जनों के लिए बनाये हुए आहार की गवेषणा को । आधाकर्म आदि

दोषों से रहित तथा कल्पनीय आहारकी गवेषणा करके भगवान् ने उसका सम्यक् मन, वचन काय के व्यापार के साथ अर्थात् समभाव से सेवन किया। भिक्षा के लिए भ्रमण करते हुए भगवान् इस के अभिलाषी अर्थात् जिह्वा के विषय–रस के लोलुप, काकआदि प्राणियों को आहार की खोज में स्थित देखकर, स्वयं ही उस स्थान से निवृत्त हो जाते थे। इसके अतिरिक्त अपने पहुंचने से पहले खडे शाक्य आदि श्रमण को, ब्राह्मण को; अथवा भीख मांगकर जीवन–निर्वाह करने वाले भिखमंगे को अथवा किसी विशेष ग्राम का आश्रय लेने वाले भिक्षुक को, साधु को या चाण्डाल को देख-कर उन श्रमण आदि को भोजन–लाभ में विघ्न न हो जाए, ऐसा विचार करके उस स्थान से वापस फिर जाते थे। तथा लोगों में उक्त श्रमण आदि के अविश्वास का परि-हार करते हुए प्राणातिपात आदि पापों से बचते हुए सदैव ईर्यासमितियों से सम्पन्न होकर, धीरे–धीरे फिर कर दूसरे स्थान पर आहार की गवेषणा करते थे। दूसरे स्थान

पर भी चाहे व्यंजन आदि से संस्कार किया हुआ आहार मिले या संस्कार किया हुआ न मिले, गीला मिले या भुने चने आदि रूखा सूखा मिले, वासी मिले या पुराने उडद मिले, चने आदि के छिलके मिले या निःसार अन्न मिले, जो कुछ भी कल्पनीय मिल जाय उसी का आहार करते थे। भिक्षाचर्या में आहार मिला तो और न मिला तो संयमशील भगवान् मध्यस्थ भाव में ही विचरते थे।

उकडू आदि आसनों से स्थित भगवान् वीर प्रभु मुख आदि किसी अंग पर विकार नहीं होने देते थे। इहलोक और परलोक की प्रतिज्ञा से रहित होकर तीनों लोकों के स्वरूप का मनोयोगपूर्वक चिन्तन करके धर्मध्यान में संलग्न रहते थे। यद्यपि उस समय भगवान् केवलज्ञानी नहीं–छद्मस्थ थे, फिर भी क्रोध आदि कषायों से रहित थे, और शब्द रूप गंध रस और स्पर्श रूप पांचों इन्द्रियों के विषयों में अनासक्त थे। विशेष रूप से अपनी आत्मा का सामर्थ्य प्रकट करते हुए एक वार भी भगवान् ने

प्रमाद नहीं किया। आत्मा की शुद्धिपूर्वक, सम्यक् मन वचन काय के व्यापार को स्वयं ही आश्रित करके भगवान् जीवन-पर्यन्त निवृत्ति भाव से सम्पन्न, माया से रहित और पांच समितियों से युक्त रहे। इस विधि मेधावी, अहिंसा परायण और इहलोक-परलोक संबंधी प्रतिज्ञा से रहित भगवान् ने 'अन्य मुनि भी इसी प्रकार इस आचार का पालन करे' इस प्रकार विचार कर इस आचार का अच्छे प्रकार से पालन किया ॥५४॥

मूलम्-तए णं समणे भगवं महावीरे लाढदेसाओ पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमित्ता जेणेव सावत्थी नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तत्थ विचित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे दसमं चाउम्मासं ठिए। तत्थ णं अट्ठमतवेणं एगराइयं भिक्खुपडिमं पडिवण्णे झाणं झियाइ। तत्थ वि दिव्वे माणुस्से तेरिच्छे नाणाविहे उवसग्गे सम्मं सहइ। एवंविहेण विहारेण विहर-

माणे भगवं एगारसं चाउम्मासं वेसालीए णयरीए ठिए, तओ पच्छा सुसुमारं णयरं समणुपत्ते, तओ णं विहरमाणे कोसंबीए णयरीए समोसरिए। तत्थ णं सयाणीए राया। मिगावइ महिसी। तीए विजया पडिहारिया। वाइणामओ धम्मपालगो। गुत्तणामा अमच्चो तस्स णंदा भज्जा, सा साविआ आसी। अमू मिगावईए रायमहिसीए सही होत्था। तत्थ णं भगवं पोससुद्धाए पडि-वयाए दव्वखेत्तकालभावं समस्सिय तेरसवत्थुसमाउलं इमं एयारूवं अभि-ग्गहं अभिग्गहीअ। तं जहा—१ दव्वओ सुप्पकोणे २ बप्फिया मासा होज्जा। खेत्तओ दाइआ कारागारे ठिया ३ तत्थ वि देहलीए ४ उवविट्ठा ५ सा पुण एगं पायं बाहिं एगं पायं अंतो किच्चा ठिया ६ भवे। कालओ तइयाए पोरि-सीए अन्नभिक्खायरेहिं निव्वत्तेहिं ७, भावओ दाइया कयकीया दासित्तं पत्ता

रायकण्णा ८ निगडबद्धहत्थपाया ९, मुंडियमत्थया १०, बद्धकच्छा ११ अट्ठ-मतवजुत्ता १२, अस्सूणि मुयमाणा १३ होज्जा। एयारिसेण अभिग्गहेण जइ आहारो मिलिस्सइ तो पारणगं करिस्सामि। अन्नहा छम्मासी तवं करिस्सा-मित्ति कट्टु भगवं भिक्खट्ठाए अडइ। भगवओ सो अभिग्गहो न कत्थइ परिपुण्णो हवइ ॥५५॥

शब्दार्थ—[तए णं समणे भगवं महावीरे लाढदेसाओ पडिनिक्खमइ] तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर लाट देश से विहार करते हैं [पडिनिक्खमित्ता जेणेव सावत्थी णयरी तेणेव उवागच्छइ] निकलकर जहां श्रावस्ती नगरी थी वहां पधारे हैं [उवाग-च्छित्ता तत्थ विचित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे दसमं चाउम्मासं ठिए] पधार कर विचित्र प्रकार के तपो कर्म से आत्मा को भावित करते हुए दसवां चौमासा वहां

किया। [तत्थ णं अट्ठमतवेणं एगराइयं भिक्खुपडिमं पडिवण्णे झाणं झियाइ] वहां अष्टम भक्त के साथ एक रात्रि की भिक्षु प्रतिमा को अंगीकार करके भगवान् ने ध्यान किया [तत्थ वि दिव्वे माणुस्से तेरिच्छे नानाविहे उवसग्गे सम्मं सहइ] वहां भी देवों सम्बन्धी मनुष्यों सम्बन्धी तथा तिर्यंचों सम्बन्धी नाना प्रकार के उपसर्गों को भलीभांति सहन किया [एवंविहेण विहारेण विहरमाणे भगवं एगारसं चाउम्मासं वेसालिए णयरीए ठिए] इसी प्रकार के विहार से विहरते हुए भगवान् ने ग्यारहवां चातुर्मास वैशाली नगरी में किया [तओ पच्छा सुसुमारं णयरं समणुपत्ते] तदनंतर शिशुमार नगर में पधारे [तओ णं विहरमाणे कोसंबीए नयरीए समोसरिए] शिशुमार नगर से विहार करके कोशाम्बी नगरी में पधारे [तत्थ णं सयाणीओ राया] वहां शतानीक नाम का राजा था [मिगावई महिसी] उसकी रानी का नाम मृगावती था [तीए विजया पडिहारिया] उस महारानी की विजया नामकी द्वारपालिका थी [वाइणामओ धम्म-

पालगो] राजा का वादी नामक धर्माध्यक्ष था [गुत्तनामा अमच्चो] उसके गुप्त नामक अमात्य था [तस्स नंदा भज्जा] अमात्य की पत्नी का नाम नन्दा था [सा साविया आसी] वह श्राविका थी [अमू मिगावईए रायमहिसीए सही होत्था] वह राजरानी मृगावती की सखी थी [तत्थ णं भगवओ पोससुद्धाए पडिवयाए दव्वखेत्तकालभावं समस्सिय तेरसवत्थुसमाउलं इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिग्गहीअ] भगवान् ने पौष शुक्ला प्रतिपदा के दिन द्रव्यक्षेत्र काल और भाव का आश्रय लेकर तेरह बोलों का अभिग्रह धारण किया [तं जहा-१ दव्वओ सुप्पकोणे] वे तेरह बोल ये थे-द्रव्य से १ सूप के कोने में (२ बप्फियामासा होज्जा) उबाले हुए उड़द हों [खेत्तओ दाइया कारागारे ठिया] ३ क्षेत्र से देनेवाली कारागार में हों [तत्थ वि देहलीए] कारागार में भी देहली पर हों [उबविट्ठा] सो भी बैठी हो [सा पुण एगं पायं बाहिं एगं पायं अंतो किच्चा ठिया ६ भवे] वह भी एक पैर बाहर और एक पैर भीतर करके बैठी हो, [कालओ

तइयाए पोरिसीए अन्नभिक्खायरिएहिं निव्वत्तेहिं] काल से-(७) तीसरे प्रहर में अन्य भिक्षाचरों के लौट जाने पर [भावओ दाइया कयकीया दासित्तं पत्ता रायकण्णा] भाव से (८) दायिका खरीदी हुइ हो दासी बन गइ हो मगर राजकुमारी हों, [निगडबद्धहत्थपाया मुंडियमत्थया] उसे हाथों-पैरों में बेडी हो, सिरमुंड़ा हो [११ बद्धकच्छा] ११ काछ बंधी हो [अट्ठमतवजुत्ता १२] १२ तेले के तप से युक्त हो और [अस्सुणि मुयमाणा होज्जा] आंसू वहा रही हो [एयारिसेण अभिग्गहेण जइ आहारो मिलिस्सइ तो पारणगं करिस्सामि] इस प्रकार के अभिग्रह से यदि आहार मिलेगा तो पारणा करूंगा [अन्नहा छम्मासी तवं करिस्सामित्ति कट्टु भगवं भिक्खट्ठाए अडइ] अन्यथा छ मास का तप करूंगा ऐसा अभिग्रह करके भगवान् भिक्षा के लिए भ्रमण करते थे [भगवओ सो अभिग्गहो न कत्थइ परिपुण्णो हवइ] किन्तु भगवान् का वह अभिग्रह कहीं पूरा नहीं होता था ॥५५॥

भावार्थ—लाट देश में विचरण करने के अनन्तर श्रमण भगवान् महावीर ने लाट

देश से विहार किया। विहार करके जहां श्रावस्ती नामकी नगरी थी, वहां पधारे। और अनेक प्रकार के तपश्चरण से अपनी आत्मा को भावित करते हुए भगवान् ने दसवां चौमासा वहीं किया। वहां पर भगवान् ने अष्टमभक्त (तेले) की तपस्या के साथ एक रात में पूर्ण होनेवाली भिक्षुप्रतिमा–मुनि के विशिष्ट अभिग्रह को अंगीकार करके ध्यान किया। वहां भी भगवान् श्री महावीर ने देवकृत, मनुष्यकृत और तिर्यंचकृत तरह–तरह के उपसर्गों को विना क्रोध के सहन किये। इसी प्रकार के विहार को अंगीकार करके एक गांव से दूसरे गांव विचरते हुए भगवान् वीर प्रभुने ग्यारवां चौमासा वैशाली नगरी में किया। चौमासे की समाप्ति के पश्चात् वीर प्रभु चलते–चलते शिशुमार नगर में पधारे। तदनन्तर भगवान् कौशाम्बी नगरी में पधारे। कौशाम्बी नगरी में शतानीक नामक राजा था। मृगावती नामक उनकी रानी थी। मृगावती की द्वारपालिका का नाम विजया था। शतानीक राजा का विजय नामक धर्माध्यक्ष था और

गुप्त नामक मंत्री था। गुप्त नामक मंत्री की पत्नी का नाम नन्दा था। नन्दा श्राविका थी और रानी मृगावती की सहेली थी। वीर भगवान् ने पोष मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा, तेरह बातों से युक्त इस प्रकार का अभिग्रह ग्रहण किया पहले द्रव्य की अपेक्षा से अभिग्रह बतलाते हैं-(१) सूप (छाजले) के कोने में, (२) उबाले हुए उडद अर्थात् बाकले हों, क्षेत्र से अभिग्रह बतलाते हैं-(३) भिक्षा देनेवाली काराग्रह में स्थित हों, (४) कारागार में देहली-दरवाजे पर हों (५) सो भी बैठी हों, (६) वह भी एक पैर देहली से बाहर निकाले हो और दूसरा पैर देहली से भीतर करके बैठी हो, काल से अभिग्रह बतलाते हैं (७) तीसरे पहर अन्य भिक्षाजीवियों के लोटकर चले जाने पर, भाव से अभिग्रह बतलाते हैं-(८) भिक्षा देनेवाली खरीदी हुई हो, दासी बनी हो मगर राजा की कन्या हो। (९) उसके हाथों पैरों में बेडिया पडी हों, (१०) मस्तक

मुंडा हुआ हो, (११) कांछ बांधी हुई हो, (१२) तेले की तपस्या से युक्त हो और (१३) आंसू बहा रही हो। इस प्रकार के अभिग्रह से अगर आहार मिलेगा तो मैं पारणा करूंगा, इन तेरह बोलों में से किसी एक की कमी होगी और अभिग्रह पूरा न होगा तो छह मासी तपस्या करूंगा। इस प्रकार मन ही मन में निश्चय करके भगवान् भिक्षा के लिए कौशम्बी के घर-घर में परिभ्रमण करते थे, परन्तु किसी भी घर में यह तेरह बोल का अभिग्रह पूर्ण नहीं होता था ॥५५॥

मूलम्-एवं पइदिणं भगवं अडमाणे पासिय लोगा अण्णमण्णं वितक्केंति, तत्थ केइ एवं वयंति-एस णं भिक्खू पइदिणं अडइ, ण उण भिक्खं गिण्हइ, एत्थ केणवि कारणेण हायव्वं'। 'केइ वयंति-उम्मत्तणेण भमइ'। अवरे वयंति-अयं कस्स वि रण्णो गुत्तयरो किंपि विसिट्ठं कज्जमुद्दिसिय अडइ। अण्णे वयंति-

चोरोऽयं चोरियमुद्दिसिय अडइ एगे वयंति—एसो चरिमो तित्थयरो अभिग्गहेण अडइ'। तओ पच्छा सव्वे जणा जाणिंसु जं एस णं तेलुक्कनाहे सव्वजग-जीवहियगरे समणे भगवं महावीरे दुक्करदुक्करेणं अभिग्गहेणं अडइ। मंदभग्गा अम्हे जं णं एरिस महापुरिसस्स अभिग्गहे पूरिउं न सक्कामो। एवं अडमा-णस्स भगवओ पंचदिवसोणा छम्मासा वीइक्कंता। तए णं बीए दिवसे लोह निगडबंधनतोडणपडिनिहित्तम्मि अणाइकालीण भवबंधनतोडणं काउं लोहयारठाणीए भगवं धनावहसेट्ठिणो गिहे चंदणबालाए अंतीए समणुपत्ते। तं दट्ठूणं सा चंदणा हट्ठतुट्ठा चित्तमाणंदिया हरिसवसविसप्प-माणहियया चिंतेइ—

'अहो पत्तं मए पत्तं किंचि पुण्णं ममत्थ वि।

अभिग्रहार्थ-
मटमाणस्य
भगवत-
विषये
लोक वित-
र्कादिकम्

जं इमो अतिही पत्तो कप्परुक्खो ममंगणे ॥

त्ति चिंतिय भगवं पत्थेइ नोचियं इमं भत्तं भदंतस्स, तहवि जइ कप्पणिज्जं तो ममोवरि किवं काऊं गिज्झउ। तए णं से भगवं तत्थ बारसपयाणि पडिपुण्णाणि पासइ, अस्सुरूवं तेरसमं पयं न पासइ, तओ भगवं पडिणियट्टइ। पडिनियट्टमाणं भगवं दट्ठूणं चंदणा परिचिंतेइ आगओ भगवं एत्थ, पच्छा एसो नियट्टिओ। किं दुक्कमं मए चिण्णं, जस्सिमं एरिसं फलं ॥ अहं केरिसा अधण्णा अपुण्णा अकयत्था अकयपुण्णा अकयलक्खणा अकयविहवा कुलद्धेणं मए जम्मजीवीयफले, जीए इमा एयारूवा दुहपरंपरा लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया। मम अट्ठमतवपारणगे समागओ एयारिसो गहियाभिग्गहो महामुनि महावीरो भगवं अपडिलाभिओ चेव पडिणियत्तो। गिहागओ कप्प-

रुक्खो हत्थाओ अवसरियो। हत्थगयं वज्जरयणं नट्ठंति कट्टु सा चंदनबालाए रोइउ मारभीअ। तए णं भगवं तेरसमं वयं पडिपुण्णं विण्णाय पडिनियट्टिय चंदणबालाए हत्थाओ बप्फियमासे पत्ते पडिग्गहिय तओ निवत्तीअ। तेणं कालेणं तेणं समएणं तस्स णं धणावहसेट्ठिस्स गिहंसि देवेहिं पंचदिव्वाइं पगडीकयाइं। तं जहा—१ वसुहारावुट्ठा २ दसद्धवण्णे कुसुमे णिवाइए ३ चेलुक्खेवे कए४ आहयाओ दुंदुहीओ५ अंतरा वि य णं आगासंसि अहो दाणं अहो दाणं ति घुट्ठे य देवा जयजय सद्दं पउंजमाणा चंदणबालाए महिमं करिंसु। तेणं दव्वसुद्धेणं दायगसुद्धेणं पडिग्गहियसुद्धेणं तिविहे णं तिकरणसुद्धेणं संसारे परित्तिकए। तीए निगडबंधणट्ठाणम्मि हत्थपाया वलयं णेउरसमलंकिया जाया, केसपासो सुन्दरो समुब्भूओ। तीए सव्वं सरीरं नाणाविहवत्थालंकारविभूसियं

संजायं। सव्वत्थ हरिसपगरिसो जाओ देवदुंदुहिज्झुणिं सुणिय लोगा तत्थ आगं-
तूण चंदणबालं थुइंसु। धणावहसेट्ठिस्स धण्णवायं दलमाणा तब्भज्जं मूलं
निंदिंसु। तं सोऊण चंदणबाला लोगे निवारेमाणा वदीअ भो लोगा! एवं मा
वयंतु मम उ एसेव मूला माया अणंतोवगारिणी अत्थि, जप्पभावेण अज्ज मए
एरिसे सुअवसरे लद्धे पत्ते अभिसमन्नागएत्ति ॥५६॥

शब्दार्थ—[एवं पइदिणं भगवं अडमाणं पासिय लोगा अण्णमण्णं वितक्केंति]
इस प्रकार प्रतिदिन परिभ्रमण करते हुए भगवान् को देखकर लोग परस्पर
तर्क वितर्क करते थे [तत्थ केइ एवं वयंति—एस णं भिक्खू पइदिणं अडइ] उनमें से
कोई कहता यह भिक्षु प्रतिदिन परिभ्रमण करता है [ण उण भिक्खं गिण्हइ] किन्तु
भिक्षा नहीं लेता [एत्थ केणवि कारणेण हायव्वं] इसमें कोई कारण होना चाहिये

[केइ वयंति–उम्मत्तणेण भमइ] कोई कहता–यह भिक्षु पागलपन के कारण घूमता है [अवरे वयंति–अयं कस्सवि रण्णो गुत्तयरो किंपि विसिट्ठं कज्जमुद्दिसिय अडइ] दूसरे कहते यह किसी राजा का गुप्तचर है, किसी विशेष कार्य को लेकर घूम रहा है [अण्णे वयंति–चोरोऽयं चोरियमुद्दिसिय अडइ] कोइ कहता–यह चोर है और चोरी करने के उद्देश से घूम रहा है। [एगे वयंति–एसो चरिमो तित्थयरो अभिग्गहेण अडइ] कोई कहता ये अन्तिम तीर्थंकर हैं अभिग्रह के कारण घूमते हैं [तओ पच्छा सव्वे जणा जाणिंसु जं एसणं तेलुक्कणाहे सव्वजगजीवहियगरे समणे भगवं महावीरे दुक्करदुक्करेणं अभिग्गहेणं अडइ] उसके बाद सभी लोगों को मालूम हो गया कि यह तीन लोक के नाथ, जगत के समस्त जीवों के हितकारी, श्रमण भगवान् महावीर है और अतीव दुष्कर अभिग्रह के कारण भ्रमण कर रहे हैं [मंदभग्गा अम्हे जं णं एरिस महापुरिसस्स अभिग्गहं पुरिउं न सक्कामो] हमलोग मंद भागी हैं कि ऐसे महापुरुष के

अभिग्रह को पूरा नहीं कर सकते [एवं अडमाणस्स भगवओ पंचदिवसोणा छम्मासा वीइक्कंता] इस प्रकार भगवान् को घूमते घूमते पांच दिन कम छह माह हो गये [तए णं बीए दिवसे लोहनिगडबंधनतोडण पडिनिहित्तम्मि अणाइकालीण भवबंधनं तोडणं काउं] तब दूसरे दिन लोहे की बेडियों को तोडने के स्थानापन्न अनादिकालीन संसार बंधनों को तोडने के लिये [लोहयारट्ठाणीए भगवं धनावहसेट्ठिणो गिहे चंदणबालाए अंतीए समणुपत्ते] लोहकार के समान भगवान् धनावह सेठ के घर में चन्दनबाला के समीप पहुंचे [तं दट्ठूणं सा चंदणा हट्ठतुट्ठा चित्तमाणंदिया हरिसवसविसप्पमाणहियया चिंतेइ] भगवान् को देखकर चन्दना हृष्टतुष्ट हुइ। उसके चित्त में आनन्द हुआ। हर्ष से उसका हृदय विकसित हो गया। वह सोचती है–

[अहो पत्तं मए पत्तं] अहा, आज मुझे सुपात्र की प्राप्ति हुइ है [किंचि पुण्णं समत्थि वि जं इमो अतिही पत्तो] इस से प्रतीत होता है कि मेरा कुछ पुण्य शेष है

अभिग्रहार्थं-
मटमाणस्य
भगवत-
विषये
लोक वित-
र्कादिकम्

[कप्परुक्खो ममंगणे जं इमो अतिही पत्तो] जिस से कल्पवृक्ष के समान यह भिक्षार्थी श्रमण मेरे आंगन में आये है [त्ति चिंतिय भगवं पत्थेइ—नो चियं इमं भत्तं भदंतस्स] तहवि जइ कप्पणिज्जं तो ममोवरि किवं काउं गिज्झउ] इस प्रकार विचार कर उसने भगवान् से प्रार्थना की—यह भोजन भगवान् के योग्य नहीं है तथापि यदि कल्पनीय हो तो हे भगवन्! मुझ पर कृपा करके ग्रहण कीजिए [तए णं से भगवं तत्थ बारस पयाणि पडिपुण्णाणि पासइ] तब भगवान् ने वहां बारह बोलों का पूर्ण होना देखा [अस्सुरूवं तेरसमं पयं न पासइ] किन्तु आंसु रूप तेरहवां बोल पूर्ण होता हुआ नहीं देखा [तओ भगवं पडिनियट्टइ] तब भगवान् वापस लोटने लगे [पडिनियट्टमाणं भगवं दट्ठूणं चंदणा परिचिंतेइ] वापस लौटते हुए भगवान् को देख चन्दना सोचने लगी—[आगओ भगवं एत्थ पच्छा एसो नियट्टिओ] भगवान् वीर प्रभु यहां पधारे और आहार ग्रहण किये बिना ही लौट गये [किं दुक्कमं मए चिण्णं, जस्सिमं एरिसं

अभिग्रहार्थ-
मटमाणस्य
भगवत-
विषये
लोक वित-
र्कादिकम्

फलं] न जाने मैंने क्या पापकर्म किया है! जिसका यह अशुभ फर उदय में आया है [अहं केरिसी अधण्णा अपुण्णा अकयत्था अकयपुण्णा अकय-लक्खणा अकयविहवा कुलद्धेणं मए जम्मजीवियफले] मैं कैसी अधन्य हूं, पुण्य-हीन हूं, अकृतार्थ हूं, मैंने पुण्यउपार्जन नहीं किया! मैं सुलक्षणी नहीं हूं मैंने कोई वैभव नहीं पाया! मुझे जन्म का और जीवन का कैसा दुष्फल मिला है। [जीए इमा एयारूवा दुहपरम्परा लद्धापत्ता अभिसमन्नागया] जिससे कि मुझे ऐसी दुःक्खपरम्परा की उपलब्धि हुइ, प्राप्ति हुइ और दुःखपरम्परा ही मेरे सामने आइ [मम अट्ठमतव पारणगे समागओ एयारिसो गहियभिग्गहो महामुणी महावीरो भगवं अपड़िलाभिओ चेव पडिनियत्तो] मेरे तेले के पारणे के अवसर पर आये हुए ऐसे अभिग्रहधारी महा-वीर भगवान् आहार लिये विना ही लौट गये [गिहागओ कप्परुक्खो हत्थाओ अव-सरिओ] जैसे घर में आया हुआ कल्पवृक्ष ही हाथ से चला गया [हत्थगयं वज्जरयणं

अभिग्रहार्थ-मटमाणस्य भगवत-विषये लोक वित-र्कादिकम्

नट्ठंति कट्टु सा चंदणबाला रोइउमारभीअ] हाथ में आया वज्ररत्न नष्ट हो गया यह सोच चन्दनबाला रुदन करने लगी–उसके नेत्रों से आंसू बहने लगे [तए णं भगवं तेरसमं वयं पडिपुण्णं विण्णाय पडिणियट्टिय चंदणबालाए हत्थाओ बाप्फिय मासे पत्ते पडिग्गहिय तओ निवत्तीअ] उस समय भगवान् तेरहवां बोल पूर्ण हुआ जानकर लौटकर चन्दनबाला के हाथ से उडद के बाकले पात्र में ग्रहण करके वहां से पीछे लौट गये।

[तेणं काले णं तेणं समएणं तस्स णं धणावहसेट्ठिस्स गिहंसि देवेहिं पंचदिव्वाइं पगडीकयाइं] उस काल और उस समय उस धनावह सेठ के घर में देवों ने पांच दिव्य प्रकट किये [तं जहा–१–वसुहारावुट्ठा २ दसद्धवण्णे कुसुमे णिवाइए ३ चेलुक्खेवेकए ४ आहयाओ दुदुहिओ ५ अंतरा वि य णं अगासंसि अहोदाणं अहोदाणं ति घुट्ठे य] वह इस प्रकार–१–स्वर्ण की वर्षा हुई २ पांच रंग के फूलों की वर्षा हुई

३ वस्त्रों की वर्षा हुई ४ दुंदुभियों की ध्वनि हुई ५ आकाश में अहोदान अहोदान का घोष हुआ [देवा जय जय सद्दं पउंजमाणा चंदणबालाए महिमं करिंसु] जय जयकार करके देवों ने चंदनबाला के महिमा का प्रकाश किया [तेणं दव्वसुद्धेणं] द्रव्यशुद्ध [दायगसुद्धेणं] दायकशुद्ध [पडिग्गहियसुद्धेणं] परिग्राहक शुद्ध [तिविहेणं] तीन प्रकार से [तिकरणसुद्धेणं] त्रिकरण शुद्ध होने से [संसारे परित्तीकए] उस चंदनबालाने अपना संसार को अल्प कर दिया [तीए निगडबंधणट्ठाणम्मि हत्थपाया वलय-णेउरसमलंकिया जाया] बेडियों की जगह उसके हाथ पैर कडों और नूपुरों से अलंकृत हो गये [केसपासो सुंदरो समुब्भुओ] सुन्दर केशपाश उत्पन्न हो गया [तीए सव्वं सरीरं नाणाविहवत्थालंकारविभूसियं संजायं] उसका समस्त शरीर नाना प्रकार के वस्त्रों से और अलंकारों से विभूषित हो गया [सव्वत्थ हरिसपगरिसो जाओ] सर्वत्र हर्ष का उभार आ गया [देवदुंदुहिज्झुणिं सुणिय लोगा तत्थ आगंतूण चंदणबालं

अभिग्रहार्थमटमाणस्य भगवत-विषये लोक चितकादिकम्

थुइंसु] देव दुंदुभियों की ध्वनि सुनकर लोग वहां आये और चन्दनबाला की स्तुति करने लगे [धनावहसेट्ठिस्स धण्णवायं दलमाणा तब्भज्जं मूलं निंदिंसु] धनावाह सेठ को धन्यवाद देते हुए उसकी पत्नी मूला की निंदा करने लगे [तं सोऊण चंदण-बाला लोगे निवारेमाणी वदीअ–] यह सुनकर चन्दनबाला ने उन्हें रोक दिया और कहा–[भो लोगा! एवं मा वयंतु मम उ एसेव मूला माया अनंतोवगारिणी अत्थि जप्पभावेण अज्ज मए एरिसे सुअवसरे लद्धे पत्ते अभिसमन्नागएत्ति] मूला माता ही मेरी महान् उपकारिणी है जिसके प्रभाव से आज मुझे यह सुअवसर प्राप्त हुआ है, लब्ध हुआ है और मेरे सामने आया है ॥५६॥

भावार्थ—इस प्रकार भगवान् श्री महावीर को प्रतिदिन भिक्षा के लिए पर्यटन करते देखकर लोग आपस में तर्क वितर्क करते थे। उन लोगों में से कितनेक लोग इस प्रकार कहते–यह भिक्षु प्रतिदिन भिक्षा के लिए घूमता है, मगर भिक्षा लेता

नहीं है, इसमें कोई न कोई कारण होना चाहिए, जो हमें मालुम नहीं पडता। कोई कहते-यह भिक्षु उन्मत्त होने के कारण चक्कर काटा करता है। दूसरे कहते-यह किसी राजा का गुप्तचर है यह अपने राजा के किसी विशेष कार्य को लेकर घूमता है। किसी ने कहा यह चोर है और चोरी के उद्देश से घूमता है। कोई-कोई कहते थे-यह भिक्षु चौवीसवें तीर्थंकर है, और अपनी प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिए भ्रमण करते हैं। कुछ दिनों बाद सभी जन वीर भगवान् से परिचित हो गये। जान गये कि यह भिक्षु तीन लोक के स्वामी और संसार के प्राणी-मात्र के कल्याणकर्त्ता श्रमण भगवान् महावीर हैं, और दुष्कर-दुष्कर [अत्यंत ही कठोर] अभिग्रह के कारण भ्रमण करते हैं। जब लोगों को पता लगा तो वे इस प्रकार शोक करने लगे-आह ! हम सब अभागे हैं, जो ऐसे त्रिलोकीनाथ महापुरुष का अभिग्रह पूर्ण करने में समर्थ नहीं हैं। इस प्रकार अभिग्रह पूर्ति के निमित्त भिक्षा के लिए भ्रमण करने वाले भगवान् महवीर के

पांच दिन कम छह मास पूर्ण हो गये इतना समय बीत जाने के बाद, दूसरे दिन, लोहे की सांकलों के बंधनों को तोड देने के स्थानापन्न अनादि काल से चले आ रहे भव बंधनों को तोडने के लिए लुहार के समान भगवान् महावीर धनावह श्रेष्ठी के घर चन्दन बाला के निकट पहुंचे। भगवान् को आये देखकर चन्दनबाला हर्षित हुई और सन्तोष को प्राप्त हुई, उसका चित्त आनन्दित हुआ। हर्ष की अधिकता से उसका हृदय उछलने लगा। वह मन ही मन सोचती–अहा, आज मुझे सुपात्र की प्राप्ति हुई। इससे प्रतीत होता है कि मेरा कुछ पुण्य शेष है, जिससे कल्पवृक्ष के समान यह भिक्षार्थी श्रमण मेरे आंगन में आये हैं, इस प्रकार विचार कर चन्दनबाला भगवान् से प्रार्थना करती है,–'हे प्रभो ! यद्यपि तुच्छ होने के कारण यह आहार आपके योग्य नहीं है, आप जैसे अतिथि को तो विशिष्ट आहार अर्पित करना उचित है, तथापि यह तुच्छ अन्न भी सन्तोषामृत पीने वाले तथा एषणीय आहार की एषणा करने वाले आपको कल्पनीय हो

अभिग्रहार्थ-
मटमाणस्य
भगवत-
विषये
लोक वित-
र्कादिकम्

तो मुझ पर दया करके इसे स्वीकार कर लीजिये। तब भगवान् ग्रहण किये हुए तेरह बोलों में से बारह बोलों की पूर्ति हुई देखते हैं, सिर्फ बहते आसु जो तेरहवां बोल था उसे नहीं देखते। अतएव भगवान् वीर स्वामी यहां से लौटने लगते हैं। भगवान् को लौटते देखकर चंदनबाला मन में विचार करती है-भगवान् वीर प्रभु यहां पधारे और आहार ग्रहण किये बिना ही लौट गये। न जाने क्या मैंने पाप-कर्म किया है, जिसका ऐसा अशुभ फल उदय में आया है! मैं कैसी अधन्य हूं, पुण्य हीन हूं, अकृतार्था हूं! मैंने पुण्य-उपार्जन नहीं किया! मैं सुलक्षणी नहीं हूं। मैंने कोई वैभव नहीं पाया। मुझे जन्म का और जीवन का कैसा दुष्फल मिला है! जिससे कि मुझे ऐसी दुःख-परम्परा की उपलब्धि हुई, प्राप्ति हुई और दुःखपरम्परा ही मेरे सन्मुख आई! अष्टमभक्त के पारणे के अवसर पर ऐसे अत्यंत दुष्कर अभिग्रह को धारण करने वाले महामुनि महावीर प्रभुश्री आहार लिये विना ही वापिस लौट गये, सो मैं समझती हूं कि घर

अभिग्रहार्थ-
मटमाणस्य
भगवत-
विषये
लोक वित-
र्कादिकम्

में आया कल्पवृक्ष ही हाथ से चला गया। मानों हाथ में आया हुआ सर्वोत्तम हीरा गुम हो गया।' इस प्रकार विचार करके चन्दनबाला रुदन करने लगी–उसके नेत्रों से आंसू बहने लगे। चन्दनबाला के रुदन करने पर भगवान् शेष रहे हुए एक बोल की पूर्ति हुई जानकर पुनः वापिस लौटे। लौटकर चन्दबाला के हाथ से भगवान् ने उबले हुए उडद् बाकले–पात्र में ग्रहण किये, और ग्रहण करके वहां से लौट गये।

उस काल और उस समय में अर्थात् भगवान् महावीर के भिक्षा ग्रहण करके ने अवसर पर चन्दन बाला को खरीदने वाले धनावह सेठ के घर में देवों ने पांच दिव्य वस्तुएं प्रकट कीं। वे इस प्रकार हैं–(१) देवों ने स्वर्ण मुद्राओं की वृष्टि की (२) पांच वर्ण के अचित्त फूलों की वर्षा की। (३) वस्त्रों की वर्षा की। (४) दुन्दिभियां बजाई (५) आकाश के मध्य में 'अहो दानं, अहो दानं' का उच्चस्वर से घोष किया। तत्पश्चात् देवों ने 'जय-जय' शब्द का प्रयोग करके चन्दन बाला की महिमा प्रसिद्ध की। द्रव्यशुद्ध दायकशुद्ध

और प्रतिग्राहकशुद्ध तीनों प्रकार से त्रिकरणशुद्ध होने से उस चंदनबालाने अपना संसार को अल्प बनाया। चन्दनबाला की बेडियों की जगह दोनों हाथ कंकणों से और दोनों पैर नूपुरों से अलंकृत हो गये। उसके मुंडित मस्तक पर सुन्दर केशपाश उत्पन्न हो गया। सारा शरीर 'भांति-भांति के वस्त्रों और आभूषणों से सुशोभित हो गया। सब जगह खूब हर्ष ही हर्ष छा गया। देवदुन्दुभी का घोष सुना, तो सब लोग वहीं आ पहुंचे, जहां चन्दनबाला थी और उसके प्रभाव की प्रशंसा करने लगे। सबने धनावह सेठ को धन्यवाद देते हुए उनकी पत्नी मूला की निन्दा की उसे धिक्कार दिया। मूला की निन्दा सुनकर चन्दनबाला निन्दा करने वाले लोगों को रोकती हुई कहने लगी-'हे भाइओं इस प्रकार मत बोलो। मूला माता हो मेरा अनन्त उपकार करने वाली है, जिसके प्रभाव से आज मेंने-भगवान् का अभिग्रह पूर्ण करने का यह शुभ अवसर का लाभ किया है, पाया है और सन्मुख किया है। अर्थात् यह मूला माता का ही उपकार

है कि मैं भगवान् का अभिग्रह पूर्ण करके सुपात्रदान का फल पा सकी ॥५६॥

मूलम्—तए णं एसा चंदणबाला समणस्स भगवओ महावीरस्स पढमा-सिस्सिणी भविस्सइ' त्ति आगासंसि देवेहिं घुट्टं। का एसा चंदणबाला जीए हत्थेण भगवओ पारणगं' ति तीए चरितं संखेवओ दंसिज्जइ—एगया कोसंबी नयरीनाहो सयाणीओ णामं राया चंपानगरीणायगं दधिवाहणाभिहं निवं अवक्कमियं दुण्णीइए चंपाणयरिं लुंटिअ। दधिवाहणो राया पलाईओ तओ सयाणीयरायस्स कोवि भडो दधिवाहणरायस्स धारिणिं णामं महिसिं वसुमइं पुत्तिं च रहंमि ठाविय कोसंबिं नयइ, मग्गे सो भणइ—इमं महिसिं भज्जं करिस्सामित्ति। तओ धारिणी देवी तं वयणं सोच्चा निसम्म सीलभंगभएण सयजीहं अवकरिसिय मया। तं दट्ठूणं भीओ सो भडो इमावि एयारिसं

अकज्जं मा करिज्जं त्ति कट्टु तं वसुमइं किंचिवि न भणिय कोसम्बीए चउ-प्पहे विक्कीअ। विक्कायमाणिं तां एगा गणिया मुल्लं दाउं किणीअ। सा वसु-मई तं गणिअं भणीअ हे अंब! कासि तं? केण अट्ठेणं अहं तए कीणिया? सा भणइ—अहं गणिया मम कज्जं परपुरिसपरिरंजणं। तीए एरिसं हियय वियारगं अणारियं वज्जपायंविव वयणं सोच्चा सा कंदिउमारभीअ। तीए अट्टणायं सोच्चा तत्थ ट्ठिओ धणावहो सेट्ठी चिंतीअ—'इमा कस्सवि रायवरस्स ईसरस्स वा कन्ना दीसइ, मा इमा आवया भायणं होउ' त्ति चिंतीअ सो तइच्छियं दव्वं सोच्चा तं कन्नं घेत्तूण नियभवणे णईअ। सेट्ठी तब्भज्जा मूला य तं णियपुत्तिंविव पालिउं पोसिउं उवक्कमीअ। एगया गिम्हकाले अण्ण-भिच्चाभावे सा वसुमई सेट्ठिणा वारिज्जमाणा वि गिहमागयस्स तस्स पाय-

पक्खालणं करीअ। पाए पक्खालंतीए तीए केसपासो छुटिओ 'इमाए केस-
पासो उल्लभूमीए मा पडउ' त्ति कट्टु तं सेट्ठी नियपाणिलट्ठीए धरिऊण
बंधीअ। तया गवक्खट्ठिया सेट्ठिणा भज्जा मूला वसुमईए केसपासं बंधमाणं
सेट्ठिं दट्ठूण चिंतीअ। इमं कन्नं पालिय पोसिय मए अनट्ठं कयं, जइ इमं
कन्नं सेट्ठी उव्वहेज्जा तो हं अवयट्ठा चेव भविस्सामि। उपज्जमाणा चेव
वाही उवसामेयव्वि' त्ति कट्टु एगया अन्नगामगयं सेट्ठिं मुणिय सा नावि-
एण तीए सिरं मुंडाविय सिंखलाए करे निगडेण पाए नियंतिय एगम्मि भूमि-
गिहे तं ठाविय तं भूमिगिहं तालएण नियंतिय सयं तस्सिं चेव गामे पिउगेहं
गया। सा य वसुमई तत्थ छुहाए पीडिज्जमाणा चिंतेइ—

कत्था रायकुलं मऽत्थि, दुद्दसा केरिसी इमा।

किं मे पुराकयं कम्मं, विवागो जस्स ईरिसो ॥

एवं चिंतेमाणा 'सा कारागारमुत्तिपज्जंतं तवं करिस्सामि' त्ति कट्टु मणंमि परमेट्ठिमंतं जपिउमारभीअ। एवं तीए तिन्नि दिणा वइक्कंता। चउत्थे दिणे सेट्ठी गामंतराओ आगओ वसुमई अदट्ठूण परियणे पुच्छीअ। मूला निवारिया ते तं न कंपि कहीअ। तओ कुद्धो सेट्ठी भणीअ—जाणमाणावि तुम्हे वसुमइं न कहेइ, अओ मज्झगिहाओ निग्गच्छह' त्ति सोऊण एगाए वुड्ढाए दासीए ममं जीविएणं सा जीविउ' त्ति कट्टु सेट्ठिणो तं सव्वं कहीयं। तं सोऊण सेट्ठी सिग्घं तत्थ गंतूण तालगभंजिअदारं उग्घाडिय वसूमइं आसासीअ तए णं से सेट्ठी गिहे न भायणं न भत्तं कत्थवि पासइ, पसुनिमित्तं निप्फाइए बप्फियमासे चेव तत्थ पासइ, तं अण्णभायणाभावे सुप्पे गहिय

तेण भत्तट्ठं वसुमईए समाधिया। सयं च निगडाइ बंधणच्छेयणट्ठं लोहयारमा- कारिउं तग्गिहे गमिअ सा वसुमई य स बप्फियमासं सुप्पं हत्थेण गहीअ चिंतीअ-'इयोपुव्वं मए किंपि दाणं दाऊण मेव पारणगं कयं, अज्जउ न किंपि दाऊणं कहं पारेमि? केरिसो मे दुहविवागो उदिओ, जे णं अहं एरिसां दसां संपत्ता। जइ कस्सवि अतिहिस्स एयं भत्तं दच्चा अहं पारणगं करेमि, तो सेयं त्ति चिंतीअ गिहदेहलीए एगं पायं बाहिं एगं पायं अंतो किच्चा मुणिमग्गं पासमाणी चिट्ठइ। सा चेव वसुमई चंदणस्सेव सीयलसहावत्तणेण चंदण- बालत्ति नामेण पसिद्धिं पत्ता॥५७॥

शब्दार्थ—[तए णं 'एसा चंदणबाला समणस्स भगवओ महावीरस्स पढमा सिस्सिणी भविस्सइ' त्ति आगासंसि देवेहिं घुट्ठं] तदनन्तर आकाश में देवों ने घोषणा की—यह चंदन-

बाला श्रमण भगवान् महावीर की प्रथम शिष्या होगी [का एसा चंदणबाला जीए हत्थेण भगवओ पारणगं जायं'–ति तीए चरितं संखेवओ दंसिज्जइ–] जिसके हाथ भगवान् ने पारणा के लिये आहार का दान ग्रहण किया वह चन्दबाला कौन थी ? उसका चरित्र संक्षेप में दिखलाया जाता है–[एगया कोसंबी नयरीनाहो सयाणीओ णामं राया] एक बार कौशाम्बी नगरी के राजा शतानीक ने [चंपा नयरीणायगं दधिवाहणाभिहं निवं अवक्कमिय दुण्णीईए चंपाणयरिं लुंटीअ] चंपानगरी के नायक राजा दधिवाहन पर आक्रमण कर के दुर्नीति से चंपानगरी को लूटा। [दधिवाहणो राया पलाइओ] दधिवाहन राजा भाग गया [तओ सयाणीयरायस्स को वि भडो दधिवाहणरायस्स धारिणी णामं महिसीं वसुमइं पुत्तिं च रहंमि ठाविय कोसबिं नयइ] तब शतानीक राजाका एक योद्धा राजा दधिवाहन की धारीणी नामक रानी को और वसुमती नामक पुत्री को रथ में बिठला कर कौशाम्बी ले चला [मग्गे सो भणइ–इमं महिसिं भज्जं करिस्सामित्ति]

मार्ग में उसने कहा-'इस रानी को मैं अपनी पत्नी बनाऊंगा [तओ धारिणी देवी तं वयणं सोच्चा निसम्म सीलभंगभएण सयजीहं अवकरिसिय मया] धारिणीदेवी ने उसके यह बचन सुनकर और समझकर शीलभंग के भय से अपनी जीभ बहार खींचली और प्राण त्याग दिये [तं दट्ठूणं भीओ सो भडो इमाबि एयारिसं अकज्जं मा करिज्ज त्ति कट्टु तं वसुमइं किंचि वि न भणिय कोसम्बीए चउप्पहे विक्कीअ] धारिणी देवी को मरी हुअी देखकर वह डरगया और कहीं यह राजकुमारी भी ऐसा ही अकार्य न कर बैठे यह सोचकर उसने वसुमती से कुछ भी न कहा और कोशाम्बी के चौक में लेजाकर बेच दिया [विक्कायमाणिं तं एगा गणिया मुल्लं दाउं किणीअ] बिकती हुई वसुमती को एक वेश्या ने मूल्य देकर खरीदा [सा वसुमई तं गणियं भणीअ-हे अंब ! कासि तं ? केण अट्ठेण अहं तए कीणीया ?] वसुमती ने उस वेश्या से कहा -माता, तुम कौन हो ? किस प्रयोजन से मुझे खरीदा हैं ? [सा भणइ अहं गणिया , मम कज्जं

परपुरिसपरिरंजणं] वेश्या बोली–मैं गणिका हूं परपुरुषों का मनोरंजन करना मेरा कार्य है [तीए एरिसं हिययवियारगं अणारियं वज्जपायं विव वयणं सोच्चा सा कंदिउ मारभीअ] गणिका के इस प्रकार के हृदय विदारक अनार्य और वज्रपात के समान व्यथा जनक वचन सुनकर वह रोने लगी। [तीए अट्टनायं सोच्चा तत्थट्ठिओ धणावहो सेट्ठी चिंतीअ–] उसका आर्तनाद सुनकर वहां खडे धनावह सेठ ने विचार किया–[इमा कस्सवि रायवरस्स ईसरस्स वा कन्ना दीसइ] यह किसी उत्तम राजा की या धनिक की कन्या दीखती है [मा इमा आवयाभायणं होउ' त्ति चिंतीअ सो तइच्छियं दव्वं दच्चा तं कन्नं घेत्तूण नियभवणं नईअ] यह आपत्ति का पात्र न बने तो अच्छा, ऐसा सोचकर गणिका को इच्छित धन देकर वसुमती को अपने घर ले आया [सेट्ठी तब्भज्जा मूला य तं णियपुत्तिं विव पालिउं पोसिउं उवक्कमीअ] सेठ और उसकी पत्नी मूला, अपनी पुत्री के समान उसका पालन पोषण करने लगे [एगया गिम्हकाले अण्णभिच्चाभावे सा वसुमई सेट्ठिणा

वारिज्जमाणावि गिहमागयस्स तस्स पायपक्खालणं करीअ] एक बार ग्रीष्म के समय में अन्य सेवक के अभाव में वसुमती सेठ के द्वारा मना करने पर भी बाहर से घर आये हुए धनावह के पैर धोने लगी। [पाए पक्खालंतीए तीए केसपासो छुटिओ] पैर धोते समय उसका केशपाश छूट गया। ["इमाए केसपासो उल्लभूमीए मा पडउ" त्ति कट्टु तं सेट्ठी नियपाणिलट्ठीए धरिऊण बंधीअ] तब इसका केशपाश गीली भूमि में न पड जाय' ऐसा सोचकर सेठ ने उसे अपने हाथ रूप यष्टी में लेकर बांध दिया [तया गवक्खट्ठिया सेट्ठिणा भज्जा मूला वसुमईए केसपासं बंधमाणं सेट्ठिं दट्ठूण चिंतीअ] तब गवाक्ष में स्थित सेठ की पत्नी मूला ने सेठ को वसुमती का केशपाश बांधते देख-कर विचार किया ['इमं कण्णं पालिय पोसिय मए अनट्ठं कयं] इस कन्या का पालन पोषण करके मैंने अनर्थ किया [जइ इमं कण्णं सेट्ठी उव्वहेज्जा तो हं अंवयट्ठा चेव भविस्सामि] कदाचित् सेठ ने इस कन्या के साथ विवाह कर लिया तो में अपदस्थ

हो जाऊंगी [उप्पज्जमाणा चेव वाही उवसामेयव्वि' त्ति कट्टु] बिमारी को उत्पन्न होते ही शान्त कर देना चाहिये । इस प्रकार सोच कर [एगया अन्नगामगयं सेट्ठिं मुणिय सा नाविएण तीए सीरं मुंडावीय सिंखलाए करे निगडेण पाए नियंतिय] एक बार सेठ को दूसरे गांव गया जानकर उसने नाई से वसुमती का सिर मुंडवा कर हथकडियों से हाथ और बेडियों से पैर बांधकर (एगम्मि भूमिगिहे तं ठाविय तं भूमिगिहं तालएण नियंतिअ सयं तस्सिं चेव गामे पिउगेहं गया] उसे एक भूमिगृह में डाल भूमिगृह को ताले से बंध कर उसी ग्राम में वह अपने पिता के घर चली गई [सा य वसुमई तत्थ छुहाए पीडिज्जमाणा चिंतेइ--] वसुमती उस भोयरे में भूख और प्यास से पीडित होती हुई सोचती है ।

[कत्थ रायकुलं मेऽत्थि] कहां तो मेरा वह राजवंश [दुद्दसा केरिसी इमा] और कहां यह मेरी इस समय की दुर्दशा [किं मे पुराकयं कम्मं विवागो जस्स ईरिसो] पूर्व-

भव में मेरे द्वारा उपार्जित अशुभ कर्म न जाने कैसा है? जिसका फल ऐसा भोगना पड रहा है [एवं चिंतेमाणा 'सा कारागारमुत्तिपज्जंतं तवं करिस्सामि' त्ति कट्टु मणंमि परमेट्ठीमंतं जपिउ मारभीअ] इस प्रकार विचार करती हुई उसने 'मैं कारागार से मुक्त होने तक तप करूंगी' ऐसा निश्चय करके मन में परमेष्ठी मंत्र का जाप करना आरंभ कर दिया [एवं तीए तिन्नि दिणा वइक्कंता] यों उसके तीन दिन बीत गये [चउत्थे दिणे सेट्ठी गामंतराओ आगओ वसुमइं अदट्ठूण परियणे पुच्छीअ] चौथे दिन सेठ घर आये। वसुमती को न देखकर परिजनों से पूछा [मूला निवारिया ते तं न किंपि कहीअ] मूला ने उन्हें मनाकर दिया था, अतः उन्होंने कुछ भी नहीं बतलाया [तओ कुद्धो सेट्ठी भणीअ—जाणमाणावि तुम्हे वसुमइं न कहेह अओ मज्झ गिहाओ णिग्गच्छह] तब क्रुद्ध होकर सेठ ने कहा—'तुम जानते हुए वसुमती के विषय में नहीं बतलाते हो तो मेरे घर से चले जाओ [त्ति सोऊण एगाए वुड्डाए दासीए ममं जीवि-

एण सा जीवउ' त्ति कट्टु सेट्ठिणो तं सव्वं कहियं] यह सुन कर एक बूढी दासी ने 'मेरे जीवन से भी वह जीये' अर्थात् मेरे प्राण जाते हों तो भले जाएं ऐसा सोचकर उसने समस्त वृत्तान्त धनावह श्रेष्ठी से कह दिया [तं सोऊण सेट्ठी सिग्घं तत्थ गंतूणं तालगं भंजिअ दारं उग्घाडिय वसुमइं आसासीअ] यह वृत्तान्त सुनकर सेठ शीघ्र ही भोंयरे में पहुंचा वहां जाकर उसने ताला तोडा और भोयरे में पहुंच कर वसुमती को आश्वासन दिया [तए णं से सेट्ठी गिहे न भायणं न य भत्तं कत्थवि पासइ] उसके बाद सेठ को घर में न कोई बर्तन दिखाई दिया और न भोजन ही [पसुनिमित्तं निप्फाइए बाप्फियमासे चेव तत्थ पासइ] पशुओं के लिए उबाले हुए उडद ही वहां नजर आये [ते अण्णभायणाभावे सुप्पे गहिय तेणं भत्तट्ठं वसुमईए समाधिया] दूसरा वर्तन न होने से उन्हें सूप में लेकर उसने खाने के लिए वसुमती को दिये [सयं च निगडाइ बंधणच्छेयणट्ठं लोहयारमाकारिउं तग्गिहे गमिअ] धनावह सेठ स्वयं बेडी

आदि बन्धनों को छेदने के लिये लुहार को बुलाने उसके घर चला गया [सा वसुमई य स बप्फियमासं सुप्पं हत्थेण गहिय चिंतीअ-] वसुमती उबले हुए उडदों वाले सूप को हाथ में लेकर सोचने लगी-[इयो पुव्वं मए किंपि दाणं दाऊणमेव पारणगं कयं] इससे पहले मैंने कुछ दान देकर ही पारणा किया है [अज्जउ न किंपि दाउणं कहं पारेमि ?] आज कुछ भी दान दिये बिना कैसे पारणा करू ? [केरिसो मे दुहविवागो उदिओ, जेणं अहं एरिसं दसं संपत्ता] कैसा मेरे पाप कर्म का उदय आया है कि मैं ऐसी दुर्दशा को प्राप्त हुई [जइ कस्सवि अतिहिस्स एयं भत्तं दच्चा अहं पारणगं करेमि तो सेयं-त्ति चिंतीअ] यदि मैं किसी अतिथि विशेष को यह भोजन देकर पारणा करूं तो अच्छा है यह सोच करके [गिहदेहलीए एगं पायं बाहिं एगं पायं च अंतो किच्चा मुणिमग्गं पासमाणी चिट्ठइ] वह एक पैर देहली के बाहर और एक पैर भीतर करके मुनि की राह देखती हुई बैठी [सा चेव वसुमई चंदणस्सेव सीयलसहावत्तणेण चंदन-

बालत्ति नामेण पसिद्धिं पत्ता] वही वसुमती चन्दन के समान शीतल स्वभाववाली होने से 'चन्दनबाला' के नाम से प्रसिद्ध हुई ॥५७॥

भावार्थ—भगवान् को आहार पानी का दान देने के पश्चात् 'यही चन्दनबाला श्रमण भगवान् महावीर की सबसे पहली शिष्या होगी' इस प्रकार की घोषणा देवों ने आकाश में की कौन थी यह चन्दनबाला ? जिसके हाथ से भगवान् ने पारणा के निमित्त आहार का दान ग्रहण किया ? उसका परिचय क्या है ? इस बात के 'जिज्ञासुओं' के लिए चन्दनबाला का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है—एक समय कौशाम्बी नगरी के राजा शतानीक ने चम्पानगरी के स्वामी दधिवाहन राजा पर अपनी सेना के साथ आक्रमण किया और उसने दुर्नीति का आश्रय लेकर चम्पानगरी को लूटा। राजा दधिवाहन चम्पानगरी में लूटपाट प्रारंभ होने पर भयभीत होकर बाहर भाग गया। तब शतानीक का कोई योद्धा दधिवाहन राजा की धारिणी नामक रानी को

और वसुमती नामक पुत्री को रथ में बिठलाकर कौशाम्बी की ओर ले चला। रास्ते में उस योद्धा ने कहा-'राजा दधिवाहन की रानी धारिणी को मैं अपनी स्त्री बनाऊंगा'। योद्धा का यह कथन धारिणी ने सुना। और समझा। उसे शील के खंडित होने का भय हुआ। अतएव उसने अपनी जिह्वा बाहर खींच ली और प्राणत्याग दिये। धारिणी को मृतक अवस्था में देखकर योद्धा भयभीत हो गया। वह सोचने लगा-कहीं ऐसा न हो कि यह- वसुमती भी धारिणी की भांति कोई अवांछनीय कार्य कर बैठे-प्राण त्याग दे! यह सोच उसने अपने मन की कोई भी बात वसुमती से न कहकर कौशाम्बी के चौराहे पर ले जाकर उसे बेच दिया। बिकती हुई वसुमती को योद्धा के द्वारा निश्चित किया हुआ शुल्क देकर एक वेश्या ने खरीद लिया। तत्पश्चात् वसुमति ने उस गणिका से पूछा-माताजी, तुम कौन हो-मैं वेश्या हूं। वेश्या का काम है-पर-पुरुषों को प्रसन्न करना विलास हास आदि करके उनका मनोरंजन करना।'

हृदय को विदारण कर देने वाले, मन में खेद उत्पन्न करने वाले, आर्यजनों के लिए अनुचित तथा वज्रपात की तरह असह्य वचन सुनकर वसुमती आक्रन्दन–रुदन करने लगी। रोती हुई वसुमती की दुःखभरी वाणी सुनकर उसी चौराहे पर खडे हुए धनावह नामक एक सेठ ने विचार किया–'आकृति से प्रतीत होता है कि रोने वाली लडकी यह या तो बडे राजा की अथवा किसी धनवान् की बेटी होनी चाहिए। यह बेचारी लडकी दुःखिनी न हो तो अच्छा।' ऐसा सोचकर धनावह सेठ ने वेश्या का मुंह मांगा मोल चुकाकर राजकुमारी वसुमति को ले लिया। वह उसे अपने घर ले गये। घर ले जाने के पश्चात् धनावह सेठ और उनकी पत्नी मूलाने वसुमती का अपनी ही बेटी के समान पालन–पोषण करना प्रारंभ किया। एक वार ग्रीष्म ऋतु का समय था, सेठ धनावह दूसरे गांव से लौटकर अपने घर आये थे। जब वे घर आये, उस समय कोई नौकर उपस्थित नहीं था। अतएव वसुमती ही धनावह को

अपना पिता समझकर पैर धोने लगी। धनावह ने मना किया, पर वह नहीं मानी। जब वसुमती धनावह के चरण प्रक्षालन कर रही थी, उस समय उसका केशकलाप (जुडा) खुल गया। सेठ धनावह ने सोचा-इसके बाल कोचड वाली जमीन पर न गिर जाएं, यह सोचकर उन्होंने निर्विकारभाव से-यष्टि (लकडी) के समान अपने हाथों में लेकर उसके केशपाश को बांध दिया। उस समय धनावह सेठ की पत्नी मूला खिडकी में बैठी थी। उसने वसुमति का केशकलाप बांधते हुए धनावह को देखकर मन में विचार किया-इस लडकी का पालन पोषण करके मैंने अपना ही अनिष्ट कर डाला है। क्यों कि इस छोकरी के साथ मेरे पति ने विवाह कर लिया तो इसके साथ विवाह कर लेने पर मैं अपदस्थ हो जाऊंगी-अर्थात् मैं अधिकार से वंचिक हो जाऊंगी। अतएव मुझे कोई ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि मेरे पति इससे विवाह न कर सकें। जब बिमारी उत्पन्न हो रही हो तभी उसका इलाज कर लेना ही अच्छा है। मूला ने

ऐसा विचार कर लिया। कुछ ही समय के बाद उसे अवसर मिल गया। एक बार धनावह सेठ दूसरे गांव चले गये। उन्हें बाहर गया जानकर मूला ने नाई से वसुमती का सिर मुंडवा दिया। हाथों में हथकडी और पैरों में बेडी डाल दी। तब वसुमती को एक भोंयरे में बंद करदी। भोंयरे को ताला जड़ दिया। यह सब करके वह मूला, कौशाम्बी में ही अपने मायके [पिता के घर] चल दी। हाथों-पैरों से जकडी वसुमती भोंयरे में पडी हुई मन ही मन विचार करने लगी। वह क्या विचार करने लगी सो कहते हैं।

कहां तो मेरा वह राजवंश-जिसमें मेरा जन्म हुआ था और कहां यह इस समय की मेरी दुर्दशा? दोनों में तनिक भी समानता नहीं। आह? पूर्वभव में मेरे द्वारा उपार्जित अशुभ कर्म न जाने कैसा है? जिसका फल ऐसा भोगना पड रहा है। इस दुर्दशा के रूप में जो उदय में आया है। इस प्रकार विचार करती हुई वसुमती ने

यह निश्चय कर लिया कि 'जब तक मैं इस कारागार से छुटकारा न पाऊंगी तब तक अनशन तपस्या करूंगी ।' इस प्रकार विचारकर वह वसुमती 'नमो अरिहंताणं' इत्यादि रूप पंचपरमेष्ठी मंत्र का जाप करने लगी । इस प्रकार तीन दिन बीत गये । चौथे दिन धनावह सेठ दूसरे गांव से लौटे । उन्हें वसुमती दिखलाई नहीं दी तो भृत्य आदि परिजनों से उसके विषय में पूछताछ की । इस प्रकार सेठ के द्वारा जानने की जिज्ञासा करने पर भी, मूला द्वारा मना किये हुए नोकर चाकर वसुमती के विषय में कुछ भी न बोले। तब धनावह सेठ को क्रोध आगया उन्होंने कहा—तुम लोक जानते बूझते भी नहीं कहते हो तो मेरे घर से बाहर निकल जाओ। इस प्रकार सेठ के वचन सुनकर एक वृद्ध दासी ने सोचा—मेरे जीवन से भी वसुमती जीवीत रहे, अर्थात् मेरे प्राण जाते हों तो भले जायं, मेरे प्राणों के बदले वसुमती के प्राण बच जाने चाहिए। यह सोचकर उसने समग्र वृतान्त धनावह से कह दिया। इस वृतान्त को सुनकर धना-

वह शीघ्र ही भोंयरे के द्वार के समीप गये। भोंयरे का ताला तोडा। द्वार खोला, वसुमती को धीरज बंधाने वाले वचन कहकर संतोष दिया मूला जब अपने पिता के घर गई थी तो बरतन-भांडे सब गुप्त जगह में रख गई थी अतएव सेठ को जल्दी में न कोई बरतन मिला और न भोजन ही कहीं दिखाई दिया। केवल जानवरों के लिए उबले हुए उडद, जिन्हें लोक भाषा में 'बाकुला' कहते हैं, वहीं मिले। दूसरा बरतन न होंने के कारण सूप में ही उन्हें लेकर धनावह सेठ ने वह वसुमति को दिये। सेठ स्वयं बेडी वगैरह को काटने के हेतु लुहार बुलाने के लिये लुहार के घर चले गये। बंधे हुए हाथों-पैरों वाली वसुमती उबले हुए उड़द वाले सूप को हाथ में लेकर सोचने लगी -इससे पहले मैंने साधुओं को अशनपान खादिम और स्वादिम का दान देकर ही पारणा किया है? आज विना दान दिये पारणा कैसे करूं? कैसा गर्हित कर्म मेरे उदय में आया है, जिसके दुर्विपाक के कारण मैं दासीपन आदि की इस दशा को प्राप्त हुई

हूं, अगर मैं किसी मुनि को यही भोजन-रूप में स्थित उडद अशन-देकर पारणा करूं तो मेरा कल्याण हो जाय। इस प्रकार विचार करके वह घर की देहली से एक पैर बाहर और दूसरा पैर अन्दर करके मुनि के आगमन की प्रतीक्षा करने लगी। वही राजकुमारी वसुमती श्री खंड चन्दन के समान शान्त प्रकृति वाली होने के कारण 'चन्दनबाला' इस नाम से विख्यात हुई ॥५७॥

अंतिमो उवसग्गो

मूलम्-तए णं से समणे भगवं महावीरे कोसम्बीयाओ नयरीओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जणवयविहारं विहरइ। तओ पच्छा भगवं बारसमं चाउम्मासं चंपाए णयरीए चउम्मासतवेणं ठिए, तओ निक्खमिय छम्माणियाभिहस्स गामस्स बहिया उज्जाणम्मि काउसग्गंमि ठिए। तत्थ णं एगो

गोवालो आगंतूण भगवं दट्ठूणं एवं वयासी—भो भिक्खू! मम इमे बइल्ले रक्खउत्ति कहिअ गामंमि गओ। गामाओ आगमिय बइल्ले न पासइ, भगवं पुच्छेइ—कत्थमे बइल्ला ? झाणनिमग्गे भगवं न किंचि वयइ। तओ से पुव्व-भव वेराणुबंधिकम्मुणा कुद्धो आसुरुत्तो मिसिमिसमाणो भगवओ कण्णेसु सरग-डनामस्स कढिणरुक्खस्स कीले निम्माय कुढारप्पहारेण अंतो निखणिय तेसिं उवरिभागे छेदिअ, जे णं ते न कोइ नाउं सक्किज्जा न वि य निस्सारिउं। पहुस्स इमो अट्ठारसमभवबद्धकम्मुणो उदओ समुवट्ठिओ। दुरासओ सो गोवालो तओ निक्खमिय अन्नत्थ गओ। पहू य तओ निक्खमिय मज्झिम-पावाए णयरीए भिक्खं अडमाणे सिद्धत्थसेट्ठि गिहमणुपविट्ठे। तत्थ णं खर-गाभिहो विज्जो अच्छेइ, सो य पहुं दट्ठुं जाणीअ जं एयस्स कण्णेसु केणवि

सल्लाइं निखायाइं, तेणं एस पहू अउलं वेयणं अणुभवइत्ति। तए णं सो विज्जो सेट्ठिं कहीअ। पहू य गहिय भिक्खे उज्जाणं समणुपत्ते। सो सेट्ठि विज्जो य उज्जाणे गमिय काउसग्गट्ठियस्स पहुस्स कण्णेहिंतो महईए जुत्तीए ताइं सल्लाइं निस्सारेंति। जइ वि कीलगुद्धरणे पहुस्स दुरसहा वेयणा संजाया। तहवि भगवं चरिमसरीरत्तणेण अनंतबलत्तणेण य तं उज्जलं तिव्वं घोरं कायर-जणदुरहियासं वेयणं सम्मं सहीअ। तए णं से सेट्ठी विज्जो य तेण सुह कम्मुणा बारसमे कप्पे उववण्णा इइ गंथंतरे ॥५८॥

शब्दार्थ—[तए णं से समणे भगवं महावीरे कोसंबीयाओ णयरीओ पडिनिक्खमइ] उसके बाद श्रमण भगवान् महावीर ने कोशाम्बी नगरी से विहार किया [पडिनिक्खमित्ता जणवयं विहारं विहरइ] विहार कर जनपद में विचरने लगे [तओ पच्छा भगवं बारसमं

चाउम्मासं चंपाए नयरीए चउम्मासतवेणं ठिए] तत्पश्चात् भगवान् चौमासी तप के साथ चंपा नगरी में बारहवें चातुर्मास के लिए विराजे [तओ निक्खमिय छम्माणियाभिहस्स गामस्स बहिया उज्जाणम्मि काउसग्गे ठिए] तदनंतर वहां से विहार कर षण्मानिक नाम के ग्राम के बाहर उद्यान में कायोत्सर्ग में स्थित हुए [तत्थ णं एगो गोवालो आगंतूण भगवं दट्ठूणं एवं वयासी–] वहां एक गोवाल आया और भगवान् को देखकर इस प्रकार बोला–[भो भिक्खू ! मम इमे बइल्ले रक्खउत्ति कहिय गामम्मि गओ] हे भिक्षु ! मेरे इन दोनों बैलों की रखवाली करना ऐसा कहकर गांव में चला गया [गामाओ आगमिय बइल्ले न पासइ] गांव से लौटने पर उसे बैल दिखाई न दिये [भगवं पुच्छेइ–कत्थमे बइल्ला ?] भगवान् से पूछा–कहां है मेरे बैल ? [झाणनिमग्गे भगवं न किंचि वयइ] ध्यानमग्न भगवान् कुछ न बोले। [तओ से पुव्वभववेराणुबंधिकम्मुणा कुद्धो आसुरुत्तो मिसि-

मिसेमाणो भगवओ कण्णेसु सरगडनामस्स कढिणरुखस्स कीले निम्माय] तब उसने पूर्व भव के वैरानुबंधी कर्म के कारण क्रुद्ध होकर-लाल होकर ओर मिसमिसाते हुए शरकट-नामक कठिन वृक्ष की दो कीलें बनाकर [कुढारप्पहारेण अंतो निखणिय तेसिं उवरि भागे छेदीअ] भगवान् के कानों में कुठार के प्रहार से अन्दर ठोंकदी और उनके बाहरी भागों को काट डाला [जे णं ते न कोइ नाउं सविकज्जा न वि य निस्सारिउं] जिस से किसी को माल्म न हो और कोई निकाल भी न सके [पहुस्स इमो अट्ठारसमभवबद्धकम्मुणो उदओ समुवट्ठिओ] प्रभु के यह अठारवें भव में बांधे हुए कर्म का उदय उपस्थित हुआ [दुरासओ सो गोवालो तओ निक्खमिय अन्नत्थ गओ] वह दुराशय गुवाल वहां से निकल कर अन्यत्र चला गया [पहू य तओ निक्खमिय मज्झिमपावाए णयरीए भिक्खट्ठाए अडमाणे सिद्धत्थ सेट्ठि गिहमणुपविट्ठे] भगवान् वहां से निकलकर मध्यमपावा नगरी में भिक्षा के लिए अटन करते हुए सिद्धार्थ सेठ

के घर में प्रविष्ट हुए [तत्थ णं खरगाभिहो विज्जो अच्छइ] वहां खरक नामक एक वैद्य था [सो य पहुं दट्ठुं जाणीअ जं एयस्स कण्णेसु केणवि सल्लाइं निखायाइं] उसने प्रभु को देखकर जान लिया कि इन के कानों में किसी ने कीलें ठोंक दी हैं, [तेणं एस पहू अउलं वेयणं अनुभवइ ति] इस कारण प्रभु को अतुल वेदना का अनुभव हो रहा है [तए णं सो विज्जो सेट्ठिं कहीअ] तब उस वैद्य ने सेठ से कहा [पहूय गहिय भिक्खे उज्जाणं समणुपत्ते] भगवान् भिक्षा ग्रहण करके उद्यान में आगये [सो सेट्ठी विज्जो य उज्जाणे गमिय काउस्सग्गट्ठियस्स पहुस्स कण्णेहिंतो महईए जुत्तीए ताइं सल्लाइं निस्सारेंति] सेठ ने और वैद्य ने उद्यान में जाकर कायोत्सर्ग में स्थित प्रभु के कानों में लगी हुई कीला को बडी युक्ति से निकाल दिया [जइ वि कीलगुद्धरणे पहुस्स दुस्सहा वेयणा संजाया] यद्यपि कीलों के निकालने से प्रभु को दुस्सह वेदना हुई [तहवि भगवं चरिमसरीरत्तणेण अणंतबलत्तणेण य तं उज्जलं तिव्वं घोरं कायर-

जणदुरहियासं वेयणं सम्मं सहीअ] तथापि चरम शरीर और अनन्तबली होने के कारण भगवान् ने उस जाज्वल्यमान तीव्र घोर और कायर जनों द्वारा असह्य वेदना को सम्यक् प्रकार से सह लिया [तए णं से सेट्ठी विज्जो य ओसहोवयारेण तं नीरुयं काउं सयं गिहं गमीअ] उसके बाद वह सेठ और वैद्य औषधोपचार से भगवान् को निरोग करके अपने घर गये। [तेण कुकिच्चेण गोवालो मरिअ नरयं गओ] उस कुकृत्य से गुवाल मरकर नरक में गया [सेट्ठो विज्जो य तेण सुहकम्मुणा बारसमे कप्पे उववन्ना इइ गंथंतरे] तथा सेठ और वैद्य उस शुभ कर्म के कारण से बारहवें देवलोक में उत्पन्न हुए ॥५८॥

भावार्थ—तत्पश्चात् वह श्रमण भगवान् महावीर कोशाम्बी नगरी से विहार किये और विहार कर जनपद–देश में विचरने लगे। तत्पश्चात् भगवान् वीर प्रभु बारहवें चौमासे में चम्पानगरी में विराजे और चार मास की तपस्या की। चौमासा

समाप्त हो जाने पर चम्पानगरी से विहार कर षण्मानिक नामक गांव के बाहरी बगीचे में कायोत्सर्ग में स्थित हुए। वहां एक गुवाल ने आकर भगवान् वीर प्रभु को देखा और इस प्रकार कहा—'हे भिक्षु! सामने खडे मेरे इन दोनों बैलों की रखवाली करना। यह वचन कहकर वह गांव में चला गया। जब वह गुवाल गांव जाकर वापिस लौटा तो उसे वहां बैल नजर नहीं आये। तब उसने भगवान् से पूछा हे 'भिक्षु' मेरे बैल कहां चले गये?' इस प्रकार जिज्ञासा करने पर भी ध्यान में लीन भगवान् ने कुछ उत्तर नहीं दिया। तब वह गुवाल पूर्वभव में बांधे हुए वैरानुबंधी कर्म के उदय से कुपित हो कर एकदम ही क्रोध से लाल हो गया, और क्रोध से जल उठा। उसने भगवान् के दोनों कानों में शरकट नामक कठिन वृक्ष की दो कीलें बनाकर तथा कुल्हाडे के पिछले भाग से ठोंक ठोंक गाड दीं। कानों के भीतर ठोंकी हुई कीलों के बाहर निकले हुए सिरे उसने कुल्हाडे से काट डाले, जिससे देखने वाला देख न सके

कि कानों में कीलें ठोंकी हुई है और वह कीलें निकल भी न सकें। भगवान् ने अठारहवें भव में जो कर्म बांधे थे, उनका यह फल था। उस भव में वह त्रिपृष्ठ वासुदेव थे। उन्होंने शय्यापालक के कानों में उकलता हुआ शिशे का रस डलवाया था। वही कर्म अब उदय में आया।

दुष्टाशय वह गुवाल उस स्थान से निकलकर दूसरी जगह चला गया। भगवान् वीर प्रभु ने षण्मानिक ग्राम से निकलकर मध्यपावा नामक नगरी में भिक्षा के लिए भ्रमण करते हुए अनुक्रम से सिद्धार्थ नामक सेठ के घर में प्रवेश किया। सिद्धार्थ सेठ के घर खरक नामक वैद्य किसी प्रयोजन से आया था। उसने प्रभु को देखकर जान लिया कि इनके कानों के अन्दर किसी दुर्जन ने कीलें ठोंक दी हैं। कीलें ठोकने के कारण भगवान् अनुपम और दुस्सह वेदना का अनुभव कर रहें हैं। खरक वैद्यने यह बात सिद्धार्थ सेठ से कही। भगवान् भिक्षा ग्रहण करके उद्यान में चले गये।

इधर सिद्धार्थ नामक सेठ और खरक वैद्य-दोनों उद्यान में पहूंचे। भगवान् कायोत्सर्ग में स्थित थे। उन्होंने अत्यंत कुशलतापूर्ण युक्ति से भगवान् के दोनों कानों में से ठोकी हुई वह कीलें निकालीं। यद्यपि दोनों कानों में से कीलें बाहर निकालने में भगवान् को अतीव दुस्सह व्यथा हुई फिर भी चरमशरीरी अर्थात् तद्भवमोक्षगामी होने के कारण तथा अनन्त बल से संपन्न होने के कारण भगवान् ने उस उत्कृष्ट, उग्र भयानक और अधीर पुरुषों द्वारा असह्य वेदना को भली भांति सहनकर लिया। सिद्धार्थ सेठ और खरक वैद्य औषधोपचार से भगवान् महावीर को निरोग करके अपने २ घर चले गये। इस पापकर्म के कारण वह गुवाल मृत्यु के अवसर पर मर कर सातवें नरक में गया। सेठ सिद्धार्थ और खरक वैद्य दोनों यथासमय शरीरत्याग कर उस पुण्य कर्म के उदय से बारहवें अच्युत नामक देवलोक में देवरूप से उत्पन्न हुए॥सू०५८॥

मूलम्—तए णं से समणे भगवं महावीरे इरियासमिए, जाव गुत्तबंभयारी,

अममे अकिंचणे, अकोहे, अमाणे, अमाए, अलोहे संते, पसंते, उवसंते, परिणिव्वुए, अणासवे अग्गंथे छिण्णग्गंथे छिण्णसोए, निरूवलेवे आयट्ठिए, आयहिए आयजोइए, आयपरक्कमे, समाहिपत्ते, कंसपायवमुक्कतोए, संख इव निरंजने, जीव इव अप्पडिहयगई अच्चकणगं विव जायरूवे आदरिसफलगमिव पागडभावे, कुम्मोव्व गुत्तिंदिए, पुक्खरपत्तंव निरूवलेवे, गगणमिव निरालंबणे, अणिलोव्व निरालए, चंदोइव सोमलेसे, सूरो इव दित्ततेए, सागरो इव गंभीरे, विहगो इव सव्वओ विप्पमुक्के मंदरो इव अकंपे सारयसलिलंव सुद्धहियए खग्गिविसाणंव एगजाए, भारंडपक्खीव अप्पमत्ते कुंजरो इव सोंडीरे, वसभो इव जायत्थामे सीहो इव दुद्धरिसे, वसुंधरेव सव्वफाससहे, सुहुयहुयासणो इव तेयसा जलंते वासावासवज्जं अट्ठसु गिम्ह हेमंतिएसु मासेसु गामे गामे एग-

रायं णयरे णयरे पंचरायं वासीचंदणकप्पे समलेट्ठु कंचणे समसुहदुहे इह-लोगपरलोगअप्पडिबद्धे अपडिण्णे संसारपारगामी कम्मणिग्घायणट्ठाए अब्भु-ट्ठिए विहरइ, नत्थिणं तस्स भगवओ कत्थइ पडिबंधे।

एवं विहेणं विहारेण विहरमाणस्स भगवओ अणुत्तरेण णाणेण अणुत्तरेण दंसणेण अणुत्तरेण तवेण अणुत्तरेण संजमेण अणुत्तरेण उट्ठाणेण अणुत्तरेण कम्मेण अणुत्तरेण बलेण अणुत्तरेण वीरिएणं, अणुत्तरेण पुरिसकारेण अणु-त्तरेण परक्कमेण अणुत्तराए खंतीए अणुत्तराए मुत्तीए अणुत्तराए लेसाए अणु-त्तरेण अज्जवेण अणुत्तरेण मद्दवेण, अणुत्तरेण लाघवेण अणुत्तरेण सच्चेण अणुत्तरेण झाणेण अणुत्तरेण अज्झवसाणेण अप्पाणं भावेमाणस्स बारसवासा तेरसपक्खा वीइक्कंता। तेरसमस्स वासस्स परियाए वट्टमाणाणं जे से गिम्हाणं

दोच्चे मासे चउत्थे पक्खे वइसाहसुद्धे, तस्स णं वइसाहसुद्धस्स नवमी पक्खेण जंभियाभिहस्स गामस्स बहिया उजुवालियाए णईए उत्तरकूले साम-गामाभिहस्स गाहावईस्स खित्तंमि सालरुक्खस्स मूले रत्तिं काउस्सग्गे ठिए। तत्थ णं छउमत्थावत्थाए अन्तिमराइयंमि भगवं इमे दस महासुमिणे पासि-त्ताणं पडिबुद्धे। तं जहा–एगं च णं महं घोरदित्तरूवधरं तालपिसायं परा-जियं सुमिणे पासित्ताणं पडिबुद्धे। एवं एगं च णं महासुक्किलपक्खगं पुंस-कोइलं २, एगं च णं महं चित्तविचित्तपक्खगं पुंसकोइलं ३, एगं च णं महं दामयुगं सव्वरयणामयं ४, एगं च णं महं सेयं गोवग्गं ५, एगं च णं महं पउमसरं सव्वओ समंता कुसुमियं ६, एगं च णं महं सागरं उम्मिवीइसहस्स कलियं भुयाहिं तिण्णं ७, एगं च णं महं दिणयरं तेयसा जलंतं ८, एगं च

णं महं हरिवेरुलियवन्नाभेणं नियगेणं अंतेणं माणुसुत्तरं पव्वयं सव्वओ समंता आवेढियपरिवेढियं ९, एगं च णं महं मंदरे पव्वए मंदरचूलियाए उवरिं सीहासणवरगयं अप्पाणं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे ॥५९॥

शब्दार्थ—[तए णं से समणे भगवं महावीरे इरियासमिए] उसके बाद श्रमण भगवान् महावीर ईर्या समिति सम्पन्न [जाव गुत्तबंभयारी] यावत् गुप्त ब्रह्मचारी [अममे] ममत्व रहित [अकिंचणे] अपरिग्रही [अकोहे] क्रोधरहित [अमाणे] मान रहित [अमाये] मायारहित [अलोहे] लोभरहित [संते] शान्त [पसंते] प्रशान्त [उवसन्ते] उपशान्त [परिनिव्वुए] परिनिर्वृत्त [अणासवे] आश्रव रहित [अग्गंथे] ग्रन्थरहित [छिण्णगंथे] छिन्न ग्रन्थ [छिन्न सोए] शोक रहित [निरूवलेवे] लेप रहित [आयट्ठिए] आत्मस्थित [आयहिए] आत्मा का हित करने वाले [आयजोइए] आत्म ज्योतिष्क–प्रकाशक [आयपरक्कमे] आत्मवीर्यवान [समाहिपत्ते] समाधि प्राप्त [कंसपायंव मुक्क-

तोए] कांसे के पात्र के समान स्नेह रहित [संखइव निरंजणे] शंख के समान निरंजन [जीवो इव अप्पडिहय गई] जीव के समान अप्रतिबद्ध गतिवाले [जच्चकणगं विव जायरूवे] उत्तम स्वर्ण के समान देदीप्यमान [आदरिस फलगमिव पागडभावे] दर्पण के समान तत्त्वों को प्रकाशित करनेवाले [कुम्मोव्व गुत्तिंदिए] कच्छप के समान गुप्तेंन्द्रिय [पुक्खर पत्तंव निरुवलेवे] कमल पत्र के समान निर्लेप [गगणमिव निरालंबणे] आकाश के समान आलंबन रहित [अणिलोव्व निरालए] पवन के समान घर रहित [चंदोइव सोमलेस्से] चन्द्रमा के समान सौम्य लेश्यावाले [सूरोइव दित्ततेए] सूर्य के समान तेजस्वी [सागरो इव गंभीरे] समुद्र के समान गम्भीर [विहगो इव सव्वओ विप्पमुक्के] पक्षी की तरह सर्वथा बन्धन रहित [मंदरो इव अकंपे] मेरू पर्वत की तरह अकंप [सारयसलिलंव सुद्धहियए] शरद ऋतु के जल के समान शुद्ध हृदयवाले [खग्गिविसाणंव एग जाए] गैंडे के शिंगके समान अद्वि-

तीय—एक जन्म लेनेवाले [भारंडपक्खीव अप्पमत्ते] भारण्डपक्षी की तरह अप्रमत्त [कुंजरो इव सोंडीरो] हाथी के समान वीर [वसभो इव जायत्थामे] बैल की तरह वीर्यवान [सीहो इव दुद्धरिसे] सिंह के समान अजेय [वसुंधरेव सव्वफासहे] पृथ्वी के समान समस्तस्पर्शों को सहनेवाले [सुहुयहुयासणो इव तेयसा जलंते] अच्छी तरह होमी हुई अग्निके समान तेज से जाज्वल्यमान [वासावासवज्जं अट्ठसु गिम्हहेमंतिएसु मासेसु गामे गामे एगरायं णयरे णयरे पंचरायं] वर्षाकालके शिवाय ग्रीष्म और हेमंत के आठ महिनों में ग्राम में एक रात्रि और नगर में पांच रात्रि तक रहने वाले [वासी चंदणकप्पे] वासी—चन्दन के समान [समलेट्ठुकंचणे] मिट्टी और स्वर्ण को एक दृष्टि से देखने वाले [सम सुहदुहे] सुख दुःख में समान दृष्टि वाले [इहलोग परलोग अप्पडिबद्धे] इहलोक और परलोक में अनासक्त [अपडिण्णे] कामना रहित [संसारपारगामी] संसारपारगामी [कम्मणिग्घायणट्ठाए अब्भुट्ठिए विहरइ] और कर्मों को नष्ट करने के लिए पराक्रम शील होकर

विचरते थे [तस्स भगवओ कत्थइ न पडिबंधे] भगवान् को कहीं भी प्रतिबंध नहीं था।

[एवं विहेण विहारेणं विहरमाणस्स भगवओ अणुत्तरेण णाणेण] इस प्रकार के विहार से विचरते हुए भगवान् को अनुत्तर ज्ञान [अणुत्तरेण दंसणेण] अणुत्तर दर्शन [अणुत्तरेण तवेण] अणुत्तर तप [अणुत्तरेण संजमेण] अणुत्तर संयम [अणुत्तरेण उट्ठाणेण] अणुत्तर उत्थान [अणुत्तरेण कम्मेण] अणुत्तर क्रिया [अणुत्तरेण बलेण] अणुत्तर बल [अणुत्तरेण वीरिएणं] अणुत्तरवीर्य [अणुत्तरेण पुरिसकारेण] अणुत्तर पुरुषाकार [अणुत्तरेण परक्कमेण] अणुत्तर पराक्रम [अणुत्तराए खंतीए] अणुत्तर क्षमा [अणुत्तराए मुत्तीए] अणुत्तर मुक्ति [अणुत्तराए लेसाए] अणुत्तर लेश्या [अणुत्तरेण अज्जवेण] अणुत्तर आर्जव [अणुत्तरेण मद्दवेण] अणुत्तर मार्दव [अणुत्तरेण लाघवेण] अणुत्तर लाघव [अणुत्तरेण सच्चेण] अणुत्तर सत्य [अणुत्तरेण झाणेण] अणुत्तर ध्यान [अणुत्तरेण अज्झवसाणेण] अणुत्तर अध्यवसाय से [अप्पाणं भावे माणस्स बारसवासा

तेरसपक्खा वीइक्कंता] आत्मा को भावित करते करते बारह वर्ष और तेरह पक्ष व्यतीत हो गये [तेरसमस्स वासस्स परियाए वट्टमाणाणं जे से गिम्हाणं दोच्चे मासे चउत्थे पक्खे वइसाहसुद्धे] भगवान् की दीक्षा के तेरहवें वर्ष के पर्याय में वर्तमान ग्रीष्म ऋतु का जो दूसरा मास और चौथा पक्ष—वैशाख शुक्ल पक्ष था [तस्स णं वइसाहसुद्धस्स नवमी पक्खेणं जंभियाभिहस्स गामस्स बहिया उजुवालियाए णईए उत्तरकूले सामगाभिहस्स गाहावइस्स खित्तम्मि सालरुक्खस्स मूले रत्तिं काउस्सग्गे ठिए] उस वैशाख शुक्ल पक्ष की नवमी के दिन भगवान् जृंभिग नामक ग्राम के बाहर, ऋजुबालिका नदी के उत्तर किनारे, सामग नामक गाथापति के खेत में, साल वृक्ष के नीचे, रात्रि में कायोत्सर्ग में स्थित हुए [तत्थ णं छउमत्थावत्थाए अंतिमराइयंसि भगवं इमे दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे] तं जहा—छद्मस्था अवस्था की उस अन्तिम रात्रि में भगवान् यह दस महास्वप्न देखकर जागे। वे स्वप्न ये हैं [एगं च णं महं

घोरदित्तरूवधरं तालपिसायं पराजियं सुविणे पासित्ताणं पडिबुद्धे] एक महान् घोर दीप्त रूप धारी तालपिशाच को स्वप्न में पराजित देखकर जागे [एवं एगं च णं महासुक्किल्लपक्खगं पुंसकोइलं] इसी प्रकार एक अत्यन्त सफेद पंखों वाले पुरुष जातीय कोकिल को देखकर जाग्रत हुए। [एगं च णं महं चित्तविचित्तपक्खगं पुंस कोइलं] एक विशाल चित्र विचित्र पंखों वाले पुरुष कोकिल को देखा [एगं च णं महं दामयुगं सव्वरयणामयं] एक बडा सर्व रत्नमय माला युगल देखा [एगं च णं महं सेयं गोवग्गं] एक विशाल श्वेत गोवर्ग देखा [एगं च णं महं पउमसरं सव्वओ समंता कुसुमियं] सब तरफ से पुष्पित एक पद्म युक्त विशाल सरोवर देखा [एगं च णं महं सागरं उम्मिवीइसहस्सकलियं भुयाहिं तिण्णं] एक हजारों तरंगों से युक्त महान् समुद्र को अपनी भुजाओं से पार करते देखा [एगं च णं महं दिणयरं तेयसा जलंतं] एक महान् तेज से जाज्वल्यमान सूर्य को देखा [एगं च णं महं हरिवेरुलियवन्नाभेणं

नियगेणं अंतेणं माणुसुत्तरं पव्वयं सव्वओ समंता आवेढियपरिवेढियं] पिंगलवर्ण की हरि मणि और नील वर्ण के नीलम की आभा के समान कान्तिवाली अपनी आंत से महान् मानुषोत्तर पर्वत को सब ओर से वेष्ठित और परिवेष्टित [एगं च णं महं मंदरे पव्वए मंदरचूलियाए उवरिं सीहासणवरगयं अप्पाणं सुमिणे पासित्ताणं पडिबुद्धे] मेरु पर्वत पर मंदर चूलिका के उपर अपने आपको एक श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठा देखा। स्वप्न देखकर भगवान् जाग्रत हुए ॥५९॥

भावार्थ—उस समय भगवान् महावीर ईर्यासमिति, भाषा समिति, एषणा-समिति, आदानभाण्डमात्रनिक्षेपणा समिति, उच्चार प्रस्त्रवणश्लेष्मशिंघाणजल्लपरि-ष्ठापनिकासमिति से युक्त थे, तथा मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति से सम्पन्न थे, गुप्त थे, और गुप्तेन्द्रिय थे। प्राणियों की रक्षा करते हुए यतनापूर्वक चलना ईर्या समिति है। निर्दोष वचनों का प्रयोग करना भाषा समिति है। एषणा में अर्थात्—

आहार आदि की गवेषणा में उद्गम आदि ४२ [बयालीस] दोषों का वर्जन करना एषणासमिति है। भांड–पात्र तथा मात्र–वस्त्र आदि उपकरणों के ग्रहण करने और रखने में अथवा भाण्ड और वस्त्र आदि उपकरणों के तथा अमत्र अर्थात् पात्र के आदान–निक्षेप में यतना करना अर्थात् प्रतिलेखनादि पूर्वक प्रवृत्ति करना आदान-भाण्डमात्रनिपेक्षणासमिति है। उच्चार–मल, प्रस्रवण मूत्र, श्लेष्म–कफ, शिंघाण– रेंट, जल्ल–पसीने का मैल, इन सब के परिष्ठान, परठने में यतना करने को उच्चारप्रस्रवणश्लेष्मशिंघाणजल्लपरिष्टापनिकासमिति कहते हैं। भगवान् मनोगुप्ति से युक्त थे। मनोगुप्ति तीन प्रकार की है–(१) आर्तध्यान और रौद्रध्यान संबंधी कल्पनाओं का अभाव होना। (२) शास्त्र के अनुकूल परलोक को साधने वाली, धर्म ध्यान के अनुकूल मध्यस्थ भाव रूप परिणति, (३) समस्त मानसिक वृत्तियों के निरोध से, योगनिधान की अवस्था में उत्पन्न होने वाली आत्मरमणरूप प्रवृत्ति। योग

शास्त्र में कहा है।

विमुक्तकल्पनाजालं, समत्वे सुप्रतिष्ठितम् ।
आत्मारामं मनस्तज्ज्ञैर्मनोगुप्तिरुदाहृता" ॥१॥ इति ।

कल्पनाओं के जाल से सर्वथा मुक्त, समत्व में सुप्रतिष्ठित और आत्मरूपी उद्यान में रमण करने वाला मन ही मनोगुप्ति है, ऐसा गुप्ति के ज्ञाताओंने कहा है ॥१॥

भगवान् वचन गुप्ति से भी युक्त थे। वचन गुप्तिचार प्रकार की है। कहा भी है-

'सच्चा तहेव मोसा च, सच्चा मोसा तहेव य ।
चउत्थी असच्च मोसाउ, वयगुत्ती चउव्विहा" ॥१" इति ।

(१) सत्यवचनगुप्ति (२) मृषावचनगुप्ति (३) सत्यामृषावचनगुप्ति (४) चौथा असत्यामृषावचनगुप्ति, इस प्रकार वचन गुप्ति चार प्रकार की है ॥१॥

इसका अभिप्राय यह है-वचन चार प्रकार का है, जैसे जीव को 'यह जीव है'

ऐसा कहना सत्यवचन है। जीव को 'यह अजीव है' ऐसा कहना मृषावचन है। 'आज इस नगर में सौ बालक जन्मे' इस प्रकार पहले निर्णय किये विना ही कहना सत्यामृषावचन है। 'गांव आ गया' इस प्रकार का कहना न सत्य है, नमृषा [असत्य] है, इसलिए यह असत्यामृषावचन–व्यवहारभाषा है। इन चारों प्रकार के वचन योग के त्याग को वचनगुप्ति कहते हैं। अथवा–प्रशस्त वचनों का प्रयोग करना और अप्रशस्तवचनों का त्याग करना वचनगुप्ति हैं। भगवान् इस वचन गुप्ति से युक्त थे। भगवान् कायगुप्ति से युक्त थे। कायगुप्ति दो प्रकार की है (१) कायिक चेष्टओं को त्याग देना और (२) चेष्टाओं का आगम के अनुसार नियमन करना। इनमें परीषह उपसर्ग आदि उत्पन्न होने पर कायोत्सर्गक्रिया आदि के द्वारा शरीर को अचल कर लेना अथवा योग मात्र का निरोध हो जाने की अवस्था में पूर्ण रूप से कायिक चेष्टा का रुक जाना प्रथम कायगुप्ति हैं। गुरु से आज्ञा लेकर शरीर, संथारा, भूमि आदि की

प्रतिलेखना तथा प्रमार्जना आदि शास्त्रोक्त क्रियाएं करके ही शयन आसन आदि करना चाहिए। अतः शयन, आसन, निक्षेप, और आदान आदि क्रियाओं में स्वेच्छापूर्ण चेष्टाओं का परित्याग करके शास्त्रानुसार काय की चेष्टा होना दूसरी काय गुप्ति है। कहा भी है—

'उपसर्ग प्रसङ्गेऽपि, कायोत्सर्गजुषो मुनेः।
स्थिरीभावः शरीरस्य, कायगुप्तिर्निगद्यते ॥१॥
शयनासननिक्षेपाऽऽदानसंक्रमणेषु च,
स्थानेषु चेष्टानियमः, कायगुप्तिस्तु सा परा' ॥२॥

उपसर्ग का प्रसंग होने पर भी कायोत्सर्ग को सेवन करने वाले मुनि के शरीर का स्थिर होना प्रथम कायगुप्ति कहलाती है ॥१॥

भगवान् के गुरु का अभाव था, अतएव उनकी कायगुप्ति गुरू को विना पूछे ही

जान लेनी चाहिए। इस प्रकार वे दोनों प्रकार की कायगुप्ति से युक्त थे। इस प्रकार भगवान् मन, वचन और काय ये तीनों गुप्तियों से युक्त होने के कारण वे गुप्त थे। तथा गुप्तेन्द्रिय थे–विषयों में प्रवृत्त होने वाली इन्द्रियों का निरोध कर चुके थे। भगवान् गुप्त ब्रह्मचारी थे। अर्थात् यावज्जीवन मैथुन-त्याग रूप चौथे ब्रह्मचर्य महाव्रत का अनुष्ठान करने वाले थे। तथा–ममता से रहित थे। अकिंचन थे, क्रोधमान माया और लोभ से रहित थे। अन्तर्वृत्ति से शान्त थे, बाहर से प्रशान्त थे, और भीतर बाहर से उपशान्त थे। सब प्रकार के सन्ताप से रहित थे। आस्रव से रहित थे। बाह्य और आभ्यन्तर ग्रन्थि से रहित थे। द्रव्य–भाव ग्रन्थ [परिग्रहण] के त्यागी थे। आस्रव के कारणों को नष्टकर चुके थे। द्रव्य और भावमल से वर्जित थे। आत्मनिष्ट थे। अथवा 'आयट्ठिए' की 'आत्मार्थिक' ऐसी छाया होती है। इसका अर्थ है–आत्मार्थी, आत्म कल्याण के इच्छुक, भगवान् आत्म-

हित–षड्जीवनिकाय के परिपालक थे। आयजोइए–आत्मज्योतिवाले थे अथवा आत्म-योगिक अर्थात् मन वचन काययोग को वश में करने वाले थे। आत्मबल से सम्पन्न थे। समाधि–मोक्षमार्ग में स्थित थे। कांसे के पात्र के समान स्नेह [राग] से रहित थे। शंख के समान निर्मल थे। जीव के समान अकुंठित अबाध गतिवाले थे। उत्तम स्वर्ण के समान सुन्दर रूप थे। दर्पण–फलक के समान जीव–अजीव समस्त पदार्थों को प्रकाशिक करने वाले थे। कछुवे के समान इन्द्रियों को वष करने वाले थे। कमल के पत्ते के समान स्वजन आदि की आसक्ति से रहित थे। आकाश के समान कुल, ग्राम, नगर आदि का आलंबन नहीं लेते थे। पवन के समान घर रहित थे। चन्द्रमा के समान सौम्य लेश्यावाले अर्थात् क्रोधादिजन्य सन्तापसे रहित मानसिक परिणाम के धारक थे। सूर्य के समान दीप्ततेज थे। अर्थात् द्रव्य से शारीरिक दीप्ति से और भाव से ज्ञान से देदीप्यमान थे। सागर के समान गंभीर थे। हर्ष–शोक आदि के

कारणों का संयोग होने पर भी विकार–विहीन चित्तवाले थे। पक्षी के समान सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त थे। मेरु शैल के समान परीषह और उपसर्ग रूपी पवन से चलायमान नहीं होते थे। शरदृऋतु के जल के समान निर्मल चित्त थे। गेंडा के सींग के समान ये रागादि कों की सहायता से रहित होने के कारण, एक स्वरूप थे। भारंड नामक पक्षी के समान प्रमादरहित थे। हाथी के समान पराक्रमी थे। वृषभ के समान वीर्यशाली थे। सिंह के समान अजेय थे। पृथ्वी के समान सर्व सह–शीत-उष्ण–आदि सकल स्पर्शों को सहन करने वाले थे। जिसमें घी की अहुति दी गई हो ऐसी अग्नि के समान तेजोमय थे। वर्षावास–वर्षाऋतु के चार मासों के सिवाय ग्रीष्म और हेमन्त ऋतुओं के आठ महिनों, ग्राम में एक रात और नगर में पांच रात से अधिक नहीं ठहरते थे। भगवान् वासी चन्दन कल्प थे अर्थात् वसूले के समान अर्थात् अपकारी पुरुष को भी चन्दन के समान उपकारक मानते थे। जैसे कहा है–

'यो मामपकरोत्येष, तत्त्वेनोपकरोत्यसौ ।
शिरामोक्षाद्युपायेन, कुर्वाण इव नीरुजम् ' । इति ।

जैसे शिरामोक्ष–चढी हुई नस के उतारने आदि उपायों से रोगी को निरोगी करने वाला उपकारक होता है, उसी प्रकार जो मेरा अपकार करता है, वह वास्तव में उपकार करता है। अथवा=वासी अर्थात् अपकारी वसूला के प्रति जो चन्दन के छेद (खण्ड) के समान उपकारी के रूप में वर्त्ताव करता है, अर्थात् अपकारी का भी उपकार करता है, वासी चन्दनकल्प कहलाता है। कहा भी है–

'अपकारपरेऽपि परे कुर्वन्त्युपकारमेव हि महान्तः ।
सुरभी करोति वासी; मलयजमपि तक्षमाणमपि' ॥१॥ इति ।

महान् पुरुष, अपकार करने वाले का भी उपकार ही करते हैं। जैसे मलयज चन्दन छीला जाता हुआ भी वसूले को सुगंधित ही करता है। भगवान् ऐसे 'वासी-

चन्दनकल्प' थे। तथा-भगवान् मिट्टी एवं पाषाण के टुकडे को तथा सोने को समान दृष्टि से देखते थे। सुख-दुःख को समान दृष्टि से देखते थे। सुख दुःख को समान समझते थे। इह लोक में यश कीर्ति आदि की तथा पारलौकिक-स्वर्ग आदि के सुखों की आसक्ति से रहित थे। इहलोक परलोक संबंधी प्रतिज्ञा से रहित थे। संसाररूपी महासमुद्र के पारगामी थे। कर्मों का समूह उन्मूलन करने के लिए उद्यत होकर विचरते थे। इस प्रकार विचरते हुए भगवान् को किसी भी स्थान पर प्रतिबंध नहीं था। अनुत्तर अर्थात् लोकोत्तर तप, सतरह प्रकार के अनुत्तर उत्थान-उद्यम, अनुत्तर कर्म-क्रिया, अनुत्तरबल-शारीरिक शक्ति का उपचय, अनुत्तर वीर्य आत्मार्जित सामर्थ्य, अनुत्तर पुरुषकार-पुरुषार्थ, अनुत्तर पराक्रम शक्ति, अनुत्तर क्षमा, [सामर्थ्य होने पर भी पर के किये अपकार को सहनकर लेना], अनुत्तर मुक्ति-निर्लोभता, अनुत्तर शुक्ल लेश्या, जीव के शुभपरिणाम, अनुत्तर मृदुता, अनुत्तर लाघव। द्रव्य से अल्प उपधि

और भाव से गौरव का त्याग, अनुत्तर सत्य प्राणियों के हितार्थ यथार्थ भाषण, अनुत्तर धर्मध्यान और अनुत्तर आत्मिक परिणाम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए तथा इस प्रकार के विहार से विहरते हुए भगवान् श्री वीर प्रभु को बारह वर्ष और तेरह पक्ष व्यतीत हो गये। तेरहवां वर्ष जब चल रहा था, उस तेरहवें वर्ष का उस समय ग्रीष्म ऋतु का दूसरा मास, चौथा पक्ष-वैशाख शुद्ध पक्ष-अर्थात् वैशाख मास का शुक्ल पक्ष था, उसकी नौवी तिथि को जंभिक नामक गांव के बाहर ऋजुपालिका नदी के उत्तर तीर पर सामग नामक गाथापति के खेत में, सालवृक्ष के मूल में अर्थात् मूल के पास के प्रदेश में रात्रि में भगवान् विराजे। उस साल वृक्ष के मूल के नीचे समीपवर्ती प्रदेश में, रात्रि के समय, कायोत्सर्ग में छद्मस्थ अवस्था की रात्रि के अन्तिम प्रहर में भगवान् आगे कहे जाने वाले दश महास्वप्नों को देखकर जागृत हुए। यथा-१ प्रथम स्वप्न उन दस स्वप्नों में से पहले स्वप्न में एक विशाल तथा भयानक

भयंकर रूपवाले तालपिशाच (ताड के सदृश खूब लम्बे पिशाच) को अपने पराक्रम से पराजित हुआ देखा। २ द्वितीय स्वप्न-इसी प्रकार एक अत्यंत सफेद पंखों से युक्त पुरुष जाति के कोकिल को देखकर जागे। ३ तीसरा स्वप्न-एक विशाल चित्रविचित्र चित्रों से विचित्र होने के कारण अनेक वर्ण के पंखों वाले, अर्थात् नाना प्रकार के वर्णों से युक्त पंखवाले पुरुष कोकिल को देखकर जागे। ४ चौथा स्वप्न-एक वडे सर्व-रत्नमय मालाओं के युगल को देखकर जागे। ५ पांचवां स्वप्न सफेद रंग की गायों के एक समूह को देखकर जागे। ६ छट्ठा स्वप्न-एक विशाल पद्मसरोवर को देखा, जो सब तरफ से कमलों से छाया हुआ था। ७ सातवां स्वप्न-हजारों लहरों से युक्त एक महासागर को अपनी भुजाओं से पारकर दिया देखा। ८ आठवां स्वप्न-तेज से जाज्व-ल्यमान विशाल सूर्य को देखा। ९ नौवां स्वप्न-हरि (पिंगलवर्ण की) मणि और वैडूर्य (नीले वर्ण की) मणि के वर्ण के समान कान्तिवाली अपनी आंत-आंतरी से मानु-

षोत्तर पर्वत को चारों तरफ से सामान्य रूप से आवेष्टित और विशेष रूप से परिवेष्ठित देखा। १० दसवां स्वप्न—महान् मेरू पर्वत की चोटी पर श्रेष्ट सिंहासन पर स्थित, अपने आपको देखा। यह दस स्वप्न देखकर भगवान् जागृत हुए ॥५९॥

मूलम्—एएसि णं दसमहासुविणाणं के महालए फलवित्तिविसेसे भवइ त्ति सो कहिज्जइ—जण्णं समणेण भगवया महावीरेण सुविणे महाघोरदित्तरूवधरे-तालपिसाए पराजिए दिट्ठे तेणं भगवं मोहणिज्जं कम्मं उग्घाइस्सइ १। जं णं सुक्किल्लपक्खगे पुंसकोइले दिट्ठे, भगवं सुक्कझाणोवगए विहरिस्सइ २। जं णं चित्तविचित्तपक्खगे पुंसकोइले दिट्ठे, तेणं भगवं ससमयपरसमइयं दुवालसंगं गणिपिडगं आघविस्सइ पन्नविस्सइ परूविस्सइ दंसिस्सइ निदंसिस्सइ, उवदंसिस्सइ ३। जं णं सव्वरयणामयं दामदुगं दिट्ठं, तेणं भगवं अगारधम्मं

अणगारधम्मंति दुविहं धम्मं आघविस्सइ ४। जं णं सेयगोवग्गो दिट्ठो, तेणं चाउव्वण्णाइण्णं संघं ठाविस्सइ ५। जं णं पउमसरं दिट्ठं, तेणं भवणवइवाण-मंतरजोइसिय वेमाणियत्ति चउव्विहे देवे आघविस्सइ ६। जं णं महासागरो भुयाहिं तिण्णो दिट्ठो, तेणं आणादीयं अणवदग्गं चाउरंतसंसारसागरं तरिस्सइ ७। जं णं तेयसा जलंतो दिणयरो दिट्ठो, तेणं अणंतं अणुत्तरं कसिणं पडिपुण्णं अव्वाहयं निरावरणं केवलनाणदंसणं समुप्पज्जिस्सइ ८। जं णं हरि-वेरुलियवन्नाभेणं नियगेणं अंतेणं माणुसुत्तरे पव्वए सव्वओ समंता आवेढिय-परिवेढियं दिट्ठं, तेणं भगवओ कित्तिवन्ने सद्दसिलोगा सदेवमणुयासुरे लोए गिज्झिस्संति ९। जं णं मंदरे पव्वए मंदरचूलियाए उवरिं सीहासणवरगओ अप्पा दिट्ठे, तेणं भगवं सदेवमणुयासुराए परिसाए मज्झगए केवलिपन्नत्तं धम्मं आघ-

विस्सइ पन्नविस्सइ परूविस्सइ दंसिस्सइ निदंसिस्सइ उवदंसिस्सइ १०॥६०॥

शब्दार्थ—[एएसि णं दस महासुविणाणं] इन दस महास्वप्नों का [के महालए फलवित्तिविसेसे भवइत्ति सो कहिज्जइ] किस प्रकार का महाफल होता है वह कहा जाता है [जण्णं समणेणं भगवया महावीरेणं सुविणे] जो श्रमण भगवान् महावीर ने स्वप्न में [महाघोरदित्तरूवधरे तालपिसाए पराजिए दिट्ठे] जो भयंकर तेजस्वी स्वरूप धारण करनेवाले तालपिशाच को पराजित किया देखा [तेणं भगवं मोहणिज्जं कम्मं उग्घाइस्सइ] इससे भगवान् मोहनीय कर्म को समूल नष्ट करेंगे १ [जं णं सुक्किल्लपक्खगे पुंसकोइले दिट्ठे] जो सफेद पांखोंवाले पुरुष कोकिल को देखा [तेणं भगवं सुक्कज्झाणोवगए विहरिस्सइ] इससे भगवान् शुक्लध्यान से युक्त होकर विचरेंगे २ [जं णं चित्तविचित्तपक्खगे पुंसकोइले दिट्ठे] जो भगवान् ने चित्रविचित्र पांखोंवाले पुरुष कोकिल को देखा [तेणं भगवं ससमयपरसमइयं दुवालसंगं गणिपिडगं आघविस्सइ पन्नविस्सइ परू-

विस्सइ दंसिस्सइ निदंसिस्सइ उवदंसिस्सइ] इससे भगवान् स्वसमय परसमय संबन्धी द्वादशांग गणिपिटकका आख्यान करेंगे, प्रज्ञापन करेंगे प्ररूपण करेंगे भेदानुभेद प्रदर्शनपूर्वक प्रदर्शित करेंगे, वारंवार निदर्शित करेंगे और प्रदर्शित करेंगे ३ [जं णं सव्वरयणामयं दामदुगं दिट्ठं] जो सर्व रत्नमय मालायुगल देखा [तेणं भगवं अगारधम्मं अणगारधम्मं त्ति दुविहं धम्मं आघविस्सइ] इसका फलस्वरूप भगवान् अगारधर्म और अनगारधर्म रूप दो धर्मों का कथन करेंगे ४ [जं णं सेयगोवग्गो दिट्ठो] जो सफेद गायो का समूह देखा [तेणं चाउव्वण्णाइण्णं संघं ठाविस्सइ] इससे भगवान् चतुर्विध–श्रमण श्रमणी, श्रावक श्राविकारूप–संघ की स्थापना करेंगे ५ [जं णं पउमसरं दिट्ठं] जो भगवान् ने पद्मसरोवर–पद्मों से युक्त सरोवर देखा [तेणं भवणवइवाणमंतरजोइसवेमाणिय त्ति चउव्विहे देवे आघविस्सइ] इससे भगवान् भवनपति वानव्यन्तर ज्योतिष्क और वैमानिक इस प्रकार चार प्रकार के देवों की प्ररूपणा करेंगे ६ [जं णं महासायरो

भुयाहिं त्तिण्णो दिट्ठो] जो भगवान् ने महासागर को भुजाओं से तैरकर पार करना देखा [तेणं अणादीयं अणवदग्गं चाउरंतसंसारसागरं तरिस्सइ] इससे भगवान् अनादि अनन्त चातुर्गतिक संसारसागर को पार करेंगे ७ [जं णं तेयसा जलंतो दिणयरो दिट्ठो] जो भगवान् ने तेजसे जाज्वल्यमान सूर्य को देखा [तेणं अणंतं अणुत्तरं कसिणं पडिपुण्णं अव्वाहयं निरावरणं केवलवरनाणदंसणं समुप्पज्जिस्सइ] इससे अनन्त अनुत्तरपरिपूर्ण अप्रतिपाती और निरावरण–आवरणवर्जित उत्तम केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त करेंगे ८ [जं णं हरिवेरुलियवन्नाभेणं नियगेणं अंतेणं माणुसुत्तरे पव्वए सव्वओ समंता अवेढिय परिवेढिए दिट्ठे] जो हरिमणि और वैडूर्यमणि की आभावाली अपनी आंत से मानुषोत्तरपर्वत को आवेष्टित परिवेष्टित देखा [तेणं भगवओ कित्तिवन्नसद्दसिलोया सदेवमणुयासुरे लोए गिज्जिस्संति] इससे भगवान् की कीर्त्ति तथा वर्ण शब्द और श्लोक देव मनुष्य असुर सहित लोक में गाये जायेंगे ९ [जं णं मंदरे पव्वए मंदरचूलियाए उवरिं

सीहासणवरगओ अप्पा दिट्ठो] जो मेरु पर्वत पर मेरु की चोटी के उपर श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठे अपने आपको देखा [तेणं भगवं सदेवमणुयासुराए परिसाए मज्झगए केवलिपन्नत्तं धम्मं आघविस्सइ पन्नविस्सइ परूविस्सइ दंसिस्सइ निदंसिस्सइ उवदंसिस्सइ] इसके फलस्वरूप में भगवान् देव मनुष्य और असुरों की परीषदा–सभा के मध्य विराजमान होकर केवलिप्ररूपित धर्म का आख्यान–कथन–करेंगे प्रज्ञापना करेंगे प्ररूपणा करेंगे दर्शित करेंगे विस्तार से दर्शित करेंगे और उपदर्शित करेंगे १० ॥६०॥

भावार्थ—भगवान् द्वारा देखे गये इन पूर्वोक्त दश महास्वप्नों का क्या अतिमहान् फल होगा ? इस प्रकार की जिज्ञासा (जानने की इच्छा) होने पर उस के फल को कहते हैं। यथा १ श्रमण भगवान् महावीर ने स्वप्न में जो भयंकर और प्रचण्ड रूपवाले ताड जैसे पिशाच को पराजित किया देखा, उससे भगवान् मोहनीय कर्म को मूल से उखाडेंगे। यह पहले स्वप्न का फल है। २ भगवान् ने जो श्वेत पंखोंवाला पुरुष कोकिल

देखा, उससे भगवान् शुक्लध्यान में लीन होकर विचरेंगे। यह दूसरे महास्वप्न का फल है। ३ भगवान् ने जो चित्रविचित्र पंखोंवाला पुरुष कोकिल स्वप्न में देखा, उससे भगवान् स्वसिद्धान्त से युक्त बारह अंगों वाले गणीपिटक (आचार्यों के लिए रत्नों की पेटी के समान आचारांग आदि) का सामान्य विशेष रूप से कथन करेंगे, पर्यायवाची शब्दों से अथवा नामादि भेदों से प्रज्ञापन करेंगे, स्वप्न से प्ररूपण करेंगे, उपमान उपमेय भाव आदि दिखाकर कथन करेंगे, पर की अनुकम्पा से या भव्यजीवों के कल्याण की अपेक्षा से निश्चय पूर्वक पुनः पुनः दिखलाएँगे, तथा उपनय और निगमन के साथ अथवा सभी नयों के दृष्टिकोण से, शिष्यों की बुद्धि में निश्शंक रूप से जमाएँगे यह तीसरे स्वप्न का फल है। ४ भगवान् ने समस्त रत्नों वाले मालायुगल को देखा, उससे भगवान् गृहस्थधर्म और मुनिधर्म दो प्रकार के धर्म का सामान्य और विशेषरूप से कथन करेंगे, प्रज्ञापन करेंगे, प्ररूपण करेंगे, दर्शित करेंगे, निदर्शित करेंगे और उपदर्शित करेंगे

यह चौथे महास्वप्न का फल है। ५ भगवान् ने जो श्वेत गोवर्ग (गायों का झुंड) देखा, उससे साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकारूप चार प्रकार के संघ की स्थापना करेंगे यह पांचवे महास्वप्न का फल है। ६ पद्मों से युक्त जो सरोवर देखा, उससे भगवान् भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषिक और वैमानिक, इन चार प्रकार के देवों को सामान्य विशेषरूप से उपदेश करेंगे, प्रज्ञापन करेंगे, प्ररूपण करेंगे, दर्शित, निदर्शित तथा उपदर्शित करेंगे, यह छठे महास्वप्न का फल है। ७ भगवान् ने महासमुद्र को भुजाओं से तिरा देखा, उससे आदि तथा अन्त से रहित, चार गतिवाले संसाररूप समुद्र को पार करेंगे यह सातवें महास्वप्न का फ़ल है। ८ भगवान् ने तेज़ से देदीप्यमान सूर्य देखा, उससे भगवान् को प्रधान, सम्पूर्ण एवं समस्त पदार्थों को जानने के कारण अविकल (कृत्स्न) प्रतिपूर्ण (सकल अंशों से युक्त) सब प्रकार की रूकावटों से रहित तथा आवरण रहित केवलज्ञान और केवलदर्शन की प्राप्ति होगी यह आठवें महास्वप्न का

फल है। ९ भगवान् ने जो हरिमणी और वैडूर्यमणि की कान्ति के समान अपनी आंत से मानुषोत्तर पर्वत को सब तरफ से आवेष्ठित और परिवेष्टित देखा, उससे समस्त लोक में–देवों मनुष्यों एवं असुरों सहित सम्पूर्ण लोक में भगवान् की कीर्ति का गान होगा। वर्ण, शब्द और श्लोक का भी गान होगा। 'अहा, यह पुण्यशाली है' इत्यादि सभी दिशाओं में व्याप्त होनेवाले साधुवाद–प्रशंसा वचनों को कीर्ति कहते हैं। एक दिशा में व्याप्त होनेवाला साधुवाद 'वर्ण' कहा जाता है। आधी दिशा में फैलनेवाला साधुवाद शब्द कहा जाता है। और जिस स्थान पर व्यक्ति हो, वहीं उसके गुणों का बखान होना श्लोक कहलाता है। यह नौवें महास्वप्न का फल है। १० मेरु पर्वत पर मेरु पर्वत की चुलिका के ऊपर उत्तम सिंहासन पर अपने आप को बैठा देखा, उससे भगवान् बीर प्रभु देवों मनुष्यों एवं असुरों सहित सभा के मध्य में विराजित होकर सर्वज्ञ प्ररूपित धर्म का कथन, प्रज्ञापन, प्ररूपण करेंगे, धर्म को दर्शित, निदर्शित और

उपदर्शित करेंगे। इन पदों की व्याख्या इसी सूत्र में पहले की जा चुकी है। अतः सिंहावलोकन न्याय से वहीं व्याख्या देखलेनी चाहिये। यह दसवें महास्वप्न का फल है ॥६०॥

मूलम्-तए णं तस्स समणस्स भगवओ महावीरस्स तवसंजममाराहेमाणस्स बारसेहिं वासेहिं तेरसेहिं पक्खेहिं वीइक्कंतेहिं तेरसमस्स वासस्स परियाए वट्टमाणस्स जे से गिम्हाणं दोच्चे मासे चउत्थे पक्खे वइसाहसुद्धे, तस्स णं वइसाहसुद्धस्स दसमीपक्खेणं सुव्वएणं दिवसेणं विजएणं मुहुत्तेणं हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं पाईणगामिणीए छायाए वियत्ताए पोरिसीए तत्थ गोदोहियाए उक्कुडुयाए निसिज्जाए आयावणं आयावेमाणस्स छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं उड्ढजाणु अहोसिरस्स झाणकोट्ठोवगयस्स सुक्कज्झाणंतरियाए वट्टमाणस्स निव्वाणे कसिणे पडिपुण्णे अव्वाहए निरावरणे

अणंते अणुत्तरे केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे। ॥६१॥

शब्दार्थ—[तए णं] उसके बाद [तस्स समणस्स भगवओ महावीरस्स] श्रमण भगवान् महावीर ने तप संयम की आराधना करते हुए [बारसेहिं वासेहिं तेरसेहिं पक्खेहिं वीइक्कंतेहिं तेरसमस्स वासस्स परियाए वट्टमाणस्स] बारह वर्ष और तेरह पक्ष व्यतीत हो चुके थे। तेरहवां वर्ष चल रहा था [जे से गिम्हाणं दोच्चे मासे चउत्थे पक्खे वइसाहसुद्धे] ग्रीष्म ऋतु का दूसरा महिना था, चौथा पक्ष वैशाख शुद्ध पक्ष था [तस्स णं वइसाहसुद्धस्स दसमी पक्खेणं सुव्वएणं दिवसेणं विजएणं मुहुत्तेणं] उस वैशाख शुक्ल पक्ष की दसमी तिथि थी सुव्रत दिवस, विजय मुहूर्त [हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं पाइणगामिणीए छायाए वियत्ताए पोरिसीए] और उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र का योग था। छाया पूर्व दिशा की ओर ढल रही थी। व्यक्त नामक पौरुषी थी अर्थात् दिन का तीसरा प्रहर था [तत्थ गोदोहियाए उक्कुडुयाए निसिज्जाए

आयावणं आयावेमाणस्स] ऐसे समय में भगवान् गोदोह नामक उकडू आसन से स्थित होकर आतापना ले रहे थे [छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं उड्ढजाणु अहोसिरस्स झाणकोट्ठोवगयस्स] चौविहार षष्ठ भक्त की तपस्या थी। प्रभुश्री ने दोनों घुटनो के ऊपर हाथ रखे थे और मस्तक नीचे की ओर झुका रखा था ध्यानरूपी कोष्ट में प्राप्त थे [सुक्कज्झाणन्तरियाए वट्टमाणस्स निव्वाणे कसिणे पडिपुण्णे अव्वाहए निरावरणे अणंते अणुत्तरे केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे] शुक्लध्यान की आन्तरिका में वर्तमान थे। उस समय भगवान् को मुक्ति के हेतु भूत, अविकल प्रतिपूर्ण अव्याबाध, अनावरण, अनन्त तथा अनुत्तर केवलज्ञान, केवलदर्शन उत्पन्न हुआ, तीनों लोक में प्रकाश हुवा ॥६१॥

भावार्थ—दस महास्वप्न के पश्चात्, तप, संयम, की आराधना करते हुए श्रमण भगवान् वहावीर को दीक्षा अंगीकार किये, बारह वर्ष और तेरह पक्ष अर्थात् साढे बारह वर्ष और पन्द्रह दिन बीत जाने पर संयम-पर्याय का तेरहवां वर्ष चलता था, उस

समय ग्रीष्म ऋतु सम्बंधी दूसरा मास और चौथा पक्ष—वैशाख शुद्ध पक्ष था। उस वैशाख शुद्ध पक्ष की दशमी तिथि में, सुव्रत नामक दिवस में, विजय मुहूर्त में, चन्द्रमा के साथ उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र का योग होने पर, छाया जब पूर्व दिशा की ओर जाने लगी थी, व्यक्ता नाम की पौरूषी में अर्थात् दिन के तीसरे प्रहर में, सालवृक्ष के मूल के समीपवर्ती प्रदेश में, चौविहार षष्ठभक्त के तप से, गोदोह नामक उत्कुटुक आसन से आतापना लेते हुए, दोनों घुटने ऊपर और सिर नीचा किये हुए भगवान् धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान रूपी कोष्ठ में प्रविष्ट हुए थे। ध्यान के द्वारा उन्होंने इन्द्रियों के अन्तःकरण के व्यापार को रोक दिया था। शुक्ल ध्यान चार प्रकार का है-(१) पृथक्त्ववितर्क सुविचार (२) एकत्व वितर्क अविचार (३) सूक्ष्मक्रिय अप्रतिपाति (४) समुच्छिन्नक्रिय अनिवर्ति भगवान् शुक्लध्यान के पृथक्त्ववितर्क सुविचार नामक प्रथमपाये को ध्याकर एकत्व वितर्क अविचार नामक दूसरे पाये में लीन थे। उसी समय

भगवान् को निर्वाण—मोक्ष का कारण, कृत्स्न—सकल पदार्थों को जानने के कारण सम्पूर्ण या अखण्ड, प्रतिपूर्ण-समस्त अंशो से युक्त, अव्याहत—व्याघातों से रहित, आवरणहीन, अनन्त—अनन्त वस्तुओं को जानने वाला तथा अनुत्तर सर्वोत्कृष्ट केवलज्ञान-और केवल दर्शन उत्पन्न हुआ। तीनों लोक में प्रकाश हुआ ॥६१॥

भगवतः समवसरणम्

समोसरण अध्ययन

मूलम्—जंसि च णं समयंसि समणस्स भगवओ महावीरस्स अणुत्तरे केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने तंसि च णं समयंसि तेल्लुक्कं पयासियं बारसगुणा-चोत्तीसं अइसेसा पाउब्भवित्था बारसगुणा तं जहा—अणंतं केवलनाणं १, अणंतं केवलदंसणं २, अणंतं सोक्खं ३, खाइए समत्ते ४, अहक्खायचारित्ते ५, अवेयत्तं ६, अइंदियत्तं ७, दाणाइओ पंचलद्धीओ १२. तं जहा—दाणलद्धी १

लाभलद्धी २, भोगलद्धी ३, उवभोगलद्धी ४, वीरियलद्धी ५, एए बारसगुणा पाउब्भूया। चोत्तीसं अइसेसा तं जहा—अवट्ठीए केसमंसुरोमनहे १, निरामया निरुवलेवा गायलट्ठी २, गोक्खीरं पंडुरे मंससोणिए ३, पउमुप्पलगंधिए उस्सास निस्सासे ४, पच्छन्ने आहारनीहारे आदिस्से मंसचक्खुणा ५, आगासगयं चक्कं ६, आगासगयं छत्तं ७, आगासगयाओ सेयवरचामराओ ८, आगास-सगयं फालिहामयं सपायपीढं सीहासणं ९, आगासगओ कुडभी सहस्सा परिमंडियाभिरामो इंदज्झओ पुरओ गच्छइ १०, जत्थ जत्थ वि य णं अरहंता भगवतो चिट्ठंति वा निसीयंति वा तत्थ-तत्थ वि य णं तक्खणादेव संछन्नपत्त पुप्फपल्लवसमाउलो सच्छत्तो सज्झओ सघंटो सपडागोअसोगवरपायवो अभि-संजायइ ११, ईसिं पिट्ठओ मउडठाणंमि तेयमंडलं अभिसंजायइ अंधकारे

वि य णं दस दिसाओ पभासेइ १२, बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे १३, अहोसिरा-कंटया जायंति १४, उउ विवराया सुहफासा भवंति १५, सीयलेणं सुहफासेणं सुरभिणा मारूएणं जोयणं परिमंडलं सव्वओ समंता संपमज्जिज्जइ १६, जुत्त फुसिएणं मेहे ण य निहयरयरेणुय किज्जइ १७, जलय थलय भासुर पभूए णं बिंटट्ठाइणा दसद्धवण्णेणं कुसुमेणं जाणुस्सेहप्पमाणमित्ते पुप्फोवयारे किज्जइ १८, अमणुण्णा णं सद्दफरिसरसरूवगंधाणं अवकरिसो भवइ १९, मणुण्णाणं सद्द-फरिसरसरूवगंधाणं पाउब्भावो भवइ २०, पच्चाहरओ वि य णं हिययगम-णीओ जोयणहारीसरो २१, भगवं च णं अद्धमागहीए धम्ममाइक्खइ २२ सा वि य णं अद्धमागही भासाभासिज्जमाणी तेसिं सव्वेसिं आरियमणारियाणं दुप्पयचउप्पयमियपसुपक्खिसरीसिवाणं अप्पणो हिय सिव सुहयभासत्ताए

परिणमइ२३, पुव्वबद्धवेरा वि य णं देवासुरनागसुवण्णजक्खरक्खसकिंनर-किंपुरिसगरुलगंधव्वमहोरगा अरहओ पायमूले पसंतचित्तमाणस्सा धम्मं निसामंति२४, अण्णउत्थिय पावयणिया वि य णं आगया वंदंति २५, आगया समाणा अरहओ पायमूले निप्पडिवयणा हवंति२६, जओ जओ वि य णं अरहंतो भगवंतो विहरंति, तओ-तओ वि य णं जोयणं पणवीसाए णं ईती न भवइ२७, मारी न भवइ२८, सचक्कं न भवइ२९, परचक्कं न भवइ३० अइवुट्ठी न भवइ३१, अणावुट्ठी न भवइ३२, दुब्भिक्खं न भवइ३३, पुव्वुप्पण्णा वि य णं उप्पाया बाहि य खिप्पामेव उवसमंति ॥१॥

शब्दार्थ—[जंसि च णं समयंसि] जिस समय में [समणस्स भगवओ महावीस्स] श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को [अणुत्तरे] प्रधान सर्वश्रेष्ठ ऐसा [केवलनाण-

दंसणे समुप्पन्ने] केवल ज्ञान और केवल दर्शन प्रगट हुए [तंसि च णं समयंसि] उस समय में [समणस्स भगवओ महावीरस्स] श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के [तेल्लुकं पयासियं] तीनों लोक में प्रकाश हुआ [बारसगुणा चोत्तीसं अतिसेसा समुप्पज्जित्था] बारह गुण और चौत्तीस अतिशय प्रगट हुए [तं जहा] वे बारह गुण इस प्रकार हैं–[अणंतं केवलनाणं] (१) अनंत केवलज्ञान१. [अणंतं केवलदंसणं](२) अनंत केवलदर्शन [अणंतं सोक्खं] (३) अनंत सौख्य (३) [खाइयसंमत्ते] क्षायिक सम्यक्त्व (४) [अहक्खायचारित्ते] यथाख्यातचारित्र (५) [अवेइत्तं] अवेदित्व (६) [अइंदियत्तं] अतीन्द्रियत्व (७) दाणाईओ पंच लद्धीओ (१२) दानादि पांचलब्धियां (१२) [तं जहा]–७ वे दानादि पांच लब्धियां इस प्रकार हैं [दाणलद्धी] दान लब्धि १ [लाभलद्धी] २ लाभ लब्धि २ [भोगलद्धी] भोगलब्धि ३ [उवभोगलद्धी] उपभोग लब्धि ४ [वीरियलद्धी] वीर्यलब्धि ५ [एए बारस गुणा पाउब्भूया] इस प्रकार के ये बारह गुण प्रगट हुए।

[चोत्तीसं अइसेसा] चौतीस अतिशय प्रगट हुए। [तं जहा] जो इस प्रकार से हैं–[आवट्ठिए केसमंसु रोमनहे] केश दाढी, रोम और नखों का नहीं बढना, १ [निरामया निरूवलेवा गायलट्ठी] रोग रहित एवं मललेपरहित शरीर का होना २ [गोक्खीर पंडुरमंससोणिए] गोक्षीर के समान श्वेत मांस और शोणित का होना ३ [पउमप्पलगंधिए उस्सासनिस्सासे] पद्म और उत्पल की गंध के समान सुगन्धवाला श्वासोच्छ्वास का होना ४ [पच्छन्ने आहार नीहारे आदिस्से मंसचक्खुणा] चर्म चक्षुओं से आहार और नीहार–मल–मूत्र –का परित्याग दिखलाइ नहीं देना ५ [आगासगयं चक्कं] आकाश गत धर्म चक्र का होना ६ [आगासगयं छत्तं] आकाश गत छत्र का होना ७ [आगासगयाओ सेयवर-चामराओ] आकाश गत सफेद सुन्दर दो चामरों का होना ८ [आगासगयं फलिहामयं सपादपीढं सीहासणं] आकाश गत स्फटिक रत्नका बना हुआ पाद पीठ सहित सिंहासन का होना ९ [आगासगओ कुडभीसहस्सपारेमंडियाभिरामो इंदज्झओ

पुरओ गच्छइ] आकाश गत हजारों छोटी छोटी पताकाओं से युक्त इन्द्र ध्वज का प्रभु के आगे-आगे चलना १० [जत्थ-जत्थ वि य णं अरहंता भगवंता चिट्ठंति वा निसीयंति वा तत्थ तत्थ वि य णं तक्खणादेव संछन्नपत्तपुप्फपल्लवसमाउलो सच्छत्तो सज्झओ सघंटो सपडागो असोगवरपायवो अभिसंजायइ] जहां जहां अर्हत भगवंत ठहरे अथवा बैठे, वहां-वहां-नियम से उसी क्षण में सघन पत्र, पुष्प और पल्लव से युक्त छत्र, ध्वजा, घटा और पताका सहित अशोक वृक्षका होना ११ [इसिंपि ट्ठओ मउडठाणंमि तेयमंडलं अभिसंजायइ अंधयारे वि य णं दसदिसाओ पभासेइ] मस्तक के पीछे दस दिशाओं को प्रकाशित करने वाले तेजोमंडल-भामंडल का होना १२ [बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे] बहु सम-अत्यन्त समतल भूमि भाग का होना १३ [अहोसिरा कंटया जायंति] भगवान् के मार्ग में कंटकों का अधो मुख होना १४ [उऊ विवरीया सुहफासा भवंति] विपरीति ऋतुओं का भी सुख स्पर्श से युक्त

होना १५ [सीयलेणं सुहफासेणं सुरभिणा मारूएणं जोयणपरिमंडलं सव्वओ समंता संपमज्जिज्जइ] शीतल सुख स्पर्श और सुगन्धित वायु का चलना, और उससे एक योजन तक के क्षेत्र को सब ओर से अच्छी तरह कचवरादि से रहित होना १६ [जुत्त फुसिएणं मेहेण य निहयरयरेणुयं किज्जइ] छोटी–छोटी बिन्दुओं वाले अचित्त पानी की वृष्टि से एक योजन पर्यन्त जमीन की रज और धूली का बिलकुल जमजाना १७ [जल य थल य भासुर पभूए णं विंटट्ठाइणा दसद्धवण्णेणं कुसुमेणं जाणुस्सेहपमाण मित्ते पुप्फोवयारे किज्जइ] जानुत्सेध प्रमाण अचित्तपांच वर्ण के सुशोभित नीचे वृन्त-वाले पुष्पोपचार–पुष्पों का ढेर होना १८ [अमणुण्णाणं सद्दफरिसरसरूवगंधाणं अवकरिसो भवइ] अमनोज्ञ प्रतिकूल शब्द, स्पर्श रस और गंध का दूर होजाना– अर्थात् नही–होना १९ [मणुण्णाइं सद्दफरिसरसरूवगंधाणं पाउब्भवो भवइ] मनोज्ञ, शब्द, स्पर्श रस और गंध का प्रादुर्भाव होना २० [पच्चाहरओ वि य णं हिय

य गमणीओ जोयणहारी सरो] उपदेश करते समय भगवान् की एक योजन गामी हृदय प्रिय वाणी का होना २१ [भगवं च णं अद्धमागहीए भासाए धम्ममाइक्खइ] सुकोमल होने से आर्द्धमागधी भाषा में भगवान् का धर्मोपदेश होना २२ [सा वि य णं अद्धमागही भासा भासिज्जमाणी तेसिं सव्वेसिं आरियमणारियाणं दुप्पयचउप्पय मियपसुपक्खिसरीसिवाणं अप्पणो हियसिव सुहयभासत्ताए परिणमइ] प्रभु के द्वारा उच्चरित की गई उस अर्द्धमागधी भाषा का आर्य, अनार्य, द्विपद, चतुष्पद आदि सबके लिये अपनी २ भाषा के रूप में हित, शिव, और सुखद स्वरूप से परिणमन होना २३ [पुव्वबद्ध वेरा वि य णं देवासुरनागसुवण्णजक्खरक्खसकिंनरकिंपुरिस गरुलगंधव्वमहोरगा अरहओ पायमूले पसंतचित्तमाणसा धम्मं निसामंति' देव असुर आदि प्राणियों का गंधर्व और महोरगों का एक स्थान पर बैठ कर वैरभाव का परित्याग कर प्रसन्न चित्त से प्रभुकी वाणी का सुनना २४ [अन्नउत्थिय पावणिया वि

य णं आगया वंदंति] अन्य तीर्थिक अन्य प्रावचनिकों–वादियों का भगवान् के पास आते ही प्रभु को वंदन करना २५ [आगय समाणा अरहओ पायमूले निप्पडिवयणा हवंति] उन अन्य तीर्थिक प्रावचनिकों का भगवान् के पास आते ही निरुत्तर हो जाना २६ [जओ जओ वि य णं अरहंतो भगवंतो विहरंति, तओ–तओ वि य णं जोयण पणवीसाए णं इति न भवइ] जहां जहां पर अर्हत भगवंत विहार करते हैं वहां–वहां चारों दिशाओं में पच्चीस–पच्चीस योजन परिमित क्षेत्र में ईति–उपद्रव का नहीं होना २७ [मारी न भवइ] विशूचिका आदि मारी का नहीं होना २८ [स चक्कं न भवइ] स्व चक्र कृत भय का नहीं होना २९ [परचक्कं न भवइ] पर चक्र कृत भय का नहीं होना ३० [अइवुट्ठी न भवइ] अतिवृष्टि का नहीं होना ३१ [अणावुट्ठी न भवइ] अनावृष्टि का नहीं होना ३२ [दुब्भिक्खं न भवइ] दुर्भिक्ष का नहीं होना ३३ [पुव्वुप्पण्णा विय णं उप्पाया वाहीय खिप्पामेव उवसमंति] पूर्वोत्पन्न उत्पातों की–अनिष्ट

सूचक रुधिर वृष्टयादि का और व्याधि-रोगों का शीघ्र ही उपशमन होजाना ॥१॥

भावार्थ—जिस समय श्रमण भगवान् महावीर को अनुत्तर केवल वर ज्ञान दर्शन उत्पन्न हुआ उस समय तीनों लोको में प्रकश हुआ उसी समय भगवान् के बारह गुण और चोतीस अतिशय प्रगट हुए। वे बारह गुण इस प्रकार है–अनन्त केवलज्ञान १, अनन्त केवल दर्शन २, अनन्त सौख्य ३, क्षायिकसम्यक्त्व ४, यथाख्यात चारित्र ५, अवेदित्व ६, अतीन्द्रियत्व ७, और दानादि पांच लब्धियां १२। वे दानादि पांच लब्धियां इस प्रकार हैं–दानलब्धि१, लाभलब्धि २, भोगलब्धि ३, उपभोगलब्धि४, वीर्य लब्धि ५, ये पूर्वोक्त बारह गुण प्रगट हुए। चोतीस अतिशय इस प्रकार १. मस्तक के केश, श्मश्रु मूछ, शरीर के रोम व नख अवस्थित रहते हैं [मर्यादा से अधिक नहीं वढते हैं] २. उनका शरीर निरोगी रहता है और मल वगैरह अशुचि का लेप नहीं लगता है ३. मांस रुधिर गाय के दूध जैसा उज्ज्वल रहता है ४. पद्म कमल की गंध

जैसा श्वासोच्छ्वास रहता है ५. उनका आहार नीहार चर्मचक्षुवाले नहीं देख सकते हैं [इन पांच में से पहिला छोडकर अन्य चार अतिशय जन्म से ही होते हैं ६. जिनका धर्मचक्र आकाश में चलता रहे ७. आकाश में छत्र रहे ८. श्वेत चामर आकाश में रहे । ९. आकाश समान निर्मल स्फटिकरत्न मय पादपीठिका सहित सिंहासन रहता है १०. अन्य हजारों लघु पताकाओं से परिमंडित अत्यंत ऊंची आकाश–ध्वजा तीर्थंकर की आगे चलती है ११. जहां जहां भगवंत खडे रहे अथवा बैठे वहां २ पत्र से आकीर्ण व पुष्प फल से व्याप्त, ध्वजा पताका व घंटा सहित अशोक वृक्ष छाया कर रहते हैं १२. पृष्ट भाग में थोडासा दूर मुकुट के स्थान तेजमंडल [प्रभा-मंडल] होता है जो दशों दिशाओं में अंधकार का नाश करता है १३ जहां २ तीर्थंकर भगवंत विहार करते हैं वहां २ बहुत रमणिय भूमिभाग होता, है १४. जिस जिस मार्ग में तीर्थंकर विहार करते हैं उस मार्ग में पडे हुवे कंटक ऊर्ध्व मस्तक हो वह अधोमुख हो जाते

हैं १५ ऋतुविपरीत सुखस्पर्श वाली होवे अर्थात् ऊष्ण काल में शीतलता व शीतकाल में ऊष्णता होवे १६. सुख स्पर्शवाला सुगंधी वायु से एक योजन मंडलाकार सब दिशाकी भूमि स्वच्छ होवे १७ जिस मार्ग में तीर्थंकर विहार करते हैं उस मार्ग में सूक्ष्म २ बिन्दुयुक्त वर्षा से आकाश की व जमीन की रजरेणु दूर करे १८ बहुत सुगंधित व तेजवंत जल में उत्पन्न होने वाले कमलादि व स्थल में उत्पन्न होने वाले ऊर्ध्व मुख होकर जमीन पर रचना होना अठारवां अतिशय हुआ। १९ अमनोज शब्द, स्पंश, रस रूप गंध का अभाव होवे। २० मनोज्ञ शब्द वर्ण गंध रस व रूप प्रगट होवे २१ उप-देश देते भगवंत की वाणी हृदयंगम, मनोज्ञ व योजन तक सुन सके ऐसी होती है २२ भगवंत छः भाषा में धर्मोपदेश करते हैं २३ वहीं अर्धमागधि भाषा सर्व आर्य, अनार्य देशवाले मनुष्य, और चतुष्पद सो—गवादि मृगादि खेचर भुजपरिसर्प वगैरह सब मोक्ष रूप सुख व आनंद प्राप्त करे व इस तरह परिणयति वाली है २४ भवान्तर सो अनादि

काल का अथवा जातिक हेतुक बद्ध निकाचित वेरबंध हुवा होवे जैसे वैमानिक देव असुरकुमार, नागकुमार, भवनपति, ज्योतिषी यक्ष, राक्षस वगैरह वाणव्यंतर, गरुड गंधर्व महोरगव्यंतर विशेष वे सब वैर भाव का त्याग करके अरिहंत के चरण कमल में प्रसन्न चित्त से धर्म श्रवण करे २५ अन्य तीर्थिक कपिलादिक भी आये हुवे भगवंत को नमस्कार करे २६ वे आये हुवे अन्यशास्त्र के वादी प्रतिवादी भगवंत के चरण-कमल में उत्तर देने को समर्थ होवे नहीं २७ जिस तरफ भगवंत विहार करे उस तरफ पच्चीस २ योजन तक धान्य को उपद्रव करने वाले मूषकादि होवे नहीं २८ मार मरकी वगैरह किसी प्रकार की रोगों की उत्पत्ति होवे नहीं २९ स्वदेश के कटक का उपसर्ग होवे नहीं ३० परचक्री पर राजा की सेना का उपद्रव होवे नही ३१ अधिक वृष्टि होवे नहीं ३२ अनावृष्टि होवे नहीं ३३ अभिक्ष दुष्काल पडे नहीं ३४ जहां मार मरकी, स्वचक्री, परचक्री अतिवृष्टि, अनावृष्टि दुष्काल पहिले हुवा होवे और वहां भगवंत का

पधारना होवे तो सब प्रकार की अशान्ति शान्त हो जावे ॥२॥

पणतीस–सच्चवयणाइसेस

मूलम्–सक्कारत्ता१, उदात्तया२, उवसारोपेयत्त३, गंभीरज्झुणित्त४, अणुणाइया५, दक्खिणत्त६, उवणीयरागत्त७, महत्थत्त८, अव्वाहयपुव्वापज्जत्त९, सिट्ठत्त१०, असंदिधत्त११, अवहय अन्नोन्नत्तरत्त१२, हिययगाहित्त१३, देसकालवइयत्त१४, तत्ताणुरूवत्त१५, अवकिन्नप्पसीयत्त१६, अन्नोन्नपगाहियत्त१७, अहिज्जायत्त१८, अइसिनीधमहुरत्त१९, अवरमम्मवेहित्त२०, अत्थधम्मभासाअनवेयत्त२१, उयारत्त२२, परनिंदासातमोकसिणविप्पजुत्तत्त२३, उवगयसिलाधत्त२४, अवणीयत्त२५, उप्पाइयाच्छन्नकोउहलत्त२६, अद्दुयत्त२७, अनइविलंवियत्त२८, विब्भमविक्खेवरोसावेसाइ राहिच्च२९, विंचित्तत्त३०,

अहियविसेसत्तं ३१, सायारत्त ३२, सत्तपरिग्गहियत्त ३३, अपरिखेइयत्त ३४, अव्वोछेइयत्त ३५॥२॥

शब्दार्थ—१–सक्कारत्ता–वाणी का संस्कारयुक्त होना–व्याकरणादि की दृष्टि से निर्दोष होना। २–उदात्तया–स्वर का उदात्त–ऊंचा होना। ३–उवसारोपेयत्त–भाषा में ग्रामीणता न होना। ४–गंभीरज्झुणित्त–मेघ के शब्द के समान गंभीर ध्वनि होना ५–अणुणाइया–प्रतिध्वनियुक्त ध्वनि होना। ६–दक्खिणत्त–भाषा में सरलता होना। ७–उवणीयरागत्त–श्रोताओं के मन में बहुमान उत्पन्न करनेवाली स्वर की विशेषता होना। ८–महत्थत्त–वाच्य अर्थ में महत्ता होना थोडे से शब्दों में बहुत अर्थ भरा हुआ होना। ९–अव्वाहयपुव्वापज्जत्त–वचनों में पूर्वापर विरोध न आना। १०–सिद्धत्त–अपने इष्ट सिद्धान्त का निरूपण करना, अथवा वक्ता की शिष्टता सूचित करने वाला अर्थ कहना। ११–असंदिधत्त–ऐसी स्पष्टता के साथ तत्व का निरूपण करना कि

श्रोता के मन में तनिक भी सन्देह न रह जाय। १२–अवहय अन्नोन्नत्तरत्त -वचन का निर्दोष होना जिससे श्रोताओं को शंका–समाधान न करना पडे। १३–हियगाहित्त –कठिन विषय को भी सरल ढंग से कहना, श्रोताओं के चित्त को आकर्षित कर लेना। १४–देसकालवइयत्त–देशकाल के अनुसार कथन करना। १५–तत्ताणुरूवत्त–वस्तु के वास्तविक स्वरूप के अनुरूप कथन करना। १६–अवकिन्नप्पसीयत्त–प्रकृत वस्तु का यथोचित विस्तार के साथ व्याख्यान करना, अप्रकृति का कथन नहीं करना, प्रकृत का भी अत्यधिक अनुचित विस्तार नहीं करना। १७–अन्नोन्नपगहियत्त–पदों और वाक्यों का परस्पर संबद्ध होना। १८–अहिज्जायत्त–भूमिका के अनुसार विषय का निरूपण करना। १९–अइ सिनीधमहुरत्त–स्निग्धता और मधुरता से युक्त होना। २०–अवर-मम्मवेहित्त–दूसरे के मर्म–रहस्य का प्रकाश न करना २१ अत्थ धम्मभासा अनवेयत्त –मोक्ष रूप अर्थ तथा श्रुतचारित्र धर्म से युक्त होना। २२–उयारत्त–प्रतिपाद्य विषय

का उदार होना, शब्द एवं अर्थ की विशिष्ट रचना होना। २३-परनिंदासातमोक-सिणविप्पजुत्तत्त-दूसरे की निन्दा और अपनी प्रशंसा से रहित वचन होना। २४-उवगयसिलाघत्त-वचनों में पूर्वोक्त गुण होने से उसका प्रसंसनीय होना। २५-अवणीयत्त-काल, कारक, वचन, लिंग आदि का विपर्यासरूप भाषासंबंधी दोषों का न होना। २६-उप्पाइयाच्छन्नकोउहलत्त-श्रोताओं के मन में वक्ता के प्रति कुतूहल [उत्कंठा] बना रहना। २७-अदुदुयत्त-बहुत जल्दी न बोलना। २८-अनइविलंवियत्त-बीच बीच में रुककर-अटककर न बोलना, धाराप्रवाह वाणी का होना। २९-विब्भमविक्खेव रोसावेसाइ राहिच्च-वक्ता के मन में भ्रान्ति न होना, उसका चित्त अन्यत्र न होना, रोष तथा आवेश न होना अर्थात् अभ्रान्त भाव से उपयोग लगा कर शांति के साथ भाषा बोलना। ३०-विचित्तत्त-वाणी में विचित्रता होना। ३१-आहियविसेसत्त-अन्य पुरुषों की अपेक्षा वचनों में विशेषता होने के कारण श्रोताओं को विशिष्ट बुद्धि प्राप्त

होना। ३२–सायारत्त–वर्णों, पदों और वाक्यों का पृथक्-पृथक् होना। ३३–सत्तपरिगहियत्त–प्रभावशाली एवं ओजस्वी वचन होना। ३४–अपरिखेइयत्त–ऊपदेश देने में थकावट न होना। ३५–अव्वोछेइयत्त–जब तक प्रतिपाद्य विषय की भलीभांति सिद्धि न हो तब तक लगातार उसकी प्ररूपणा करते जाना, अधूरा न छोडना ॥२॥

भावार्थ—भगवान् की सत्य वाणी के ३५ गुण १ संस्कारवत्व–वाणी का संस्कार युक्त होना–व्याकरणादि की दृष्टि से निर्दोष होना। २ स्वर का उदात्त– ऊंचा होता। ३ भाषा में ग्रामीणता न होना। ४ मेघ के शब्द के समानगंभीर ध्वनि होना। (५) प्रतिध्वनि युक्त ध्वनि होना ६ भाषा मे सरलता होना। ७ श्रोताओं के मन में बहुमान उत्पन्न करने वाली स्वर की विशेषता होना। ८ वाच्य अर्थ में महत्ता होना, थोडे से शब्दों मे बहुत अर्थ भरा हुआ होना। ९ वचनों में पूर्वापर विरोध न आना। १० अपने इष्ट सिद्धान्त का निरूपण करना। अथवा–वक्ता की शिष्टता सूचित करने

वाला अर्थ कहना ११ ऐसी स्पष्टता के साथ तत्व का निरूपण करना कि श्रोता के मन में तनिक भी सन्देह न रह जाय १२ वचन का निर्दोष होना जिससे श्रोताओं को शंका–समाधान न करना पड़े। १३ कठिन विषय को भी सरल ढंग से कहना, श्रोताओं के चित्त को आकर्षित कर लेना। १४ देश काल के अनुसार कथन करना। १५ वस्तु के वास्तविक स्वरूप के अनुरूप कथन करना। १६ प्रकृत वस्तु का यथोचित विस्तार के साथ व्याख्यान करना, अप्राकृत का कथन नहीं करना। प्रकृत का भी अत्यधिक अनुचित विस्तार नहीं करना। १७ पदों और वाक्यों का परस्पर संबद्ध होना। १८ भूमिका के अनुसार विषय का निरूपण करना १९ स्निग्धता और मधुरता से युक्त होना। २० दूसरे के मर्म रहस्य का प्रकाश न करना। २१ मोक्ष रूप अर्थ तथा श्रुत–चारित्र धर्म से युक्त होना। २२ प्रतिपाद्य विषय का उदार होना। शब्द एवं अर्थ की विशिष्ट रचना होना। २३ दूसरे की निन्दा और अपनी प्रशंसा से रहित वचन होना २४

वचनों में पूर्वोक्त गुण होने से उनका प्रशंसनीय होना। २५ काल, कारक, वचन, लिंग आदी का विषर्यासरूप भाषा संबंधी दोषों का न होना। २६ श्रोताओं के मन में वक्ता के प्रति कूतूहल [उत्कंठा] बना रहना। २७ बहुत जल्दी न बोलना। २८ बीच बीच मे रुककर–अटक कर न बोलना, धारा प्रवाह बाणी का होना। २९ वक्ता के मन में भ्रान्ति न होना, उसका चित्त अन्यत्र न होना, रोष तथा आवेश न होना, अर्थात् अभ्रान्त भाव से उपयोग लगाकर शांति के साथ भाषा बोलना। ३० वाणी में विच्त्रिता होना। ३१ अन्य पुरुषों की अपेक्षा वचनों में विशेषता होने के कारण श्रोताओं को विशिष्ट बुद्धि प्राप्त होना। ३२ वर्णोंपदों और वाक्यो का पृथक्–पृथक् होना। ३३ प्रभावशाली एवं ओजस्वी वचन होना। ३४ उपदेश देने मे थकावट न होना। ३५ जब तक प्रतिपाद्य विषय की भली भांति सिद्धि न हो तब तक लगातार उस की प्ररूपणा करते जाना। अधूरा न छोडना ॥२॥

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए चोसट्ठ देविंदा पाउब्भावित्था, बत्तीसं भवणवइ जोइसिय विमाणवासि देवाणं इंदा पण्णत्ता, तं जहा—चमरिंदे१, बलिंदे२, धरणिंदे३, भूयाणंदे४, वेणुदेविंदे५, वेणुदालिंदे६, हरिंदे७, हरिस्सहेंदे८, अग्गीसिहेंदे९, अग्गिमाणविंदे१०, पुन्निंदे११, वसिट्ठिंदे१२, जलकंतिंदे१३, जलप्पभिंदे१४, अमियगयेंदे१५, अमियवाहनिंदे१६, वेलंबदे१७, पहंजणिंदे१८, घोसिंदे१९, महाघोसिंदे२०, चंदिंदे२१, सूरिंदे२२, सक्किंदे२३, ईसाणिंदे२४, सणंकुमारिंदे२५, माहिंदे२६, बंभिंदे२७, लंत्तयिंदे२८, सुक्किंदे२९, सहस्सारिंदे३०, पाणयिंदे३१, अच्चुयिंदे३२ ॥३॥

भावार्थ—उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के पास अनेक देवेन्द्र प्रकटित हुए—उसमें भवनपति, ज्योतिषी और विमानवासी देवों के बत्तीस

इन्द्रों कहे हैं वे ये हैं—चमरेन्द्र १, बलिन्द्र २, धरणेन्द्र ३, भूतानन्द ४, वेणुदेविन्द्र ५, वेणुदालीन्द्र ६, हरिन्द्र ७, हरिसहेन्द्र ८, अग्निसिहेन्द्र ९, अग्निमानवेन्द्र १०, पुन्निन्द्र ११, वशिष्ठ इन्द्र १२ जलकांत इन्द्र १३, जलप्रभ इन्द्र १४, अमृतगति इन्द्र १५ अमृतवाहन-इन्द्र १६, वेलंबइन्द्र १७, प्रभंजन इन्द्र १८ घोषेन्द्र १९, महाघोषेन्द्र २०, चन्द्र इन्द्र २१, सूर्यइन्द्र २२, शक्रेन्द्र २३, ईशानेन्द्र २४, सनत्कुमारेन्द्र २५, महेन्द्र २६, ब्रह्मेन्द्र २७, लंतकेन्द्र २८, महाशुक्रेन्द्र २९, सहस्रारेन्द्र ३०, प्राणतेन्द्र ३१ अच्युतेन्द्र ३२ ॥३॥

मूलम्—बत्तीसं वाणमंतरदेवाणं इंदा पण्णत्ता, तं जहा—काले१ महाकाले२ सुरूवे३ पडिरूवे४ पुण्णभद्दे५ माणिभद्दे६ भीमे७ महाभीमे८ किंन्नरे९ किंपुरिसे१० सप्पुरिसे११ महापुरुसे१२ अईकाये१३ महाकाये१४ गीयरई१५ गीयजसे१६ संनिहिए१७ समाणे१८ धाए१९ विधाए२० इसी२१ ईसीवाले२२ ईसरे२३

महाईसरे२४ सुवन्ने२५ विसाले२६ हासे २७ हासरई२८ सेये२९ महा-सेये३० पयए३१ पयगवई३२ से तं॥४॥

भावार्थ—वाणव्यन्तर देवों के बत्तीस इन्द्र कहे हैं उनके नाम ये हैं—काल १, महाकाल २, सुरूपेन्द्र ३, प्रतिरूपेन्द्र ४, पूर्णेन्द्र ५, मणिभद्र ६, भीम ७, महाभीम ८, किन्नर ९, किंपुरुष १० सत्पुरुष ११, महापुरुष १२, अतिकाय, १३, महाकाय १४, गीतरति १५, गीतजस १६, संनिहित १७, समान १८, धाई १९, विधाई २०, इसी २१, इसीवाले २२, इश्वर २३, महेश्वर २४, सुवन्न २५, विशाल २६, हास्य २७, हास्यरति २८, श्वेत २९, महाश्वेत ३०, पतंग ३१, पतंगपति ३२, ऐसे ये कुल चौसठ इन्द्र हो जाते हैं ॥४॥

ये चौसठ इन्द्र कैसे होते हैं? और क्या करते हैं? इस विचार में कहते हैं—

मूलम्—तं सव्वे वि इंदा दिव्वेणं तएणं दिव्वाए लेसाए दसदिसाओ

उज्जोएमाणा पभासेमाणा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं आगम्मागम्म रत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेंति करित्ता वंदंति नमंसंति वंदित्ता नमंसित्ता साइं साइं नामगोयाइं सावेंति णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणा नमंसमाणा अभिमुहा विणएणं पंजलिउडा पज्जुवासंति ॥५॥

भावार्थ—ये सभी इन्द्र अपने अपने दिव्य तेजसे अपनी दिव्य लेश्यासे दसों दिशाएं उद्योतित करते प्रकाशित करते श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के समीपवर्ति होकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की आदक्षिण प्रदक्षिणा करके उनको वंदना की नमस्कार किया वंदना नमस्कार करके अपने अपने नाम गोत्र का उच्चार किया तदनंतर भगवान् से अधिक दूर नहीं एवं अधिक समीपभी नहीं इस प्रकार बैठकर पर्युपासना करते हुए, नमस्कार करते हुए भगवान् कीसन्मुख हाथ जोडकर पर्युपासना करनेलगे ॥५॥

मूलम्—तए णं से भगवं अरहा जिणे जाए केवली सव्वण्णू सव्वदरिसी सदेवमणुयासुरस्स लोयस्स आगइं गइं ठिइं चवणं उववायं भुत्तं पीयं कडं पडि-सेवियं आवीकम्मं रहो कम्मं लवियं कहियं माणसियंति सव्वे पज्जाए जाणइ पासइ। सव्वलोए सव्वजीवाणं सव्वभावाइं जाणमाणे पासमाणे विहरइ। तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स केवलवरणाणदंसणुप्पत्तिसमए सव्वेहिं भवणवइवाणमंतरजोइसिय विमणवासी चोसट्ठि इंदा देवेहि य देवीहि य उव-यंतेहि य उप्पयंतेहि य एगे मह दिव्वे देवुज्जोए देवसण्णिवाए देवकहक्कहे उप्पिंजलगभूए या वि होत्था ॥६॥

शब्दार्थ—[तएणं से भगवं अरहा जिणे जाए केवली सव्वण्णू सव्वदरिसी सदेव-मणुयासुरस्स लोयस्स] तब भगवान् अर्हन् और जिन हो गये। केवली सर्वज्ञ और

सर्वदर्शी हो गये। देवों मनुष्यों असुरों सहित लोक की [आगइं गइं ठिइं चवणं उववायं भुत्तं पीयं कडं पडिसेवियं] आगति, गति, च्यवन, तथा उपपात को तथा खाये, पीये किये, सेवन किये को [आवीकम्मं, रहो कम्मं, लवियं, कहियं माणसियंति सव्वे पज्जाए जाणइ पासइ] प्रकट अप्रकट कर्म को, पारस्परिक भाषण को कथित, मानसिक आदि भावों को इस प्रकार सभी पर्यायों को जानने और देखने लगे [सव्वलोए सव्वजीवाणं सव्वभावाइं जाणमाणे पासमाणे विहरइ] समस्त लोक में सब जीवों के सभी भावों को जानते हुए तथा देखते हुए विचरने लगे [तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स केवलवरणाणदंसणुप्पत्तिसमए] तब श्रमण भगवान् महावीर के केवलज्ञान और केवलदर्शन की उत्पत्ति के समय में [सव्वेहिं भवणवइ वाणमंतरजोइसिय विमाणवासीहि चोसट्ठि इंदा देवेहि य देवीहिय] सब भवनपति, वान-व्यंतर, जोतिष्क तथा विमानवासी चौसठ इन्द्र देवों और देवियों के [उवयंतेहिय उप्प-

यंतेहि एगे महं दिव्वे देवुज्जोए देवसण्णिवाये देव कहकहे उप्पिंजलगभूए यावि होत्था] आने-जाने से एक महान् दिव्य देव प्रकाश हुआ, देवों का संगम हुआ, कल-कल नाद हुआ और देवों की बहुत बडी भीड हुई ॥६॥

भावार्थ—तब वह भगवान् अर्हन् और जिन हो गये केवली, सर्वज्ञ और सर्व दर्शी हो गये देवो मनुष्यो और आसुरो सहित लोककी आगति गति स्थिति च्यवन तथा उपपात को और खाये, पिये, किये सेवन किये, प्रकट कर्म को पारस्परिकभाषण-को कथन को, मनोगतभावको, इस प्रकार सब पर्यायो को जानने और देखने लगे समस्त लोकमे, सब जीवों के सभी भावों को जानते हुए तथा देखते हुए विचरने लगे तब श्रमण भगवान् महावीर केवलज्ञान और केवलदर्शन की उत्पत्ति के समय में, सब: भवनपति वानव्यन्तर, ज्यौतिषिक तथा विमानवासी देवों का संगम हुआ, कल-कल नाद हुआ और देवों की बहुत बडी भीड हुई ॥६॥

मूलम्—तए णं से समणे भगवं महावीरे उप्पण्णणाणदंसणधरे अप्पाणं च लोगं च अभिसमिक्ख जोयणवित्थारणीए सयसयभासापरिणामिणीए वाणीए देवाणं धम्ममाइक्खइ। तत्थ भगवओ सा धम्मदेसणा तित्थयर कप्प-परिपालणाए जाया, न केणवि तत्थ विरई पडिवण्णा। नो णं एयं कस्सवि तित्थयरस्स भूयपुव्वं अओ एयं चउत्थं अच्छेरयं जायं। तए णं से समणे भगवं महावीरे तओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जणवयविहारं विहरइ। तेणं कालेणं तेणं समएणं पावापुरी णामं णयरी होत्था-रिद्धित्थिमिय समिद्धा। तत्थ णं पावापुरीए सीहसेणो णाम राया होत्था, महया हिमवंतमहंतमलय-मंदरमहिंदसारे। तस्स णं सीहसेणस्स रण्णो सीलसेणा णामं देवी, हत्थि-वालो णामं पुत्तो जुवराया होत्था। तीए णं पावाए पुरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे

दिसीभाए सव्वोउय पुप्फफलसमिद्धे रम्मे नंदणवणप्पगासे महासेणं णामं उज्जाणे होत्था। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे महासेणे उज्जाणे समोसढे ॥७॥

शब्दार्थ—[तए णं से समणे भगवं महावीरे उप्पण्णणाणदंसणधरे अप्पाणं च लोगं च अभिसमिक्ख] उसके बाद उन उत्पन्न ज्ञान दर्शन को धारण करने वाले श्रमण भगवान् महावीरने आत्मा को और लोक को परिपूर्ण और यथार्थ रूप से जानकर [जोयणवित्थारणीए सयसयभासा परिणामिणीए वाणीए पुव्वं देवाणं पच्छा मणुस्साणं धम्ममाइक्खइ] एकयोजन तक फैलनेवाली और श्रोताओं की अपनी अपनी भाषाओं में परिणत हो जानेवाली वाणी से, देवों को धर्म का उपदेश दिया [तत्थ भगवओ सा धम्मदेसणा तित्थयरकप्पपरिपालणाए जाया] वहां भगवान् की वह देशना तीर्थकरों के कल्प का पालन करने के लिए ही हुई [न केणवि तत्थ विरई पडिवण्णा] वहां किसी

ने व्रत अंगीकार नहीं किये [नो णं एयं कस्सवि तित्थयरस्स भूयपुव्वं अओ एयं चउ-त्थं अच्छेरयं जायं] ऐसा किसी भी तीर्थंकरके विषय में नहीं हुआ था अतः यह चौथा आश्चर्य हुआ।

[तए णं समणे भगवं महावीरे तओ पडिनिक्खमइ. पडिनिक्खमित्ता जणवय-विहारं विहरइ] तत् पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर वहां से विहार करके जनपद में विचरने लगे। [तेणं कालेणं तेणं समएणं पावापुरीणामं णयरी होत्था–रिद्धित्थिमिय समिद्धा] उस काल और उस समय में पावापुरी नामकी नगरी थी। वह उंचे उंचे भवनों से युक्त, स्वपर चक्र के भय से युक्त और धन धान्य से समृद्धथी [तत्थ णं पावाए पुरीए सीहसेणो नाम राया होत्था] उस पावापुरी नगरी में सिंहसेन नामका राजा राज्य करता था [महया हिमवंतमहंतमलयमंदरमहिंदसारे] वह महाहिमवान्, महामलय, मेरु और महेन्द्र पर्वत के समान श्रेष्ठ था [तस्स णं सीहसेणस्स रण्णो सील-

सेणा णामं देवी] उससिंहसेन राजा की शीलसेना नामकी रानी थी। [हत्थिवालो णामं पुत्तो जुवराया होत्था] हस्तिपाल नामक पुत्र युवराज था [तीए णं पावाए पुरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए सव्वोउय पुप्फफलसमिद्धे रम्मे नंदणवणप्पगासे महासेणं नामं उज्जाणे होत्था] उस पावापुरी के बाहर उत्तर–पूर्व दिशा में सब ऋतुओं के पुष्पों तथा फलों से समृद्ध रमणीय नन्दनवन के समान प्रकाशवाला महासेन नामक उद्यान था [तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे महासेणे उज्जाणे समोसढे] उसकाल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर महासेन उद्यान में पधारे ॥७॥

भावार्थ—उस समय उत्पन्न हुए ज्ञान दर्शन के धारक श्रमण भगवान् महावीर ने आतमा के अपने और पंचास्तिकायरूप लोक के स्वरूपको यथावत् जान कर के एक योजन प्रमाण प्रदेश तक व्याप्त हो जाने वाली वाणी से धर्म का उपदेश दिया।

सुरो असुरो को उस परिषद्मे भगवान् की जो धर्म देशना हुई, वह धर्म देशना केवलतीर्थंकरों के कल्प मर्यादा का पालन करने के लिए ही हुई उस धर्म देशना के होने पर किसी भी जीवने विरति सावद्य व्यापार के परित्याग रूप विरति अंगीकार नहीं की तीर्थकर की धर्मदेशना हो और कोइ भी जीव विरति अंगीकार न करे, यह घटना श्रीमहावीर स्वामी के सिवाय किसी तीर्थंकर की परिषद् में कभी घटित नहीं हुई थी अर्थात् तीर्थंकरों की देशना अमोघ होती हैं उसे श्रवण कर कोइ न कोइ भव्यजीव अवश्य ही संयम अंगीकार करता है। परन्तु महावीर स्वामी की यह देशना इस स्वरूपमे खाली गई। यह अभूत पूर्व घटना थी क्योंकी वहां मनुष्य नहीं थे अतएव दस अच्छेरों में यह चौथा अच्छेरा हैं दस अच्छेरे ये है १ उपसर्ग होना २ गर्भका संहरण होना ३ स्त्री का तीर्थकर होना ४ अभावितपरिषद् होना ५ कृष्ण का अपरकंका नामक धातकी खंडवर्ती राजधानी मे जाना ६ चन्द्र और सूर्य का असली रूपमे समवसरण मे आना। ७ हरिवंशकुल

की उत्पत्ति ८ चमर का उत्पात ९ एक सौ आठ जीवों का एक ही समयमे सिद्ध होना और १० असंयतो की पूजा होना इन दस अच्छेरों में अभावित परिषद् रूप चौथा अच्छेरा हुआ। धर्मदेशना के बाद् वह श्रमण भगवान् महावीर सालवृक्ष के मूल के निकटवर्ती प्रदेश से निकले और निकल कर जनपद्–विहार करने लगे–देश मे विचरने लगे उस काल उस समय मे पापापुरी नामक नगरी थी पाप से रक्षा करने वाली होने से पापा कहलाती है। आज कल वह 'पावा पुरी' है वह नगरी कैसीथी सो कहते है वह ऋद्धा आकाश को स्पर्श करने वाले बहुत से प्रासादों से युक्त थी और जनों की बहुलता से व्याप्त थी, तथा स्तिमिता स्व–परचक्र के भय से रहित थी और समृद्धा धन धान्य आदि से भरी पूरी थी उस पावापुरी नगरी में सिंहसेन नामक राजा था। महा हिमवान् महामलय, मेरू और महेन्द्र पर्वतों के सार के समान सारवाली था लोकमर्यादा की स्थापना करने वाला होने के कारण महाहिमवान पर्वत के

समान था। उसकी यशकीर्ति सर्वत्र फैलीहुई थी, अतः महामलय पर्वत के समान था। दृढप्रतिज्ञ होने तथा कर्तव्यरूपी दिशाओं का दर्शक होने के कारण मेरू और महेन्द्र के समान था। सिंहसेन राजा की शीलसेना नामकी रानी थी हस्तिपाल नामक उसका पुत्र युवराज था। उस पावापुरी की उत्तरपूर्व दिशाके अन्तराल में, ईशान कोणमे वसन्त आदि छहो ऋतुओ संबंधी फुलो और फलो से सम्पन्न रमणीक एवं नन्दन-वन के समान महासेन नामक उद्यान था। उसकाल उसमय मे, अर्थात् सिंहसेन राजाके शासन काल के अवसर पर श्रमण भगवान् महावीर क्रमशः विहार करते हुए महासेन उद्यान में पधारे।.७॥

मूलम्—अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ताणं असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टगंसि पुरत्थाभिमुहे पलियंकनिसन्ने अरहा जिणे केवली संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तए णं वणमाली जेणेव सीहसेणो राया

तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावित्ता एवं वयासी। जस्स णं देवाणुप्पिया दंसणं कंखंति, जस्स णं देवाणुप्पिया दंसणं पीहंति, जस्स णं देवाणुप्पिया दंसणं पत्थंति, जस्स णं देवाणुप्पिया दंसणं अभिलसंति, जस्स णं देवाणुप्पिया नामगोयस्सवि सवणयाए हट्ठतुट्ठ जाव हियया भवंति, से णं समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे पावापुरी णयरीए उवागए पावापुरीं णयरीं महासेण उज्जाणे समोसरिउकामे। तं एवं देवाणुप्पियाणं पियट्ठयाए पियं णिवेदेमि, पियं तं भवउ। तए णं सीहसेणो राया हट्ठतुट्ठे पवित्तिवाउयस्स अद्धत्तेरस—सयसहस्साइं पीइदाणं दलयइ, दलइत्ता सक्कारेइ सम्माणेइ सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जइ। तए णं से सीहसेण राया बलवाउयं आमं-

सिंहसेन-
राज्ञः
सपरिवार-
प्रभुसमीपा-
गमनम्

तेइ, आमंतित्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेहि, हय–गय–रह–पवर–जोहकलियं च चाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेहि सीलसेणा पमुहाण य देवाणं बाहिरियाए उवट्ठाणसालाए पाडियक्कपाडियक्काइं जत्ताभिमुहाइं जुत्ताइं जाणाइं उवट्ठवेहि, आभिसेक्कं हत्थिरयणं दुरूढस्स समाणस्स पावापुरीए नयरीए मंज्झ मज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव महासेणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते छत्ताईए तित्थयराइसेसे पासइ, पासित्ता आभिसेक्कं हत्थिरयणं ठवेइ ठवित्ता आभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता अवहट्टु पंच रायक उदाइं, तं जहा–खग्गं छत्तं उप्फेसं वाहणाओ वालवीयणं, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं

सिंहसेन-
राज्ञः
सपरिवार-
प्रभुसमीपा-
गमनम्

भगवं महावीरं पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छइ, तं जहा–१ सच्चित्ताणं दव्वाणं विओसरणयाए, २ अचित्ताणं दव्वाणं अविओसरणयाए, ३ एगसाडियं उत्तरासंगकरणेणं, ४ चक्खुप्फासे अंजलिपग्गहेणं, ५ मणसो एगत्तभावकरणेणं, समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता तिविहाए पज्जुवासणयाए पज्जुवासइ, तं जहा–काइयाए वाइयाए माणसियाए। काइयाए–ताव संकुइयग्गहत्थणाए सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासइ। वाइयाए-जं जं भगवं वागरेइ, एवमेयं भंते! तहमेयं भंते! अवितहमेयं भंते! असंदिद्धमेयं भंते! इच्छियमेयं भंते! पडिच्छियमेयं भंते! इच्छियपडिच्छियमेयं भंते! से जहेव तुब्भे वदह–अपडिकूलमाणे पज्जुवासइ। माणसियाए–महया संवेगं

अभिलाषा धारण किये रहते हैं कि कब मैं प्रभु के चरणों में उपस्थित होकर उनकी उपासना करूंगा, हे देवानुप्रिय ! जिनका नाम तथा गोत्र-वंश सुन कर भी आपका हृदय हृष्ट तुष्ट हुआ करता है, वे श्रमण भगवान्-परमैश्वर्यसम्पन्न, गुणनिष्पन्न नामवाले महावीर पूर्वानुपूर्वीरूप से विहार करते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम में विचरते हुए आज पावापुरी नगरी के समीप महासेन उद्यान में पधारे हुए हैं, इसलिये हे देवानुप्रिय ! मैं आपको यह प्रिय आत्म हितकारी समाचार आप के हित के लिये सविनय निवेदन करता हूं। आपका कल्याण हो। उसके बाद सिंहसेन राजा हृष्ट तुष्ट हो उस संदेशवाहक के लिये साढे बारह लाख चांदी की मुद्राओं का प्रीतिदान-पारितोषिक प्रदान किया, प्रीतिदान देकर उन्होंने उसका सत्कार किया, मधुर वचनों से सन्मान किया। इस प्रकार सत्कार एवं सन्मान करके उन्होंने उसे बिदा किया। इसके अनन्तर सिंहसेन राजा ने अपने बलव्यापृत-सेनापति को बुलाया, बुलाकर इस

थे, वहां पहुंचा वहां पहुंचते ही सर्वप्रथम उसने दोनों हाथ जोडकर और अंजलिरूप में परिणत उन्हें मस्तक के दायें–बायें घुमाकर पश्चात् उन्हें मस्तक पर लगाकर अर्थात् नमस्कार कर 'जय हो महाराज की, विजय हो महाराज की'–इस प्रकार जय विजय शब्दों द्वारा राजा को बधाया, बधाने के बाद फिर वह इस प्रकार बोला–हे देवानुप्रिय ! जिनके सदा आप दर्शनों की इच्छा किया करते है जिनके आप देवानुप्रिय दर्शन करने की सदा स्पृहा रखा करते हैं–कब मुझे भगवान् के दर्शन होंगे इस प्रकार की उत्कंठा निरंतर किया करते हैं देवानुप्रिय जिनके दर्शनों की याचना किया करते हैं, अर्थात्–हे भगवान् ! आप के दर्शन से ही मेरा जन्म सफल होगा, इसलिये आप कृपा करके अपने चरण कमल का दर्शन दीजिये, इस प्रकार एकान्त में आप बार २ प्रार्थना किया करते हैं, अथवा हमारे जैसे लोगों से आप प्रार्थना करते हैं कि–मुझे भगवान् का दर्शन कराओ। हे देवानुप्रिय ! आप जिनके दर्शनों की चित्त में सदा-

सिंहसेन-
राज्ञः
सपरिवार-
प्रभुसमीपा-
गमनम्

उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छंति, तं जहा—१ सचित्ताणं दव्वाणं विओसरणयाए २ अचित्ताणं दव्वाणं अविओसरणयाए, ३ विणओणयाए गायलट्ठीए, ४ चक्खुप्फासे अंजलिपग्गहेणं, ५ मणसो एगत्तीभावकरणेणं समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपायाहिणं करेंति, करित्ता वंदंति णमंसंति, वंदित्ता णमंसित्ता सीहसेणरायं पुरओ चेव सपरिवाराओ अभिमुहाओ विणएणं पंजलिउडाओ पज्जुवासंति॥८॥

भावार्थ—वे प्रभु साधु सामाचारी के अनुसार वनमाली की आज्ञा लेकर अशोक वृक्ष के नीचे पृथिवी शिलापट्टक पर पूर्व की ओर मुखकर पर्यङ्क आसन से 'पलथी मार कर' विराजमान हुए। वे अरहा केवली जिन महावीर प्रभु तप एवं संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। उसके बाद वनमाली जहां सिंहसेन राजा

जणइत्ता तिव्वधम्माणुरागरत्तं पज्जुवासइ।

तए णं ताओ सीलसेणाओ देवीओ अंतो अंतेउरंसि ण्हायाओ जाव पायच्छित्ताओ सव्वालंकारविभूसियाओ बहूहिं खुज्जाहिं अंतेउराओ णिग्गच्छंति, णिग्गच्छित्ता जेणेव पाडियक्कजाणाइं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पाडियंक्क पाडियक्काइं जत्ताभिमुहाइं जुत्ताइं जाणाइं दुरूहंति दुरुहित्ता णियगपरियालसद्धिं संपरिवुडाओ पावापुरीए णयरीए मज्झं मज्झेणं णिग्गछंति, णिग्गच्छित्ता जेणेव महासेणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते छत्तादीए तित्थयराइसेसे पासंति, पासित्ता पाडियक्कपाडियक्काइं जाणाइं ठवेंति, ठवित्ता जाणेहिंतो पच्चोरुहंति, पच्चोरुहित्ता बहूहिं खुज्जाहिं जाव परिक्खित्ताओ जेणेव समणं भगवं महावीरे तेणेव

सिंहसेनराज्ञः सपरिवारप्रभुसमीपागमनम्

प्रकार कहा–हे देवानुप्रिय ! शीघ्र ही तुम पट्टहस्तिरत्न को सज्जित करो, साथ में घोडों हाथियों, रथों एवं उत्तम योधाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना को भी सज्जित करना तथा शीलसेना देवियों के लिये भी बाहिर उपस्थानशाला में अलग २ रूप में चलने में अच्छे एवं अच्छे बैलों वाले धार्मिक रथों को सज्जित करके ले आओ। आभिषेक्य हस्तिरत्न के ऊपर सवार होकर पावापुरी नगरी के बीचमार्ग से होकर निकले निकल कर जहां महासेन उद्यान था वहां आये, आकर उन्होंने श्रमण भगवान् महावीर के न अति समीप और न अति दूर–किन्तु कुछ ही दूर पर तीर्थंकरों के अतिशय स्वरूप छत्रादिकों को देखा, देखते ही उन्होंने अपने हाथी को खडा करवाया, हाथी के खडे होते वे उस हाथी से नीचे उतरे, नीचे उतरते ही उन्होंने इन पांच राजचिह्नों का परित्याग किया, वे पांच राजचिह्न ये हैं–खड्ग, तलवार, छत्र, मुकुट उपानत्–पगरखे, एवं बालव्यजनी–चामर। फिर वे जहां श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे वहां

पर आये जाते ही वे पांच प्रकार के अभिगमन—सत्कारविशेष से युक्त होकर प्रभु के सन्मुख पहुंचे। वे पांच प्रकार के सत्कारविशेष इस प्रकार हैं—हरित फल फूल आदि सचित्त द्रव्यों का परित्याग करना, वस्त्र आभरण आदि अचित्त द्रव्यों का परित्याग नहीं करना, भाषा की यतना के लिये अखण्ड अर्थात् जो सीया हुआ न हो ऐसे वस्त्र का उत्तरासङ्ग करना, जब से भगवान् दिखायी दें, तभी से दोनों हाथों को जोडना, और मन को एकाग्र करके भगवान् में लगाना। इस प्रकार इन पांच अभिगमों से युक्त होकर राजाने भगवान् महावीर प्रभु को तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिण—अञ्जलि पुट को दाहिने कान से लेकर शिर पर घुमाते हुए बायें कान तक लेजा कर फिर उसे घुमाते हुए दाहिने कान पर ले जाना और बाद में उसे अपने ललाट पर स्थापन करना —रूप आदक्षिण प्रदक्षिण किया, आदक्षिण—प्रदक्षिण कर के वन्दना और नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार कर के त्रिविध पर्युपासना से उनकी उपासना की।

सिंहसेन-
राज्ञः
सपरिवार-
प्रभुसमीपा-
गमनम्

वह त्रिविध उपासना इस प्रकार है-काय से उपासना करना, वचन से उपासना करना एवं मन से उपासना करना। कायिक उपासना इस प्रकार से उसने की-प्रभु के समीप वे हाथ पावों को संकुचित करके आसन से बैठे। उनसे धर्म सुनने की इच्छा करने लगे, उन्हें बारं बार नमस्कार करने लगे, पुनः नम्र होकर प्रभु के सम्मुख दोनों हाथों को जोडते हुए प्रभु की सेवा करने लगे। वचन से उपासना उन्होंने इस प्रकार की-जो जो भगवान् कहते थे, उस पर राजा इस प्रकार कहते थे, हे भगवन् ! आप जैसा कहते हैं, हे भगवन् ! यह ऐसा ही है , हे भगवन् यह वैसा ही है, हे भगवन् ! आप ने जो कहा सो सत्य है, हे भगवन् ! यह देश शंका और सर्व शंका से सर्वथा रहित है, हे भगवन् ! आपका यह वचन हम लोगों के लिये सर्वदा वांछनीय है, हे भगवन् ! यह आपका वचन हम लोगों के लिये सर्वथा वांछनीय है, हे भगवन् ! यह आपका वचन हम लोगों के लिये सर्वदा और सर्वथा वांछनीय है। इस प्रकार राजा

भगवान् के साथ अनुकूल आचरण करते हुए उनकी उपासना करने लगे। राजाने भगवान् की मानसिक उपासना इस प्रकार की–प्रभु के मुख से धर्म का उपदेश सुन कर राजा के हृदय में परम वैराग्य उत्पन्न हुआ और धर्मानुराग से प्रेरित होकर वे प्रभु की उपासना करने लगे।

इसके बाद वे शीलसेना प्रमुख देवियां भी अंतःपुरस्थ स्त्रीभवन के मध्यवर्ती स्नानागार में स्नान करके कौतुक तथा बलिकर्म से निवृत्त होकर, एवं समस्त अलंकारों को धारण कर अनेक कुबडी दासियों से घिरी हुई होकर अंतःपुर से निकलीं, निकल कर जहां अपने २ योग्य अलग २ यान (रथ) रखे हुए थे, वहां पर पहुंची, पहुंच कर उन पृथक् २ यानों (रथो) पर, जो भगवान् के दर्शन के लिये जाने के निमित्त पहिले से सज्जित कर रखे हुए एवं बलिवर्द आदिकों से युक्त थे, उसके ऊपर सवार हुईं। सवार होकर अपने २ परिवारों के साथ परिवेष्टित होती हुई वे सब देवियां पावापुरी

सिंहसेन-
राज्ञः
सपरिवार-
प्रभुसमीपा-
गमनम्

के ठीक बीचों बीच के मार्ग से होकर निकलीं निकल कर जिस ओर महासेन उद्यान था, उस ओर आयीं, उन्होंने श्रमण भगवान् महावीर से कुछ दूर पर रहे हुए तीर्थंकरों के अतिशय स्वरूप छत्रादिकों को देखा, देख कर उन सबों ने अपने २ [पृथक् २] यानों [रथों] को रुकवा दिया और वे उन यानों से नीचे उतरीं, उतर कर उन अनेक कुब्जादिक दासियों से परिवृत होती हुई वे जहां श्रमण भगवान् महावीर थे वहां पर आयीं, आकर उन्होंने प्रभु के समीप जाने के लिये पांच प्रकार के अभिगमों को अच्छी तरह धारण किया। वे पांच प्रकार के अभिगम ये हैं-सचित्त द्रव्यों का परित्याग करना-प्रभु के दर्शन करने के लिये जाते समय अपने पास सचित्त वस्तुओं को नहीं रखना, अचित्त वस्त्रादिकों का त्याग नहीं करना, विनय से अवनत गात्र-शरीर होना, विनय भार से नम्रीभूत होना, प्रभु के देखते ही दोनों हाथों को जोडना, एवं प्रभु की भक्ति में मन को एकाग्र करना। इन पांच अभिगमों से युक्त सपरिवार उन

सिंहसेन-
राज्ञः
सपरिवार-
प्रभुसमीपा-
गमनम्

रानियों ने श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिण किया, पश्चात् वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार कर चुकने के बाद फिर वे, सिंहसेन राजा को आगे करके खडी खडी विनय पूर्वक हाथ जोडकर भगवान् की सेवा करने लगीं। अर्थात् भगवान् की वाणी सुनने की इच्छा करने लगे ॥८॥

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं तीए पावाए पुरीए एगस्स सोमिलाभिहस्स बंभणस्स जन्नवाडे जन्नकम्मम्मि समागया रिउजजु सामाथव्वाणं चउण्हं वेयाणं इतिहासपंचमाणं निघंटु छट्ठाणं संगोवगाणं सरहस्साहं सारया वारया धारया, सडंगवी सट्ठितंतविसारया संखाणे सिक्खाणे सिक्खाकप्पे वागरणे छंदे निरुत्ते जोइसमयणे अन्नेसु य बहुसु बंभण्णएसु परिव्वायएसु नएसु सुपरिणिट्ठिया सव्वविहबुद्धिनिउणा जन्नकम्मनिउणा इंदभूइपभिइणो

सिंहसेन-राज्ञः सपरिवार-प्रभुसमीपागमनम्

एगारसमाहणा सयसयसिस्सपरिवारेण परिवुडा जन्नकम्मनिउणा तत्थ जण्णं कुणंति। तहा अण्णे वि तत्थ बहवे उवज्झाया गग्गहारिय कोसियपेल संडिल्ल पारासज्ज भरद्दाजवस्सिय सावण्णिय मेत्तेज्जांगिरस कासव कच्चायण दक्खायण सारव्वयायण सोणगायण नाडायण जातायणास्सायण दब्भायण-चारायण कावियबोहियोवमन्नवा तेज्जपभिइओ मिलिया होज्जा॥९॥

शब्दार्थ—[तेणं कालेणं तेणं समएणं तीए पावाए पुरीए] उस काल और उस समय में पावापुरी में [एगस्स सोमिलाभिहस्स बंभणस्स जन्नवाडे जन्नकम्मंमि समागया] एक सोमिल नामक ब्राह्मण के यज्ञ के पाडे–महोल्ले में यज्ञ कर्म में आये हुए [रिउ-जजुसामाथव्वाणं चउण्हं वेयाणं इतिहासपंचमाणं] यज्ञ–कर्म में आये हुए अंगों पांग सहित रहस्य सहित ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद, इन चार वेदों के

सोमिला-
भिध
ब्राह्मणस्य
यज्ञवाटके
समागता-
नेक ब्राह्म-
णनामानि

पाचवें इतिहास के [निघंटु छट्ठाणं संगोवंगाणं सरहस्साइं सारया वारया धारया] और छठे निघंटु के स्मारक [दूसरों को याद कराने वाले] वारक [अशुद्ध पाठ को रोकने वाले] और धारक [अर्थ के ज्ञाता] [सडंगवी सट्ठितंत विसारया] छहों अंगों के ज्ञाता, षष्ठी तंत्र [सांख्य शास्त्र] में विशारद [संखाणे सिक्खाणे सिक्खाकप्पे] गणित में, शिक्षण में शिक्षा कल्प में [वागरणे छंदे निरूत्ते जोइसामयणे] व्याकरण में छंद में निरुक्त में ज्योतिष में [अन्नेसु य बहुसु बंभण्णएसु परिव्वायएसु नएसु सुपरिनिट्ठिया सव्वविह बुद्धि निउणा] तथा अन्य बहुत से ब्राह्मणों के शास्त्रों में तथा परिव्राजकों के आचार शास्त्र में कुशल, सब प्रकार की बुद्धियों से सम्पन्न [जण्णकम्मनिउणा इंदभूइपभिइणो एगारस माहणा सय सयसिस्सपरिवारेण परिवुडा जण्णकम्मनिउणा तत्थ जण्णं कुणंति] यज्ञ कर्म में निपुण इन्द्रभूति आदि ग्यारह ब्राह्मण अपने अपने शिष्य परिवार सहित यज्ञ कर रहे थे [तहा अण्णे वि तत्थ बहवे उवज्झाया] इनके अतिरिक्त

सोमिला-
भिध
ब्रह्मणस्य
यज्ञवाटके
समागता-
नेक ब्राह्म-
णनामानि

और भी बहुत से उपाध्याय वहां इकट्ठे हुए थे। यथा [गग्ग] गार्ग्य [हारिय] हारित [कोसिय] कौशिक [पेल] पैल [संडिल्ल] शाण्डिल्य [पारासज्ज] पाराशर्य [भरद्दाज] भारद्वाज [वासिसय] वात्स्य [सावण्णिय] सावर्ण्य [मित्तिय] मैत्रेय [अंगिरस] आंगिरस [कासव] काश्यप [कच्चायण] कात्यायन [दक्खायण] दाक्षायण [सारठ्ठयायण] शारद्वतायण [सौनगायण] शौनकायन [नाडायण] नाणायण [जातायण] जातायण [अस्सायण] अश्वायण [दब्भायण] दर्भायण [चारायण] चारायण [काविय] काप्य [बोहिय] बौध्य [उवमन्नवा] औपमन्यव [तेज्जप्पभिइओ मिलिया होज्जा] आत्रेय आदि इकट्ठे हुवे थे ॥९॥

भावार्थ—उस काल और उस समयमें उस पावापुरी मे एकसोमिल नामक ब्राह्मण के यज्ञ स्थल में यज्ञ क्रिया के लिए आये हुए इन्द्रभूति आदि ग्यारह ब्राह्मण अपने-अपने शिष्य परिवार युक्त होकर यज्ञ कर रहे थे वे ब्राह्मण ऋक्‌यजुसाम और अथर्व

इन चार वेदों में, पांचमे इतिहास में और छठे निघंटु [वैदिककोष] में कुशल थे वे छन्द कल्प ज्योतिष व्याकरण निरूक्त तथा शिक्षा इन छहो अंगो सहित तथा रहस्य–सारांश-सहित वेदों के स्मारक थे, अर्थात् अन्य लोगों को याद कराने वाले थे, वारक थे अर्थात् अशुद्ध उच्चारण करने वालों को रोकते थे और धारक थे अर्थात् इनके अभि-धेय अर्थ को धारण करने–समझने वाले थे छन्द आदि छहों अंगो के ज्ञाता थे सांख्य शास्त्र में निष्णात थे गणितमे, शिक्षण [अध्यापन] में शिक्षा में, कल्प में, व्याकरण शास्त्र-में छन्दशास्त्र में निरूक्त नामक वेद के अंग रूप शास्त्र में, ज्योतिष शास्त्र में तथा इनके अतिरिक्त दूसरे बहुत से ब्राह्मणों के शास्त्रों में और परिव्राजकों संबंधी आचार शास्त्र में अति निपुण थे। सब प्रकार की बुद्धियों में निपुण थे तात्कालिक बात को जानने वाली बुद्धि भविष्यत् की वातको समझने वाली मति और नयी नयी बात को खोज निकालने वाली सूक्ष्मरूप प्रज्ञा इस तीन प्रकार की बुद्धि में उन्हे कुशलता प्राप्त

सोमिलाभिध ब्रह्मणस्य यज्ञवाटके समागतानेक ब्राह्मणनामानि

थी वे यज्ञ के अनुष्ठान में कुशल थे इन्द्रभूति आदि ग्यारह ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्यान्य उपाध्याय भी उस यज्ञमे सम्मिलितहुए थे उनमें से कुछ यह है गार्ग्य, हारीत, कौशिक, पैल, शाण्डिल्य पाराशर्य भारद्वाज, वात्स्य सावर्ण्य, मैत्रेय अंगीरस, काश्यप, कात्यायन, दाक्षायण, शारद्वतायन, शौनकायन, नाडायन, जातायन, आश्वायन, दार्भायन, चारायण, काप्य, बौध्य, औपमन्यव, आत्रेय, आदि ॥९॥

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स दंसणट्ठं धम्मदेसणा सवणट्ठं चउसट्ठिं इंदा भवणवइ वाणमंतरजोइसिय विमाणवासिणो देवा य देवीओ य नियनियपरिवारपरिवुडा सव्विड्ढीए सव्वजुईए पभाए छायाए अच्चीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेसाए दसदिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा समावयंति। ते दट्ठूणं जन्नवाडट्ठिया जन्नजाइणो सव्वे माहणा

सोमिलाभिध ब्रह्मणस्य यज्ञवाटके समागतानेक ब्राह्मणनामानि

परोप्परं एवमाइक्खंति एवं भासंति एवं पण्णवेंति एवं परूवेंति--भो भो लोया! पासंतु जन्नप्पभावं, जे णं इमे देवा य देवीओ य जन्नदंसणट्ठं हविस्स गहणट्ठं च नियं नियं विमाणेहिं नियं नियं इड्ढीमाइहिं सक्खं समावजंति। तत्थट्ठिया लोया अच्छेरयमणुभविय एवं वइंसु जं इमे माहणा धण्णा कयकिच्चा कयपुण्णा कयलक्खणा य जेसिं जन्नवाडे देवा य देवीओ य सक्खं समावजंति ॥१०॥

शब्दार्थ—[तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स दंसणट्ठं च] उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के दर्शन के लिये तथा धर्म देशना श्रवण करने के लिए [चउसट्ठिं इंदा] चौसठ इन्द्र तथा [भवणवइ वाणमंतर जोइसिय विमाणवासिणो देवा य देवीओ य नियं नियं परिवारपरिवुडा] भवनपति, वानव्यंतर, ज्योतिष्क और विमानवासी देव और देवियों अपने अपने परिवार से परिवृत्त होकर

सोमिलाभिध ब्राह्मणस्य यज्ञवाटके- देवागमन कल्पनम्

[सव्विड्ढीए सव्वजुईए पभाए छायाए अच्चीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेसाए] समस्त ऋद्धि से सर्व द्युति से प्रभा से शोभाओं से, शरीर पर धारण किये हुए सब प्रकार के आभूषणों के तेज की ज्वालाओं से शरीर सम्बन्धी दिव्य प्रभाओं से दिव्य शरीर की कन्तियों से [दसदिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा समावयंति] दशों दिशाओं को उद्योतित करते हुए विशेष रूप से प्रकाशयुक्त होकर आते हैं [ते दट्ठूणं जन्नवाडट्ठिया जन्नजाइणा सव्वे माहणा परोप्परं एवमाइक्खंति एवं भासंति एवं पण्णवेंति एवं परूविंति–] उन्हें देखकर यज्ञ स्थल में स्थित यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले सभी ब्राह्मण आपस में इस प्रकार कहने लगे, इस प्रकार भाषण करने लगे, इस प्रकार प्रज्ञापन करने लगे और इस प्रकार परूपणाकरने लगे–[भो भो लोया! पासन्तु जन्नप्पभावं जेणं इमे देवा य देवीओ य जन्नदंसणट्ठं हविगहणट्ठं च निय निय विमाणेहिं] हे महानुभावो! देखो यज्ञ के प्रभाव को, यह देव और देवियां यज्ञ को देखने के लिये और हविष्य को

ग्रहण करने के लिये अपने अपने विमानों [निय निय इड्ढीमाइहिं सक्खं समावयंति] और अपनी अपनी ऋद्धि के साथ साक्षात् आरहे हैं। [तत्थट्ठिया लोया अच्छेरयमणुभविय एवं वइंसु--] वहां जो लोग उपस्थित थे, वे यह आश्चर्य देखकर बोले--[जं इमे माहणा धण्णा कयकिच्चा कयपुण्णा कयलक्खणा य जेसिं जन्नवाडे देवा य देवीओ य सक्खं समावजंति] ये ब्राह्मण धन्य हैं, पुण्यवान् हैं और सुलक्षण हैं जिनके इस यज्ञपाटक में साक्षात् देव और देवियों का आगमन हो रहा है ॥१०॥

भावार्थ--विराजमान भगवान् के दर्शन के लिए तथा धर्मदेशना श्रवण करने के लिए भवनपति, वानव्यन्तर, ज्योतिषिक और विमानवासी देव और देवियों के झुंड के झुंड अपने अपने परिवार के साथ समस्त ऋद्धि से सर्वद्युति से सब प्रकार के विमानो की दप्तियां से दिव्य शोभाओं से शरीर पर धारण किये हुए सर्व प्रकार के आभूषणों के तेज की ज्वालाओं से शरीर सम्बधि दिव्य प्रभाओं से दिव्य शरीर की कांतीयों से

दशों दिशाओं को उद्योतित करते हुवे विशेषरूप से प्रकाश युक्त होकर आते है। उन्हे देख कर यज्ञ स्थलमें स्थित यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले सभी ब्राह्मण आपसमे इस प्रकार कहने लगे इस प्रकार भाषण करने लगे इस प्रकार प्रज्ञापना करने लगे और इस प्रकार प्ररूपण करने लगे–हे महानुभावो ! देखो यज्ञ के प्रभाव को यह देव और देवियां यज्ञको देखने के लिए और हविष्य को ग्रहण करने के लिए अपने अपने विमानो और अपनी–अपनी ऋद्धि के साथ साक्षात् आ रहे है वहां जो लोग उपस्थित थे वे यह आश्चर्य देखकर बोले यह ब्राह्मण धन्य है पुण्यवान् है और सुलक्षण है जिनके यह स्थान में साक्षात् देवो और देवियों का आगमन हो रहा है ॥१०॥

मूलम्–एवं परोप्परं कहमाणेसु समाणेसु एत्थंतरे ते देवा जन्नवाडयं चइय अग्गेपट्ठिया। तं दट्ठूणं ते जन्नजाइणो माहणा निक्कंपा नित्तेया ओमं-

थिय वयणनयणकमला दीणाविवण्णवयणा संजाया एत्थंतरे अंतरा आगासंसि देवेहि घुट्ठं, तं जहा–

भो भो पमायमवहूय भएह एणं।
आगच्च निव्वइपुरिं पइ सत्थवाहं॥
जो णं जगत्तयहिओ सिरिवद्धमाणो।
लोगोवयारकरणे गवओ जिणिंदा॥१॥

एवं सोच्चा खणामित्तं ऊसासिय पुव्वं ताव गोयमगोत्तो इंदभूईणामं माहणो रुट्ठो कुद्धो आसुरुत्तो मिसिमिसेमाणो एवं वयासी–अम्हंमि विज्जमाणे अन्नो को इमो पासंडो समासियवियंडो, जो अप्पाणं सव्वणुं सव्वदरिसिं कहेइ, न लज्जइ सो? दीसइ, इमो कोवि धुत्तो कवडजालियो इंदजालिओ।

यज्ञवाटकं परित्यज्यान्य च देवगमनात् तत्रस्थितानामाश्चर्यः आकाशवाणिश्च

अणेण सव्वण्णुत्तस्स आडंबरं दरिसिय इंदजालप्पओगेण देवा वि वंचिया, जं इमे देवा जन्नवाडं संगोवंगवेयण्णुं मं च परिहाय तत्थ गच्छंति। एएसिं बुद्धिविपज्जासो जाओ, जे णं इमे तित्थजलं चइय गोप्पयजलमभिलसमाणा वायसाविव जलं चइय थलमभिलसमाणा मंडूगाविव, चंदणं चइय दुग्गंधमभिलसमाणामक्खियाविव, सहयारं चइय बब्बूरमभिलसमाणा उट्टाविव, सुज्जपगासं चइय अंधयारमभिलसमाणा उल्लूगाविव जन्नवाडं चइय धुत्तमवगच्छंति। सच्चं जारिसो देवो तारिसा चेव तस्स सेवगा। नो णं इमे देवा, देवाभासा एव। भम सहयारमंजरीए गुंजंति, वायसा निंबतरुम्मि। अत्थु, तह वि अहं तस्स सव्वणुत्तगव्वं चूरिस्सामि। हरिणो सीहेण, तिमिरं भक्खरेण सलभो वण्हिणा, पिवीलिया समुद्देणं, नागो गरुडेण पव्वओ वज्जेणं मेसो कुंजरेण

यज्ञवाटकं परित्यज्यान्यत्र देवगमनात् तत्रस्थितानामाश्चर्यादिक-वर्णनम्

सद्धिं जुंज्झिउं किं सक्केइ ? एवं चेव एसो इंदजालिओ ममंतिए खणंपि चिट्ठिउं नो सक्केइ। अहुणेव अहं तयंतिए गमियं तं धुत्तं पराजिनेमि। सुज्जं-तिए खज्जोअस्स वरागस्स का गणणा। अहं नो कस्सवि साहज्जं पडिक्खिस्सामि किं अंधयारप्पणासे सुज्जो पडिक्खइ ? अओ सिग्घमेव गच्छामि एवं परिचिंतिय पोत्थयहत्थो कमंडलु दब्भासणपाणीहिं पीयंबरेहिं जण्णोवणीय-विभूसिय कंधरोह—हे सरस्सई कंठाभरण ! हे वाइविजयलच्छीकेयण ! हे वाइ-मुहकवाडयंतणतालग ! हे वाइवारण विआरण पंचाणण ! वाइस्सरिय सिंधु चुलुगीगरागत्थी ! वाइसीहाट्ठावय ! वाइविजयविसारय ! वाइविंदभूवाल ! वाइ-सिरकरालकाल ! वाइकयलीकांडखंडणकिवाण ! वाइतमत्थोम निरसणपचंड-मत्तंड ! वाइगोहूमपेसणपासाणचक्का ! वाइयामघडमुग्गर ! वाइउलूगदिनमणी !

यज्ञवाटकं परित्यज्यान्यत्र देवगमनात् तत्रस्थितानामाश्चर्यादिक-वर्णनम्

वाइवच्छुन्मूलणवारण वाइदइच्च देववई ! वाइसासणनरेस ! वाइकंसकंसारी ! वाइहरिणमिगारि ! वाइज्जरजरंकुरण ! वाइजूइमल्लमणी ! वाइहिययसल्लवर ! वाइसलहपज्जलंतदीवग ! वाइचक्कचूडामणि ! पंडियसिरोमणी ! विजियाणेगवाइवाय ! लद्धसरस्सइसुप्पसाय ! दूरिकयावरगव्वुमेस ! इच्चाइजसं गायंतेहिं पंचसयसीसेहिं परिवुडो जयजय सद्देहिं साहिज्जमाणो पहुसमीवे समणुपत्तो तत्थ गंतूण सो समोसरणसमिद्धिं पहुतेयं च विलोइय किमेयंति चगियचित्तो संजाओ ॥११॥

शब्दार्थ—[एवं परोप्परं कहमाणेसु समाणेसु एत्थंतरे ते देवा जन्नवाडयं चइय अग्गेपट्ठिया] वे परस्पर इस प्रकार कह ही रहे थे कि इस बीच वे देव यज्ञस्थान को छोड कर आगे चले गये [तं दट्ठूणं ते जन्नजाइणो माहणा निक्कंपा नित्तेया ओमंथियवयणनयणकमला] यह देखकर याज्ञिक ब्राह्मण स्तब्ध रह गये, निस्तेज रह गये,

यज्ञवाटकं परित्यज्यान्यत्र देवगमनात् तत्रस्थितानामाश्चर्यादिक-वर्णनम्

उनके नेत्र और मुखरूपी कमल मुरझा गये, [दीणविवण्णवयणा संजाया] मुख पर दैन्य और फीकापन आगया। [एत्थंतरे अंतरा आगासंसि देवेहिं घुट्ठं, तं जहा–] इसी समय आकाश में देवों ने घोषणा की–[भो भो पमायमवहूय] हे भव्य जीवो! तुम प्रमाद का त्याग करके [निव्वुइपुरिं पइ सत्थवाहं एणं आगच्च भएह] मोक्ष रूपी नगरी के लिए सार्थवाह के समान श्रीवर्धमान भगवान् को आकर भजो, इनकी सेवा करो [जो णं जगत्तयहिओ सिरि वद्धमाणो] ये श्रीवर्द्धमान स्वामी त्रिलोक के कल्याणकारी हैं। [लोगोवयारकरणे गवओ जिणिंदो] मनुष्यों के उद्धार के मार्ग का उपदेश देनेरूप उपकार करना ही इनका प्रधान नियम है। ये रागद्वेष जीतनेवाले सामान्य केवलियों के स्वामी हैं।

[एवं सोच्चा खणमित्तं ऊससिय] यह सुनकर क्षणमात्र ठंडी श्वास लेकर [पुव्वं-ताव गोयमगोत्तो इंदभूईनामं माहणो रुट्ठो आसुरत्तो मिसिमिसेमाणो एवं वयासी–]

सबसे पहले गौतम गोत्रीय इन्द्रभूतिनामक ब्राह्मण रुष्ट हुए, क्रुद्ध हुए, लाल हो उठे और मिसमिसाते हुए इस प्रकार बोले-[अम्हंमि विज्जमाणे अन्नो को इमो पासंडो समासियवियंडो]-मेरे मौजुद रहते, दूसरा कौन है यह पाखण्डी और वितंडावादी [जो अप्पाणं सव्वण्णुं सव्वदरिसिं कहेइ,] जो अपने आपको सर्वज्ञ और सर्वदर्शी कहता है ? [न लज्जेइ सो ?] लोगों के सामने ऐसा कहते उसे लज्जा नहीं आती ? [दीसइ, इमो को वि धुत्तो कवडजालियो इंदजालिओ] प्रतीत होता है, यह कोई धूर्त कपट जाल रचनेवाला इन्द्रजालिक है। [अणेण सव्वणुत्तस्स आडंबरं दरिसिय इंदजालप्पओगेण देवा वि वंचिया] इसने सर्वज्ञता का आडम्बर दिखाकर, इन्द्रजाल का प्रयोग करके, देवों को भी ठग लिया है [जं इमे देवा जण्णवाडं संगोवंगवेयण्णुं मं च परिहाय तत्थ गच्छंति] इसीसे ये देव यज्ञपाडे को और सांगोपांग वेदों के वेत्ता मुझ को छोडकर वहां जा रहे हैं। [एएसिं बुद्धि विपज्जासो जाओ] निश्चय ही इन देवों की मति विप-

यज्ञवाटकं परित्यज्यान्यत्र देवगमनात् तत्रस्थिता-नामाश्चर्यादिक-वर्णनम्

रीत हो गई है [जे णं इमे तित्थजलं चइय गोप्पयजलमभिलसमाणा वायसा विव] ये देव तीर्थजल को छोडकर तुच्छ गड्ढे के पानी की इच्छा करनेवाले कौओं की तरह [जलं चइय थलमभिलसमाणा मंडूगाविव] जल को छोडकर स्थल की अभिलाषा करनेवाले मेढकों की तरह [चंदणं चइय दुग्गंधमभिलसमाणा मक्खियाविव] चन्दन को त्याग कर दुर्गन्ध की अभिलाषा रखनेवाली मक्खियों की तरह [सहयारं चइय बब्बूरमभिलसमाणा उट्टाविव] आम को त्याग कर बबूल की अभिलाषा करनेवाले ऊंटों की तरह [सुज्जपगासं चइय अंधयारमभिलसमाणा उलूगाविव] सूर्य के प्रकाश को छोडकर अंधकार की इच्छा करनेवाले उल्लूओं की तरह [जन्नवाडं चइय धुत्तमुवगच्छंति] यज्ञस्थान को त्याग कर धूर्त के पास जा रहे हैं। [सच्चं जारिसो देवो तारिसा चेव तस्स सेवगा] सच है जैसा देव वैसे ही उसके सेवक होते हैं [णो णं इमे देवा देवाभासा एव] निस्संदेह ये देव नहीं किन्तु देवाभास है [भमरा सहयारमंजरीए

यज्ञवाटकं परित्यज्यान्यत्र देवगमनात् तत्रस्थितानामाश्चर्यादिक-वर्णनम्

गुंजंति वायसा निंबतरुम्मि] भ्रमर आम्र की मंजरी पर गुणगुनाते हैं परंतु कौए नीम के पेड को ही पसन्द करते हैं [अत्थु, तहवि अहं तस्स सव्वण्णुत्तगव्वं चूरिस्सामि] अस्तु, फिर भी मैं उसके सर्वज्ञता के अहंकार को चूर–चूर करूंगा। [हरिणो सीहेण] तिमिरं भक्खरेण, सलभो वण्हिणा, पिवीलिया समुद्देणं, नागो गरुडेणं पव्वओ वज्जेणं मेसो कुंजरेण सद्धिं जुज्झिउं किं सक्केइ] क्या हिरण सिंह के साथ, अंधकार सूर्य के साथ, पतंग आग के साथ, चींटी समुद्र के साथ, सर्प गरुड के साथ, पर्वत वज्र के साथ और मेढा हाथी के साथ युद्ध कर सकता है? कभी नहीं कर सकता [एवं चेव एसो इंद-जालियो ममंतिए खणंपि चिट्ठिउं नो सक्केइ] इसी प्रकार वह इन्द्रजालिक मेरे सामने एक क्षणभर भी नहीं ठहर सकता [अहुणेव अहं तयंतिए गमिय तं धुत्तं पराजिनेमि] अभी इसी समय मैं उसके पास जाकर उस धूर्त को पराजित करता हूं। [सुज्जंतिए खज्जोअस्स वरागस्स का गणणा] सूर्य के समक्ष बेचारे जूगनू की क्या गिनती!

यज्ञवाटकं परित्यज्यान्यत्र देवगमनात् तत्रस्थितानामाश्चर्यादिक-वर्णनम्

[अहं णो कस्सवि साहज्जं पडिक्खिस्सामि] मैं किसी की सहायता की प्रतीक्षा नहीं करूंगा [किं अंधयारपगासे सुज्जो अण्णं पडिक्खइ?] अंधकार का नाश करने में सूर्य को क्या किसी की प्रतीक्षा करनी होती है? [अओ सिग्घमेव गच्छामि] अतएव मैं शीघ्र ही जाता हूं [एवं परिचिंतिय पोत्थयहत्थो कमंडलु दब्भासण पाणीहिं पीयंबरेहिं जण्णोववीय विभूसिय कंधरोह] इस प्रकार कहकर और पुस्तक हाथ में लेकर पांचसो शिष्यों के साथ प्रभु के निकट जाने को रवाना हुए। उनके शिष्य कमंडलु और दर्भ का आसन हाथ में लिए हुए थे। पिताम्बर पहने हुए थे। उनका बाया कंधा यज्ञोपवीत से सुशोभित हो रहा था। वे अपने गुरु इन्द्रभूति का इस प्रकार यशोगान कर रहे थे। [हे सरस्सई कंठाभरण] हे सरस्वतीरूपी कंठाभरणवाले! [हे वाइविजयलच्छीकेयण!] हे वादीविजय की लक्ष्मी के ध्वज! [हे वाइमुहकबाडयंतणतालग!] हे वादियों के मुख रूपी द्वार को बंध करदेनेवाले ताले! [हे वाइवारणविआरण पंचानन!] हे वादी

यज्ञवाटकं परित्यज्यान्यत्र देवगमनात् तत्रस्थितानामाश्चर्यादिक-वर्णनम्

रूपी हस्ती को विदारण करनेवाले पंचानन (सिंह) [वाइस्सरिय सिंधु चुलुगीगरागत्थी !] हे वादियों के ऐश्वर्य रूपी सागर को चूल्लू में पी जानेवाले अगस्ति ! [वाइसीहाट्ठावय !] हे वादि सिंहों के लिए अष्टापद [वाइविजयविसारय !] हे वादिविजय विशारद ! [वाइविंदभूवाल !] हे वादिवृन्द भूपाल ! [वाइसिरकरालकाल !] हे वादियों के सिर के विकरालकाल ! [वाइकयलीकांडखंडणकिवाण] हे वादीरूपी कदलियों को काटनेवाले कृपाण ! [वाइतमत्थोमनिरसणपचंडमत्तंड !] हे वादी रूप अंधकार के समूह को नाश करनेवाले प्रचण्ड सूर्य ! [वाइगोहूमपेसणपासाणचक्का !] हे वादी रूपी गेहूओं को पिसने के लिए पाषाण चक्र ! [वाइयामघडमुग्गर !] हे वादी रूपी कच्चे घडों के लिए मुद्गर ! [वाइउलूगदिनमणी !] हे वादी रूपी उलूकों के लिए सूर्य ! [वाइवच्छुम्मूलणवारण !] हे वादि–वृक्षों को उखाड फैंकनेवाले गजराज [वाइदइच्चदेववई !] हे वादी रूपी दैत्यों के लिए देवेन्द्र ! [वाइसासणनरेस !] हे वादी–शासक नरेश ! [वाइकंसकंसारि !] हे

यज्ञवाटकं परित्यज्यान्यत्र देवगमनात् तत्रस्थिताना माश्चर्यादिक-वर्णनम्

वादि कंस कृष्ण ! [वाइहरिणमिगारि !] हे वादी रूपी हरिणों के सिंह ! [वाइज्जरजरंकुरण !] हे वादी रूपी ज्वर के लिए ज्वरांकुश ! [वाइजूइमल्लमणी !] हे वादिसमूह को पराजित करनेवाले श्रेष्ठ मल्ल ! [वाइहिययसल्लवर !] हे वादियों के हृदय में चुमनेवाले तीखे शल्य ! [वाइसलहपज्जलंतदीवग !] हे वादी रूपी पतंगों के लिए जलते दीपक [वाइचक्कचूडामणि !] वादिचक्र चूडामणि ! [पंडियसिरोमणी !] हे पण्डित शिरोमणि ! [विजियाणेगवाइवाय !] हे अनेकवादियों के वाद को विजय करनेवाले ! [लद्धसरस्सइसुप्पसाय !] हे सरस्वती का सुप्रसाद पानेवाले [दूरीकयावरगव्वुमेस !] हे अन्य विद्वानों के गर्व की वृद्धि को दूर कर देनेवाले [इच्चाहजसं गायंतेहिं पंच सयसीसेहिं परिवुडो जयजयसद्देहिं संदिज्जमाणो पहुसमीवे समणुपत्तो] इस प्रकार पांचसौ शिष्यों द्वारा किये जाते यशोगान और जयजयकार के साथ इन्द्रभूति भगवान् के पास पहुंचे। [तत्थ गंतूण सो समोसरणसमिद्धिं पहुतेयं च विलोइय

यज्ञवाटकं परित्यज्यान्यत्र देवगमनात् तत्रस्थितानामाश्चर्यादिक्वर्णनम्

किमेयंति चगियचित्तो संजाओ] वहां पहुंच कर लोकोत्तर विभूति को और प्रभु के तेज को देखकर चकित रह गये। सोचने लगे—यह क्या ? ॥११॥

भावार्थ—जब वे पूर्वोक्त वचन आपस में कह रहे थे, उसी समय बीच सपरिवार और विमानों पर आरूढ वे आते हुए देव यज्ञभूमि को लांघकर आगे चले गये। यह देखकर वे यज्ञकर्त्ता ब्राह्मण स्तब्ध सन्न रह गये, तेजोहीन हो गये। उनके मुख और नेत्र कुम्हला गए। उनके चहेरे पर दीनता झलकने लगी। मुख फीका पड गया। जब ब्राह्मण इस प्रकार खेद खिन्न हो रहे थे, उसी समय आकाश के मध्य में देवोंने उच्च स्वर से घोषणा की। वह घोषणा क्या थी, सो कहते हैं—'भो भव्य जीवो! तुम प्रमाद का परित्याग करके, मोक्ष रूपी नगरी के लिए सार्थवाह के समान श्री वर्द्धमान भगवान् को आकर भजो, इनकी सेवा करो। यह श्री वर्धमानस्वामी त्रिलोक के कल्याणकारी हैं, मनुष्यों के उद्धार के मार्ग का उपदेश देने रूप उपकार करना ही इनका

यज्ञवाटकं परित्यज्यान्यत्र देवगमनात् तत्रस्थितानामाश्चर्यादिक-वर्णनम्

प्रधान व्रत नियम है। यह जिनों–राग–द्वेष को जीतनेवाले सामान्य केवलियों के स्वामी हैं।' देवों की इस प्रकार की घोषणा को सुनकर, क्षणभर ऊंची श्वास लेकर, सब से पहले गौतमगोत्र में उत्पन्न इन्द्रभूति नामक ब्राह्मण के मनमें क्रोध उत्पन्न हुआ। होठ फडकने लगे अतः क्रोध प्रगट हो गया। उनके नेत्र क्रोध से लाल हो गये। वह मिसमिसाने लगे–क्रोध से जलने लगे और इस प्रकार वचन बोले मेरे विद्यमान रहते, यह दूसरा कौन पाखंडी और वितंडावादी है जो आप को सर्वज्ञ सब पदार्थों का ज्ञाता और सर्वदर्शी–सब पदार्थों को साक्षात्कार करनेवाला–कहलाता है? लोगों के सामने ऐसा कहते उसे लज्जा नहीं आती? जान पडता है, यह कोई कपटजाल रचनेवाला मायावी है। इस पाखंडीने सर्वज्ञता को प्रकट करनेवाला प्रपंच रचकर, इन्द्रजाल को फैलाकर देवों को भी छल लिया है–देव भी इसके चक्कर में आगये हैं। इसी कारण तो वे देव यज्ञ की (पावन) भूमि को और अंगोपांगो सहित वेदों के ज्ञाता मुझको

यज्ञवाटकं परित्यज्यान्यत्र देवगमनात् तत्रस्थितानामाश्चर्यादिक-वर्णनम्

त्याग कर उस पाखण्डी के पास जा रहे हैं। निश्चय ही इन देवों की मति भी विपरीत हो गई है। ये देव गंगा आदि तीर्थों के जल को त्याग कर तुच्छ खड्डे के पानी की कामना करनेवाले काकों के समान यज्ञभूमि को छोड उस धूर्त के पास जा रहे हैं। और ये देव जलकी उपेक्षा करके स्थल की इच्छा करनेवाले मेढकों के समान, श्रीखंड आदि चन्दन की अवहेलना करके दुर्गंध को पसंद करनेवाली मक्खी के समान, तथा आम्रवृक्ष को छोडकर बबुल की अभिलाषा करनेवाले, ऊंटों के समान तथा दिवाकर के आलोक की अवहेलना करनेवाले उल्लुओं के समान मालूम होते हैं, जो इस यज्ञ-स्थान को छोडकर इस मायावी के पास जा रहे हैं। सच है जैसा देव वैसे ही उसके पूजारी होते हैं। निस्सन्देह ये देव नहीं, देवाभास हैं–देव जैसे प्रतीत होनेवाले कोई और ही हैं। भ्रमर आम्र की मंझरी पर गुनगुनाते है, परन्तु काक नीम के पेड को ही पसंद करते हैं। खैर, देवों को उस छलियों के पास जाने दो, पर मैं उस छलिया के

यज्ञवाटकं परित्यज्यान्यत्र देवगमनात् तत्रस्थितानामाश्चर्यादिक-वर्णनम्

सर्वज्ञत्व के घमंड को खंड कर दूंगा। हिरण की क्या शक्ति जो वह सिंह के साथ युद्ध करे? इसी प्रकार अंधकार, सूय के साथ, पतंग अग्नि के साथ, चिउंटी सागर के साथ, सांप गरुड के साथ, पर्वत वज्र के साथ और मेढा हाथी के साथ क्या युद्ध कर सकता है? नहीं, कदापि नहीं। इसी प्रकार वह धूर्त इन्द्रजालियों मेरे समक्ष क्षणभर भी नहीं टिक सकता। मैं अभी उस धूत के पास जाकर देवादिकों को भी छलनेवाले मायावी को परास्त करता हूं। सूर्य के सामने बेचारा जुगनू—आग्या क्या चीज है। कुछ भी तो नहीं। मुझे किसी दूसरे विद्वान् की सहायता की आवश्यकता नहीं। मैं अकेला ही उस धूर्त के छक्के छुडाने के लिए समथ हूं। अन्धकार का निवारण करने के लिए सूर्य क्या चन्द्रमा आदि की सहायता चाहता है? नहीं। अतएव मैं अभी, इसी समय जाता हूं।' इस प्रकार कहकर होनेवाले शास्त्राथ म प्रमाण दिखलाने क लिए इन्द्रभूतिन अपने हाथ में पुस्तकें ली। कमण्डलु तथा कुशासन हाथ म लिए हुए, पीत

यज्ञ... कं
परित्यज्यान्यत्र
देवगमनात्
तत्रस्थिता-
नामाश्चर्या-
दिक-
वर्णनम्

वस्त्र धारण किए हुए, यज्ञोपवीत से शोभित बायें कंधेवाले और यशोगान करनेवाले अपने पांचसौ शिष्यों के साथ वह इन्द्रभूति भगवान् के समीप चले। उस समय उनके शिष्य उनको जय–जयकार कर रहे थे। शिष्य इस प्रकार यशोगान कर रहे थे–'हे सरस्वती रूपी आभूषण कंठ में धारण करनेवाले! हे प्रतिवादियों पर प्राप्त की जानेवाली विजय रूपी लक्ष्मी की पताका के समान। अर्थात् प्रतिवादियों का पराभव करने में अग्रगण्य। हे वादियों के मुख रूपी कपाट को बंद कर देनेवाले ताले। अर्थात् वादियों की बोलती बंद कर देनेवाले। हे प्रतिवादी रूपी मदोन्मत्त हाथियों के कुंभस्थलों को विदारण करनेवाले सिंह। हे प्रतिवादियों के ऐश्वर्य–विद्वानों में अग्रगण्यता रूपी सागर को एक ही चुल्लू में सोख जानेवाले अगस्ति अर्थात् दुर्दान्त वादियों को अनायास ही–चुटकियों में जीतनेवाले। हे वादियों रूपी सिंहों के पराक्रम को नष्ट करनेवाले अष्टापद। वादियों को परास्त करदेने में दक्ष। हे वादी रूपी लुंटेरों का दमन

करने के लिये प्रचण्ड तर्क रूपी दंड धारण करनेवाले। हे वादियों के सिरके विकराल काल। हे वादी रूपी कदलियों के खण्डखण्ड कर देने के लिए कृपाण। अर्थात् अनायास ही वादियों का मानमर्दन करनेवाले। हे वादी रूपी सघन अंधकार का निवारण करने के लिए प्रखर सूर्य। हे प्रतिवादी रूपी गेहूं को पिस डालने के लिए चक्की के समान। हे प्रतिवादी रूपी कच्चे घडों के लिए मुद्गर के समान वादीयों की विद्वत्ता को चुर-चुर करदेने वाले। हे वादी रूपी उलूकों के लिए सूर्य अर्थात् प्रतिवादियों की तर्क-दृष्टि को नष्ट कर देनेवाले। हे वादीरूपी वृक्षों को उखाड गिरानेवाले गजराज। अर्थात् वादियों का मानमर्दन करनेवाले। हे वादी रूपी दानवों का पराभव करनेवाले देवेन्द्र। हे प्रतिवादियों को अधिन करनेवाले नरेश। हे वादी रूपी कंस के लिए कृष्ण समान। हे अपने सिंहनाद से समस्त वादीरूप मृगों को भयभीत करदेने वाले सिंह। हे वादी रूपी ज्वर का निवारण करने के लिए ज्वरांकुश नामक औषध। हे वादियों के

यज्ञवाटकं परित्यज्यान्यत्र देवगमनात् तत्रस्थितानामाश्चर्यादिक-वणनम्

समूह को पराजित करनेवाले महान् मल्ल। हे अपने प्रकाण्ड पांडित्य के प्रभाव से प्रतिवादियों के अन्तःकरण में सदैव खटकनेवाले कांटे। हे प्रतिवादी रूपी पतंगों को भस्म करनेवाले जलते दीपक, अर्थात् प्रतिवादियों के यश रूपी शरीर का विनाश करनेवाले। हे वादिचक्रचूडामणि–सकलशास्त्रों में अर्थो और कलाओं में कुशलजनों में अग्रगण्य। हे विद्वज्जन–शिरोमणी। हे सकलवादियों के वाद को जीतने वाले। हे विद्या की अधिष्ठात्री देवता के कृपाभाजन। हे अन्य विद्वानों के गर्व की वृद्धि को विनष्ट करनेवाले। अर्थात् सब पण्डितों की पण्डिताई के गर्व को खर्च करनेवाले। इस प्रकार पांचसो शिष्यों द्वारा किये जाते यशोगान और जय–जयकार के साथ इन्द्रभूति भगवान् के पास पहूंचे। वहां पहूंच कर लोकोत्तर विभूति को और प्रभु के तेज को देखकर चकित रह गये। सोचने लगे–यह क्या ? ॥११॥

मूलम्–तए णं समणे भगवं महावीरे सीहसेणो राया सीलसेणा णामं

देवी बहवे भवणवइवाणमंतरा जोइसिया वेमाणिय देवा य देवीओ य इंदभूइ पामोक्खाणं माहणा य तीसे य महइमहालियाए परिसाए धम्मकहा कहिया से बेमि जे य अइया, जे य पडुप्पन्ना, जे य आगमिस्सा, अरहंता भगवंतो, ते सव्वेवि, एवमाइक्खंति, एवं भासंति, एवं पण्णवंति, एवं परूवेंति—सव्वे पाणा, सव्वे भूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता, ण हंतव्वा, ण अज्जावेयव्वा१, ण परिघेत्तव्वा२, ण परितावेयव्वा, ण उद्दवेयव्वा३। एस धम्मे, सुद्धे, णिइए, सासए, समेच्च लोयं खेयन्नेहिं पवेइए, तं जहा—उट्ठिएसु वा, अणुट्ठिएसु वा, उवरयदंडेसु वा, अणुवरयदंडेसु वा, सोवहिएसु वा, अणोवहिएसु वा, संजोगरएसु वा, असंजोगरएसु वा। तच्चं चेयं तहा चेयं अस्सिं चेयं पवुच्चइ ॥१२॥

शब्दार्थ—[तए णं] तदनन्तर [समणे भगवं महावीरे] श्रमण भगवान् महावीर

स्वामीने [सीहसेण राया] सिंहसेन राजा एवं [सीलसेणा णामं देवी] सीलसेना नाम की रानी और [बहवे] अनेक [भवणवइवाणमंतरा जोइसिया वेमाणिया य] भवनपति वानव्यन्तर ज्योतिषिक एवं वैमानिक [देवा य देवीओ य] देव और देवियां [इंदभूई पामोक्खाणं] इन्द्रभूति आदि [माहणा य] ब्राह्मण से युक्त [तीसे य महइ महालयाए परिसाए] वह महान् विशाल परिषदा में [धम्मकहा] धर्मकथा कही—[से बेमि] जिस सम्यक्त्व का तीर्थंकरादिकोने उपदेश किया है वही मैं कहता हूं। [जे य अईया] अतीतकाल में जितने तीर्थंकर हुए हैं, [जे य पडुप्पन्ना] वर्तमान काल में जो तीर्थंकर विद्यमान हैं [जे य आगमिस्सा अरिहंता भगवंतो] और जो आगामिकाल में होनेवाले तीर्थंकर भगवान् हैं [ते सव्वे वि] सभी वे [एवमाइक्खंति] इस प्रकार कहते हैं [एवं भासंति] इस प्रकार भाषण करते हैं, [एवं पण्णवंति] इस प्रकार की प्रज्ञापना करते हैं [एवं परूवेंति] इस प्रकार की प्ररूपणा करते हैं—[सव्वे पाणा] सभी प्राणी—पृथिव्यादि स्थावर एवं

द्वीन्द्रियादि पञ्चेन्द्रियपर्यन्त के जीवमात्र [सव्वेभूया] सभी भूत होनेवाले, हो गये एवं वर्तमान में हुवे [सव्वे जीवा] जी गये, जीते हुवे, जीनेवाले [सव्वे सत्ता] स्वकृत कर्म-बल से होने वाले सुखदुःखकी सत्तावाले को [न हंतव्वा] दंडे आदि से न हणे [ण अज्जा-एयव्वा] इन को मारने के लिए आज्ञा न दें [न परिघेत्तव्वा] यें भृत्यादि मेरे अधीन हैं, ऐसा समझ कर उन्हें दास न बनावे [न परितावेयव्वा] अन्नादि की रुकावट कर पीडा न पहुंचावे [न उवद्दवेयव्वा] इनका विष शस्त्रादि से प्राणवियोग न करे करावे [एस धम्मे] सभी जीवों के घात का निषेधात्मक यही धर्म [सुद्धे] पापानुबंध से रहित होने से शुद्ध माने निर्मल हैं, [णिइए] अविनाशी है शाश्वत गतिवाला है [लोयं समिच्च] समस्त जीवों को दुःखो के जान कर दुःखानल से तप्त लोकों को केवलज्ञान से प्रत्यक्ष कर [खेयन्नेहिं पवेइए] कहा है [तं जहा] वह इस प्रकार है–[उट्ठिएसु वा] धर्मा-चरण के लिये उद्यमशील हो ऐसे के लिये [अणुट्ठिएसु वा] उद्यमशील न

हो ऐसे के लिए [उवरयदंडेसु वा] मुनियों के लिए एवं [अनुवरयदंडेसु वा] गृहस्थों के लिए [सोवहिएसु वा] हिरण्य सुवर्णादि अगर रागद्वेषादि उवधिवाले के लिए [अणोवहिएसु वा] उपधि से रहितों के लिए [संजोगरएसु वा] पुत्रकलत्रादि में रत हुवे के लिए [असंजोगरएसु वा] संयम में रत हुवे के लिए [तच्चं चेयं] यही तथ्य है [तथा चेयं] जैसे मैंने प्ररूपित किया है वैसा ही हैं [अस्सिं चेयं पवुच्चइ] इसी धर्म में कोई विसंवाद नहीं है ॥१२॥

भावार्थ—तदनन्तर महावीर स्वामीने सिंहसेन राजा एवं सीलसेना नामक रानी और अनेक प्रकार के भवनपति, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क, एवं वैमानिक देवों और उनकी देवियां एवं इन्द्रभूति आदि ब्राह्मणवृंद आदि से भरी महति परिषदा में धर्मकथा कही जो इस प्रकार है–जिस सम्यक्त्वका तीर्थंकरादिकोंने उपदेश किया है वही मैं कहता हूं–अतीत काल में जितने तीर्थंकर हुए हैं, वर्तमान काल में जो तीर्थंकर

विद्यमान है और जो भविष्य काल में होनेवाले तीर्थंकर भगवान् है वे सभी इस प्रकार कहते हैं, इस प्रकार भाषण करते है, इस प्रकार की प्रज्ञापना करते हैं और इस प्रकार की प्ररूपणा करते हैं–सभी प्राणी पृथिव्यादि स्थावर एवं द्वीन्द्रियादि पञ्चेन्द्रिय पर्यन्त के सभी प्राणी को सर्वभूत–हो गये, होनेवाले एवं वर्तमान में विद्यमान सभी भूतों को तथा सर्वजीव–जी गये, जीनेवाले एवं जीते हुए जीव मात्र को सर्व सत्व स्वकृत कर्म बल से होनेवाले सुखदुःख के अधिन सत्व को दंडा आदि से न हणे, उनको मारने के लिए आज्ञा न दें ये भृत्यादि मेरे ताबे में है ऐसा समझकर उन्हें दास न बनावे,अन्नादि की रुकावट कर उन्हें पीडा न पहुंचावे इनका विष शस्त्रादि से प्राण-वियोग न करें न करावें। सभी जीवों के घात न करने रूप यही धर्म पापानुबंध रहित होने से शुद्ध है। अविनाशी है। शाश्वत गतिवाला हैं। समस्त जीवों के दुःखों को जानने वाले श्री तीर्थंकरोंने दुःखानल से संतप्त लोगों को केवलज्ञान से प्रत्यक्षकर

उनके दुःख की निवृत्ति के लिए कहा है, वह इस प्रकार है—धर्माचरण के लिए उद्यम वाले के लिए, विना उद्यम वाले के लिए, मुनियों के लिए, एवं गृहस्थों के लिए, हिरण्य—सुवर्णादि अथवा रागद्वेषादि उपधिवाले के लिए तथा विना उपधिवालों के लिए पुत्रकलत्रादि परिवार में रत हुवे के लिए, एवं संयम में रत हुवे के लिए, यही धर्म तथ्य है यह जैसा तीर्थंकरोंने प्ररूपित किया है वैसा ही है—इसी धर्म में कोई विसंवाद नहीं है ॥१२॥

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे तं इंदभूइं—भो गोयमगोत्ता इंदभूइत्ति संबोहिय हियाए सुहाए महुराए वाणीए भासीअ। भगवओ वयणं सोच्चा सो पुणो अईव चगियचित्तो जाओ अहो। अणेण मम णामं कहं णायं? एवं वियारियं मणंसि तेण समाहिय किमेत्थ अच्छेरगं—जं

जगपसिद्धस्स तिजगगुरुस्स मज्झ नामं को न जाणइ? मज्झ मणंसि जो संसओ वट्टइ—तं जइ कहेइ छिंदइ य, ताहे अच्छेरं गणिज्जइ। एवं वियारेमाणं तं भगवं कहीअ—गोयमा! तुज्झमणंसि एयारिसो संसओ वट्टइ, जं जीवो अत्थि णो वा? जओ वेएसु—'विज्ञानघनएवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय पुनस्तान्येवानुविनश्यति—न प्रेत्य संज्ञाऽस्ति' त्ति कहियमत्थि। अस्स विसए कहेमि तुमं वेयपयाणं अत्थं सम्मं न जाणासि—जीवो अत्थि, जो चित्तचेयण्ण विण्णाण सन्नाइ लक्खणेहि जाणिज्जइ। जइ जीवो न सिया ताहे पुण्ण पावाणं कत्ता को भवे? तुज्झ जन्नदाणाइ कज्जकरणस्स निमित्तं को होज्जा? तवसत्थे वि वुत्तं—'स वै अयमात्मा ज्ञानमयः' अओ सिद्धं जीवो अत्थि त्ति। इच्चाइ पहुवयणं सोच्चा तस्स मिच्छत्तं जले लवणमिव सुज्जोदये तिमिर-

सिव चिंतामणिम्मि दारिद्दमिव गलियं।

एवं समणस्स भगवओ महावीरस्स। अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म, हट्ठ-तुट्ठे जाव हियए उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ। करित्ता एवं वयासी–सद्दहामि णं भंते! णिग्गंथं पावयणं। पत्तियामि णं भंते! णिग्गंथं पावयणं रोएमि णं भंते! णिग्गंथं पावयणं। अब्भुट्ठेमि णं भंते! णिग्गंथं पावयणं। एवमेअं भंते! तहमेअं भंते! अवितह-मेअं भंते! असंदिद्धमेयं भंते! इच्छियमेअं भंते! पडिच्छियमेअं भंते! इच्छिय-पडिच्छियमेअं भंते! से जहेयं तुब्भे वदह त्ति कट्टु समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभायं अवक्कमइ अवक्कमित्ता। पोत्थयं कमण्डलु दब्भासणं पीयंवरेहिं जण्णोववीयं च एगंते एडेइ। तए णं

से इंदभूई पमुहा माहणा पंचमुट्ठिलोयं करेंति तए णं सग्गाहिवे देविंदे देवराया पावरण चोलपट्ट सदोरमुहपत्तिं रयहरणं गोच्छगं पडिग्गहं वत्थं च पडिच्छिइ। तए णं से इंदभूई पभिया माहणा मुहपत्तिं मुहे बंधीय चोलपट्टं च परिहिय पावरणं धरीय रयहरणगोच्छग पडिग्गहं धरीय साहुवेसं गिण्हइ। तेण सुभेणं परिणामेणं पसत्थेहिं अज्झवसाणेहिं लेस्साहिं विसुज्झमाणीहिं तदावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ओहिनाणे ओहिदंसणे समुप्पन्ने। तए णं से जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव गच्छइ, गच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहीण पयाहीणं करेइ। करित्ता अलित्तेणं भंते! लोए पलित्तेणं भंते! लोए अलित्तपलित्तेणं भंते! लोए जराए मरणेण य परिसहोवसग्गा फुसंतु तिकट्टु एस मे नित्थारिए समाणे परलोयस्स हियाए, सुहाए, खेमाए, निस्सेयसाए, अणुगामियत्ताए

भविस्सइ। तं इच्छमि णं देवाणुप्पिया! सयमेव पव्वाविअं, त्ति पत्थेमि। भदन्त! रुक्खस्स उच्चत्तमाविउं वामणजणो विव अहं मइमंदो तुम्हं परिक्खिउं समागओ, सामी। जो तए मम पडिबोहो दत्तो तेणं संसाराओ विरत्तोम्हि। अओ मं पव्वाविय दुक्खपरंपराउलाओ भवसायराओ तारेह।

तए णं समणे भगवं महावीरे इमो मे पढमो गणहरो भविस्सइ' त्ति कट्टु तं पंचसयसिस्ससहियं निय हत्थेण पव्वावेईय। इंदभूई अणगारे मण-पज्जवनाणे समुप्पण्णे, छट्ठं छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तेणं कालेणं तेणं समएणं गोयमगोत्ते इंदभूई अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी जाए इरियासमिए भासासमिए एसणासमिए आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिए उच्चारपासवण-

खेलजल्लसिंघाणपरिट्ठावणियासमिए मणसमिए वयसमिए कायसमिए मण-गुत्ते वयगुत्ते कायगुत्ते गुत्ते गुत्तिंदिए गुत्तबंभयारी चाईवणेलज्जू तवस्सी खंति-खमे जिइंदिए सोही अणियाणे अप्पुस्सुए अवहिल्ले सामण्णरए इणमेव निग्गंथं पावयणं पुरओ कट्टु विहरइ। से णं इंदभूई नामं अणगारे गोयम-गोत्ते सत्तुस्सेहे समचउरंससंठाणसंठिए वज्जरिसहनारायसंघयणे कणगपुलग-निघसपम्हगोरे उग्गतवे दित्ततवे तत्ततवे महातवे उराले घोरे घोरगुणे घोर-तवस्सी घोरबंभचेरवासी उच्छूढसरीरे संखित्तविउलतेउलेस्से चउद्दस पुव्वी चउ-णाणोवगए सव्वक्खरसण्णिवाई समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते उड्ढ-जाणू अहोसिरे झाणकोट्ठोवगए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ॥१२॥

शब्दार्थ—[तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे] उस काल और उस

समय में श्रमण भगवान महावीरने [तं इंदभूइं—भो गोयमगोत्ता इंद भूइत्ति संबोहिय हियाए सुहाए महुराए वाणीए भासीअ] उन इन्द्रभूति से 'हे गौतमगोत्रीय इन्द्रभूति! इस प्रकार सम्बोधन करके हितरूप, सुखरूप, और मधुरवाणी से भाषण किया। [भगवओ वयणं सोच्चा सो पुणो अईव चगियचित्तो जाओ] भगवान का कथन सुनकर इन्द्रभूति और अधिक आश्चर्य चकित हो गये [अहो! अणेण मम णामं कहं णायं ?] सोचने लगे—'आश्चर्य है कि इन्हों ने मेरा नाम कैसे जान लिया? [एवं वियारिय मणंसि तेण समाहियं किमेत्थ अच्छेरगं—जं जगपसिद्धस्स तिजगगुरुस्स मज्झ नामं को न जाणइ ?] फिर मनही मन समाधान कर लिया—इस में विस्मय की बात ही कौन—सी हैं? मैं जगत् में प्रसिद्ध और तीनों जगत् का गुरु हूं। अतः मेरा नाम कोन नहीं जानता? [मज्झ मणंसि जो संसओ वट्टइ—तं जइ कहेइ छिंदइय, ताहे अच्छेरं गणिज्जइ] हां यदि मेरे मन में जो संशय विद्यमान है, उसे बतलादें और उसका निवारण करदें तो मैं

आश्चर्य मानुं। [एवं वियारेमाणं तं भगवं कहीअ गोयमा ! तुज्झ मणंसि एयारिसो संसओ वट्टइ-] इस प्रकार विचार करते हुए इन्द्रभूति से भगवान ने कहा—गौतम ! तुम्हारे मन में ऐसा संशय है कि—[जं जीवो अत्थि णो वा ? अओ वेएसु—विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय पुनस्तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्यसंज्ञाऽस्ति' त्ति कहियमत्थि] जीव है या नहीं है ? क्योंकि वेदों में ऐसा कहा गया है कि विज्ञान घन ही भूतों से उत्पन्न होकर फिर उन्हीं में लीन हो जाता है। परलोक संज्ञा नहीं हैं [अस्स विसए कहेमि—तुमं वेयवयाणं अत्थं सम्मं ण जाणासि] इस विषय में मैं ऐसा कहता हूं कि तुम वेदों के पदों का सही अर्थ नहीं जानते [जीवो अत्थि, जो चित्त चेयण्ण विण्णाण सन्नाइ लक्खणेहिं जाणिज्जइ] जीवका आस्तित्व है जो चित्त, चैतन्य, विज्ञान तथा संज्ञा लक्षणों से जाना जाता है [जइ जीवो न सिया ताहे पुण्णपावाणं कत्ता को भवे ?] यदि जीव न हो तो पुण्य पाप का कर्त्ता कौन है ? [तुज्झ जन्नदाणाइ कज्जकरणस्स निमित्तं को

इन्द्रभूतेः
शङ्का-
निवारणम्
प्रतिबोधश्च

होज्जा] तुम्हारे यज्ञ दान आदिका कार्य करने का निमित्त कोन है ? [तव सत्थे वि वुत्तं—स वै अयमात्मा ज्ञानमयः] तुम्हारे शास्त्रों में भी कहा है—वह आत्मा निश्चय ही ज्ञानमयहै [अओ सिद्धं जीवो अत्थित्ति] अतः सिद्ध हुआ कि जीव है [इच्चाइ पहुवयणं सोच्चा तस्स मिच्छत्तं जले लवणमिव सुज्जोदये तिमिरमिव चिंतामणिम्मि दारिद्दमिव गलियं] इत्यादि प्रभु के वचन सुनकर इंन्द्रभूति का मिथ्यात्व जल में नमक की भांति सूर्योदय में अंधकार तथा चिन्तामणि रत्न की प्राप्ति होने पर दरिद्रता की तरह गल गया।

[समणस्स भगवओ महावीरस्स] श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की [अंतीए] समीप से [धम्मं सोच्चा] धर्म का श्रवण करके [णिसम्म] हृदयमें धारण कर के [हट्ठतुट्ठे जाव हियए] हृष्ट तुष्ट यावत् हृदयवाला होकर के [अट्ठाए उट्ठेइ । उत्थान शक्ति, से ऊठा [उट्ठित्ता] ऊठकरके [समणं भगवं महावीरं] श्रमण भगवान् महावीर को [तिक्खुत्तो]

तीनबार [आयाहिणं पयाहिणं करेइ] आदक्षिण प्रदक्षिणा करता है [करित्ता] आदक्षिणा प्रदक्षिणा करके [एवं वयासी] इस प्रकार बोला [सद्दहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं] हे भगवन् मैं निर्ग्रन्थ प्रवचनों पर श्रद्धा करता हूं [पत्तियामि णं भंते ! णिग्गंथं पावयणं] हे भगवन निर्ग्रन्थ के प्रवचनों पर प्रतीती रखता हूं [रोएमि णं भंते! णिग्गंथं पावयणं] हे भगवन् निग्रन्थ के प्रवचनों पर रुचि करता हूं [अब्भुट्ठेमि णं भंते ! णिग्गंथं पावयणं] हे भगवान् में निर्ग्रन्थ प्रवचनों को स्वीकार करता हूं [एवमेअं भंते !] हे भगवन् यह निर्ग्रन्थ प्रवचन इसी प्रकार है [तहमेअं भंते!] हे भगवन् यह यथावत् ही हैं [अवितहमेअं भंते] हे भगवन् यह प्रवचन सत्य है [असंदिद्धमेयं भंते !] हे भगवन यह प्रवचन संदेह रहित है [इच्छियमेअं भंते !] हे भगवन् यह प्रवचन इष्ट कारी है [पडिच्छियमेअं भंते !] हे भगवन् यह प्रतिष्ठ है [इच्छियपडिच्छियमेअं भंते !] हे भगवन् ! यह पतिष्ठित है [से जहेअं तुब्भे वदह] वह ऐसा ही है जैसे आप कहते हो [ति कट्टु]

इन्द्रभूतेः
शङ्का-
निवारणम्
प्रतिबोधश्च

इस प्रकार कह कर [समणं भगवं महावीरं] श्रमण भगवन् महावीरको [वंदइ नमंसइ] वंदना नमस्कार किया [वंदित्ता नमंसित्ता] वंदना नमस्कार करके [उत्तरपुरत्थिमं दिसीभायं] उत्तर पूर्व दिशा माने ईशानकोन में [अवक्कमइ] गया [अवक्कमित्ता] जाकर के पोत्थयकमंडलुं] पोथी एवं कमंडलु तथा [दब्भासणपियंवरा] दर्भासन एवं पीतांबर [जण्णोववीयं च] और यज्ञोपवीत को [एगंते एडेह] एकबाजु पर रखदिये [तए णं इंदभूई पमुहा माहणा] इन्द्रभूति आदि ब्राह्मणों ने [पंचमुट्ठिलोयं करेंति] पंचमुष्टिक लोच किया [तएणं] तत्पश्चात् [सग्गाहिवे देविंदे देवराया] स्वर्ग के अधिपति देवेन्द्र देवराजने [पावयणं चोलपट्टसदोरयमुहपत्तिं] चद्दर चोलपट्ट-वस्त्र एवं सदोरक मुख-वस्त्रिका [रयहरणं गोच्छगं] रजोहरण गोच्छक [पाडिग्गहं वत्थं च] पात्री एवं वस्त्र [पडिच्छिय] अर्पित किये [तए णं से इंदभूई पमुहा माहणा] तदनन्तर इन्द्रभूति आदि ब्राह्मणोने [मुहपत्तिं मुहे बंधिय] सदोरक मुंहपत्तिको मुखपर बांधी [चोलपट्टं च

परिहिय] और चोल पट्टको पहिरकर एवं [रयहरण गोच्छग पडिग्गहं धरीय] रजोहरण गोच्छक एवं पात्रा को धारण करके [साहुवेसं गिण्हइ] साधुवेश को ग्रहण किया [तेण सुभेण परिणामेणं] यह शुभ परिणाम से [पसत्थेहिं अज्झवसाणेहिं] प्रशस्त अध्यवसाय से [लेस्साहिं विसुज्झमाणीहिं] विशुद्ध्यमान लेश्या से [तदावरणिज्जाणं कम्माणं] तदावरण कर्म के [खओवसमेणं] क्षयोपशम से [ओहिनाणे ओहिदंसणे समुप्पन्ने] इंद्रभूति को अवधिज्ञान एवं अवधिदर्शन की उत्पत्ती हुई]

[तएणं से] तत्पश्चात् वे [जेणेव समणे भगवं महावीरे] जहां पर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी थे [तेणेव गच्छइ] वहां पर गया [गच्छित्ता] जा कर के [तिक्खुत्तो] तीन बार [आयाहिण पयाहीणं करेइ] आदक्षिणा प्रदक्षिणा की [करित्ता] आदक्षिण प्रदक्षिणा करके [अलित्ते णं भंते ! लोए] यह लोक दुःखो से जल रहा है अर्थात् कषाय रूपी अग्नि से जल रहा है [पलित्तेणं भंते ! लोए] हे भगवन् यह लोक प्रदीप्त

हो रहा है [अलित्तपलित्तेणं भंते लोए] यहलोक आदीप्त प्रदीप्त हो रहा है [जराए-मरणेण य] जरा एवं मरण के दुःखो से [परिसहोवसग्गा फुसंतु] परीषहों एवं उप-सर्ग से हानि न हो [ति कट्टु] ऐसा विचार कर के [एस मे नित्थारिए समाणे] यदि में उसको बचाऌं तो मेरी आत्मा [परलोयस्स] परलोकमें [हियाए सुहाए] हितरूप, सुखरूप, [खेमाए] कुशलरूप [निस्सेयसाए] परंपरा से कल्याणरूप होगा [अणुगामियत्ताए] परलोकमें साथ रहनेवाला [भविस्सइ] होगा [तं इच्छामिणं देवाणु-प्पिया] तो हे देवानुप्रिय मैं चाहता हूं [सयमेव पव्वाविउं पत्थेमि] आपके द्वारा प्रव्राजित करनेकी प्रार्थना करता हूं।

[तएणं समणे भगवं महावीरे 'इमो मे पढमो गणहरो भविस्सइ' त्तिकट्टु तं पंच-सयसिस्ससहियं नियं हत्थेण पव्वावेईअ] तब श्रमण भगवान महावीर ने (यह मेरा प्रथम गणधर होगा) इस प्रकार कहकर पांचसों शिष्यों के सहित इन्द्रभूति को अपने

हाथ से दीक्षा दी [इंदभूई अणगारे मणवज्जवनाणे समुप्पणे] इन्द्रभूति अनागार को मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न हो गया [छट्ठछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ] बेले बेले निरन्तर यावज्जीव तपः कर्म से, संयम से और अनशनादि बारह प्रकार की तपस्या से आत्माको भावित करते हुए विचरते थे। [तेणं कालेणं तेणं समएणं गोयमगोत्ते इंदभूई अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासीजाए] उस काल और उस समय गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति अनगार श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ अंतेवासी अनगार हुए [इरियासमिए भासासमिए आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिए उच्चारपासवणखेलजल्लसिंघाणपरिट्ठावणिया समिए] ईर्यासमिति, भाषासमिति, एषणासमिति आदान भाण्डमात्र निक्षेपणा समिति उच्चार प्रस्रवण श्लेष्मशिंघाण जल्लपरिष्ठापना समिति [मणसमिए वयसमिए कायसमिए मणगुत्ते वयगुत्ते कायगुत्ते गुत्ते गुत्तिंदिए गुत्तबंभयारी] मनःसमिति वचनसमिति, कायसमिति, मनगुप्ति

वचनगुप्ति और कायगुप्ति से गुप्त, गुप्तेन्द्रिय गुप्त ब्रह्मचारी [चाई वणेलज्जू तवस्सी खंति खमें जिइंदिए सोही आणियाणे अप्पस्सुए अवहिल्ले सामण्णरए इणमेव निग्गंथं पावयणं पुरओ कट्टु विहरइ] त्यागी, वनकी लज्जावंती वनस्पति के समान पाप से लज्जित होने वाले, तपस्वी क्षमा करने में समर्थ जितेन्द्रिय, चित्त शोधक, निदान रहित अत्वरित स्थीर समीचीन संयम में लीन! इसी निर्ग्रन्थ प्रवचन को आगे करके विचरने लगे [से णं इंदभूई णामं अणगारे गोयमगोत्ते सत्तुस्सेहे] वह गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति नामक अणगार सात हाथ उंचे [समचउरंससंठाणसंठिए] समचतुरस्रसंस्थानवाले [वज्जरिसहनारायणसंघयणे] तथा वज्र ऋषभ नाराचसंहनन से युक्त [कणग पुलग निघसपम्हगोरे] एवं सुवर्ण के टुकडे की कसोटी पर घिसी हुइ रेखा के समान तथा कमल की केसर के समान गौर वर्ण के थे [उग्गतवे] उग्र तपस्वी [दित्ततवे] दीप्त तपस्वी [तत्ततवे] तप्ततपस्वी [महातवे] महातपस्वी [उराले] उदार [घोरे] घोर [घोरगुणे]

घोर गुणी [घोरतवस्सी] घोर तपस्वी [घोरबंभचेरवासी] घोर ब्रह्मचारी [उच्छूढसरिरे] देह की ममता से रहित [संखित्तविउलतेउलेसे] विशाल तेजोलेश्या को संक्षिप्त करके रहनेवाले [चउद्दसपुव्वी] चौदह पूर्वो के ज्ञाता [चउणाणोवगए] चार ज्ञानों से संपन्न [सव्वक्खरसण्णिवाइ] और समस्त अक्षरों के ज्ञाता थे [समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते] श्रमण भगवान् महावीर से न अधिक दूर और न अधिक नजदीक [उड्ढजाणू अहोसिरे] उपर घूटने और नीचा सिर किये [झाणकोट्ठोवगए] ध्यान रूपी कोष्ठ में प्राप्त होकर [संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ] संयम और तपसे अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे ॥१३॥

भावार्थ—उस कालमें और उस समय में अर्थात् जब इन्द्रभूति अपने शिष्य परिवार के साथ, गर्व सहित, भगवान् महावीर के समीप पहूंचे तब, भगवान् 'हे गौतम गोत्र में उत्पन्न इन्द्रभूति! इस पद से संबोधित करके कल्याणकारिणी

सुखकारिणी और मधुरवाणी से बोले। भगवान के द्वारा किया गया अपने नाम और गोत्रका उच्चारण सुनकर इन्द्रभूति के मन में अत्यन्त आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगे कि महावीरने मुझ अपरिचित का नाम गोत्र कैसे जाना? ऐसा सोचकर फिर इन्द्रभूतिने अपने मनमें समाधान कर लिया कि मेरा नाम गोत्र जान लेने में आश्चर्य क्या है? में ,जगत् में विख्यात हूं, और तीनों लोकों का गुरू हूं। कौन लालका युवक और वृद्ध है जो मेरा नाम न जानता हो?, आश्चर्य तो तब गिनूगा जब यह मेरे मनमें जो संशय है, उसको कह दें और उसका निवारण भी कर दें। गौतम इन्द्रभूति यह सोच ही रहे थे कि भगवान्ने उनसे कहा हे गौतम इन्द्रभूति! तुम्हारें मन में यह संदेह है कि जीव (आत्मा) का अस्तित्व है या नहीं हें? क्यों कि वेदों में भूतों से उत्पन्न हो कर उन्हीं में लीन हो जाता है, परलोक संज्ञा नहीं है' ऐसा कहा है। मैं इस विषय में कहता हूं तुम वेद के पदों का वास्तविक अर्थ नहीं जानते।

उक्त वेदवाक्य का तुम्हारा जाना हुआ अर्थ यह है–'घने आनन्द' आदि स्वरूप होने के कारण विज्ञान ही विज्ञान घन कहलाता है। वह विज्ञान घन ही प्रत्यक्ष से प्रतीत होनेवाले पृथ्वी आदि भूतों से उत्पन्न हो कर भूतों में ही अव्यक्त रूप से लीन हो जाता है। मृत्यु के बाद फिर जन्म लेना प्रेत्य कहलाता है। ऐसी प्रेत्य संज्ञा अर्थात् परलोक संज्ञा नहीं है।' इससे तुम मानते हो कि जीव नहीं है। इस वाक्य का वास्तविक अर्थ यह है, ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग रूप विज्ञान विज्ञानघन कहलाता है। विज्ञान से अभिन्न होने के कारण आत्मा विज्ञानघन है। अथवा आत्मा का एक प्रदेश अनन्त विज्ञान पर्यायों का समूह रूप है, इस कारण आत्मा विज्ञान घन ही है। यह आत्मा अर्थात् विज्ञानघन भूतों से उत्पन्न होता हैं क्योंकि घट के कारण आत्मा घट विज्ञान रूप परिणति से युक्त होता है क्यों कि घट विज्ञान के क्षयोपशमका अर्थात् घट विज्ञान के आवरण के क्षयोपशम का वहां आक्षेप होता

है: अन्यथा निर्विषय होने के कारण उसमें मिथ्यापन का प्रसंग हो जायगा। अतएव पृथ्वी आदि भूतों से कथंचित् उत्पन्न हो कर, बाद में आत्मा भी उन भूतों के नष्ट हो जाने पर, उस भूत विज्ञान घनरूप पर्याय से नष्ट हो जाता है। अथवा भूतों के अलग हो जाने पर सामान्य चैतन्य के रूप में स्थिर रहता है, अतः उसकी प्रेत्य संज्ञा नहीं है, अर्थात् प्राकृतिक घटादि विज्ञान की संज्ञा उसमें नहीं रहती है। इस से जीव है, यही मत सिद्ध होता है अन्तःकरण को चित कहते है चेतन के भाव को चैतन्य कहते हैं, अर्थात् संज्ञान का जो कर्त्ता हो वह चैतन्य है। विशिष्ट ज्ञान विज्ञान कहलाता है। चेष्टा संज्ञा कहलाती है। इन चित्त, चतन्य, बिज्ञान और संज्ञा आदि लक्षणों से जीव का ज्ञान होता है,। इससे जीव की सिद्धि होती है। जीवकी सिद्धि का दूसरा उपाय बतलाते हैं अगर जीव न हो तो पुण्य और पापका कर्ता जीव के अतिरिक्त दूसरा कौन होगा?

अर्थात् कोई भी नहीं हो सकता। जीव के बिना पुण्य पाप को उत्पन्न करनेवाला व्यापार संभव नहीं है। इसलिये पुण्य पाप का कर्ता होने से जीव का अस्तित्व सिद्ध होता है। जीव है, इसमत को फ़िर पुष्ट करते हैं—तुम्हारे माने हुए यज्ञदान आदि कार्यो के करने का निमित्त जीव के अभाव में कौन होगा? जीव ही उन कार्यो के करने का निमित्त हो सकता है, क्योंकि व्यापार जीव के अधीन है। इस से भी जीव है, यह सिद्ध होता है। इस प्रकार जीव का अस्तित्व सिद्ध कर के अब वेद के प्रमाण से उसे सिद्ध करने के लिये कहते हैं तुम्हारे शास्त्र में भी कहा है–'सर्वे अयमात्मा ज्ञानमयः'—चित्त आदि लक्षणों से प्रतीत होने वाला यह आत्मा ज्ञानघन रूप है। अतः जीव ह, यह मत सिद्ध हुआ। इत्यादि प्रभु के बचनों को सुनकर इन्द्रभूति का मिथ्यात्व उसी प्रकार गल गया, जसे जल में लवण गल जाता है सूर्य का उदय होंने पर अंधकार नष्ट हो जाता है और चिन्तामणी

की प्राप्ति होजाने पर दरिद्रता का नाश हो जाता है।

श्रमण भगवन् महावीरस्वामी से धर्म का श्रवण करके और उसे हृदय में धारण करके हृष्टतुष्ट यावत् हृदयवाला होकर के अपनी उत्थान शक्ति से ऊठा ऊठ करके श्रमण भगवान् महावीर को तीनवार आदक्षिणा प्रदक्षिणा की आदक्षिणा प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार किया वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार बोले हे भगवन् मैं निग्रन्थ प्रवचनों पर श्रद्धा करता हूं, हे भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ के प्रवचनों पर प्रतीती रखता हूं, हे भगवन्! मैं निग्रन्थ के प्रवचनों पर रुचि करता हूं, हे भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचनों को स्वीकार करता हूं, हे भगवन्! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन इसी प्रकार है, हे भगवन् यह यथावत् ही हैं, हे भगवन्! यह प्रवचन सत्य है, हे भगवन्! यह प्रवचन संदेह रहित है। हे भगवन्! यह प्रवचन इष्ट कारी है। हे भगवन्! यह प्रवचन प्रतिष्ठ है। हे भगवन्! यह प्रवचन प्रतिष्ठित है। वह ऐसा ही है जैसे आप कहते हो। इस

प्रकार कह कर श्रमण भगवान् महावीरस्वामी को वंदना की नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके उत्तर पूर्व दिशा– ईशानकोन में गया। वहां जाकर पोथी एवं कमंडलु तथा दर्भासन और पीतांबर एवं यज्ञोपवीत को एकबाजु पर रखदिये तत्पश्चात् इन्द्रभूति आदि ब्राह्मणों ने पंचमुष्टिक लोच किया। तदनन्तर स्वर्ग के अधिपति देवेन्द्र देवराजने चद्दर चोलपट्ट–वस्त्र, पात्र एवं सदोरक मुखवस्त्रिका, रजोहरण गोच्छक पात्री एवं वस्त्र उनको दिये। तदनन्तर इन्द्रभूति आदि ब्राह्मणोंने सदोरकमुहपत्तिको मुखपर बांधी एवं चोलपट्टको पहिना तथा चद्दर ओढी एवं रजोहरण गोच्छक एवं पात्रा को धारण करके साधुवेश ग्रहण किया, यह शुभ परिणाम से एवं प्रशस्त अध्यवसाय से विशुद्धयमान लेश्या से तदावरण कर्म के क्षयोपशम से इंद्रभूति को अवधिज्ञान एवं अवधिदर्शन उत्पन्न हुवा।

तदनन्तर वे जहां पर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी थे वहां पर गये, वहां जा करके

भगवान की तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा की, आदक्षिणा प्रदक्षिणा करके वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके इस प्रकार प्रभु से उन्होंने कहा हे भदन्त ! यह लोक दुःखो से जल रहा है, अर्थात् कषायाग्नि से यह लोक प्रदीप्त हो रहा है, यह लोक आदीप्त प्रदीप्त हो रहा है, जरा एवं मरण के दुःखो से परीषहों एवं उपसर्ग से हानि न हो ऐसा विचार कर के यदि में उसको बचालूं तो मेरी आत्मा परलोकमें हितरूप, सुखरूप, कुशलरूप परंपरा से कल्याणरूप होगा। परलोक में साथ रहनेवाला होगा। तो हे देवानुप्रिय मैं चाहता हूं की आप मुझे प्रव्राजित करें ऐसी मेरी प्रार्थना है। तब श्रमण भगवान् महावीरने 'यह इन्द्रभूति मेरा प्रथम गणधर होगा' इस–प्रकार ज्ञान से देखकर पांचसो शिष्यो सहित इन्द्रभूति को अपने हाथसे दीक्षा प्रदान की उसके बाद इन्द्रभूति अनगार को मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न हो गया, बेले–बेले निरन्तर यावज्जीव तपः कर्म से संयम से और अनशनादि बारह प्रकार की तपस्या से आत्मा को भावित करते हुए विचरने

लगे। उसकाल और उस समय में गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति अनगार श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ सबसे प्रथम–शिष्य हुए। वह कैसे थे सो कहते हैं वह ईर्यासमित थे अर्थात् ईर्यासमिति से युक्त थे इसी प्रकार भाषा समिति, एषणा समिति, आदान-भाण्डमात्रनिक्षेपणा समिति थे, उच्चारप्रस्रवण श्लेष्मशिङ्घाणजल्ल परिष्ठापनिका समिति थे, मनःसमिति थे, वचन समिति थे, मनोगुप्त अर्थात् मनोगुप्ति से युक्त थे, इसी प्रकार वचनगुप्त थे, कायगुप्त थे, गुप्त थे गुप्तेन्द्रिय थे गुप्तब्रह्मचारी थे। इर्यासमिति से लेकर गुप्तब्रह्मचारी तक के पदों का अर्थ १७४ वे सूत्रकी टीका के हिन्दी भाषानुवाद से जान लेना चाहिये। वह त्यागी–त्यागशील थे वन में जो लाजवंती नामक वनस्पति होती है, उसके समान पापमय व्यापारों से लज्जाशील संकोचशील थे। बेला तेला आदि की भी तपश्चर्या से युक्त थे। क्षमाशील होने के कारण दूसरों के द्वारा कृत अपकारों को सह लेते थे। इन्द्रियों को वश में कर चूके थे। अन्तःकरण के शोधक थे।

निदान (नियाणा) अर्थात् आगामी काल संबंधी विषयों की तृष्णा से रहित थे। स्थिर थे। और समीचीन साधु आचार में तत्पर थे इसी निर्ग्रन्थ को आगे करके बिचरते थे। वह इन्द्रभूति—अनगार गौतम गोत्रीय साथ हाथ के ऊंचे शरीरवाले थे। हाथ, पैर, ऊपर नीचे के चारो भाग जिसके सम—समान हो उसको समचतुरस्र कहते हें। ऐसे आकार विशेष को समचतुरस्र संस्थान कहते है। उनका वज्रऋषभ—नाराच संहनन था। कीली के आकार की हड्डी से मर्कट बंधको नाराच कहते हैं। अतः दोनों तरफ से मर्कट बंध से बंधी हुई और पट्ट की आकृति की तीसरी वेष्टित की हुई दोनों हड्डीयों के ऊपर, उन तीनों को फिर भी अधिक दृढ करने के लिये जहां कीलीके आकार की वज्र नामक, अस्थि लगी हुई हो वह वज्रऋषभ नाराच कहलाता हैं। जिस के द्वारा शरीर के पुद्गल दृढ किये जाऐं, उस अस्थि निचय हड्डियों के रचना विशेष को संहनन कहते हैं। ऐसा वज्रऋषभनाराच संहनन इन्द्रभूति अनगार को प्राप्त था। उनका शरीर ऐसा

गौर वर्णथा जैसे स्वर्ण के खंड की कसोटी पर घिसने से सुनहरी और चमकती हुई रेखा होती है, अथवा जैसे कमलका किंजल्लक होता है। अभिप्राय यह कि उनका शरीर कसोटी पर घिसे स्वर्णकी रेखा और कमल के केसर के समान चमकीला एवं गौर वर्णका था। अथवा कसोटी पर घिसे स्वर्ण की अनेक रेखाओं के समान गोरे शरीरवाले थे। बढते हुए परिणामों के कारण तथा पारणादि में विचित्र प्रकार के अभिग्रह करने के कारण उनका अनशन आदि बारह प्रकार का तप उत्कृष्ट था, अतः वे उग्रतपस्वी थे। बढी हुई तपस्यावान् होने से दीप्त तपस्वी थे अधिक तपस्या करने के कारण महातपस्वी थे! प्राणीमात्र के प्रति मैत्री भाव रखने के कारण उदार थे। परीषह, उपसर्ग एवं कषाय रूपी शत्रुओं को नष्ट करने में भयानक होने से घोर थे। वह घोर (कायरों द्वारा दुष्कर) मूल गुणों से युक्त होने से घोर गुणवान् थे; दुश्चर तपश्चरण के धारक थे। कायर जनों द्वारा आचरण न किये जा सकने योग्य

ब्रह्मचर्य का पालन करते थे उन्हों ने देहाध्यास का त्याग कर दिया था, अथवा वे शरीर के संस्कार (श्रृंगार) से रहित थे। विशिष्ट तपस्या से प्राप्त हुई विशाल तेजोलेश्या नामकलब्धि उन्होंने शरीर में :ही लीन (छीपा) कर रक्खी थी। चौदह पूर्वों के धारक थे। मति–श्रुत अवधि–मनःपर्यवज्ञान से युक्त थे। उनकी बुद्धि समस्त अक्षरों में प्रवेश करने वाली थी। यह भगवान् से न अधिक दूर रहते और न अत्यन्त समीप ही रहते थे। उचित स्थान पर रहते थे। वहां घुटने ऊपर करके तथा मस्तक नमाकर ध्यान रूपी कोष्ट को प्राप्त थे। किसी भी एक वस्तु में एकाग्रता पूर्वक चित्त का स्थिर होना ध्यान कहलाता है। वे उसी ध्यान रूपी कोष्ठ (कोठी में) स्थित थे। अर्थात् जैसे कोठी में रहा हुआ धान इधर–उधर बिखरता नहीं है, उसी प्रकार ध्यान करने से इन्द्रियों की तथा मन की वृत्तिबाहर नहीं जाती है आशय यह है कि इन्द्रभूति अनगार ने अपने चित्त की वृत्ति को नियंत्रित कर लिया था। सतरह प्रकार के संयम और

द्वादश प्रकार के तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे ॥१३॥

मूलम्—तए णं अग्गिभूई माहणो सव्वविज्जापारगो इंदभूइव्व चिंतेइ सच्चं सो महं इंदजालिओ दीसइ। अणेण मम भाया इंदभूइ वंचिओ। अहुणा अहं गच्छामि असव्वण्णुं अप्पाणं सव्वण्णुं मण्णमाणं तं धुत्तं पराजिणिय मायाए वंचियं मज्झभायरं पडिणियट्टमित्ति वियारिय पंचसयसिस्सेहिं परिवुडो सगव्वं पहुसमीवे पत्तो। तं भयवं नाम संसयनिद्देसपुव्वं संबोहिय एवं वयासी-भो अग्गिभूई! तुज्झमणंसि कम्मविसए संसओ वट्टइ—जं कम्मं अत्थि वा नत्थि? 'पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यं' इच्चाइं वेयवयणाओ सव्वं अप्पा चेव न कम्मं। जई कम्मं भवे ताहे पच्चक्खाइप्पमाणेणं तं लब्भं सिया तं नत्थि? जइ कम्मं मन्निज्जइ ताहे तेण मुत्तेण कम्मुणा सह अमुत्तस्स

अग्निभूतेः
शङ्का-
निवारणम्
प्रव्रजनं च

जीवस्स कहं संबन्धो हवेज्जा ? अमुत्तस्स जीवस्स मुत्ताओ कम्माओ उवघा-याणुग्गहा कहं होउं सक्किज्जा ? जहा आगासो खग्गाइणा न छिज्जइ, चंदणेण नोवलिविज्जइ त्ति, मिच्छा अइसयणाणिणा कम्मं पच्चक्खत्तणेण पासंति छउमत्थाओ जीवाणं वेचित्त पासियं तं अणुमाणेण जाणंति। कम्मस्स विचित्तयाए चेव पाणीणं सुहदुहाइ भावा संपज्जंते, जओ कोई जीवो राया हवइ, कोइ आसो गओ वा तस्स वाहणो हवइ कोवि पयाई, कोई छत्तधारगो हवइ। एवं कोवि खुयखामो भिक्खागो होइ, जो अहोरत्तं अडमाणो वि भिक्खं न लहइ। जमगसमगं ववहरमाणाणं पोयवणियाणं मज्झे एगो तरइ, एगो समुद्दंमि बुडइ। एयारिसाणं कज्जाणं कारणं कम्मं चेव, नो णं कारणेणं विणा किं पि कज्जं संपज्जए। अह य जहा मुत्तस्स घडस्स अमुत्तेण आगासेण सह

संबंधो तहा, कम्मणो जीवेण सह। जहा य मुत्तेहिं नाणाविहेहिं मज्जेहिं, ओसहेहि य अमुत्तस्स जीवस्स उवघाओ अणुग्गहो य हवंतो लोए दीसइ, तहेव अमुत्तस्स जीवस्स मुत्तेण कम्मुणा उवघाओ अणुग्गहो य मुणेयव्वो। अह य वेयपएसु वि न कत्थइ कम्मुणो निसेहो, तेण कम्मं अत्थि त्ति सिद्धं। एवं पहुवयणेण संसयम्मि छिन्नम्मि समाणे हट्ठतुट्ठो अग्गिभूई वि पंचसय-सिस्ससहिओ पव्वइओ ॥१४॥

अग्निभूतेः शङ्का-निवारणम् प्रव्रजनं च

शब्दार्थ–[तए णं अग्गिभूईमाहणो सव्वविज्जापारगो] इसके बाद समस्त विद्याओं में पारंगत अग्निभूति ब्राह्मणने [इंदभूइव्व चिंतेइ सच्चं सो महं इंदजालिओ दीसइ) इन्द्रभूति की ही तरह विचार किया सचमुच वह तो बडा भारी इन्द्रजालिक दिखता है [अणेण मम भाया इन्द्रभूइ वंचिओ] इसने मेरे भाई इन्द्रभूति को ठग लिया है

[अहुणा अहं गच्छामि] अब मैं जाता हूं [असवण्णुं अप्पाणं सव्वण्णुं मण्णमाणं तं धुत्तं पराजिणिय] और असर्वज्ञ किन्तु अपने आपको सर्वज्ञ माननेवाले उस धूर्त को पराजित कर वे [मायाए वंचियं मज्झभायरं पडिणियट्टे] माया से ठगे हुए अपने भाई इन्द्रभूति को वापिस लाता हूं। [मित्तिवियारिय पंचसयसिस्सेहिं परिवुडो सगव्वं पहु-समीवे पत्तो] इस प्रकार विचार करके वह अपने पांचसो शिष्यों के साथ गर्व सहित प्रभु के पास पहुंचा [तं भगवं नामसंसयनिद्देसपुव्वं संबोहिय एवं वयासी—] भगवानने उनके नाम और संशय का उल्लेख कर के संबोधन करते हुए कहा [भो अग्गिभूई! तुज्झ मणंसि कम्मविसए संसओ वट्टइ] हे अग्निभूति! तुम्हारे मन में कर्म के विषय में संशय है (जं कम्मं अत्थि वा णत्थि] कि कर्म है या नहीं है? ('पुरुष-एवेदं सर्वं यद्‌भूतं यच्चभाव्यं' इच्चाइ वेयवयणाओ सव्वं अप्पाचेव न कम्मं) यह सब पुरुष ही है जो है, हो चुका है और जो होनेवाला है। इस वेद वचन से सब कुछ

आतमा ही है, कर्म नहीं। [जइ कम्मं भवे ताहे पच्चक्खाइप्पमाणेण तं लब्भं सिया] यदि कर्म होता तो प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से उसकी उपलब्धि होती [तं नत्थि? जइ कम्मं मण्णिज्जइ ताहे तेण मुत्तेण कम्मुणा सह अमुत्तस्स जीवस्स कहं संबंधो हवेज्जा?] परन्तु उपलब्धि नहीं होती अतः कर्म नहीं है यदि कर्म माना जाय तो मूर्त कर्म के साथ अमूर्त जीव का संबंध कैसे हो? [अमुत्तस्स जीवस्स मुत्ताओ कम्माओ उवघायाणुग्गहा कहं होउं सक्किज्जा?] मूर्त कर्म से अमूर्त जीव का उपघात और अनुग्रह कैसे हो सकता है? [जहा:आगासो खग्गाइणा न छिज्जइ] जैसे आकाश खड्ग आदि से नहीं काटा जा सकता [चंदणेण नोवलिविज्जइ त्ति] और चन्दन आदि से लिप्त नहीं किया जा सकता [तं मिच्छा] किन्तु इस प्रकार सोचना मिथ्या है [अइसयणाणिणो कम्मं पच्चक्खत्तणेण पासंति] अतिशय ज्ञानी प्रत्यक्ष प्रमाण से कर्मों को देखते हैं [छउमत्थाउ जीवाणं वेचित्तं पासिय तं अणुमाणेण जाणंति] और असर्वज्ञ

जीवों की विचित्रता देखकर अनुमान से कर्म को जानते हैं [कम्मस्स विचित्तयाए चेव पाणीणं सुहदुहाइ भावा संपज्जंते] कर्म की विचित्रता से ही प्राणियों में सुखदुःख की अवस्था उत्पन्न होती है [जओ कोई जीवो राया हवइ] कोई जीव राजा होता ह [कोई आसा गओ वा तस्स वाहणो हवइ को वि पयाई, कोई छत्तधारगो हवइ] कोई हाथी अथवा कोई घोडा होकर उसका वाहन बनता है कोई पैदल चलता है कोई छत्र धारण करता है [एवं कोई खुयखामो भिक्खागो होइ जो अहोरत्तं अडमाणो वि भिक्खं न लहइ] इसी प्रकार कोई भूख से दुर्बल होता हैं और दिनरात भटकता हुआ भी भीख नहीं पाता [जमगसमगं ववहरमाणाणं पोयवणियाणं मज्झे एगो तरइ एगो समुद्दंमि बुडइ] तथा एक ही समय में व्यापार करनेवाले नौका व्यापारियों में से एक सकुशल समुद्रपार हो जाता है और दूसरा समुद्र में ही डूब जाता है। [एयारि-साणं कज्जाणं कारणं कम्मं चेव,] इन सब विचित्रकार्यों का कारण कर्म ही है; [नो णं

कारणेणं विणा किंपि कज्जं संपज्जए] कर्म के शिवाय और कुछ भी प्रतीत नहीं होता।

[अह य जहा मुत्तस्य घडस्स अमुत्तेणं आगासेण सह संबंधो तहा कम्मणो जीवेण सह] और जैसे मूर्त घट का अमूर्त आकाश के साथ सम्बंध होता है, उसी प्रकार कर्म का जीव के साथ सम्बन्ध होता है [जहा य मुत्तेहि नानाविहेहि मज्जेहि, ओसहेहि य अमुत्तस्स जीवस्स उवघाओ अणुग्गहो य हवंतो दिसइ] जसे नाना प्रकार के मूर्त मद्यों से और मूर्त औषधों से जीव का उपघात और अनुग्रह होता हुआ लोक में देखा जाता है [तहेव अमुत्तस्स जीवस्स मुत्तेण कम्मुणा उवघाओ अणुग्गहो य मुणेयव्वो] उसी प्रकार अमूर्त जीव का मूर्त कर्म के द्वारा उपघात और अनुग्रह जानना चाहिये। [अह य वेयपएसु वि न कत्थई कम्मुणो निसेहो तेण कम्मं अत्थि त्ति सिद्धं] इसके अतिरिक्त वेद पदों में भी कहीं भी कर्म का निषेध नहीं किया गया है, अतः कर्म है, यह सिद्ध हुआ। [एवं पहुवयणेण संसयम्मि छिन्नम्मि समाणे हट्ठतुट्ठो अग्गिभूई वि

पंचसयसिस्ससहिओ पव्वइओ] इस प्रकार प्रभु के कथन से संशय दूर हो जाने पर हर्षित और संतुष्ट हुए अग्निभूति भी अपने पांचसो शिष्यों के साथ भगवान् के पास दीक्षित हो गये ॥१४॥

भावार्थ—इन्द्रभूति की दीक्षा के पश्चात् सब विद्याओं में निपुण अग्निभूति ब्राह्मणने इन्द्रभूति के समान विचार किया सच है, यह महावीर महा इन्द्रजालिया दिखाई देता है। उसने मेरे भाई इन्द्रभूति को भी छल लिया। अब मैं जाता हूं और असर्वज्ञ होने पर भी अपने को सर्वज्ञ समझनेवाले उस मायावी को परास्त करके माया से ठगे हुए अपने बन्धु इन्द्रभूति को वापिस लाता हूं। इस प्रकार विचार कर वह अग्निभूति अपने पांचसो शिष्यों के साथ, अभिमान सहित, भगवान् के समीप गये। भगवानने अग्निभूति का नाम लेकर तथा उनके हृदय में स्थित सन्देह को सूचित करते हुए, संबोधन किया और इस प्रकार कहा—'हे अग्निभूति ! तुम्हारे मन में कर्म के विषय में

सन्देह रहता है कि कर्म है अथवा नहीं है?' वेद का वचन है कि–'पुरुषएवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्'। इस वाक्य का आशय है कि यह जो वर्त्तमान है, जो भूत है और जो भावी है, वह सभी वस्तु पुरुष (आत्मा) ही है। यहां 'पुरुष' शब्द के पश्चात् प्रयुक्त हुआ 'एव' (ही) कर्म आदि वस्तुओं का निषेध करने के लिये है, तो अभिप्राय यह निकला कि पुरुष के अतिरिक्त कोई भी वस्तु नहीं है। इत्यादि वेद वचन के अनुसार जो हुआ, जो है और जो होगा, वह सब वस्तु आत्मा ही है। आत्मा से भिन्न अन्य कोई पदार्थ नहीं है, अतएव कर्म का भी अस्तित्व नहीं है। कर्म होता तो प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से उसकी प्रतीति होती, किन्तु प्रत्यक्ष आदि किसी भी प्रमाण से कर्म की प्रतीति नहीं होती। फ़िर भी कदाचित् कर्म का अस्तित्व मान लिया जाय तो मूर्त कर्म के साथ अमूर्त जीव का संबंध किस प्रकार हो सकता है? मूर्त और अमूर्त का आपस में संभव नहीं है। इसके अतिरिक्त अमूर्त आत्मा का मूर्त कर्म से

उपघात नरक निगोद आदि गतियों में ले जाकर पीडा पहूंचाना और अनुग्रह स्वर्ग आदि गति में पहूंचा कर सुख का उपभोग करना–कैसे हो सकता है ? यहां संभव नहीं कि मूर्त और अमूर्त में से एक उपघात्य हो और दूसरा उसका उपघातक हो, तथा एक अनुग्राह्य हो और दूसरा अनुग्राहक हो। इस विषय में दृष्टान्त देते हैं। यथा आकाश तलवार, आदि के द्वारा काटा नहीं जासकता और चन्दनादि के लेप से लेपा नहीं जासकता। इस प्रकार अग्निभूति के मनोगत संशय का समर्थन करके उसका निराकरण करने के लिये कहते हैं–हे अग्निभूति, तुम्हारा यह मत मिथ्या है। क्योंकि सर्वज्ञ कर्म को प्रत्यक्ष से देखते हैं जैसे घट पट आदि को अथवा हथेली पर रक्खे आंवले को देखते हैं। अल्पज्ञ पुरुष जीवों की गति आदि की–विलक्षणता को देखकर अनुमान प्रमाण से कर्म को जानते हैं। अनुमान का प्रयोग इस प्रकार है–जीव कर्म से युक्त हैं क्योंकि उनकी गति में विचित्रता देखी जाती है। तथा कर्म की विचित्रता–भिन्नता के

कारण ही, विचित्र कर्मवाले प्राणियों के सुखदुःख आदि विचित्र भाव उत्पन्न होते हैं, क्योंकि कोई जीव राजा होता है, कोई घोडा होता है और कोई हाथी होता है। घोडा या हाथी होकर राजा का वाहन बनता है। कोई जीव उस राजा का प्यादा होता है और कोई उसका छत्रधारक—उस पर छत्र तानने वाला होता है। इसी प्रकार कोई जीव भूख से पीडीत होता है, जो अपने कर्म की विचित्रता के कारण दिन और रात भीख के लिये भटकता फिरता है, फिर भी भीख नहीं पाता। तथा—एक ही समय में व्यापार करनेवाले नौका—व्यापारियों में से एक सकुशल समुद्र से पार हो जाता है और दूसरा समुद्र में ही डूब जाता है। इन सब विचित्र कार्यों का कारण कर्म ही है, कर्म के सिवाय और कुछ भी प्रतीत नहीं होता।

शंका—पूर्वोक्त विचित्र कार्य स्वभाव से ही होते हैं अतएव कर्म को उनका कारण मानना व्यर्थ है। समाधान—तुम स्वभाव को विचित्र कार्यों का कारण कहते हो तो बताओ कि

स्वभाव क्या है? वह कोई वस्तु है या अवस्तु? अगर अवस्तु है तो उससे कार्यो की उत्पत्ति नहीं हो सकती। वस्तु है तो मूर्त है या अमूर्त? अगर अमूर्त है तो तुम्हारे मतानुसार वह मूर्त कार्यो को उत्पन्न नहीं कर सकता। अगर मूर्त है तो फिर वह कर्म हो। इसी बात को मनमें लेकर कहते हैं–'नो खलु' इत्यादि। घटपट आदि कोई भी कार्य कारण के विना उत्पन्न नहीं हो सकता। कारण से ही कोई कार्य उत्पन्न होता है। अतः जीवों के राजा होने आदि विचित्र कार्यो का कारण कर्म स्वीकार करना चाहिये। इस प्रकार कर्म की सत्ता सिद्ध करके अब मूर्त कर्म और अमूर्त जीव का संबंध युक्ति से सिद्ध करते हैं–'अहय' इत्यादि। जैसे मूर्त घटका अमूर्त आकाश के साथ सम्बन्ध होता है, उसी प्रकार मूर्त कर्म का अमूर्त जीव के साथ संबंध समझ लेना चाहिये। अथवा जैसे नाना प्रकार के मूर्त मद्यों के द्वारा जीव उपघात (विरूपता आदि दोषों की उत्पत्ति होने से हानि) होती है कहा भी है–

'वैरूप्यं व्याधिपिण्डः स्वजनपरिभवः कार्यकालातिपातो,
विद्वेषो ज्ञाननाशः स्मृतिमतिहरणं विप्रयोगश्च सद्भिः ।
पारुष्यं नीचसेवा कुलबलतुलना धर्मकामार्थहानिः,
कष्टं भोः ! षोडशैते निरुपचयकरा मद्यपानस्य दोषाः'

अर्थात्—मदिरापान से हानिकर सोलह दोष उत्पन्न होते हैं–विरूपता१, नाना प्रकार की व्याधियों२, स्वजनों के द्वारा तिरस्कार३, कार्य–काल की बर्बादि४, विद्वेष५, ज्ञान का नाश६, स्मरण–शक्ति और बुद्धि की हानि७, सज्जनों से अलगाव८, रुखापन९, नीचों की सेवा१०, कुल११, बल १२, तुलना १३, धर्म १४, काम १५, और अर्थ १६, की हानि'। और भी कहा है—

"श्रूयते च ऋषिर्मद्यात्, प्राप्तज्योतिर्महातपाः ।
स्वर्गाङ्गनाभिराक्षिप्तो मूर्खवन्निधनं गतः ॥ १ ॥

किं चेह बहुनोक्तेन, प्रत्यक्षेणैव दृश्यते ।
दोषोकस्य वर्तमानेऽपि तथा भण्डन लक्षणः" ॥ २ ॥

अर्थात्—सुना जाता है कि ज्ञान–ज्योतिप्राप्त और महातपस्वी ऋषि भी मदिरा पान के कारण अप्सराओं से अभिभूत होकर मूर्ख मनुष्य की तरह मौत के ग्रास बने ॥ १ ॥ इस विषय में अधिक कहने से क्या लाभ ? मद्यपान की बुराई तो वर्तमान में भी प्रत्यक्ष देखी जाती है। शराबी सर्वत्र भांडा जाता है। २ ॥ इस विषय में विशेष जिज्ञासुओं को मेरे गुरु पूज्य आचार्य श्रीघासीलालजी महाराज की बनी हुई—आचार-मणि मंजूषा नामक टीकावाले दशवैकालिक सूत्र के पांचवें अध्ययन के दूसरे उद्देशककी 'सुरं वा मेरगं वा वि' इत्यादि छत्तीसवीं आदि गाथाओं की व्याख्या देख लेनी चाहिए। तथा–जिस प्रकार नाना प्रकार की मूर्त औषधों से अमूर्त जीव का अनुग्रह होता है–रोग का नाश होता है, बल पुष्टि आदि की उत्पत्ति होकर उपकार होता है, उसी प्रकार

अमूर्त जीवका मूर्त कर्म से भी उपघात और अनुग्रह जान लेना चाहिये। इस प्रकार के दृष्टान्तों से कर्म का अस्तित्व दिखला कर अग्निभूति के परममान्य प्रमाण को प्रदर्शित करने के लिये कहते हैं –इसके सिवाय तुम्हारे अतिशय मान्य वेदों में भी, किसी भी स्थान पर कर्म का निषेध नहीं है। वेदों में कर्म का निषेध न होने से भी 'कर्म है' यह सिद्ध होता है। इस प्रकार प्रभु के कथन से कर्म के अस्तित्व संबंधी संशय के दूर हो जाने पर हृष्ट तुष्ट हुए अग्निभूति ने भी, इन्द्रभूति के समान, पांचसौ शिष्यों सहित श्रीमहावीर प्रभु के हाथ से दीक्षा ग्रहण करली ॥१४॥

मूलम्–तए णं वायुभूई विप्पो 'दुवेवि भायरा पव्वईय' त्ति जाणिउण चिंतेइ–सच्चमेसो सव्वण्णू दीसइ, जप्पभावेण मम दोवि भायरा तयंतिए पव्वइया। अओ अहमवि तत्थ गमिय सयमणोगयं तज्जीव तच्छरीरविसयं संसयं अवाकरेमित्ति कट्टु सो वि पंचसयासिस्सपरिवुडो पहुसमीवे समणुपत्तो

पहू तं नामसंसयनिद्देसपुव्वं वयइ—भो वाउभूई! तुज्झ मणंसि संदेहो वट्टइ—जं सरीरं तं चेव जीवो। नो अन्नो तव्वइरित्तो को वि जीवो पच्चक्खाइ पमाणेणं तं उवलंभाभावा। जलबुब्बुओ विव सो सरीराओ उपज्जए सरीरे चेव विलिज्जइ। अओ नत्थि अन्नो को वि पयत्थो जो परलोए गच्छेज्जा। 'विज्ञान-घनएवैतेभ्यो भूतेभ्यः' इच्चाइ वेयवयणंपि अतत्थे माणं। एत्थ वुच्चइ सव्व-पाणिणं देसओ जीवो पच्चक्खो अत्थि चेव, जओ सो मइआइ गुणाणं पच्च-क्खत्तणेणं संविऊ अत्थि। सो जीवो देहिंदियेहिंतो पुहं अत्थि। जओ जया इंदियाइ नस्संति तया सो तं तं इंदियत्थं सरइ, जहा एसो सद्दो मए पुव्वं आसाइओ, एसो मिउकक्खडाइफासो मए पुव्वं पुट्ठो आसी। एवं पयारो जो अणुहवो हवइ, सो जीवं विना कस्स होज्जा? तुज्झ सत्थे वि वुत्तं—

'सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष ब्रह्मचर्येण नित्यं ज्योतिर्मया हि शुद्धीयं पश्यंति धीरा यतयः संयतात्मानः' इति। जइ सरीराओ अन्नो को वि जीवो न हवेज्जा, तो 'सत्येन तपसा ब्रह्मचर्येण एष लभ्यः' इइ कहं संगच्छेज्जा। अओ सिद्धं सरिराओ भिन्नो अन्नो जीवो अत्थि त्ति। एवं पहुकयगुणेणं छिन्नसंसओ पडिबुद्धो वाउभूई वि पंचसयसिस्सेहिं पव्वइओ ॥१५॥

शब्दार्थ--[तए णं वाउभूई विप्पो' दुवे वि भायरा पव्वइय' त्ति जाणिऊण चिंतेइ] तब वायुभूति ब्राह्मण ने' मेरे दोनों भाई दीक्षित हो गये, यह जान कर विचार किया-[सच्चमेसो सव्वण्णू दीसइ] सचमुच ही वह सर्वज्ञ प्रतीत होता है। [जप्पभावेण ममं दो वि भायरा तयंतिए पव्वइया] जिस सर्वज्ञता के प्रभाव से मेरे दोनों भाई उनके पास दीक्षित हुए है [अओ अहमवि तत्थ गमिय सयमणोगयं तज्जीव तच्छरीर विसयं

संसयं अवाकरेमित्ति कट्टु] अतएव मैं भी वहां जाकर अपने मन में रहे हुए' तज्जीव तच्छरीर' अर्थात् वही जीव और वही शरीर है भिन्न नहीं इस विषय के संशय का निवारण करूँ। [सो वि पंचसयसिस्सपरिवुडो पहुसमीवे समणुपत्तो] ऐसा विचार कर वह भी पांचसौ शिष्यों के साथ प्रभु के पास पहुँचे [पहू तं नामसंसयनिद्देसपुव्वं वयइ–] प्रभु ने उसके नाम और संशयका उल्लेख करके कहा [–भो वाउभूई-! तुज्झ मणंसि संदेहो वट्टइ–जं सरीरं तं चेव जीवो] हे वायुभूति ! तुम्हारे मन में संदेह है कि जो शरीर है वही जीव है [नो अन्नो तव्वइरित्तो कोवि जीवो पच्चक्खाइपमाणेण तं उवलंभा भावा] शरीर से भिन्न कोई जीव नहीं है क्योंकि प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से उसका उपलंभ नहीं होता [जलबुब्बुओ वित्र सो सरिराओ उपज्जए सरिरे चेव विलिज्जइ] जल के बुलबुले के समान जीव शरीर से उत्पन्न होता है और शरीर में ही विलीन हो जाता है [अओ नत्थि कोई अन्नो को बि पयरथो जो परलोए गच्छेज्जा] अतएव उससे

भिन्न कोई पदार्थ नहीं जो परलोक में जाता हो [विज्ञान घनएवैतेभ्यो भूतेभ्यः' इच्चाइ वेयवयणं वि अतत्थेमाणं] विज्ञान घनएवैतेभ्यो भूतेभ्यः इत्यादि [पूर्वोल्लिखित] वेद वचन भी इस विषय में प्रमाण है। अर्थात् पांचभूतों से यह आत्मा उत्पन्न होता है और पांचभूतों में ही मिल जाता है [एत्थ वुच्चइ सव्वपाणिणं देसओ जीवो पच्चक्खो अत्थि चेव] इसका समाधान यह है—सभी प्राणियों को देश से—अंशतः जीव का प्रत्यक्ष होता ही है [जओ सोमइआइगुणाणं पच्चक्खत्त-णेणं संविऊ अत्थि] वह जीव स्मृति आदि गुणों का साक्षात् ज्ञाता है [सो जीवो देहिं-दियेहिंतों पुह अत्थि] वह जीव शरीर तथा इन्द्रियों से भिन्न है, [जओ जया इंदियाइं नस्संति तया सो तं तं इंदियत्थं सरइ] क्योंकि जीव, इन्द्रियों के नष्ट हो जाने पर भी इंद्रियो द्वारा जाने हुए विषयों का स्मरण करता है। [जहा एसो सद्दो मए पुव्वं सुणिओ] जैसे—वह शब्द मैंने पहले सुना था [एयं वत्थुजायं मए पुव्वं दिट्ठं] वे वस्तुएं मैंने

पहले देखी थी [एसो गंधो मए पुव्वं अग्घाओ] वह गंध मैंने पहले सूंघी थी, [एसो-महुरतित्ताइरसो मए पुव्वं आसाइओ] वह मधुर और तिक्त रस मैंने पहले चखा था [एसो मिउकक्खडाइ फासो मए पुव्वं पुट्ठो आसी] वह कोमल या कठोर आदि स्पर्श मैंने पहले छुआ था [एवं पयारो जो अणुहवो हवइ, सो जीवं विना कस्स होज्जा] इस प्रकार का जो स्मरण होता है वह जीव के सिवाय किस को होगा [तुज्झ सत्थेवि वृत्तं] तुम्हारे शास्त्र में भी कहा है—

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष ब्रह्मचर्येण नित्यं ज्योतिर्मयो हि शुद्धो यं पश्यन्ति धीरा-यतयः संयतात्मानः] अर्थात् 'यह नित्य ज्योति स्वरूप और निर्मल आत्मा, सत्य तप और ब्रह्मचर्य के द्वारा उपलब्ध होता है। जिसे धीर तथा संयतात्मा यति ही देखते हैं। [जइ सरीराओ अन्नो को वि जीवो न हवेज्जा ताहे सत्येन इइ कहं संगच्छेज्जा] यदि जीव पृथक् न हो तो यह कथन कैसे संगत होगा? [अओ सिद्धं सरीराओ भिन्नो अन्नो

जीवो अत्थित्ति] इससे सिद्ध है कि जीव शरीरसे भिन्न और स्वतंत्र है [एवं वहुकयगुणेणं छिन्नसंसओ पडिबुद्धो बाउभूई वि पंचसयसिस्सेहिं पव्वइओ] प्रभु के इस प्रकार के कथन से वायुभूति का संशय छिन्न हो गया। वह प्रतिबुद्ध होकर पांचसो शिष्यों के साथ भगवान के पास प्रब्रजित हो गया ॥१५॥

भावार्थ—'मेरे दोनों भाई महावीर स्वामी के समीप दीक्षित हो गये, ऐसा जान कर वायुभूति ब्राह्मण मन ही मन विचार करते हैं–सच है, श्रीमहावीर स्वामी सर्वज्ञ मालूम होते है। यह उनकी सर्वज्ञता का ही प्रभाव है–कि मेरे दोनों भाई उनके समीप दीक्षित हो गये हैं। अतएव मैं भी उनके पास जाकर अपने मनके 'वही जीव वही शरीर, अर्थात् जीव और शरीर विषयक एकता संबंधी संशयका समाधान प्राप्त करूं। इस प्रकार विचार कर वायुभूति भी अपने पांचसो शिष्यों को साथ लेकर भगवान् के समीप आये। भगवान् ने वायुभूति के नाम और संशयका उल्लेख करते हुए कहा–हे

वायुभूतेः शङ्का-निवारणम् प्रव्रजनं च

वायुभूति। तुम्हारे मन में यह सन्देह बैठा हुआ है कि–'जो शरीर है वही जीव हैं। शरीर से भिन्न जीव अलग नहीं है, क्योंकि प्रत्यक्ष आदि किसी भी प्रमाण से जीव की--प्रतीति नहीं होती। जैसे जलका बुद्बुद जलसे ही उत्पन्न होता ह और जलमें लीन हो जाता है, जल से अलग उसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है, इसी प्रकार जीव भी शरीर से उत्पन्न होता है और शरीर में ही वीलिन हो जाता है। अतः शरीर से भिन्न कोई जीव पदार्थ नहीं है जो मृत्यू के पश्चात् परलोक में जाय। विज्ञानघन ही इन पृथ्वी आदि भूतों से उत्पन्न होकर उन्हीं में लीन हो जाता है, यह वेद्–वाक्य भी जीव और शरीर की एकता के विषय में प्रमाण है। तुम्हारे इस सन्देह का समाधान इस प्रकार है–सब जीवों को अंशतः जीव प्रत्यक्ष होता ही है, क्योंकि जीव स्मृति आदि अर्थात् स्मृति, जिज्ञासा, चिकीर्षा, जिगमिषा, आशंसा आदि गुणोंका प्रत्यक्षरूप से ज्ञाता है। व जीव देह से और इन्द्रियों से भिन्न है, क्योंकि जब व्याधि या शस्त्र

आदि के आघात वगैरह किसी कारण से इन्द्रियों नष्ट हो जाती है, तब इन्द्रियों के उपघात की स्थिति में भी आत्मा पहले अनुभव किये गये शब्द आदि विषयों का स्मरण करता हैं। इसी कथन का स्पष्टीकरण करते हैं–जैसे 'वह शब्द मैंने पहले (श्रोत्र इन्द्रिय का उपघात होने से पूर्व) सुना था। वह वन भवन वसन (वस्त्र) आदि वस्तु समूह मैंने पहले देखा था। वह सुगंध या दुर्गंध मैंने पहले सूंघी थी। वह मीठा या तिक्त रस मैंने पहले आस्वादन किया था। वह कोमल या कठोर स्पर्श मैंने पहले छुआ था।' इस प्रकार का जो स्मरण होता है, वह स्मरण जीव के सिवाय और किसे होगा? जीव के सिवाय और किसी को नहीं हो सकता, क्योंकि अनुभव का कर्त्ता जीव ही है। और भी कहते हैं–तुम्हारे शास्त्र में भी कहा है कि–'यह नित्य, ज्योतिर्मय और निर्मल आत्मा सत्य से, तप से तथा ब्रह्मचर्य से उपलब्ध होता है, जिसको धैर्यवान्–जितेन्द्रिय तथा संयतात्मा की तरह इन्द्रियों के विषयों से मनको निगृहीत करनेवाले-

मुनि ही साक्षात् कर सकते हैं। यदि शरीर से पृथक् जीव न हो तो वेद का यह वाक्य किस प्रकार संगत होगा? इससे सिद्ध कि शरीर से भिन्न जीव की सत्ता है। इस प्रकार प्रभु के कथन से वायुभूति का संशय हट गया। वह अपने पांचसौ शिष्यों के साथ दीक्षित हो गया ॥१५॥

मूलम्—तए णं वियत्ताभिहो माहणो वि विमरिसइ जे इमे वेयत्तयीसरूवा महापंडिया तओ वि भायरा छिन्न णिय णिय संसया पव्वइया, अओ इमो कोवि अलोइओ महापुरिसो पडिभासइ, तयंतिए अहमावि गच्छामि, जइ सो ममं संसयं छेइस्सइ, ताहे अहमावि पव्वइस्सामित्ति, कट्टु सो वि पंचसय-सिस्सपरिवारपरिवुडो पहुसमीवे समागच्छइ। पहू य तं नामसंसयनिद्देस-पुव्वं आभासेइ भो वियत्ता? तुज्झ मणंसि 'पुढवी आइ पंचभूया न संति,

तेसिं जा इमा पडीइ जायइ सा जलचंदोव्व मिच्छा एयं सव्वं जगं सुण्णं वट्टइ 'स्वप्नोपमं वै सकलं' इच्चाइ वेयवयणाओ त्ति संसओ वट्टइ सो मिच्छा। जइ एवं ताहे भुवणपसिद्धा सुमिणा–सुमिण–पयत्था कहं दिसंतु ?। वेएसु वि वुत्तं–पृथिवी देवता आपो देवता' इच्चाइ, अओ पुढवी आइ पंचभूयाइ संति त्ति सिद्धं। एवं सोच्चा निसम्म छिन्नसंसओ वियत्तो वि पंचसयसीसेहिं पहुसमीवे पव्वइओ ॥१६॥

शब्दार्थ–[तए णं वियत्ताभिहो माहणो वि विमरिसइ] इसके वाद व्यक्त नामक ब्राह्मण ने विचार किया [जं इमे वेयत्तयीसरूवा महापंडिया तओ वि भायरा छिन्न णिय णिय संसया पव्वइआ] यह वेदत्रयी के समान महापण्डित तीनों भाई अपने अपने संशयका निवारण करके दीक्षित हो गये हैं [अओ इमे को वि अलोइओ महा-

पुरिसो पडिभासइ] मालूम होता है, वह कोई अलौकिक महापुरुष हैं। [तयंतिए अहमवि गच्छामि] मैं भी उन महापुरुष के पास जाऊं [जइ सो ममं संसयं छेइस्सइ ताहे अहमवि पव्वइस्सामित्ति कट्टु] अगर उन्होंने मेरे संशय को दूर कर दिया तो में भी उनके पास प्रव्रजित हो जाऊंगा ऐसा विचार करके [सो वि पंचसयसिस्सपरिवार परिवुडो पहुसमीवे समागच्छइ] वह भी अपने पांचसौ शिष्यपरिवार के साथ भगवान के समीप पहुंचा। [पहू य तं नामसंसयनिद्देसपुव्वं आभासेइ–] प्रभुने उन्हें नाम और संशय का उल्लेख करके कहा–[भो वियत्ता! तुज्झमणंसि–पुढवी आइपंचभूया न संति, तेसिं जा इमा पडिई जायइ सा जलचंदोव्व मिच्छा] हे व्यक्त! तुम्हारे मनमें यह संशय है कि पृथ्वी आदि पांच भूत नहीं हैं, उनकी जो प्रतीति होती है सो जल चन्द्र के समान मिथ्या है [एयं सव्व जगं सुण्णं वट्टइ स्वप्नोपमं वै सकलं' इच्चाइ वेयवयणाओ त्ति–संसओ वट्टइ सो मिच्छा] यह समस्त जगत् शून्य रूप है वेद में भी कहा है–'स्वप्नोपमं

व सकलं' इत्यादि अर्थात् सब कुछ स्वप्न के समान है। तुम्हारा यह विचार मिथ्या है [जइ एवं ताहे भुवनपसिद्धा सुमिणासुमिण–पयत्था कहं दीसन्तु ?] अगर ऐसा हो तो तीनलोकमें प्रसिद्ध स्वप्न–अस्वप्न गंधर्वनगर आदि पदार्थ क्यों दिखाई देते हैं? [वेएसु वि वुत्तं-'पृथिवी देवता–आपो देवता' इच्चाइ, अओ पुढवी आइ पंच भूयाइ संति त्ति सिद्धं] वेदों में भी कहा है–'पृथिवी देवता आपो देवता' अर्थात् पृथिवी देवता है, जल देवता है इत्यादि । अतः पृथिवी आदि पांच भूत हैं यह सिद्ध हुआ। [एवं सोच्चा निसम्म छिन्नसंसओ वियत्तो वि पंच सयसीसेहिं पहुसमीवे पव्वइओ] ऐसा सुनकर और हृदय में धारण करके जिनका संशय निवृत्त हो गया है, ऐसे वह व्यक्त भी अपने पांचसौ शिष्यों के साथ प्रभु के समीप प्रव्रजित हो गये ॥१६॥

भावार्थः—वायुभूति के दीक्षित हो जाने के पश्चात् व्यक्त नामक ब्राह्मण ने विचार किया इन्द्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति, यह तीनों महापंडित तीन वेद ऋग्वेद,

यजुर्वेद, और सामवेद स्वरूप थे। यह तीनों भाई अपने अपने मनोगत संदेहों को दूर करके दीक्षित हो गये। इस कारण यह महावीर कोई लोकोत्तर महापुरुष प्रतीत होते हैं। मैं भी उनके निकट जाऊं। यदि उन्होंने मेरी शंका का निवारण कर दिया तो मैं भी दीक्षा अंगीकार कर लूंगा। इस प्रकार विचार कर व्यक्त पण्डित भी अपने पांच-सौ अन्तेवासियों को साथ लेकर भगवान् के निकट पहूंचे। भगवान् ने व्यक्तका नामोच्चारण करते हुए तथा उनके मनका संशय प्रकाशित करते हुए इस प्रकार संवोधन किया-हे व्यक्त! तुम्हारे अन्तःकरणमें ऐसा संशय है कि-पृथिवी आदि पांच भूतों की सत्ता नहीं है। इन पांचोंभूतों की जो प्रतीति होती हैं, वह जल में प्रतिबिम्बित होने वाले चन्द्रमा की प्रतीति की तरह भ्रान्ति मात्र है। यह सम्पूर्ण दृश्यमान जगत् शून्य है। इस विषय में प्रमाण देते हैं—'स्वप्नोपमं वै सकलम्' अर्थात्—'निश्चय ही सभी कुछ स्वप्न के सदृश है। जैसे स्वप्न में विविध प्रकार के पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं, किन्तु

उनकी पारमार्थिक सत्ता नहीं है, उसी प्रकार जगत् में दिखाई देनेवाले विविध पदार्थों की भी वास्तविक सत्ता नहीं है। वेद के उक्त वाक्य से इसी मत की सिद्धि होती है। तुम्हारा यह संशय मिथ्या है। अगर पांचोंभूतों का अभाव हो और यह जगत् शून्य-रूप हो तो लोकमें प्रसिद्ध स्वप्न अस्वप्न के अर्थात्-स्वप्न के गजतुरगादि, अस्वप्न के गन्धर्व नगरादि पदार्थ क्यों अनुभव में आवे? आशय यह है कि तुम कहते हो कि यह सब जल-चन्द्र के समान भ्रान्त हैं, किन्तु कहीं न कहीं पारमार्थिक होने पर ही दूसरी जगह उसकी भ्रान्ति होती है। आकाश में वास्तविक चन्द्र न होता तो जल में चन्द्रमा का भ्रम भी न होता। जगत् के पदार्थों को स्वप्न दृष्ट पदार्थों के समान कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि जागृत अवस्था में वास्तविक रूपसे पदार्थों का दर्शन न होता तो स्वप्न में वह कैसे दिखाई देते? जिस वस्तुका सर्वथा अभाव है, वह स्वप्न में भी नहीं दीखती। इसके अतिरिक्त स्वप्नदृष्ट पदार्थों में अर्थक्रिया नहीं होती, अतएव उन्हें कथं-

व्यक्तस्य
शङ्का-
निवारणम्
प्रव्रजनं च

चित् असत् मान भी लिया जाय तो भी जागृत अवस्था में दिखाई देनेवाले जिन पदार्थों में अर्थक्रिया होती है, उन्हें किस प्रकार मिथ्या-असत् माना जा सकता है? इस के अतिरिक्त तुम्हारे प्रमाणभूत माने हुए वेद में भी तो पांच भूतों का अस्तित्व कहा है। यथा-पृथिवी देवता है, इत्यादि। जब वेदों में भी पांचों भूतों का अस्तित्व प्रतिपादन किया गया है तो यह सिद्ध हुआ कि पांचभूत है। यह कथन सामान्य रूपसे श्रवण करके और इहापोह द्वारा विशेष रूपसे हृदय में निश्चित करके व्यक्त भी संशय निवृत होने पर पांचसौ शिष्यों के साथ भगवान् के समीप प्रव्रजित हो गये ॥१६॥

मूलम्-चउरो वि पंडिया पहुसमीवे पव्वइयत्ति सुणिय उवज्झाओ सुहम्माभिहो पंडिओ वि नियसंसयछेयणट्ठं पंचसयासिस्सपरिवुडो पहुस्स अंतिए समागओ। पहुय तं कहेइ-भो सुहम्मा तुज्झमणंसि एयारिसो संसओ वट्टइ जो इह भवे जारिसो होइ सो परभवेवि तारिसा चेव होउं उप्पज्जइ, जहा

सालिववणेणं साली चेव उप्पज्जंति, नो जवाइयं। 'पुरुषो वै पुरुषत्वमश्नुते पशवः पशुत्वं' इच्चाइ वेयवयणाओत्ति। तं मिच्छा जो मद्दवाइ गुणजुत्तो मणुस्साउं बंधइ सो पुणो मणुसत्तणेण उप्पज्जइ। जो उ माया मिच्छाइ गुणजुत्तो होइ सो मणुसत्तणेण नो उप्पज्जइ तिरियत्तणेण उप्पज्जइ। जं कहिज्जइ कारणाणुसारं चेव कज्जं हवइ' तं सच्चं किंतु अणेण एवं न सिज्जइ जं जहा रूवो वट्टमाणभवो अत्थि इमो पंचओ भमभरिओ, वट्टमाणभवे जस्स जीवस्स जारिसा अज्झवसाया हवंति तयज्झवसायरूवकारणाणुसारमेव जीवाणं अणागयभवस्स आऊ बंधइ तं बद्धाउ रूवकारणमणुसरीय चेव अणागयभवो भवइ।

जइ कारणाणुसारमेव कज्जं होज्जा तया गोमयाइओ विंछियाईणं उप्पत्ती नो संभवेज्जा, इइ कहणंपि न संगयं, जओ गोमयाइयं विंछियाईणं जीवुप्प-

सुहम्माभिध पंडितस्य शङ्कानिवारणम् प्रव्रजनं च

त्तीए कारणं नत्थि तं तु केवलं तेसिं सरीरुप्पत्तीए चेव कारणं। गोमयाइरूव-कारणस्स विंछियाइ सरीररूवकज्जस्स य अणुरूवया अत्थि चेव, जओ गोम-इए रूवस्साइ पुग्गलाणं जे गुणा होंति तं चेव गुणा विंछियाइ सरीरे वि उव-लब्भंति। एवं कज्जकारणाणं अणुरूवया सीगारे, वि एयं न सिज्झइ जं-जहा पुव्वभवो तहेव उत्तरभवो वि होइ। वेएसु वि वुत्तं-'श्रृगालो वै एष जायते यः सपुरीषो दह्यते' इच्चाइ। अओ भवंतरे वेसारिस्सं भवइ जीवस्सत्ति सिद्धं। एवं सोऊणं नट्ठ संदेहो सोवि पंचसयसिस्सेहिं पहुसमीवे पव्वइओ ॥१७॥

शब्दार्थः-[चउरो वि पंडिया पहुसमीवे पव्वइयत्ति सुणिय] इन्द्रभूति अग्निभूति वायुभूति, और व्यक्त चारों ही पण्डित दीक्षित हो गये, यह सुनकर [उवज्झाओ सुह-म्माभिहो पंडिओ वि नियसंसयछेयणट्ठं पंचसयसिस्सपरिवुडो पहुस्स अंतिए समागओ]

उपाध्याय सुधर्मा नामक पण्डित भी अपने संशय को दूर करने के लिये पांचसौ शिष्यों के साथ प्रभु के पास पहुंचे। [पहू य तं कहेइ–भो सुहम्मा !] प्रभु ने कहा–हे सुधर्मन्! [तुज्झमणंसि एयारिसो संसओ वट्टइ] तुम्हारे मन में ऐसा संशय हैं कि [जो इह भवे जारिसो होइ सो पर भवे वि तारिसो चेव होउं उप्पज्जइ] जो जीव इस भव में जैसा होता है, परभव में भी वैसा ही होकर उत्पन्न होता है, [जहा सालिववणेण साली चेव उप्पज्जंति नो जवाइयं] जैसे शालि बोने से शालि ही उगते हैं जो आदि नहीं ['पुरुषो वैं पुरुत्वमश्नुते पशव पशुत्वम्'] इच्चाइ वेयवयणाओत्ति] वेद वचन भी ऐसा है कि–पुरुष पुरुषत्व को प्राप्त होता है। [तं मिच्छा] तुम्हारा यह विचार मिथ्या है [मद्दवाइ गुणजुत्तो मणुस्साउं बंधइ सो पुणो मणुस्सत्तणेण उप्पज्जइ] जो मृदुता आदि गुणों से युक्त जीव मनुष्यायुका बन्ध करता है वह मनुष्य रूपसे उत्पन्न होता है। [जो उ मायामिच्छाइ गुणजुत्तो होइ सो मणुसत्तणेण नो उप्पज्जइ, तिरियत्तणेण उप्पज्जइ] जो

सुहम्माभिध पंडितस्य शङ्कानिवारणम् प्रव्रजनं च

तीव्रतर माया मिथ्यात्व आदि गुणों से युक्त होता है, वह मनुष्य रूपसे उत्पन्न नहीं होता किन्तु तिर्यंच रूपसे उत्पन्न होता है। [जं कहिज्जइ-कारणाणुसारं चेव कज्जं हवइ, तं सच्चं] यह जो कहा जाता है कि कारण के अनुरूप ही कार्य होता है सो ठीक है [किंतु अणेण एवं न सिज्झइ जं जहा रूवो वट्टमाणभवो तहारूवो चेव आगामी भवो भविस्सइ] किन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता है कि जैसा वर्तमान भव है वैसा आगामी भव होगा [जओ वट्टमाणागयभवाणं परोप्परं कज्जकारणभावो नत्थि] क्योंकि वर्तमान भव में परस्पर कार्य कारण भाव नहीं है। [अओ अणागयभवस्स कारणं वट्टमाणभवो अत्थि इमो पंचआ भमभारिओ] अतः आगामी भवका कारण वर्तमान भव है, यह समझना भ्रम पूर्ण है [वट्टमाण भवे जस्स जीवस्स जारिसा अज्झवसायाहवंति तयज्झवसायरूवकारणाणुसारमेव जीवाणं अणागयभवस्स आऊ बंधइ] वर्तमान भव में जीस जीव के परिणाम—अध्यवसाय जैसे होते है उन्हीं अध्यवसाय

रूप कारण के अनुसार आगामी भव की आयु बंधती है [तं बद्धाउरूवकारणमणुसरीय चेव अणागयभवो भवइ] और बद्ध आयु रूप कारण के अनुसार ही आगामी भव होता है। [जइ कारणाणुसारमेव कज्जं होज्जा तया गोमयाइओ विंछियाईणं उप्पत्ती नो संभवेज्जा] यदि कारण के अनुसार ही कार्य होता तो गोबर आदि से वृश्चिक आदि की उत्पत्ति संभव न होती। [इय कहणंपि न संगयं] यह कथन भी संगत नहीं है [जओ गोमयाइयं विंछियाईणं जीवुप्पत्तीए कारणं नत्थि तं तु केवलं तेसिं सरीरुप्पत्तीए चेव कारणं] क्योंकि गोबर आदि वृश्चिक आदि के जीव की उत्पत्ति में कारण नहीं है मात्र वृश्चिक आदि के शरीर के उत्पत्ति में ही कारण होते हैं। [गोमयाइरूव-कारण विंछियाइसरीररूव कज्जस्स य अणुरूवया अत्थि चेव] और गोबर आदि रूप कारण तथा वृश्चिक आदि शरीररूप कार्य में अनुरूपता है ही [जओ गोमइए रूव-रसाइ पुग्गलाणं जे गुणा होंति ते चेव गुणा विंछियाइसरीरे वि उवलब्भंति] गोबर

आदि में रूप, रस आदि पुद्गल के जो गुण होते हैं वही गुण वृश्चिक आदि के शरीर में भी पाये जाते हैं। [एवं कज्जकारणाणं अणुरूवयासीगारे, वि एयं न सिज्झइ जं-जहा पुव्वभवो तहेव उत्तरभवो वि होइ] इस प्रकार कार्य कारण की अनुरूपता स्वीकार कर लेने पर भी यह सिद्ध नहीं होता कि जैसा पूर्वभव है वैसा ही उत्तर भव होता है [वेएसु वि वुत्तं-'श्रृगालो व एष जायते यः सपुरिषो दह्यते' इत्यादि वेदों में भी कहा है कि-'जो मनुष्य मल सहित जलाया जाता है वह निश्चय ही श्रृगाल के रूप में उत्पन्न होता हैं,' इत्यादि [अओ भवंतरे वेसारिस्सं भवइ जीवस्स त्ति सिद्धं] इससे भी सिद्ध है कि भवांतर में भी जीव विसदृश रूप से भी उत्पन्न होता है [एवं सोऊण नट्ठ संदेहो सो वि पंचसयसिस्सेहिं पहुसमीवे पव्वइओ] यह कथन सुनकर सुधर्मा उपाध्याय का संशय नष्ट हो गया वह पांचसौ शिष्यों के साथ प्रव्रजित हो गये ॥१७॥

भावार्थ—इन्द्रभूति आदि चारों पण्डित प्रभु के समीप प्रव्रजित हो गये, यह

सुधर्माभिध पंडितस्य शङ्कानिवारणम् प्रव्रजनं च

सुनकर उपाध्याय सुधर्मा नामक विद्वान् भी अपने संशय को दूर करने के लिये पांचसौ शिष्यों को साथ लेकर भगवान् के निकट गये। भगवान् ने अपने समीप आये सुधर्मा पण्डित से कहा—हे सुधर्मन्! तुम्हारे चित्त में ऐसा संशय है कि—जो जीव इस भव में जिस योनि को प्राप्त हुवा है, वह जीव आगामि भव में भी उसी योनि में उत्पन्न होता है। जैसे शालि नामक धान्य बोने से शालिही उगते हैं, उसके अतिरिक्त जों आदि नहीं उगते। तुम्हें यह संशय वेद के इस वाक्य के कारण है कि—पुरुषो व पुरुषत्वमश्नुते पशवः पशुत्वम्' निश्चय ही पुरुष पुरुषपन को ही प्राप्त करता है—और पशु पशुपन को ही प्राप्त होते हैं।' तुम्हारा यह मत मिथ्या है, क्योंकि जो जीव मार्दव (नम्रता) आदि गुणों से युक्त होता है, वह मनुष्य योनि के योग्य आयुको बांधता है और मनुष्यायु बांधनेवाला मनुष्य रूप में उत्पन्न होता है, किन्तु जो जीव माया—आदि गुणों से युक्त होता है, वह मनुष्य रूप से उत्पन्न नहीं होता, किन्तु तिर्यंच रूप से उत्पन्न होता है।

जो कहा जाता है कि कारण के अनुरूप ही कार्य होता है वह सत्य है, परन्तु इतने से वर्त्तमान भव का सादृश्य भविष्यत्कालिक भव में सिद्ध नहीं होता है। वर्तमान भव भविष्यत् भव का कारण होता है—यह जो मत है वह भ्रान्तिपूर्ण ही है। वर्त्तमान भव भविष्यद् भव का कारण नहीं होता है, परन्तु वर्तमान भव में जिस प्रकार के अध्यवसाय होते हैं, उस प्रकार के अध्यवसायरूप कारण के अनुसार ही जीव भविष्यत्कालिक भव सम्बन्धी आयु बांधते हैं और तदनुसार ही जीवों को भविष्यत्कालिक भव होता है। तथा कारण के अनुरूप कार्य स्वीकार करने पर गोमय (गोबर) आदि से वृश्चिक आदि की उत्पत्ति की संभावना नहीं है, यह जो कहा जाता है, सो भी असंगत ह, क्योंकि गोबर आदि वृश्चिकादि के जीव की उत्पति में कारण नहीं है, किन्तु उनके शरीर की उत्पत्ति में ही कारण । गोमयादिरूप कारण और वृश्चिकादि के शरीर रूप कार्य में सादृश्य है ही, क्योंकि गोबर आदि में रूप रसादि पुद्गलों के जो

गुण है वे ही गुण वृश्चिकादि शरीर में भी उपलब्ध होते है। इस प्रकार कार्य करण में सादृश्य स्वीकार करने पर भी 'जैसा पूर्व भव होता है वैसा ही उत्तर भव भी होता है, यह सिद्ध नहीं होता। यह केवल मेरा ही अभिमत नहीं है, किन्तु वेद में भी कहा है-'श्रृगालो वै एष जायते यः सपुरीषो दह्यते' इति। जो मनुष्य विष्टा सहित जलाया जाता है वह निश्चय ही श्रृगाल रूप में उत्पन्न होता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि भवान्तर में विसदृशता भी होती है। इस प्रकार के श्रीमहावीर के वचन सुनकर सुधर्मा भी छिन्न संशय हो गये। वह भी अपने पांचसौ शिष्यों के साथ प्रभु के समीप दीक्षित हो गये ॥१८॥

मूलम्-तए णं उवज्झायं सुहम्मं पव्वइयं सोऊण मंडिओवि अद्धुट्ठसय-सीसेहिं परिवुडो पहुसमीवे समणुपत्तो। पहूय तं कहेइ-भो मंडिया! तुज्झ मणंसि बंधमोक्ख विसओ संसओ वट्टइ-जं जीवस्स बंधो मोक्खो य हवइ न

वा। स एष विगुणो विभु न वध्यते संसरति वा मुच्यते मोचयति वा' इच्चाइ वेयवयणाओ जीवस्स न बंधो न मोक्खो। जइ बंधो मन्निज्जइ ताहे सो अणागइओ वा, पच्छाजाओ वा, जइ अणागइओ ताहे सो न छुट्टिज्जइ–जो अणाइओ सो अनंताओ हवइ त्ति वयणा। जइ पच्छाजाओ ताहे कया जाओ? कहं छुट्टिज्जइ? त्ति। तं मिच्छालोए जीवा असुह कम्म-बंधेण दुहं, सुहकम्मबंधेणं सुहं पत्ता दीसंति, सयलकम्मछेएण जीवा मोक्खं पावइत्ति लोए पसिद्धं। अणाइ बंधो न छुट्टिज्जइ' त्ति जं तए कहियं तंपि मिच्छा, जओ लोए सुवण्णस्स मट्टियाए य जो अणाइ संबंधो सो छुट्टिज्जइ चेव तव सत्थेसु वि' वुत्तं–'ममेति बध्यते जंतुर्निर्ममेति प्रमुच्यते' इच्चाइ। पुणोवि

मन एवं मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयोः ।
बन्धाय विषयासक्तं, मुक्त्यै निर्विषयं मनः ॥

इच्चाइ । अओ सिद्धं जीवस्स बंधो मोक्खो य हवइ ति । एवं सोच्चा विम्हिओ छिन्नसंसओ पडिबुद्धो मंडिओ विं अद्धुट्ठ सयसीसेहिं पव्वइओ ।

मंडियं पव्वज्जियं सोच्चा मोरियपुत्तो वि नियसंसयछेयणट्ठं अद्धुट्ठ सयसीसेहिं परिवुडो पहुसमीवे पत्तो । तं वि पहू एवं चेव कहेइ—भो मोरिय-पुत्ता ! तुज्झमणंसि एयारिसो संसओ वट्टइ—जं देवा न संति 'को जानाति मायोपमान् गीर्वाणान् इन्द्र यम वरुण कुबेरादीन्' इइ वेयणाओ तं मिच्छा वेएवि—'स एष यज्ञायुधी यजमानोऽञ्जसा स्वर्गलोकं गच्छाति' इइ वयणं विज्जइ । जइ देवा न भवेज्जा ताहे देवलोगोपि न भवेज्जा, एवं सइ 'स्वर्ग-

लोकं गच्छंति' इदं वयणं कहं संगच्छेज्जा। एएणं वक्केणं देवाणं सत्ता सिज्जइ। अच्छउ ताव सत्थवयणं, पस्सउ इमाए परिसाए ठिए इंदादि देवे। पच्चक्खं एए देवा दीसंति। एवं पहुस्स वयणं सोच्चा निसम्म मोरियपुत्तो छिन्न संसओ अद्धुट्ठसयसीसेहिं पव्वइओ ॥१८॥

शब्दार्थ—[तए णं उवज्झायं सुहम्मं पव्वइयं सोऊण मंडिओवि अद्धुट्ठ सयसीसेहिं परिवुडो पहुसमीवे समणुपत्तो] उसके बाद उपाध्याय सुधर्मा को दीक्षित हुआ सुनकर मण्डिक भी साढे तीनसौ शिष्यों के साथ भगवान के पास गये [पहूय तं कहेइ-भो मंडिया! तुज्झ मणंसि बंधमोक्खविसओ संसओ वट्टइ–] भगवान ने मण्डिक से कहा–हे मण्डिक! तुम्हारे मन में बन्ध और मोक्ष के विषय में संशय है कि–[जं जीवस्स बंधो मोक्खो य हवइ न वा] जीव को बंध और मोक्ष होता है या नहीं? [स

एष त्रिगुणो विभु र्न बध्यते संसरति वा मुच्यते मोचयति वा] अर्थात् यह निर्गुण और व्यापक आत्मा न बद्ध होता है न संसरण करता है न मुक्त होता है न किसी को मुक्त करता है। [इच्चाइ वेयवयणाओ जीवस्स न बंधो न मोक्खो] इत्यादि वेद वाक्यों से न जीव का बंध होता है न मोक्ष होता है [जइ बंधो मन्निज्जइ ताहे सो अणाइयो वा ? पच्छाजाओ वा ?] यदि बन्ध माना जाय तो वह अनादि है अथवा पीछे से उत्पन्न हुआ है [जइ अणाइओ ताहे सो न छुट्टिज्जइ ? त्ति। यदि अनादि है तो वह कभी छूटना नहीं चाहिये, [जो अणाइओ सो अनंताओ हवइ ति वयणा] क्योंकि यह कहा गया है कि 'जो अनादि होता है, वह अनंत होता है [जइ पच्छाजाओ ताहे कया जाओ ?] यदि बाद में उत्पन्न हुआ है तो कब उत्पन्न हुआ ? [कहं छुट्टिज्जइ ?] और कैसे छूटता है ? [तं मिच्छा] यह मत मिथ्या है, [लोए जीवा असुहकम्मबंधेण दुहं, सुहकम्मबंधेण सुहं पत्ता दिसंति] क्योंकि लोक में जीव अशुभ कर्म—बंध से दुःख को

और शुभ कर्म बन्ध से सुख को प्राप्त करते देखे जाते हैं [सयलकम्मछेएण जीवो मोक्खं पावइत्ति लोए पसिद्धं] यह भी प्रसिद्ध है कि समस्त कर्मों का नाश होने से जीव मोक्ष को प्राप्त करता है। [अणाइबंधो न छुट्टिज्जइ' त्ति जं तए कहियं तं पि मिच्छा] अनादि बंध छूटता नहीं है ऐसा तुमने कहा सो भी मिथ्या है; [जओ लोए सुवण्णस्स मट्टियाए य जो अणाइ संबंधो सो छुट्टिज्जइ चेव] क्योंकि लोक में स्वर्ण और मृत्तिका का जो अनादि संबन्ध है, वह छूटता ही है [तव सत्थेसु वि वुत्तं–'ममेति वध्यते जन्तु र्निर्ममेति प्रमुच्यते' इच्चाइ। पुणो वि–] तुम्हारे शास्त्र में भी कहा है कि–'ममत्व के कारण जीव को बन्धन होता है और ममता से रहित जीव मोक्ष को पाता है। इत्यादि। और भी कहा है [मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः] मन ही मनुष्यों के बन्ध और मोक्ष का कारण है [बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं मनः] विषयों में निवृत्त मन मुक्ति का कारण होता है' [अओ सिद्धं जीवस्स बंधो मोक्खो य

हवइ त्ति] इससे बन्ध और मोक्ष होता है, यह सिद्ध हुआ [एवं सोच्चा विम्हितो छिन्न संसओ पडिबुद्धो मंडिओ वि अद्‌धुट्ठसयसीसेहिं पव्वइओ] इस प्रकार सुनकर मण्डिक विस्मित हुए। उनका संशय दूर हो गया। वह प्रतिबोध प्राप्त करके अपने साढे तीनसौ शिष्यों के साथ प्रव्रजित हो गया।

[मण्डियं पव्वजियं सोच्चा मोरियपुत्तो वि नियं संसयछेयणट्ठं] मण्डिक को दीक्षित हुआ सुनकर मौर्यपुत्र भी अपना संशय निवारण करने के लिये [अद्‌धुट्ठ सयसीसेहिं परिवुडो पहुसमीवे पत्तो] साढे तीनसौ शिष्यों के परिवार सहित प्रभु के पास आया। [तं पि पहू एवं चेव कहेइ–] प्रभुने उन से भी ऐसा कहा–[भो मोरियपुत्ता ! तुज्झ मणंसि एयारिसो संसओ वट्टइ–] हे मौर्यपुत्र ! तुम्हारे मन में ऐसा संशय है कि [जं देवा न संति 'को जानाति मायोपमान् गीर्वाणान् इन्द्र यम वरुण कुबेरादीन्' इइ वयणाओ] देव नहीं है क्योंकि–'माया के समान इन्द्र, यम वरुण और कुबेर आदि देवों

को कौन जानता है ? ऐसा कहा है' [तं मिच्छा] तुम्हारा यह विचार मिथ्या है [वेएवि स एष यज्ञायुधी यजमानोऽञ्जसा स्वर्गलोकं गच्छति इइ वयणं विज्जइ] वेदों में भी यह वाक्य है–'यज्ञरूप आयुध (शस्त्र) वाला यज्ञ कर्ता शीघ्र ही स्वर्गलोक में जाता है [जइ देवा न भवेज्जा ताहे देवलोगो पि न भवेज्जा] यदि देव न होते तो देवलोक भी नहीं होता [एवं सइ 'स्वर्गलोकं गच्छति' इइ वयणं कहं संगच्छेज्जा] ऐसी अवस्था में स्वर्गलोक में जाता है' यह कथन कैसे संगत हो सकता है ? [एएणं वक्केणं देवाणं सत्ता सिज्झइ] इस वाक्य से देवों की सत्ता सिद्ध होती है । [अच्छउ ताव सत्थवयणं पस्सउ इमाए परिसाए ठिए इंदाइ देवे] परन्तु शास्त्र के वाक्यों को रहने दो, इसी परिषदा में स्थित इन्द्र आदि देवों को देख लो [एवं पच्चक्खं एए देवा दीसंति] ये देव प्रत्यक्ष ही दिखाई दे रहे हैं [एवं पहुस्स वयणं सोच्चा निसम्म मोरियपुत्तो छिन्नसंसओ अद्धुट्ठ सयसीसेहिं पव्वइओ] प्रभु के इस प्रकार के वचन सुनकर और समझ कर मौर्यपुत्र भी

छिन्न संशय होकर साढे तीनसौ शिष्यों के साथ दीक्षित हो गये ॥१८॥

भावार्थ—तत्पश्चात् उपाध्याय सुधर्मा को प्रव्रजित हुआ सुनकर मण्डिक भी साढे तीनसौ शिष्यों के परिवार के साथ भगवान् के समीप पहूंचे। भगवान् ने मण्डिक से कहा—हे मण्डिक! तुम्हारे मन में बन्ध—मोक्ष—विषयक संशय है। उस संशय का स्वरूप बतलाते हैं—जीव का बंध और मोक्ष होता है या नहीं? तुम्हारे इस संशय का कारण वेद का यह वचन है—'यह निर्गुण और सर्वव्यापी आत्मा न तो बंधन को प्राप्त होता है, न उत्पन्न होता है, न मुक्त होता है और न दूसरे को मुक्त करता है। इसी वेद वचन से तुम मानते हो कि जीव को न बंध होता है और न मोक्ष होता है। इस विषय में तुम्हारी युक्ति यह है—अगर जीव का बंध माना जाय तो वह बंध अनादि है या सादि-बाद में उत्पन्न हुआ है? अगर नित्य माना जाय तो वह छूट नहीं सकता, क्योंकि जो पदार्थ आदि—रहित होता है, वह अन्तरहित भी होता है। इस प्रकार जो नित्य होता

है वह सदैव बना रहता है, अतएव अनादि कालीन जीव का बंध नष्ट नहीं होना चाहिये। अब दूसरे विकल्प का खंडन करने के लिये कहते है—अगर जीव का बंध पश्चात् उत्पन्न हुआ है तो वह किस समय हुआ ? और किस प्रकार छूटता है ? इस प्रश्न का कोई समाधान नहीं है। अतएव सिद्ध हुआ कि जीव को बंध और मोक्ष नहीं होता। यह जो तुम्हारा मत है सो मिथ्या है, क्योंकि लोक में प्रसिद्ध है कि जीव अशुभ कर्म—बंधन के कारण, उस कर्म जनित दुःख के भागी देखे जाते हैं, और शुभ कर्म बंध के कारण जीव सुख के भागी देखे जाते हैं। तथा ध्यान रूपी अग्नि से समस्त कर्म समूह को भस्म कर देने के कारण, जीव सुख और दुःख के कारण भूत शुभ एवं अशुभ कर्मो से होनेवाले बंध का अभाव होने से मोक्ष प्राप्त करते हैं। तुमने कहा कि—अनादि बंध छुटता नहीं है, सो भी मिथ्या है। लोक में सोने और मिट्टी का परस्पर जो प्रवाह की अपेक्षा से अनादि कालीन संबध है वह छूट ही जाता है। इसी प्रकार जीव का

भी कर्मो के साथ का अनादि सम्बन्ध अवश्यमेव छूट जाता है। इस विषय में तुम्हारे शास्त्र में भी कहा है—जब जीव 'यह पुत्रकलत्र आदि मेरे हैं, ऐसा मानते हैं तो ममता की रस्सी से बंधता है और जब जीव यह समझ लेता है कि 'पुत्रकलत्र आदि मेरे नहीं है' तो ममत्व से रहित होकर मुक्त होता है। इसके अतिरिक्त भी बंध मोक्ष का समर्थन करनेवाले बहुत से वचन तुम्हारे शास्त्र में विद्यमान है। कहा भी हैं— मनुष्यों के बंध और मोक्ष का कारण मन ही है, मन के अतिरिक्त और कोई कारण नहीं है। विषयो में आसक्त मन चार गति रूप संसार भ्रमण का कारण होता है। तथा इन्द्रिय—विषयों की आसक्ति से रहित मन जीव के मोक्ष—भव भ्रमण के अन्त का कारण होता है। इससे सिद्ध हुआ कि जीव को बंध और मोक्ष होता है। इस प्रकार सुनकर मण्डिक विस्मित हुए। उनका संशय दूर हो गया। वह प्रतिबोध प्राप्त करके अपने साढे तीनसौ शिष्यों के साथ दीक्षित हो गये।

शंका—अग्निभूति द्वारा किये गये कर्म—विषयक संशय से इस संशय में क्या अन्तर है? समाधान—अग्निभूति को कर्म के अस्तित्व में ही सन्देह था। पर मण्डिक कर्म का अस्तित्व तो मानते थे। किन्तु जीव और कर्म के संयोग के संबंध में शंकित थे। यही दोनों में अन्तर है। मण्डिक को दीक्षित हुआ सुनकर मौर्यपुत्र भी अपने संशय का निवारण करने के लिये अपने तीनसौ पचास शिष्यों के साथ भगवान् के समीप पहुंचे। उन्हें भी भगवान् ने आगे कहे वचन कहे—हे मौर्यपुत्र! तुम्हारे मन में ऐसा संशय है कि देव नहीं है। इस विषय में प्रमाणरूप से प्रयुक्त वचन प्रकट करते हैं—'माया के समान मिथ्या इन्द्र, यम, वरुण और कुबेर आदि देवों को कौन देखता है?' इस कथन से देव नहीं है, ऐसा सिद्ध होता है। किन्तु तुम्हारा देवों को स्वीकार न करना मिथ्या है, क्योंकि वेद में ऐसा कहा है कि—'यह यज्ञ रूपी शस्त्रवाला यजमान—यज्ञकर्त्ता शीघ्र ही स्वर्गलोक में जाता है।' अगर देव

न होते तो देवलोक भी न होता। ऐसी स्थिति में 'स्वर्गलोक में जाता है' यह वाक्य कैसे ठीक बैठ सकता है? इस वाक्य को स्वीकार करने पर देवलोक और देवलोक में रहनेवाले देवों की भी सिद्धि हो गई। इस प्रकार आगम प्रमाण से देवों की सत्ता का साधन करके अब प्रत्यक्ष प्रमाण से साधन करते हैं कि 'शास्त्रवचनों को जाने दो, तुम इस परिषदा में बैठे हुए इन्द्र आदि देवों को प्रत्यक्ष देख लो'। इस प्रकार प्रभु के वचन सुनकर तथा उहापोह करके विशेष रूप से हृदय में निश्चित करके मौर्यपुत्र सन्देह रहित होकर साढे तीनसौ शिष्यों सहित दीक्षित हो गये ॥१८॥

मूलम्—मोरियपुत्तं पव्वइयं सुणिउं अकंपिओ चिंतेइ—जो जो तस्स समीवे गओ सो सो पुणो न निव्वत्तो। सव्वेसिं संसओ तेण छिन्नो। सव्वे वि य पव्वइया। अओ अहंपि गच्छामि संसयं छेदेमित्ति कट्टु तीसयसीससहिओ

पहुसमीवे संपत्तो। तं दट्ठुं भगवं वएइ–भो अकंपिया! तुज्झमणंसि इमो संसओ अत्थि। जं नेरइया न संति 'न ह वै प्रेत्य नरके नारकाः संति' इच्चाइ वयणाओ त्ति तं मिच्छा। नारया संति चेव न उण तं एत्थ आगच्छंति, नो णं मणुस्सा तत्थ गमिउं सक्कंति। अइसयणाणिणो तं पच्चक्खत्तेण पासंति तव सत्थंमि वि–'नारका वै एष जायते यः शूद्रान्नमश्नाति' एयारिसं वक्कं लब्भइ जइ नारगा न भविज्जा ताहे 'सुद्दन्नभक्खगो नारगो होइ' त्ति वक्कं कहं सगच्छिज्जा?। अणेण सिद्धं णारगा संति त्ति। एवं सोच्चा अकंपिओ वि तिसयसीसेहिं पव्वइओ।

अकंपिओ वि पव्वइओ त्ति जाणिय पुण्णपावसंदेहजुओ 'अयल–भाया' इअ नामगो पंडिओ वि तिसयसीसेहिं परिवुडो पहु समीवे समागओ। तं

दट्ठूणं भगवं एवं वयासी—भो अयलभाया ! तव हिययंसि इमो संसओ वट्टइ-जं पुण्णमेव पकिट्ठं संतं पकिट्ठ सुहस्स हेऊ ? तमेव य अवचीय माणच्चंत थोवावत्थं संतं दुहस्स हेऊं ? उय तय इरित्तं पावं किं पि वत्थु अत्थि ? अहवा एगमेव उभयरूवं ? उभयंपि संतं तं वा अत्थि ? उय पुरिसाइरित्तं अन्नं किंपि नत्थि ? जओ वेएसु कहियं—'पुरुष एवेद सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यं' इच्चाइ त्ति तं मिच्छा। इहलोए पुण्णपावफलं पच्चक्खं लक्खिज्जइ, एवं ववहारओ वि पत्तिज्जइ—जं पुण्णस्स फलं दीहाउय लच्छी रूवारोग्ग—सुकुल-जम्माइ, पावस्स य तव्विवरीयं अप्पाउयाइ फलं, इय पुण्णं पावं च संतं तं वियाणाहि' पुरुष एवेदं इच्चेयम्मि विसए अग्गिभूइपण्हे जं मए कहियं तं चेव मुणेयव्वं तव सिद्धंते वि पुण्णं पावं च सतंतत्तणेण गहियं, तं जहा—

'पुण्यः पुण्येण कर्मणा, पापः पापेन कर्मणा' इच्चाइ। अणेण सिद्धं पुण्णं पावं च उभयमवि संतं तं वत्थु विज्जइ इय सुणिय छिन्न संसओ अयलभाया वि तिसयसीसेहिं पव्वइओ ॥१९॥

शब्दार्थ—[मोरियपुत्तं पव्वइयं सुणिउं अकंपिओ चिंतेइ] मोर्यपुत्र को प्रव्रजित हुआ सुनकर अकम्पित ने सोचा–[जो जो तस्स समीवे गओ सो सो पुणो न निव्वत्तो] जो जो उनके पास गया सो वापिस न लौटा। [सव्वेसिं संसओ तेण छिन्नो] उन्होंने सभी का संशय दूर कर दिया [सव्वे वि य पव्वइया] सभी दीक्षित हो गये [अओ अहमवि गच्छामि संसयं छेदेमित्ति कट्टु तिसयसीससहिओ पहुसमीवे संपत्तो] अतः मैं भी जाऊं और अपने संशय का निवारण करुं। इस प्रकार विचार कर तीनसौ शिष्यों के साथ वह महावीर प्रभु के समीप पहुंचा [तं दट्टुं भगवं वएइ भो अकंपिया ! तुज्झ-मणंसि इमो संसओ अत्थि] अकम्पित को देखकर भगवान ने कहा–हे अकम्पित !

तुम्हारे मन में यह संशय है कि–[जं नेरइया न संति 'न ह वै प्रेत्य नरके नारकाः संति' इच्चाइ वयणाओ त्ति तं मिच्छा] नारक जीव नहीं हैं–क्योंकि शास्त्र में कहा है–'परभव में नरक में नारक नहीं हैं' तुम्हारा यह मत मिथ्या है। [नारया संति चेव] नारक तो है ही [न उण ते एत्थ आगच्छंति] किन्तु वे यहां आते नहीं है [ना णं मणुस्सा तत्थ गमिउं सक्कंति] और न मनुष्य ही वहां जा सकते हैं। [अइसयणाणिणो ते पच्चक्खत्तेण पासंति] अतिशयज्ञानी ही उन्हें प्रत्यक्ष में देखते है [तव सत्थंमि वि–'नारको वै एष जायते यः शूद्रान्नमश्नाति' एयारिसं वक्कं लब्भइ] तुम्हारे शास्त्र में भी ऐसा वाक्य देखा है कि 'जो शूद्र का अन्न खाता है, वह नारक रूप में उत्पन्न होता है [जइ नारगा न भविज्जा ताहे सुद्दन्न भक्खगो नारगो होइ' त्ति वक्कं कहं संगच्छिज्जा ?] यदि नारक न होते तो 'शूद्र का अन्न खानेवाला नारक होता है यह कथन कैसे संगत होता। [अनेण सिद्धं णारगा संति त्ति] इससे नारकों का अस्तित्व सिद्ध होता है।

[एवं सोच्चा अकंपिओ वि तिसयसीसेहिं पव्वइओ] इस प्रकार सुनकर अकम्पित भी तीनसौ शिष्यों के साथ दीक्षित हो गये ['अकंपिओ वि पव्वइओ' ति जाणिय पुण्ण पावसंदेहजुत्तो अयलभाया इय नामगो पंडिओ वि तिसयसीसेहिं परिवुडो पहु समीवे समागओ] अकंपित भी दीक्षित हो गये, यह जानकर पुण्यपाप के विषय में सन्देह रखनेवाले अचलभ्राता नामक पण्डित तीन सौ शिष्यों के साथ प्रभु के समीप गये [तं दट्ठूणं भगवं एवं वयासी] उन्हें देखकर भगवान ने ऐसा कहा–[भो अयलभाया ! तव हिययंसि इमो संसओ वट्टइ] हे अचलभ्राता ! तुम्हारे हृदय में ऐसा सन्देह है कि [जं पुण्णमेव पक्किट्ठं संतं पक्किट्ठ सुहस्स हेउ ?] पुण्य ही जब प्रकर्ष को प्राप्त होता है तो प्रकृष्ट सुख का हेतु हो जाता है [तमेव य अवचीयमाणमच्चंत थोवावत्थं संतं दुहस्स हेऊ ? उय तय इरित्तं पावं किं पि वत्थु अत्थि] और जब वही पुण्य घट जाता है और अल्प रहता है तब दुःख का कारण बन जाता है ? [अहवा एगमेव उभयरूवं ?

उभयंपि संतं तं वा अत्थि ? उय पुरिसा इरित्तं अन्नं किंपि नत्थि ?] अथवा पाप पुण्य से भिन्न कुछ स्वतंत्र वस्तु है ? अथवा पुण्य और पाप का कोई एक ही स्वरूप है ? या दोनो परस्पर निरपेक्ष है स्वतंत्र हैं ? अथ च आत्मा के अतिरिक्त पुण्यपाप कोई वस्तु नहीं है ? [जओ वेएसु कहियं 'पुरुष एवेद् सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् इच्चाइत्ति] क्योंकि वेद में यह कहा गया है कि–जो वर्तमान है जो अतीत में था और भविष्यत् में होगा वह सव पुरुष [आत्मा] ही है। आत्मा से भिन्न पुण्य पाप आदि कोई पदार्थ नहीं है। [तं मिच्छा] तुम्हारे मन में ऐसा संशय है, किन्तु यह मिथ्या है। [इहलोए पुण्ण पावफलं पच्चक्खं लक्खिज्जइ] इस लोक में पुण्य और पाप का फल प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है [एवं ववहारओ वि पत्तिज्जइ–जं पुण्णस्स फलं दीहाउय लच्छीरूवा-रोग्ग सुकुलजम्माइ] इसके अतिरिक्त व्यवहार से भी प्रतीत होता है कि दीर्घ आयु लक्ष्मी, सुन्दररूप, आरोग्य, सुकुल में जन्म आदि पुण्य का फ़ल है [पावस्स य तव्वि-

वरीयं अप्पाउयाइ, इय पुण्णं पावं संतं तं वियाणाहि] और पाप का फल इससे विपरीत अल्पायु आदि है अतः पुण्य और पाप को स्वतंत्र समझो [पुरुष एवेदं इच्चेयम्मि विसए अग्गिभूइपण्हे जं मए कहियं तं चेव मुणेयव्वं] यह सब पुरुष ही है इस विषय में अग्निभूति के प्रश्न के उत्तर में मैंने जो कहा है वही यहां समझ लेना चाहिये। [तव सिद्धंते वि पुण्णं पावं च सतंतत्तणेण गहियं] तुम्हारे सिद्धान्त में भी पुण्य और पाप को स्वतंत्र रूप से ही ग्रहण किया है [तं जहा–'पुण्यः पुण्येन कर्मणा, पापः पापेन कर्मणा' इच्चाइ] जैसे पुण्य कर्म से पुण्यवान् होता है और पाप कर्म से पापी होता है इत्यादि [अणेण सिद्धं पुण्णं पावं च उभयमवि सतंतं वत्थु विज्जइ] इससे सिद्ध है कि पुण्य और पाप दोनों स्वतंत्र वस्तु है [इय सुणिय छिन्नसंसओ अयलभाया वि तिसयसीसेहिं पव्वइयो] यह सुनकर अचलभ्राता का संशय दूर हो गया। वह तीनसौ शिष्यों के साथ भगवान के समीप दीक्षित हो गये ॥१९॥

भावार्थ—मौर्य पुत्र को दीक्षित हुआ सुनकर अकम्पित नामक पण्डित विचार करने लगे–जो जो भी महावीर के पास गया। वह लौटकर वापिस नहीं आया। उन्होंने सभी के संशय का निवारण कर दिया और सभी उनके समीप दीक्षित हो गये। तो मैं भी क्यों न जाऊं और अपने संशय का निवारण करूं? इस तरह विचार कर अकम्पित पंडित भगवान् के पास अपने तीनसौ शिष्यों के परिवार को साथ लेकर पहुंचे। उन्हें देखकर भगवान् ने कहा–हे अकंपित! 'परभवमें, नरक में नारक–नरक जीव नहीं हैं। इस वेदवाक्य से तुम्हारे मन में यह संशय है कि नारक नहीं है। लेकिन तुम्हारा मत मिथ्या है। नारक तो हैं, पर वे इस लोक में आते नहीं हैं और मनुष्य नरक में (इस शरीर से) नहीं जा सकते। हां अतिशय ज्ञानी नरकके जीवों–नारकों को केवलज्ञान से प्रत्यक्ष देखते हैं। तुम्हारे शास्त्र में भी ऐसा वाक्य मिलता है कि–'नारको वै एष जायते यः शूद्रान्नमश्नाति' जो ब्राह्मण शूद्र का अन्न

खाता है, वह नरकमें नारकके रूप में उत्पन्न होता ही है। अगर नारक न होते तो 'शूद्रान्न-भोजी नारक होता है', यह वाक्य कैसे संगत होता ? इससे सिद्ध है कि नारक जीवों की सत्ता है। ऐसा सुनकर अकम्पित भी तीनसौ शिष्यों के साथ दीक्षित हो गये। मण्डित भी अपने तीनसौ अन्तेवासियों सहित भगवान के पास पहूंचे। उन्हें देखकर भगवानने इस प्रकार कहा-हे अचलभ्राता! तुम्हारे अन्तःकरण में यह सन्देह है कि पुण्य ही जब प्रकृष्ट [उच्चकोटिका] होता है तो वह सुखका कारण होता है, और जब वही पुण्य घट जाता है, और अल्प रहता है तब दुःखका कारण बन जाता हैं ? अथवा पाप, पुण्य से भिन्न कुछ स्वतंत्र वस्तु है? अथवा पुण्य अथवा पापका कोई एक ही स्वरूप है? या दोनों परस्पर निरपेक्ष स्वतंत्र हैं ? अथ च आत्मा के अतिरिक्त पुण्य-पाप कोई वस्तु नहीं है? क्योंकि वेद में यह कहा गया है कि-'जो वर्तमान है, जो अतीत में था, और भविष्यत् में होगा वह सब पुरुष [आत्मा] ही है, आत्मा से भिन्न पुण्य-

अकम्पितादीनां शङ्कानिवारणम् प्रव्रजनं च

पाप आदि कोई पदार्थ नहीं है। तुम्हारे मनमें ऐसा संशय है, किन्तु यह मिथ्या है। इस संसार में पुण्य और पापका फल प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है। व्यवहार से भी प्रतीत होता है कि पुण्य का फल दीर्घ जीवन, लक्ष्मी, रमणीय स्वरूप, नीरोगता और सत्कुल में जन्म आदि है, और पापका फल इनसे उलटा–अल्पायु, दरिद्रता, कुरूपता, रुग्णता और असत्कुल में जन्म आदि है। इस प्रकार पुण्य और पाप पर्याय की अपेक्षा स्वतंत्र परस्पर निरपेक्ष, पृथक् पृथक् है। यही मानना चाहिये। तथा कारण में भेद न हो तो कार्य में भेद नहीं हो सकता। सुख और दुःख परस्पर विरुद्ध दो कार्य हैं, अतः उनका कारण भी परस्पर विरुद्ध और अलग अलग होना चाहिये। पुण्य-पापको अभिन्न मानोगे तो उससे सुख–दुःख रूप दो कार्य नहीं होंगे, अथवा सुख-दुःख को भी अभिन्न ही मानना पडेगा। किन्तु सुख और दुःख को अभिन्न मानना प्रतीत से बधित है। जैसे दीपक की मन्दता अन्धेरे को उत्पन्न नहीं करती उसी प्रकार पुण्यकी

अकम्पिता-
दिनां शङ्का-
निवारणम्
प्रव्रजनं च

मन्दता दुःख को उत्पन्न नहीं कर सकती। 'यह सब पुरुष ही है, इत्यादि वाक्यके विषयमें जो तुम्हें सन्देह है, उसका समाधान अग्निभूति के प्रश्न में जो समाधान मैंने किया है, वही यहां भी समझ लेना। इसके अतिरिक्त तुम्हारे आगम में भी पुण्य और पाप दोनोंको स्वतंत्र स्वीकार किया गया है कहा है–'पुण्यः पुण्येन कर्मणा पापः, पापेन कर्मणा' अर्थात्–जीव शुभ कर्म से पुण्यवान् होता है और अशुभ कर्मसे पापवान् होता है। ऐसा मानने पर इस वाक्य का अर्थ यह होगा–'शुभ कर्म से पुण्य और अशुभ कर्मसे पाप होता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि पुण्य और पाप दोनों स्वतंत्र वस्तुएं है। आशय यह है कि आर्हत मत में कोई भी दो पदार्थ सर्वथा भिन्न या सर्वथा अभिन्न नहीं होते, तथापि अचल भ्राता के माने हुए सर्वथा अभेदपक्षका निरास करने के लिये यहां केवल भेद–पक्षका समर्थन किया गया है। द्रव्यकी अपेक्षा दोनों में अभेद भी है, अनेकान्तवाद के ज्ञाताओं को यह समझना कठिक नहीं। भगवान्

के यह वचन सुनकर अचलभ्राता का संशय छिन्न हो गया। वह भी अपने तीनसौ शिष्यों के साथ दीक्षित हो गये॥२०॥

मूलम्—मेयज्जो वि नियसंसयछेयणट्ठं तिसयसीसेहिं परिवुडो पहुसमीवे समागओ। भगवं तं वएइ—भो मेयज्जा तव मणंसि इमो संसओ वट्टइ—परलोगो नत्थि। जओ वेएसु कहियं—'विज्ञानघनएवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय पुनस्तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्य संज्ञाऽस्ति' इच्चाइ। तं मिच्छा। परलोगो अत्थि चेव अन्नहा जायमेत्तस्स बालस्स माउथणदुद्धपाणे सन्ना कहं भवे? तव सिद्धंते वि वुत्तं—'यं यं वाऽपि स्मरन् भावं, त्यजत्यन्ते कलेवरम्। तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥' इच्चाइ। अओ सिद्धं परलोगो अत्थि त्ति। एवं सोच्चा निसम्म छिन्न संसओ मेयज्जोवि तिसयसीसेहिं पव्वइओ'

तं पव्वइयं सोच्चा एगारसमो पंडिओ पभासाभिहोवि तिसयसीससहिओ नियसंसयावणयणत्थं पहुसमीवे समणुपत्तो। पहुणा य सो आभट्टो—भो पभासा! तव मणंसि इमो संसओ वट्टइ जं निव्वाणं अत्थि नत्थि वा? जइ अत्थि किं संसाराभावो चेव निव्वाणं? अहं वा दीवसिहाए विव जीवस्स नासो निव्वाणं? जइ संसाराभावो निव्वाणं मन्निज्जइ, ताहे तं वेयविरुद्धं भवइ, वेएसु कहियं-'जरामयं वै तत्सर्वं यदग्निहोत्रम्' इति। अणेण जीवस्स संसाराभावो न भवइत्ति। जइ दीवसिहाए विव जीवस्स नासो निव्वाणं मन्निज्जइ, ताहे जीवाभावो पसज्जइत्ति। तं मिच्छा। निव्वाणं ति मोक्खो त्ति वा एगट्ठा! मोक्खो उवद्धस्सेव हवइ। जीवो हि कम्मेहिं बद्धो अओ तस्स पययणविसेसाओ मोक्खो भवइ चेव। अस्स विसए मंडिय पण्हे सव्वं कहियं। तं धारेयव्वं तव सत्थे वि वुत्तं-

मेतार्य-प्रभासयोः शङ्का-निवारणम् प्रव्रजनं च

'द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये परमपरं च। तत्र परं 'सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्मे' ति'। अणेण मोक्खस्स सत्ता सिज्झइ। अओ सिद्धं मोक्खो अत्थि त्ति। एवं सोच्चा छिन्नसंसओ पभासो वि तिसयसीसेहिं पव्वइओ ॥

मेतार्य-प्रभासयोः शङ्का-निवारणम् प्रव्रजनं च

एत्थ संगहणी गाहा दुगं

जीवे य कम्मविसये[2], तज्जीवयतच्छीरे[3] भूए[4] य।
तारिसय जम्मजोणी परे भवे[5] बंधमुक्खे य ॥१॥
देव नेरइये पुण्णे, परलोए तह य होइ निव्वाणे।
एगारसावि संसय छेए पत्ता गणहरत्तं ॥२॥

को गणहरो कइ संखेहिं सीसेहिं पव्वइओत्ति—पडिवाइया संगहणी गाहा—पंचसयो पंचण्हं दोण्हं चिय होइ सद्धातिसयो य सेसाणं च चउण्हं, तिसओ

तिसओ हवइ गच्छे एवं पहुसमीवे सव्वं चोयालसयादिया पव्वइया ॥२१॥

'इइ गणहरवाओ'

शब्दार्थ—[मेयज्जो वि नियसंसयछेयणट्ठं तिसयसीसेहिं परिवुडो पहुसमीवे समागओ] मेतार्य भी अपने संशय को दूर करने के लिए तीनसौ शिष्यों के साथ प्रभु के समीप पहुंचा। [भगवं तं वएह] भगवान ने मेतार्य से कहा—[भो मेयज्जा! तव मणंसि इमो संसओ वट्टइ—] हे मेतार्य! तुम्हारे मनमें यह संशय है कि [परलोगो नत्थि] परलोक नहीं है। [जओ वेएसु कहियं—'विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय पुनस्तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्य संज्ञाऽस्ति' इच्चाइ] क्योंकि वेदों में ऐसा कहा है 'विज्ञानघन आत्मा इन भूतों से उत्पन्न होकर फिर उन्हीं में लीन हो जाता है। परलोक नामकी कोई संज्ञा नहीं है। इत्यादि; [तं मिच्छा] तुम्हारा यह संशय मिथ्या है [परलोगो अत्थिचेव अन्नहा जायमेत्तस्स बालस्स माउथणदुद्धपाणे सन्ना

कहं भवे ?] परलोक-पुनर्जन्म है ही अन्यथा तत्काल उत्पन्न बालकका माता के स्तन का दूध पीनेकी इच्छा [या बुद्धि] कैसे होती ? [तव सिद्धंते वि वुत्तं-यं यं वाऽपि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।] तुम्हारे सिद्धान्त में भी कहा है कि-'हे अर्जुन ! जीव अन्तिम समय में जिन जिन भावोंका स्मरण-चिंतन करता हुआ शरीर छोडता है [तं तमेवति कौन्तेय, सदा तद्भावभावितः] उन उन भावों से भावित वह जीव उसी उसी भाव को प्राप्त होता है । [अओ सिद्धं परलोगो अत्थित्ति] अतः सिद्ध है कि पर-लोक संज्ञा हैं [एवं सोच्चा निसम्म छिन्नसंसओ मेयज्जोवि तिसयसीसेहिं पव्वइओ] इस कथन को सुनकर और उसे हृदय में धारण कर और संशय रहित हो वह अपने तीनसो शिष्यों के साथ भगवान के समीप प्रव्रजित हो गया ।

[तं पव्वइयं सोच्चा एगारसमो पंडिओ पभासाभिहो वि तिसयसीससहिओ नियसंसयावणयणत्थं पहुसमीवे समणुपत्तो] मेतार्य को दीक्षित हुआ सुनकर ग्यारहवें

मेतार्य-
प्रभासयोः
शङ्का-
निवारणम्
प्रव्रजनं च

पण्डित प्रभास भी तीनसौ शिष्यों के साथ अपना संशय दूर करने के लिए प्रभु के पास पहुंचे [पहुणा य सो आभट्ठो-] प्रभुने उससे कहा-[भो पभासा! तव मणंसि इमो संसओ वट्टइ-] हे प्रभास! तेरे मन में यह संशय है कि [जं निव्वाणं अत्थि नत्थि वा?] निर्वाण है या नहीं? [जइ अत्थि किं संसाराभावो चेव निव्वाणं? अहवा दीवसिहाए विव जीवस्स नासो निव्वाणं?] यदि है तो क्या संसार का अभाव ही निर्वाण है? अथवा दीपक की शिखा के समान जीवका नाश हो जाना निर्वाण है? [जइ संसाराभावो निव्वाणं मन्निज्जइ ताहे तं वेयविरुद्धं भवइ] यदि संसार के अभाव को निर्वाण माना जाय तो यह मान्यता वेद विरुद्ध है। [वेएसु कहियं-'जरामर्यं वै तत्सर्वं यदाग्निहोत्रम् इति' अणेण जीवस्स संसाराभावो न भवइत्ति] वेदों में कहा है 'यह जो अग्निहोत्र है सो सब जरा मरण के लिये है। इससे प्रतीत होता है कि जीव के संसारका अभाव नहीं होता। [जइ दीवसिहाए विव जीवस्स नासो निव्वाणं मन्निज्जइ, ताहे जीवा-

मेतार्य-
प्रभासयोः
शङ्का-
निवारणम्
प्रव्रजनं च

भावो पसज्जइत्ति] यदि दीपक की लौ के समान जीवका नाश होना निर्वाण माना जाय तो जीव के अभावका प्रसंग आता है। [तं मिच्छा] हे प्रभास ! तुम्हारी यह मान्यता मिथ्या है [निव्वाणंति मोक्खो त्ति वा एगट्ठा ! मोक्खो उ बद्धस्सेव हवइ] निर्वाण और मोक्ष दोनों एक ही अर्थ को बतलानेवाले शब्द है। बद्ध जीव काही मोक्ष होता है [जीवो हि कम्मेहिं बद्धो अओ तस्स पययणविसेसाओ मोक्खो भवइ चेव] जीव कर्मो से बद्ध है, अतः प्रयत्न विशेष से उसका मोक्ष होता ही है [अस्स विसये मंडियपण्हे सव्वं कहियं तं धारेयव्वं] मोक्ष के विषय में मण्डिक के प्रश्न में कहा है वह सब समझ लेना चाहिये [तव सत्थेवि वुत्तं–'द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये परमपरं च। तत्र परं 'सत्यं ज्ञान मनंतं ब्रह्म' ति] तुम्हारे शास्त्र में भी कहा है-'दो प्रकार के ब्रह्म सत्य; ज्ञान और अनंत स्वरूप है। [अणेण मोक्खस्स सत्ता सिज्झइ] इससे मोक्षकी सत्ता सिद्ध होती है। [अओ सिद्धं मोक्खो अत्थि त्ति] अतः मोक्षका सद्भाव सिद्ध हुआ [एवं सोच्चा

मेतार्य–
प्रभासयोः
शङ्का-
निवारणम्
प्रव्रजनं च

छिन्नसंसओ पभासोवि तिसयसीसेहिं पव्वइओ] इस प्रकार सुनकर प्रभास भी संशय निवृत्त होकर तीनसौ शिष्यों के साथ दीक्षित हो गये।

[एत्थ संगहणी गाथा दुगं-] किस गणधरका कौन संशय था ? इस विषयमें यहां दो संग्रहणी गाथाएँ है-[जीवे] इन्द्रभूति को जीवके विषय में सन्देह था [कम्मविसये] अग्निभूतिको कर्म के विषय में संदेह था [तज्जीवक तच्छरीरे] वायुभूति को तज्जीव-तच्छरीर [वही जीव वही शरीर] के विषय में सन्देह था [भूते य] व्यक्त को पृथ्वी आदि पंचभूत के विषय में सन्देह था [तारिसय जम्मजोणी परे भवे] सुधर्मा को पूर्व भव के समान उत्तर भवके विषय में संदेह था [बंधमुक्खे य] मण्डिक को बन्ध मोक्षके विषयक सन्देह था [देवे] मौर्यपुत्र को देवों के विषयमें संदेह था [नेरइये] अकंपितको नारक के विषयमें संदेह था [पुण्णे] अचलभ्राता को पुण्य पाप के विषय में सन्देह था

[परलोए] मेतार्यको परलोक के विषयमें और [तह य होइ निव्वाणे] प्रभास को मोक्षके विषय में संशय था [एगारसावि संशयच्छेए पत्ता गणहरत्तं] इइ' संशय के दूर होने पर ग्यारहों गणधर–पदको प्राप्त हुए [को गणहरो कइसंखेहिं पव्वइओ त्ति पडिवाइया संगहणी गाहा–] कौन गणधर कितने शिष्यों के साथ दीक्षित हुए यह प्रतिपादन करनेवाली संग्रहणी गाथा यह है–[पंचसंयो पंचण्हं इन्द्रभूति से सुधर्मा तक के पांच गणधर पांचसौ शिष्यों के साथ प्रव्रजित हुए [दोण्हं चिय होइ सद्ध तिसयो य] मण्डिक और मौर्यपुत्र साढे तीनसौ शिष्यों के साथ प्रव्रजित हुए [सेसाणं च चउण्हं तिसय तिसओ हवइ गच्छो] शेषचार अकंपित, अचल भ्राता, मेतार्य और प्रभास तीनसौ शिष्यों के साथ प्रव्रजित हुए। [एवं पहुसमीवे सव्वे चोयालसया दिया पव्वइया] इस प्रकार चवालीससौ ग्यारह की संख्या मे प्रभु के समीप दीक्षित हुए, जिस तरह इन्द्रभूतिने दीक्षा ग्रहण की उसी प्रकार सभी गणधरोने अपने अपने परिवारके साथ दीक्षा ग्रहण की ॥२१॥

मेतार्य–
प्रभासयोः
शङ्का-
निवारणम्
प्रव्रजनं च

भावार्थ—मेतार्य भी अपना संशय छेदन करने के लिये अपने तीनसौ शिष्यों के साथ प्रभु के समीप आये। भगवान्‌ने उनसे कहा–हे मेतार्य ! तुम्हारे मनमें यह संशय विद्यमान है कि परलोक नहीं है, क्योंकि वेदों में कहा है कि विज्ञानघन आत्मा ही इन भूतों से उत्पन्न होकर फिर उन्हीं भूतों में लीन हो जाता हैं, अतः परलोक नहीं है, इत्यादि [इस वाक्य का विवरण इन्द्रभूति के प्रकरण में किया जा चूका है, वहीं से जान लेना चाहिये] हे मेतार्य ! ऐसा तुम मानते हो सो मिथ्या है। परलोक का अवश्य अस्तित्व है। अगर परलोक न होता तो तत्काल जन्मे हुए बालकों को माता के स्तन का दूध पीने की बुद्धि कैसे होती ? परलोक स्वीकार करने पर तो पूर्वभव के दुग्धपान का संस्कार से माताका स्तनपान करने की चेष्टा संगत हो जाती है। तुम्हारे सिद्धान्त में भी कहा है–हे अर्जुन ! जीव मरणकाल में जिन–जिन भावों का स्मरण चिन्तन करता हुआ शरीरका परित्याग करता है, वह अन्तिम समयमें चिन्तन किये

हुए उन्हीं भावों से भावित–वासित होकर उसी–उसी भावको प्राप्त करता है। इत्यादि अत एव परलोकको स्वीकार करना चाहिये। इस प्रकार सुनकर और विशेष रूपसे अन्तःकरणमें धारण करके मेतार्य भी छिन्न संशय होकर तीनसौ शिष्यों के साथ दीक्षित हो गये। मेतार्य को दीक्षित हुआ सुनकर ग्यारहवें प्रभास नामक पंडित भी तीनसौ अन्तेवासियों सहित अपने संशय को दूर करने के लिये श्रीमहावीर स्वामीके समीप पहूंचे। भगवान् प्रभास से बोले–हे प्रभास! तुम्हारे मनमें यह संशय है कि निर्वाण है अथवा नहीं? अगर निर्वाय है तो क्या वह संसार का अभाव ही है, अर्थात् चार गतियों में भ्रमण रूप संसारका रुक जाना शुद्ध आत्मस्वरूप में स्थित हो जाना ही है? अथवा दीपक की शिखा के नाश के समान जीव का सर्वथा अभाव हो जाना ही निर्वाण है? इन दोनों पक्षोंमें से यदि संसारका अभाव निर्वाण है, यह पहला पक्ष माना जाय तो वह वेद से विरुद्ध है, क्योंकि वेदों में कहा है कि–'यह जो नाना प्रकार

का अग्निहोत्र है, वह सभी जरा और मरणका कारण है। इस वेदवाक्य से तो यही निष्कर्ष निकलता है कि जीव के संसारका अभाव हो ही नहीं सकता। अगर दीपशिखा के नष्ट हो जाने के समान निर्वाण मोक्ष माना जाय तो जीवके सर्वथा अभाव की अनिष्टापत्ति होती है। निर्वाण के विषयमें तुम्हें यह संशय है। यह संशय मिथ्याज्ञान से उत्पन्न हुआ है। क्योंकि निर्वाण और मोक्ष, दोनों एकार्थवाचक शब्द हैं। मोक्ष बद्ध का ही होता है। जीव अनादि कालसे ज्ञानावरणीय आदि कर्मों से बद्ध है, अतः विशेष प्रयत्न करने से उसका मोक्ष होता ही है। इस विषय में मण्डिकके प्रश्न में जो कहा है, वह सब यहां भी समझ लेना चाहिये। अभिप्राय यह है कि ज्ञानावरणीय आदि कर्मों से जब आत्मा मुक्त हो जाता है तो उसमें औपाधिक भाव कर्म जनित विकार भी नहीं रहते। उस समय आत्मा अपने वास्तविक शुद्ध चैतन्यस्वरूप को प्राप्त कर लेता है। जरा और मरण से सर्वथा रहित हो जाता है। यही मोक्षका-

स्वरूप है। 'अग्निहोत्र जरा मरण का कारण है, इस कथन से यह सिद्ध नहीं होता कि जीव के जरा–मरण का अभाव हो ही नहीं सकता। इस वाक्य में तो यह प्रतिपादित किया गया है कि अग्निहोत्र जरा मरण के अन्तका कारण नहीं, प्रत्युत जरा–मरण का कारण है। इसमें ध्यान, अध्ययन, तपश्चरण आदि कारणों से होने वाले जरा-मरण के अभाव रूप मोक्षका निषेध नहीं किया गया है। अग्निहोत्र आरंभ–समारंभ एवं हिंसा जनित तथा स्वर्ग और वैभव आदि की कामना से प्रेरित अनुष्ठान है, अत एव उसे जरा–मरण का जो कारण कहा है सो उचित ही है। मोक्ष सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चरित्र से होता है, उसका निषेध उक्त वाक्य में नहीं है। मैं ही ऐसा कहता हूं, सो नहीं, तुम्हारे शास्त्र में भी कहा है–ब्रह्म के दो भेद हैं–पर और अपर। इन दोनों में से जो ब्रह्म है, वह सत्य, ज्ञान एव अनन्त स्वरूप है। वेद में भी कहा है–सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। अगर जीव को मोक्ष न होता तो उसे सत्य, ज्ञान एवं अनन्त स्वरूप की प्राप्ति

कैसे होती ? ऐसी स्थिति में प्रमाण माने हुए तुम्हारे वेदोंका कथन किस प्रकार संगत होगा ? वेद के इस वाक्य से तो मोक्ष की सत्ता ही होती है। अतः मोक्ष है, यह निस्सन्देह सिद्ध है। प्रभु के इस प्रकार के वचन सुनकर प्रभास भी छिन्नसंशय होकर अपने तीनसौ शिष्यों के साथ प्रभु के पास प्रव्रजित हो गये इन ग्यारह गणधरों के संशय के विषय में दो संग्रहणी गाथाएं हैं (१) इन्द्रभूति को जीव के विषय में संशय था। (२) अग्निभूति को कर्म के विषय में संशय था। (३) वायुभूति को वही जीव है और वही शरीर है, ऐसा संशय था। (४) व्यक्त को पांचभूतों के विषयमें संशय था। (५) सुधर्मा को यह संशय था कि जो जीव इस भवमें जैसा है, परमव में भी वैसा ही जन्मता है। (६) मण्डिक को बन्ध और मोक्ष के विषय में संशय था। (७) मौर्यपुत्रको देवोंके अस्तित्व के विषयमें संशय था। (८) अकम्पित के नारकों के विषयमें संशय था। (९) अचलभ्राता को पुण्य पाप संबन्धि संशय था। (१०) मेतार्य को परलोक में संशय था

और (११) प्रभास को मोक्षके अस्तित्व में संशय था। इन्द्रभूतिसे लेकर प्रभास तक यह ग्यारहों गणधर अपना अपना संशय दूर होने पर गणधरता–गणधरपद्वी की प्राप्त हुए। कौन गणधर कितने शिष्यों के साथ दीक्षित हुए, यह बतलाने वाली संग्रहणी गाथाएं है–इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त और सुधर्मा इन पांच गणधरोंका प्रत्येकके पाँच–पांचसौ शिष्यों का गण था। इनके बाद दो–मण्डिक और मौर्यपुत्र का प्रत्येक के साढे तीनसौ शिष्यों का गण था। शेष चार अकम्पित, अचलभ्राता, मेतार्य और प्रभास का तीन तीनसौ शिष्योंका समूह था। इस प्रकार प्रभु के पास सब मिलकर चौवालीससौ ग्यारह द्विज गणधरों के शिष्य भी दीक्षित हुए थे ॥२१॥

पाप परिहार और धर्म स्वीकार, तथा गणधरों का उद्धार

मूलम्–नमो चउवीसाए तित्थयराणं उसभाई महावीर पज्जवसाणाणं। इणमेव निग्गंथं पावयणं सच्चं अणुत्तरं केवलियं पडिपुन्नं नेयाउयं संसुद्धं

सल्लगत्तणं सिद्धिमग्गं मुत्तिमग्गं निज्जाणमग्गं निव्वाणमग्गं अवितहमविसंदिद्धं सव्वदुक्खप्पहीणमग्गं। इत्थं ठिआ जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिनिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं करांति। तं धम्मं सद्दहामि पत्तियामि रोएमि फासेमि पालेमि अणुपालेमि। तं धम्मं सद्दहंतो पत्तियंतो रोअंतो फासंतो पालंतो अणुपालंतो तस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्स अब्भुट्ठिओमि आराहणाए विरओमि विराहणाए, असंजमं परियाणामि, संजमं उवसंपज्जामि, अबंभं परियाणामि बंभं उवसंपज्जामि। अकप्पं परियाणामि, कप्पं उवसंपज्जामि। अन्नाणं परियाणामि, नाणं उवसंपज्जामि। अकिरियं परियाणामि, किरियं उवसंपज्जामि। मिच्छत्तं परियाणामि, सम्मत्तं उवसंपज्जामि। अबोहिं परियाणामि, बोहिं उवसंपज्जामि। अमग्गं परियाणामि, मग्गं उवसंपज्जामि। जं संभरामि जं

पापपरिहारपूर्वक धर्म-स्वीकारः

च न संभरामि, जं पडिक्कमामि जं च न पडिक्कमामि तस्स सव्वदेवसियस्स अइयारस्स पडिक्कमामि। समणोहं संजयविरय पडिहयपच्चक्खायपावकम्मो अनियाणो दिट्ठि—संपन्नो मायामोसविवज्जिओ अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पन्नरससु कम्मभूमीसु जावंति केइ साहू रयहरणमुहपत्तियगोच्छगपडिग्गहधारा पंचमहव्वयधारा अट्ठारससहस्स सीलांगरहधारा अक्खआयारचरित्ता ते सव्वे-सिरसे मणसा मत्थएणं वंदामि खामेमि, सव्वजीवे, सव्वे जीवा खमंतु मे मित्ती मे सव्वभूएसु वेरं मज्झं न केणइ ? एवमहं आलोइय निंदिय गरहिय दुगंछिय सम्मं, तिविहेणं पडिक्कंतो। वंदामि जिणे चउवीसं ॥२२॥

शब्दार्थ—णमो [नमस्कार] चउवीसाए [चौविश] [तीत्थयराणं] तीर्थकरोने [उसभाई] महावीर [पज्जवसाणाणं] रुषभ छे प्रथम ने महावीर छे छेल्ला जेमां एवा

पापपरि-
हारपूर्वक
धर्म-
स्वीकारः

[इणमेव, निग्गथं, पावयणं] आज निग्रंथ संबधी प्रावचन (शास्त्र) [सच्चं]–सत्य [अणुत्तरं] प्रधान [केवलियं] केवलज्ञानी कथित [पडिपुण्णं] संपूर्ण [नेयाउयं] न्याय-युक्त [संसुद्धं] अत्यंत शुद्ध [सल्लगत्तणं] मायादि शल्यने कापनार [सिद्धिमग्गं] सिद्धिनो मार्ग [मुत्तिमग्गं] अष्ट कर्मथी मुक्त थवानो मार्ग [निज्जाणमग्गं] दोषरहित थवानो मार्ग [अवितह] यथातथ्य बराबर [मविसंदिर्द्धं] संदेह रहित [सव्वदुःख-पहीणमग्गं] सर्व दुःखनो क्षय करनार मार्ग [इत्थं, ठिआ, जीवा] आने विषे रहेता थका जीवो । [सिज्झंति] ज्ञानादि सिद्धिने पामे छे.–[वुज्झंति] समग्र तत्वज्ञ थाय छे [मुच्चंति] भवग्राहक कर्मथी मूकाय छे [परिनिव्वायंति] समस्त प्रकारे निवृत्त थाय छे [सव्वदुःखाणमंतं करंति] सर्व शारीरिक मानसिक दुःखनो अंत करे छे [तं धम्मं] (ते माटे) ते धर्मने [सद्दहामि] सर्दहुं छुं [पत्तियामि] प्रतीत आणु छुं [रोएमि] रूचि करुं छुं [फासेमि] स्पर्शु छुं सेवु छुं [पालेमि] पालुं छु रक्षा करुं छुं [अणुपालेमि] वीतरागनी

आज्ञा प्रमाणे विशेषे करी पालु छुं [तं धम्मं] ते धर्मने [सद्दहतो] सर्दहतो थको [रोअंतो] रोचवतो थको [फासंतो] स्पर्शतो थको [पालंतो] पालतो थको [अणुपालंतो] विशेष करी पालतो थको [तस्स धम्मस्स] ते वीतरागना धर्मनी, [केवली पन्नत्तस्स] केवली प्रज्ञप्त [प्ररूपेल] [अब्भुट्ठिओमि] एवा उद्यमवंत–तत्पर [आराहणाए] आराधनाने विषे [विरओमि] निवर्त्तित एवो छुं [विराहणाए] विराधनाने विषे [असंजमं] प्राणातिपातादिरूप असंयमने [परियाणामि] जाणुं छुं [संजमं] संयमने [उवसंपज्जामि] अंगीकार करूं छुं [अबंभं] अब्रह्मचर्य ने [परियाणामि] ज्ञप्रज्ञाए जाणी पचखु छुं, [कप्पं] पिंडादिक चार कल्पनिकने [उवसंपज्जामि] अंगीकार करूं छुं [अकप्पं] अकल्पनिक आहार स्थानक वस्त्रपात्रादिने [परियाणामि] ज्ञप्रज्ञाए जाणी पचखु छुं [कप्पं] पिंडादिक चार कल्पनिकने [उवसंपज्जामि] अंगीकार करूं छुं [अन्नाणं] अज्ञान [अन्य प्ररूपित] भावने [परिआणामि] ज्ञप्रज्ञाए जाणी पचखु छुं [नाणं उवसंपज्जामि] विशिष्ट ज्ञानने

पापपरिहारपूर्वक धर्मस्वीकारः

(इश्वर प्ररूपित भावने) अंगीकार करुं छुं [अकिरियं] मिथ्याक्रियाने [परियाणामि] ज्ञप्रज्ञाए जाणी पचखुं छुं; [मग्गं] ज्ञान, दर्शन, चरित्र तप छे जेमां एवा सम्यक् मार्गने [उवसंपज्जामि] अंगीकार करूं छुं [जं संभरामि] जे दोषने संभारूं छुं (याद करुं छुं) ते [जं च न संभरामि] वळी जे दोष सांभरता (याद आवता) नथी ते [जं पडिक्कमामि] जे दोषने आलोचुं [जं च न पडिक्कमामि] जे दोष नथी आलोचतो याद नहीं आववाथी [तस्स सव्वस्स] ते सर्व [देवसियस्स] दिवस संबन्धी [अईयारस्स] अतिचारने [पडिक्क मामि] निवारूं छुं [समणोहं] श्रमण (तपस्वी) हुं [संजय] संयत (समस्त प्रकार प्राप्त थयेल छुं [विरय] संसारथी विराम पामेल छुं [पडिहय] समीप आवतां हण्यां छे [पच्चक्खाय] प्रत्याख्याने करी [पावकम्मे] पापकर्मने एवो छुं [अनिआणो] निदानरहित छुं, [दिट्ठी संपन्नो] सम्यक् दृष्टि संपन्न छुं, [माया मोस विवज्जिओ] माया मृषा तेथी रहित छुं; [अड्ढाईसु] अढी [दीव समुद्देसु] द्विप समुद्रने विषे [पन्नरससु कम्मभूमिसु]

पापपरिहारपूर्वक धर्म-स्वीकारः

पन्नर एवी कर्मभूमि विषे [जावंति केई साहु] जेटला कोईक साधु छे [रयहरण गुच्छ] रजोहरण गुच्छग [पडिग्गहधारा] पात्र विगेरेना धारणहार [पंच महव्वयधारा] पांच महाव्रतना धारणहार [अट्ठारस सहस्स] अढार सहस्र (हजार) [सीलांगरहधारा] शीलांग रूपी रथना धरणहार [अक्खय आयारचरित्ता] अखंडित आचाररूप चारित्र तेना धारणहार [ते सव्वे, सिरसा] ते सर्वने उत्तमांगे करी [मणसा, मत्थएण वंदामि] अंतःकरणे करी मस्तके करीने वांदु छुं [खामेमी सव्वजीवे] खमावुं छुं सर्व जीवोने [सव्वे जीवा खमंतुमे] सर्वे जीवो खमो मुझने (मारा अपराधने) [मित्ती मे सव्वभूएसु] मैत्री–भाव छे मारे भूतने विषे [वेरं मज्झं न केणई] वैरभाव मारे कोई पण साथे नथी [एव महं अलोइय] ए प्रकारे हुं अलोचित्त (आलोचनायुक्त) [निंदिय] निंदित [गरहिय] गर्हित [दुगंछिय] दुगंच्छना युक्त एवो [सम्मं, तिविहेणं] साचा दिलथी त्रिविधिये [पडिक्कतो, वंदामि जीणे चउविसं] वंदु छुं (स्तवुं छुं) चतुर्विंश (चौवीश) जिनोने ॥२२॥

पापपरिहारपूर्वक धर्म-स्वीकारः

भावार्थ—श्रीऋषभदेव स्वामी से लेकर महावीर स्वामी पर्यन्त चौवीसों तीर्थङ्कर भगवान को मेरा नमस्कार हो। इस प्रकार नमस्कार करके तीर्थङ्कर प्रणीत प्रवचन की स्तुति करते हैं—यही निर्ग्रन्थ—अर्थात् स्वर्ण रजत आदि द्रव्यरूप और मिथ्यात्व आधि भावरूप ग्रन्थ (गांठ) से रहित मुनिसम्बन्धी सामायिक आदि प्रत्याख्यान—पर्यन्त द्वादशाङ्ग गणिपिटकस्वरूप तीर्थङ्करों से उपदिष्ट प्रवचन, सत्य, सर्वोतम, अद्वितीय, समस्त गुणोंसे परिपूर्ण, मोक्षमार्ग, प्रदर्शक अग्नि में तपाये हुए सोने के समान निर्मल [कषाय मल से रहित] मायादि शल्यका नाशक, अविचल सुख का साधनमार्ग कर्म-नाशका मार्ग, आत्मा से कर्म को दूर करनेका मार्ग, शीतलीभूत होनेका मार्ग, अवितथ अर्थात् तीनों काल में भी अविनाशी, महाविदेह क्षेत्रकी अपेक्षा सदा और भरतक्षेत्र आदि की अपेक्षा इक्कीस हजार वर्ष रहनेवाला और सब दुःखोंका नाश करनेवाला मार्ग है। इस मार्ग में रहे हुए प्राणी–सिद्धगति से, अथवा अणिमा आदि आठ सिद्धियों से

युक्त होते हैं, केवलपदको प्राप्त होते है, कर्मबन्ध से मुक्त होते है, सर्व सुखको प्राप्त होते है, और शारीरिक मानसिक सर्व दुःखों से निवृत होते हैं। उस धर्म की मैं श्रद्धा करता हूं अर्थात् एक यही संसार समुद्र से तारनेवाला है ऐसी भावना करता हूं, अन्तः-करण से प्रतीति करता हूं, उत्साहपूर्वक आसेवन करता हूं, आसेवना द्वारा स्पर्श करता हूं और प्रवृद्ध परिणाम [उच्चभाव] से पालता हूं और सर्वथा निरन्तर आराधना करता हूं। उस धर्म में श्रद्धा करता हुआ, प्रतीति करता हुआ, रुचि रखता हुआ, स्पर्श करता हुआ पालन करता हुआ और सम्यक् पालन करता हुआ उस केवलि प्ररूपित धर्म की आराधना के लिये मैं उद्यत हुआ हूं। तथा सब प्रकार की विराधना से निवृत्त हुआ हूं। अतएव असंयम [प्राणातिपात आदि अकुशल अनुष्ठान] को ज्ञपरिज्ञा से जानकर और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से परित्याग कर सावद्य अनुष्ठान निवृत्तरूप संयम को स्वीकार करता हूं। मैथूनरूप अकृत्य को छोडकर ब्रह्मचर्यरूप शुभ अनुष्ठान को स्वीकार करता हूं। अकल्पनीय को छोडकर

पापपरि-
हारपूर्वक
धर्म-
स्वीकारः

करण चरण रूप कल्प को स्वीकार करता हूं। आत्मा के मिथ्यात्व को त्यागकर सम्यक्त्व को स्वीकार करता हू, अज्ञान को त्यागकर ज्ञानको अङ्गीकार करता हूं, नास्तिक वादरूप अक्रियाको छोडकर आस्तिकवाद रूप क्रिया को ग्रहण करता हूं, आत्मा के मिथ्यात्व परिणाम रूप अबोधि को छोडकर सकल दुःखनाशक जिनधर्म प्राप्ति रूप बोधि को ग्रहण करता हूं और जिनमत से विरुद्ध पार्श्वस्थ निह्नव तथा कुतीर्थि-सेवित अमार्ग को छोडकर ज्ञानादि रत्नत्रय रूप मार्ग को स्वीकार करता हूं। उसी प्रकार जो अतिचार स्मरण में आता है या छद्मस्थ अवस्था के कारण स्मरण में नहीं आता है तथा जिसका प्रतिक्रमण किया हो या अनजानवश जिसका प्रतिक्रमण नहीं किया हो उन सब दैवसिक अतिचारों से निवृत्त होता हूं। इस प्रकार प्रतिक्रमण करके संयत विरतादिरूप निज आत्मा का स्मरण करता हुआ सब साधुओं को वन्दना करता है। संयत [वर्त्तमान में सकल सावद्य व्यापारों से निवृत] विरत [पहले किये हुए पापों की निन्दा और भविष्यकालके

पापपरिहारपूर्वक धर्म-स्वाकारः

लिये; संवर करके सकल पापों से रहित, अतएव अतीत अनागत वर्त्तमान कालीन सब पापों से मुक्त, अनिदान-नियाणा रहित; सम्यग्दर्शन सहित तथा माया मृषाका त्यागी ऐसा मैं श्रमण, अढार द्वीप, पन्द्रह क्षेत्र (कर्मभूमियों) में विचरनेवाले, रजोहरण पूंजनी पात्र को धारण करनेवाले और डोरासहित मुखवस्त्रिका को मुख पर बांधनेवाले, पांच महाव्रत के पालनहार और अठारह हजार शीलाङ्गरथ के धारक तथा आधाकर्म आदि ४२ दोषों को टालकर आहार लेनेवाले ४७ दोष टालकर आहार भोगने वाले, अखण्ड आचार चारित्र को पालने वाले ऐसे स्थविरकल्पी, जिनकल्पी मुनिराजों को 'तिक्खुत्तो' के पाठ से वन्दना करता हूं ॥२२॥

मूलम्-पव्वावणायरिए भंते केवामेव पव्वावेइ ? गोयमा ! सोभणंसि तिहिकरण दिवस नक्खत्तमुहुत्तजोगंसि पव्वावणायरिए पव्वावेइ। पव्वज्जाए

पापपरि-
हारपूर्वक
धर्म-
स्वीकारः

पुण विहिं उवदंसेमि समणाउसो पव्वजाए समएणं जाव पढमं तिक्खुत्तो सद्धिं सव्वे निग्गंथे वंदेइ नमंसेइ तओ पच्छा चोलपट्टगं धारेइ। एवं उरोबंधणं (चद्दर) धारे तओ पच्छा गोयमा ! सलिंगं मुहपत्तिं मुहेण सद्धिं बंधे मुहपत्तीणं भंते किं पमाणे ! गोयमा ! मुह पमाणा मुहपत्ति मुहपत्तीणं भंते ! केण वत्थेण किज्जइ ? गोयमा ! एगस्स वि सेय वत्थस्स णं अट्ठ पुडलं मुहपत्ति करेज्जा। कस्स ट्ठेणं मुहपत्तीणं अट्ठ पुडला ? गोयमा ! अट्ठ कम्म-दहणट्ठयाए एग कण्णओ दुच्च कण्णप्पमाणेणं दोरेण सद्धिं मुहे बंधेज्जा से केणट्ठेणं भंते मुहपत्ति त्ति पवुच्चइ ? गोयमा ! जण्णं मुहे अंते सइवट्टति से तेणट्ठेणं मुहपत्ति त्ति पवुच्चइ ? कस्सट्ठे भंते ! मुहपत्तिं दोरेण सद्धिं बंधइ ? गोयमा ! सलिंग वाउ जीवरक्खणट्ठाए मुहपत्तिं बंधेइ। जइ णं भंते ! मुहपत्ती

वाउ जीवरक्खणट्ठाए किं सुहुम वाउकायजीव रक्खणट्ठाए वा बायरवाउकाय-जीव रक्खणट्ठाए? गोयमा! णो णं सुहुमवाउकायजीवरक्खणट्ठाए बायर-वाउ जीव रक्खणट्ठाए तेणं छक्काय जीव रक्खणं भवइ एवं ते सव्वे वि अरिहंता पवुच्चंति ॥२३॥

शब्दार्थ—[भंते] हे भगवन्! [पव्वावणायरिए] प्रव्राजनाचार्य [सोभणंसि] शुभ [तिहि करण–दिवस नक्खत्त–मुहुत्त] तिथि करण दिवस नक्षत्र मुहूर्त [जोगंसि] और योग में [पव्वावणायरिए] प्रव्राजनाचार्य [पव्वावेइ] प्रव्रज्या अर्थात् दीक्षा देते हैं। [गोयमा] हे गौतम! [पव्वज्जाए पुण] दीक्षा की [विहिं] विधि [उवदंसेमि] कहता हूं [समणाउसो] हे आयुष्मंत श्रमणोऽ[पव्वज्जाए] दीक्षाके [समएणं] समय [जीवो] जीव दीक्षा लेनेवाला [पढमं] प्रथम [तिक्खुत्तो सद्धिं] तिक्खुत्तो के पाठ के साथ [सव्वे] सर्व [निग्गंथे] निर्ग्रंथोंको [वंदेइ] वंदना और [नमंसेइ] नमस्कार करे [तओ पच्छा]

तदनन्तर [एगं] एक [चोलपट्टगं] चोलपट्टक [धारेइ] धारण करे। [एगं] एक [उरो-बंधणं] ऊरुबन्धन अर्थात् छाती और शरीर ढांकनेका वस्त्र [चद्दर] [धारे] धारण करे [तओ पच्छा] उसके पीछे [गोयमा] हे गौतम ! [सलिंगं] स्वलिंग-मुनिवेष के चिह्न स्वरूप [मुहपत्तिं] मुखवस्त्रिका को [मुहेण सद्धिं] मुख के साथ बांधे। गौतम स्वामी पूछते हैं [भंते] हे भगवन् [मुहपत्तीणं] मुखवस्त्रिका का [किं पमाणे] क्या प्रमाण हैं? [गोयमा] हे गौतम ! [मुह पमाणा] मुखके प्रमाण की मुहपत्ती, मुख वस्त्रिका होती है फिर गौतम स्वामी पूछते हैं [भंते] हे भगवन् [मुहपत्तीणं] मुखवस्त्रिका [केण वत्थेणं] किस वस्त्र से [किज्जइ] की जाती है [गोयमा] हे गौतम ! [एगस्स वि] एक ही [सेयवत्थस्स णं] श्वेतवस्त्र की [अट्ठपडलं] आठपुटवाली [मुहपत्तिं] मुखवस्त्रिका [करेज्जा] बनानी चाहिए फिर गौतम स्वामी पूछते हैं [कस्सट्ठेणं] किस कारण से [भंते] हे भगवन् [मुहपत्तीणं] मुखवस्त्रिका [अट्ठपुडला] आठपुटवाली कही है ? [गोयमा !] हे

गौतम ! [अट्ठकम्मदहणट्ठयाए] आठ कर्म दहन करने के लिये आठ पुटवाली मुखवस्त्रिका कही गई है उसके [एग्गकण्णओ] एक कान से [दुच्चकण्णप्पमाणेणं] दूसरे कान तक के प्रमाण युक्त [दोरेण सद्धिं] दोरे के साथ [मुहे] मुह के ऊपर [बंधेज्जा] बांधे फिर श्रीगौतम स्वामी पूछते हैं [से केणट्ठेणं] किसकारण से [भंते] हे भगवन् [मुहपत्ति त्ति] मुख वस्त्रिका इस नामसे [पवुच्चइ] कही जाती है—हे गौतम ! [जण्णं] जो [मुह] मुख के [अंते] पास [सइ] सदा [वट्टति] रहती है [से तेणट्ठेणं] उस कारण से [मुहपत्ति त्ति] मुखवस्त्रिका इस नामसे [पवुच्चइ] कही जाती है फिर गौतम स्वामी पूछते है [कस्सट्ठे] किस कारण से [भंते] हे भगवन् [मुहपत्तिं] मुखवस्त्रिका [दोरेण सद्धिं] दोरेके साथ [बंधइ] बान्धी जाय ? भगवान् कहते हैं हे गौतम ! [सलिंग] अरिहंत के अनुयायियोंके लिंग [चिह्न] मुनिवेषके कारण और [वाउजीवरक्खणट्ठाए] वायुकाय के जीवों की रक्षा के लिये मुख वस्त्रिका मुह पर बांधनी चाहिये। [जइ णं] जो [भंते] हे भगवन्

[मुहपत्ती] मुहवस्त्रिका [वाउजीवरक्खणट्ठाए] वायुकाय के जीव के रक्षण के लिए [ते] वे [किं] क्या [सुहुमवाउकायरक्खणट्ठाए] सूक्ष्मवायुकायके जीवों के रक्षण के लिए है [व] अथवा [बायरवाउकायजीवरक्खणट्ठाए] बादरवायुकाय के जीवों की रक्षा के लिये है ? [गोयमा !] हे गौतम ! [णो णं सुहुमवाउकाय–जीव–रक्खणट्ठाए] सूक्ष्मवायुकायके जीवों की रक्षा के लिये नहीं परन्तु [बायरवाउकायजीवरक्खणट्ठाए] बादरवायुकाय जीवों की रक्षा के लिये है [तेणं] ऐसा करने से [छक्कायजीवरक्खणं भवइ] षट्काय के जीवोंका रक्षण होता है [एवं] इस प्रकार [ते] वे [सव्व] सभी [अरिहंता] अर्हन्त भगवन्त [पवुच्चंति] कहते हैं।

भावार्थ—हे भगवन् प्रव्राजनाचार्य किस प्रकारसे प्रव्रजित करते हैं ? [दीक्षा देते हैं ?] हे गौतम ! शोभनीय तिथि करण दिवस नक्षत्र मूहूर्तके योग में प्रव्राजनाचार्य प्रव्रजित करते हैं। अर्थात् दीक्षा देते हैं। अब में दीक्षा देनेकी विधि कहता हूं

हे श्रमण आयुष्मन् प्रव्रज्या लेनेवाला प्रव्रज्या लेते समय प्रथम तिक्खुत्तोके पाठ के साथ सब निर्ग्रंथोंको मुनियों को वंदना करे, नमस्कार करे तदनन्तर एक चोलपट्ट पहेरे उरो बंध [चद्दर] को ओढे एवं हे गौतम! तत्पश्चात् साधुचिह्न मुहपत्तिको मुखके साथ बांधे। हे भगवन् मुहपत्तीका क्या प्रमाण है? मुखके बराबर मुहपत्ती होनी चाहिए? हे गौतम! एक श्वेतवस्त्रकी आठ पुटवाली मुहपत्ती करनी चाहिए हे भगवन् मुहपत्ती आठ पडवाली होने का क्या कारण है? हे गौतम! आठ कर्मका नाश करने के लिए आठपुटवाली मुहपत्ती बनाई जाती है, उसे एक कानसे दूसरा कान पर्यन्त के प्रमाण युक्त दोरा के साथ मुख पर बांधे। हे भगवान् किस कारण से मुहपत्ती इस प्रकार कही जाती है? हे गौतम! जो कायम मुख के ऊपर रहती है अतः उसको मुहपत्ती कहते हैं। हे भगवन् मुहपत्तीको दोरे के साथ क्यों बांधी जाती है? साधुचिह्न होने से एवं वायुकाय जीव की रक्षा के लिए मुहपत्ती बांधनी चाहिए।

हे भगवन् यदि मुहपत्ती वायुकायके जीवों की रक्षा के लिये है, तो सूक्ष्मवायुकाय के रक्षणार्थ है ? अथवा बादरवायुकाय के रक्षा के लिए है हे गौतम ! सूक्ष्मवायुकाय के लिए नहीं बादरवायुकायकी रक्षा के लिये हैं जिससे छहों कायके जीवों की रक्षा हो जाती है इस प्रकार सब अरिहंत भगवन्त कहते हैं ॥२३॥

मूलम्—से केणट्ठेणं भंते बायरवाउजीवकायाणं सुहुमंति नामधिज्जा गोयमा ! अदिस्संति मंस चक्खुणा तेणट्ठेणं गोयमा ! सुहुमंति नामधेज्जा सलिंगस्स णं मुहपत्तिं माइयाइं नामधिज्जाइं मुहपत्तिं मुहे बंधइ वाउजीवस्स रक्खणट्ठं तस्सट्ठं मुहपत्ति अरिहंता सलिंगं भासंति मुहपत्तिं सलिंग विणयमूलधम्मं एवं सद्धिं बंधित्ता तओ पच्छा रयहरण पायकेसरियं कक्खेणं दलेइ दलइत्ता करमज्झे पायबंधणं गिण्हेइ जं वत्थं ते पायइं ठवित्ता पायाइं बंधेइ तं पाय-

बंधणं वत्थ पवुच्चइ एवं पावठवणं वि एवं सव्वोवही वि णायव्वा। तओ पच्छा आयरियाणं वंदइ नमंसइ पुरत्थाभिमुहे गुरुणो अभिमुहे वा पंजली उडे चिट्ठइ पुणो एवं वएज्जा भंते! मम सामाइयं चरित्तं पडिवज्जावेह ? से आयरिए एवं वएज्जा देवाणुप्पिया! एवं नम्मोक्कारमंतं भणेह तओ पच्छा ईरियावहिया अवरनामो गमणागमणो आलोयण सुत्तं भणेइ। तओ पच्छा तस्सुत्तरीकरणेणं जाव अप्पाणं वोसिरामि जहा गुरु भणावेइ तहा सीसे भणेज्जा तओ पच्छा आयारिए एवं वएज्जा देवाणुप्पिया! चउवीस उक्कीत्तणत्थ वंज्झाणओ काउसग्ग करेइ चउविसत्थएणं। तओ पच्छा सीसे काउसग्गं णमोक्कारेणं पारित्ता चउवीसत्थयं भणिज्जा तओ पच्छा सेहे एवं वदे भंते! सामाइयं चरित्तं पडिज्जावेह ? आयरिए भणेज्जा हंता पडिवज्जावेमि ॥२४॥

बादरवायु-
कायानां
'सूक्ष्म'
नाम-
कारणम्

शब्दार्थ---[से] तो [केणट्ठेणं] किस कारण से [भंते] हे भगवन् [बायरवाउजीव-कायाणं] बादरवायुकाय के जीवों का [सुहुमं णामधिज्जा] सूक्ष्म ऐसा नाम कहा है? [गोयमा !] हे गौतम ! [अदिस्सति मंसचक्खुणा] चर्मचक्षु से दृश्यमान नहीं होते हैं? [तेणट्ठेणं] इस कारण से [गोयमा] हे गौतम ! [सुहुमंति] सूक्ष्म ऐसा [णामधेज्जा] नाम कहा है [सलिंगस्स णं] मुनिवेष के लिए [मुहपत्तिमाइयाइं] मुखवस्त्रिका आदि [नामधिज्जाइं] नाम कहा है। [मुहपत्तिं] मुखवस्त्रिका [मुहे बंधेइ] मुख पर बांधते हैं [वाउजीवस्स] वाउकाय के जीवों की [रक्खणट्ठं] रक्षा के लिये [तस्सट्ठं] इस कारण से [मुह-पत्तिं] मुहपत्ती को [अरिहंता] अरिहंतोने [सलिंग] स्वलिंग साधु–चिह्न [भासंति] कहा है। [मुहपत्ति] मुखवस्त्रिका [सलिंग] स्वलिंग और [विणयमूलधम्म] विनय मूलधर्म रूप है [एवं] इसलिए [मुहेण सद्धिं] मुख के साथ [बंधित्ता] बांधकर [तओ पच्छा] तदनन्तर [रयहरणं] रजोहरण [पायकेसरियं] पादकेसरिका–गुच्छे को [कक्खेणं] कांख

बादरवायु-कायानां 'सूक्ष्म' नाम-कारणम्

में [दलेइ] लेवे [दलइत्ता] रजोहरण और पादकेसरिका–गोच्छे कों कांख में लेकर [करमज्झे] हाथ में [पायबंधणं गिण्हइ] पात्रबंधन–पात्र को बांधने के वस्त्र को [जं वत्थंते] जिस वस्त्र में [पायाइं] पात्रों को [ठवित्ता] रखकर [पायाइं बंधेइ] पात्रों को बांधते हैं इसलिए [तं] उसको [पायबंधणं वत्थं] पात्र बंधन वस्त्र-पात्रों को बांधने का वस्त्र [पवुच्चइ] कहते हैं [एवं] इसी प्रकार से [पायठवणं वि] पात्र स्थापनक–जिस वस्त्र पर पात्र रखे जाते हैं वह [एवं] इसी प्रकार से [मव्वोवही वि] और भी सभी उपधी को [णायव्वा] जान लेना चाहिये। [तओ पच्छा] इसके बाद अर्थात् रजोहरण पात्र बन्धन पात्राच्छादन वस्त्रादि ग्रहण करने के बाद [पुणो] फिर [आयरियाणं] आचार्य को [वंदइ] वंदना करे [नमंसइ] नमस्कार करे वंदना नमस्कार करके [पुरत्थाभिमुहे] पूर्व दिशा की ओर मुख रख कर के अथवा [गुरुणो अभिमुहे वा] गुरु के सन्मुख मुख रख कर [पंजलीउडे] दोनों हाथ जोडकर [चिट्ठेइ] खडा रहे [पुणो एवं वएज्जा]

बादरवायुकायानां 'सूक्ष्म' नामकारणम्

तत्पश्चात् फिर इस प्रकार गुरुको कहे [भंते] हे भगवन् आप [मम] मुझ को [सामाइयं चरित्तं] सामायिक चारित्र [पडिवज्जावेह] अंगीकार करावे [से आयरिए] फिर वह आचार्य [एवं वएज्जा] इस प्रकार कहे [देवाणुप्पिया] हे देवानुप्रिय ! [एगं] एक [नमोक्कारमंतं नवकार मंत्र [भणेह] पढो [तओ पच्छा] इसके पीछे [इरियावहियाए] इरियावही [अवरनामे] जिसका दूसरा नाम [गमणागमणे] गमनागमन है इस [आलोयणा सुत्तं] आलोचना सूत्रको [भणेह] बोलो । [तओ पच्छा] उसके बाद [तस्सुत्तरीकरणेणं] तस्योत्तरीकरण [जाव] यावत् [अप्पाणं वोसिरामि] आत्मा को वोसराता हूं यहां तकका पूरा पाठ [जहा गुरु भणावे] जैसा गुर भणावे [तहा] उस प्रकार [सीसे भणेज्जा] शिष्य भणे [तओ पच्छा] उसके पीछे [आयरिए] आचार्य [एवं वएज्जा] इस प्रकार कहे [देवाणुप्पिया] हे देवानुप्रिय ! [चउवीसत्थएणं] चोईस लोगस्तव [झाणाओ] ध्यान में–मन में [भाणियव्वं] बोलना चाहिये [चउविसत्थएण] लोगस्तव के पाठ से

बादरवायु-
कायानां
'सूक्ष्म'
नाम-
कारणम्

[काउसग्गं] कायोत्सर्ग [करेइ] करे।

[तओ पच्छा] तत्पश्चात् [सीसे] शिष्य [काउसग्गं] कायोत्सर्ग [णमोक्कारेण] नवकार मंत्र से [परित्ता] पालकर [एगं] एक [चउवीसत्थयं] लोगस्स का पाठ [भणिज्जा] बोले [तओ पच्छा] उसके पीछे [सेहे] शिष्य [एवं वएज्जा] इस प्रकार कहे [भंते] हे भगवन्! आप मुझे [सामाइयचरित्तं] सामायिक चारित्र [पडिवज्जावेह] अंगीकार करावे फिर [आयरिए भणेज्जा] आचार्य कहे [हंता] हां [पडिवज्जावेमि] अंगीकार कराता हूं ॥२४॥

भावार्थ—हे भगवन् किस कारण से बादरवायुकायके जीवों का सूक्ष्म ऐसा नाम कहा है? हे गौतम! वे चर्मचक्षुवालों से देखे नही जाते है इस कारण से हे गौतम! सूक्ष्म ऐसा नाम कहा है। मुनिवेष के लिये मुखवस्त्रिका आदि नाम कहा है। मुखवस्त्रिका मुखपर बांधते हैं। वायुकाय के जीवों की रक्षा के लिये मुहपत्ती को अरिहंतोने स्वलिग—साधु चिह्न कहा है। मुखवस्त्रिका स्वलिंग और विनयमूल धर्मरूप है, इसलिए

बादरवायु-
कायानां
'सूक्ष्म'
नाम-
कारणम्

उसको मुख के साथ बांध कर तदनन्तर रजोहरण पादकेसरिका–गुच्छे को कांख में लेकर हाथ में पात्रे को बांधने के वस्त्र लेवें जिस वस्त्र में पात्रों को रखकर पात्रों को बांधते है, उसको पात्र बन्धन वस्त्र कहते हैं। इसी प्रकार से पात्रस्थापक–जिस वस्त्र पर पात्र रखे जाते हैं वह एवं इसी प्रकार से अन्य सभी उपधि को जान लेना चाहिये। रजोहरण पात्रबन्धन पात्राच्छादन वस्त्रादि ग्रहण करने के बाद आचार्य को वंदना करे नमस्कार करे वंदना नमस्कार करके पूर्व दिशा की ओर मुख रख के अथवा गुरुके सन्मुख मुख रख कर दोनों हाथ जोडकर खडा रहे फिर इस प्रकार गुरु को कहे–हे भगवन् आप मुझ को सामायिक चारित्र अंगीकार करावे। फिर वह आचार्य इस प्रकार कहे–हे देवानुप्रिय ! एक नवकार मंत्र पढो इसके पीछे इरियावही जिसका दूसरा नाम गमनागमन है इस आलोचना सूत्र को बोलो। उसके बाद तस्योत्तरीकरण यावत् आत्मा को वोसराता हूं यहां तक का पूरा पाठ जैसा गुरु भणावे उस प्रकार शिष्य भणे।

उसके पीछे आचार्य इस प्रकार कहे—हे देवानुप्रिय ! चोईस लोगस्तव ध्यान में—मनमें बोलना चाहिये लोगस्स के पाठ से कायोत्सर्ग करे। तत्पश्चात् शिष्य कायोत्सर्ग नवकार मंत्र से पालकर एक लोगस्स बोले उसके पीछे शिष्य इस प्रकार कहे—हे भगवन् आप मुझे सामायिकचारित्र अंगीकार करावे फिर आचार्य कहे—हां अंगीकार करवाता हूं ॥२४॥

मूलम्—तओ पच्छा आयरिए एवामेव सामाइयं चरित्तं पडिवज्जावेह तए णं सेहे ससद्धे आयरियवयणानुसारं एवं वएज्जा करेमि भंते सामाइयं सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जाव जीवाए तिविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणेमि मणसा वयसा कायसा तस्स भंते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। तओ पच्छा सेहे थय थुइ मंगलं अवरनामं दू नमोत्थुणं भणेज्जा तएणं आयरिए सेहं सिक्खावेइ णो

कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा मुहे मुहपत्तिं अबंधित्तए एयाइं कज्जाइं करित्तए चिट्ठित्तए वा निसीत्तए वा तुयट्टित्तए वा निद्दाइत्तए वा पयलाइत्तए वा धम्मकहं कहित्तए वा सव्वं आहारं एसित्तए वा वत्थं वा पडिलेहइत्तए वा गामाणुगामं दूइज्जित्तए वा सज्झायं वा करित्तए वा झाणं वा झाइत्तए वा काउसग्गं वा ठाणं वा ठाइत्तए वा ? कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा मुहे मुहपत्तिं बंधइत्ता एयाइं कज्जाइं करेत्तए चिट्ठित्तए वा जाव काउसग्गं ठाणं ठाइत्तए वा ॥२५॥

शब्दार्थ—[तओ पच्छा] उसके पीछे [आयरिए] आचार्य [एवामेव] इसी प्रकार [सामाइयचरित्तं] सामायिक चारित्र [पडिवज्जावेह] अंगीकार करावे [तएणं] उसके पीछे [सेहे] शिष्य [ससद्धे] श्रद्धायुक्त होकर [आयरियवयणानुसारं] आचार्य के वच-

नानुसार [एवं] इस प्रकार से [वएज्जा] कहे [करेमि भंते सामाइयं] हे भगवन् मैं सामाइक करता हूं [सव्वं सावज्जं जोगं] सब सावद्य जोग का [पच्चक्खामि] प्रत्याख्यान करता हूं [जाव जीवाए] जीवन पर्यन्त [तिविहं तिविहेणं] तीन करण और तीन जोगों से [न करेमि] नहीं करूंगा [न करावेमि] अन्य के द्वारा नहीं कराऊंगा [करंतं] करते हुए [अन्नं] दूसरे को [न समणुजाणेमि] अनुमोदन नहीं करूंगा [मनसा] मनसे [वयसा] वचन से [कायसा] काय से [तस्स] उसका [भंते] हे भगवन् [पडिक्कमामि] प्रतिक्रमण करता हूं [निंदामि] निंदा करता हूं। [गरिहामि] गर्हा करता हूं। [अप्पाणं] सावद्यकारी आत्मा का [वोसिरामि] त्याग करता हूं। [तओ पच्छा] उसके पीछे [सेहे] शिष्य [थयथुइमंगल] स्तवस्तुति मंगलस्वरूप [दू नमोत्थुणं] दो नमोत्थुणं का पाठ [भणेज्जा] भणे [तएणं] तदनन्तर [आयरिए] आचार्य [सेहं] शिष्य को [सिक्खावेइ] शिक्षा देवे [णो कप्पइ] नहीं कल्पता है [निग्गंथाणं] निर्ग्रन्थों

स्थानमें स्थिति रूप कायोत्सर्ग करना ॥२५॥

मूलम्—णो कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा अण्णालिंगे वा गिहिलिंगे वा कुलिंगे वा होइत्तए, कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा सलिंगे वा सया-वट्टित्तए, साहुवेसेणं करमाणे भंते ! जाव किं जणयइ ? गोयमा ! लाघवं जण-यई, अहवा भावेणं णाणं जाव तवं जणयइ, एवामेव भंते ! जे अईया, जे पडुपन्ना जे आगमिस्सा अरिहंता भगवंता किं ते सया सलिंगे वट्टइस्संति ? हंता, गोयमा ! सव्वे वि अरिहंता एवं सलिंगे पवट्टिस्संति ॥२६॥

शब्दार्थ—[णो कप्पइ] नहीं कल्पता है [निग्गंथाणं वा] निर्ग्रन्थों को [निग्गंथीणं वा] निर्ग्रन्थियों को [अण्णालिगे वा] अन्यवेष [गिहिलिंगे वा] गृहस्थ वेष [कुलिंगे वा] कुवेष [होइत्तए] होना [कप्पइ] कल्पता है [निग्गंथाणं वा] निर्ग्रन्थों को [निग्गंथीणं वा]

करता हूं। निंदा करता हूं। गर्हा करता हूं सावद्यकारी त्याग करता हूं। उसके पीछे शिष्य स्तव स्तुति मंगलरूप (नमोत्थुणं) का पाठ भणे। तदनन्तर आचार्य शिष्य को शिक्षा देवें निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थियों को मुखपर मुहपत्ति विना बांधे ये आगे कहे जानेवाले कार्यों को करना कल्पता नहीं है। इसका नाम निर्देश पूर्वक सूत्रकार कहते हैं—खडा रहना, बैठना अथवा त्वग् वर्तन करना—पसवाडा बदलना निद्रा लेना, उच्चार प्रश्रवण, कफ, नासिका का मल, इनको परठवना नहीं कल्पता है। धर्मकथा कहना तथा सर्व प्रकारके आहार का ग्रहण करना तथा भांडोपकरणकी प्रतिलेखना करना तथा एक ग्राम से दूसरे गाम विहार करना तथा स्वाध्याय करना तथा ध्यान करता एक स्थान में स्थितिरूप कायोत्सर्ग करना ये सब कार्य मुख पर मुखवस्त्रिका बांधे विना करना नहीं कल्पता है। निर्ग्रन्थ एवं निर्ग्रन्थियोंको मुखपर मुहपत्तीको बांधकर ये नीचे बताये कार्यों का करना कल्पता है वे कार्य ये हैं—खडा रहना यावत् पूर्वोक्त सब कार्य तथा एक

सग्गं वा ठाणं ठाइत्तए] एक स्थान में स्थित रूप कायोत्सर्ग करना ये सब पूर्वोक्त कार्य मुख पर मुखवस्त्रिका बांधे विना करना नहीं कल्पता है। [कप्पइ] कल्पता है [निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा] निर्ग्रंथों को और निर्ग्रंथियों को [मुहे] मुख पर [मुहपत्तिं] मुखपत्ती को [बंधइत्ता] बांधकर [एयाइ] ये सब [कज्जाइ] कार्यो का [करेत्तए] करना कल्पता है वे कार्य ये हैं–[चिट्ठित्तए वा] खडा रहना [जाव] यावत् पूर्वोक्त सब कार्य तथा [काउसग्गं ठाणं ठाइत्तए वा] एक स्थान में स्थितिरूप कायोत्सर्ग करना ॥२५॥

भावार्थ—उसके पीछे आचार्य इसी प्रकार सामायिक चारित्र अंगीकार करावे उसके पीछे शिष्य श्रद्धायुक्त होकर आचार्य के वचनानुसार इस प्रकार से कहे हे भगवन् मैं सामायिक करता हूं सब सावद्य योगका प्रत्याख्यान करता हूं जीवन पर्यन्त तीन करण और तीन जोगों से नहीं करूंगा अन्य के द्वारा नहीं कराऊंगा। और करते हुए दूसरे को अनुमोदन नहीं करूंगा हे भगवन् मन वचन काय से उसका प्रतिक्रमण

को [निग्गंथीणं वा] अथवा निर्ग्रंथियों को [मुहे] मुखपर [मुहपत्तिं] मुहपत्ती को [अबंधित्ता] विना बांधे [एयाइं] ये आगे कहे जानेवाले [कज्जाइं] कार्योका [करित्तए] करना कल्पता नहीं है। इसका नाम निर्देश पूर्वक सूत्रकार कहते हैं। [चिट्ठित्तए वा] खडा रहना अथवा [निसीत्तए वा] बैठना अथवा [तुयट्टित्तए वा] त्वग्वर्तन करना–पसवाडा बदलना [निद्दाइत्तए वा] निद्रा लेना [पयलाइत्तए वा] प्रचला अर्धनिद्रा लेना [उच्चारं] उच्चार [पासवणं वा] प्रश्रवण [खेलं वा] कफ [सिंघाणं वा] नासिका का मल इनको [परिट्ठवित्तए वा] परठवना नहीं कल्पता है तथा [धम्मकहं कहित्तए वा] धर्मकथा का कहना तथा [सव्वं] सर्व प्रकार के [आहारं] आहार का [एसित्तए वा] ग्रहण करना तथा [भंडोवगरणाइं] भांडोपकरण की [पडिलेहइत्तए वा] प्रतिलेखना करना तथा [गामाणुगामं] एक ग्राम से दूसरे ग्राम [दूइज्जित्तए वा] विहार करना तथा [सज्झायं वा करित्तए] स्वाध्याय करना तथा [झाणं वा झाइत्तए] ध्यान करना [काउ-

निर्ग्रन्थियों को [सलिंगे] स्वलिङ्ग से [सया] सर्वदा [वट्टित्तए] रहना, [साहुवेसेणं कर-माणे भंते ! जीवे किं जणयइ] साधुवेष में रहता हुआ हे भदन्त ! जीव क्या उत्पन्न करता है [गोयमा !] हे गौतम ! [लाघवं जणयइ] निरहंकारपना को उत्पन्न करता है [अहवा] अथवा [भावेवं णाणं जाव तवं जणयइ] भाव से ज्ञान यावत् तप को उत्पन्न करता है [एवामेव] इस रीति से भी [भंते !] हे भदन्त ! [जे अईया] जो भूतकाल के [जे पडुपन्ना] जो वर्तमानकाल के [जे आगमिस्सा] जो भविष्यत् काल के [अरिहंता भगवंता] अरि-हंत भगवन्त [किं ते सया सलिंगे वट्टइस्संति ?] क्या वह सर्वदा स्वलिङ्ग–साधुवेष में रहेंगे ? [हंता गोयमा !] हां गौतम [सव्वे वि अरिहंता एवं सलिंगे पवट्टिस्संति] सब अरिहंत इसी प्रकार स्वलिंग से रहते हैं ॥२६॥

भावार्थ—निर्ग्रन्थ और निर्गन्थियों को अन्य वेष में अथवा गृहस्थ वेष में अथवा कुवेष में रहना नहीं कल्पता है, निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को स्वलिंग साधुवेष में सदा

निर्ग्रन्था-दिनां वेष-धारणम्

रहना कल्पता है, साधु वेष में रहता हुआ हे भदन्त ! जीव क्या उत्पन्न करता है ? हे गौतम ! निरभिमानपना उत्पन्न करता है, अथवा भाव से ज्ञान यावत् तप को उत्पन्न करता है, इसी प्रकार से हे भदन्त ! जो भूतकाल के, जो वर्तमानकाल के, जो भविष्यत् काल के अरिहंत भगवन्त हैं क्या वे सर्वदा स्वलिङ्ग–साधु वेष में रहते हैं, हां गौतम सब अरिहंत इसी प्रकार स्वलिङ्ग से रहते हैं ॥२६॥

मूलम्–रयहरणं निसीहिया सहियं धरंति, सदोरकमुहपत्तिं मुहोवरिबंधणं, गोच्छगं, पडिग्गहं पडिधरंति, पाउहरणं सरीररक्खणट्ठं, चोलपट्टगं पडिधारणं, नाणदंसणं–चरित्तआराहगा सलिंगीणो हवंति। गिहत्था, पडिमाधारगा, निसीहिया वज्जियं रयोहरणधारगा गिहिलिंगिणो हवंति। बोहधम्मिणो तहा बावा जोगिणो तहा पंचग्गी तावगा अण्णलिंगिणो हवंति, अद्धसरीरं वत्थेण आव-

रियं, अद्धसरीरं अनावरीयं, मुहपत्ती रहियं लघुदंडक रयोहरण धारगा, हत्थे दंड धारगा अहवा नग्गसरीरा, मयूरपिच्छी धारगा, कमंडलधारगा एए कुलिंगिणो हवंति ॥२७॥

स्वलिङ्गीनामन्यलिङ्गीनां च साधुवेषधारण प्रकारः

भावार्थ—स्वलिंग–रजोहरण निशीथिका सहित रखे, डोरासहित मुखवस्त्रिका मुह पर बांधे, गोच्छक और पात्र तथा चद्दर ओढे, चोलपट्टक पहिरे, ज्ञान–दर्शन–चारित्र के आराधना करनेवाले स्वलिङ्गी होते हैं। गिहिलिंगी–गृहस्थ के वेश में रहनेवाले श्रावक आदि, पडिमाधारी श्रावक रजोहरण के ऊपर निशीथिया नहीं बांधनेवाले, । अन्यलिंगी–बौद्धधर्मी तथा अन्य बाबा योगी आदि हैं, कुलिंग–आधाशरीर पर कपडा ओढकर और आधा शरीर उघाडा रखना, मुहपत्ती नहीं बांधना, नानी दांडी का रजोहरण रखना, हाथ में दण्डा रखना अथवा नग्न शरीर रहना, मोरपिंछी रखना, कमण्डलु विगेरे रखना ये कुलिंगी कहे जाते हैं। लम्बी मुहपत्ती बांधने वाले, दया, दान को उत्थापने वाले,

माता और गणिका को समान समझने वाले आधाकार्मिक और अभिहडे आहार लेने वाले, कच्चा पानी में राख-नाखा होय ऐसे पानी काम में लेनेवाले ये सब कुलिंगी कहे जाते हैं ॥२७॥

मुखवस्त्रिका रखनेकी आवश्यकता

मूलम्-मुखवस्त्रिका विना कथं मुख मशकादि संपातिम जीवोदक बिन्दु प्रवेशरक्षा ? कथं च क्षुत् कासित जृम्भितादिषु देशनादिषु चोष्ण मुख मरुतविराध्यमान बाह्य वायुकायिक रक्षा ? कथं च रजोरेणु प्रवेशरक्षा ? परं प्रति निष्ठ्यूतलवस्पर्शरक्षा च विधातुं शक्या ? ॥२८॥

भावार्थ--विना मुहपत्ती मुख में प्रवेश करते मच्छर, मक्खी, या अन्य सूक्ष्मजीव कि जो ऊडते रहते हैं एवं जलबिन्दुओं को कैसे रोक सके ? एवं छींक, खांसी, बगासा

आदि एवं देशना-बोलते समय मुख में से नीकलते उष्ण वायु द्वारा मरते (बादर) वायुकायिक जीवों की रक्षा कैसे होसके ? एवं अन्य मनुष्य के ऊपर उडते थूकके बिंदुओं का स्पर्श की रूकावट कैसे होसकती रजोहरण एवं गोच्छा के विना मकान एवं पात्रा कैसे पुंजसके ? अतः रजोहरण एवं मुखवस्त्रिका अवश्य रखने चाहिए ॥२८॥

मूलम्-एवामेव भंते ! पवयणकुसला, सयमेव वि पवज्जा गिण्हेज्जा ? हंता गोयमा ! ॥२९॥

शब्दार्थ---[एवामेव भंते] इस प्रकार हे भगवन् ! [पवयणकुसला] प्रवचन में कुशल [सयमेव वि] स्वयमेव भी [पवज्जा गिण्हेज्जा] दीक्षा ग्रहण कर सकता है ? [हंता गोयमा !] हां गौतम ! कर सकता है ॥२९॥

भावार्थ---इस प्रकार प्रवचन में कुशल जैन तत्त्व के निपुण खुद भी दीक्षा ग्रहण कर सकता है ? हां गौतम ! कर सकता है ॥२९॥

मूलम्--सलिंगोवगरण उवही भंडमत्ताइं केवामेव भवंति ? गोयमा ! गामंसि वा णगरंसि वा जाव रायहाणिंसि वा सयमेव वि करेह अन्नेण वि करावेह जं भवइ गहणं अडवियंसि वा तस्स णं गाढागाढे कारणेहिं देवा वि दलयंति, अणाई कालेणं जीयाच्चार निच्चमेवं भवइ, देवाणं अयं भावणा वि भवइ सलिंगो कारण भंडमाइयाइं उवहि वि दलयंति दढभावेणं जं भवंति जीवा तस्स णं देवा दलयंति, णो अन्नं दलयंति, गोयमा ! केवलीणं सव्वठाणे देवा दलयंति, जहा भरहे राया से त्तं, साहू पवज्जा सामग्गियं ॥३०॥

शब्दार्थ--[सलिंग] स्वलिंग [उवगरण] उपकरण [उवही] उपधी [भंडमत्ताइं] वस्त्र पात्रादि [केवामेव भवंति] किसी प्रकार प्राप्त करे [गोयमा] हे गौतम ! [गामंसि वा] गांव से [णगरंसि वा] नगर से [जाव] यावत् [रायहाणिंसि वा] राजधानी से

[सयमेवं वि करेह] खुद भी ले आवे और [अन्नेण वि करावेह] दूसरों के द्वारा लाया हुआ ग्रहण करे, [जं भवइ] जिस प्रकार योग्य हो वैसा करे, [गहण] गहन [अडवियंसि वा] अटवी में [तस्स णं] उसको [गाढागाढे कारणेहिं देवा वि दलयंति] गाढागाढ कारण से देव भी लाकर देते हैं [अणाईकालेणं] अनादि काल से [जीयाच्चार] जीताचार [निच्चमेवं भवइ] सदा इस प्रकार होता रहा है [देवाणं] देवों की [अयंभावणा वि भवइ] इस प्रकार की भावना होती है [सलिंगोकारण] स्वलिंग का कारण [भंडमाइयाइं] वस्त्र पात्रादिक [उवहि वि] उपधी भी [दलयंति] देते हैं [दढभावेणं जं भवंति जीवा] दृढ भावना वाले जो जीव होते हैं [तस्स णं देवा दलयंति] उसको देवता भी देते हैं [णो अन्नं दलयंति] दूसरे को नहीं देते हैं [गोयमा] हे गौतम ! [केवलीणं सव्वठाणे देवा दलयंति] केवली को सर्वस्थान में देवता ही लाकर देते हैं [जहा भरहे राया सेत्तं] जैसे भरत राजा को उसी प्रकार [साहू] साधु की [पवज्जा सामग्गियं] दीक्षा सामग्री ॥३०॥

भावार्थ——अरिहंत के अनुयायिओं को उपकरण, उपधी वस्त्र, पात्रादि किस प्रकार से प्राप्त करना चाहिये-हे गौतम ! गाम, नगर राजधानी से खुद भी उपकरण, उपधि वस्त्र, पात्रादि ले आवे, दूसरों के द्वारा भी प्राप्त करे, जिस प्रकार योग्य लगे वैसा करे। गहन अटवी-वन में उसको खास कारणसर देवता भी उपकरणादि देते हैं, अनादिकाल से सदा के लिये ऐसा ही चला आता है, देवता की भावना भी इस प्रकार होती है कि अरिहंत के अनुयायिओं को उपकरण वस्त्रादिक पात्र जिन की दृढ भावना होती है उनको देवता आकर देते हैं, दूसरे को नहीं, हे गौतम ! केवली भगवान् को सर्व जगह देवता ही देते हैं, जिस प्रकार भरत राजा को दिया था, इस प्रकार उपरोक्त साधु की दीक्षा सामग्री कही है ॥३०॥

मूलम्—जंपि वत्थं व पायं वा, कंबलं पायपुंछणं, तंपि संजमं लज्जट्ठा, धारंति परिहरंति य ॥३१॥

शब्दार्थ---[जं पि] जो साधु [वत्थं] वस्त्र [व] अथवा [पायं] पात्र [वा] अथवा [कंवलं] कम्बल [पायपुंछणं] पैर पूंछने वाला बस्त्र विशेष तथा रजोहरण रखते हैं। [तंपि] तथापि वह [संजमलज्जट्ठा] संयम की लज्जा की रक्षा के लिये ही [धारंति] धारण करते हैं [य] और [परिहरंति] अपने काम में लाते हैं ॥३१॥

भावार्थ---मुनिराज, जो कल्पनीय डोरासहित मुखवस्त्रिका, वस्त्र, पात्र, कम्बल, पैर पूंछनेवाला कपडा तथा रजोहरण आदि जरूरी वस्तुएँ रखते हैं वह संयम की और लज्जा की रक्षा के वास्ते ही वर्तते हैं ॥३१॥

मूलम्--सव्वत्थु बहिणा बुद्धा, संरक्खणपरिग्गहे। अवि अप्पणो विदेहंमि, नायरंति ममाइयं ॥३२॥

शब्दार्थ---[बुद्धा] तत्त्व के जानकार [सव्वत्थु] सब प्रकार की उपधि, वस्त्र, पात्र, रजोहरण, मुखवस्त्रिका द्वारा [संरक्खणपरिग्गहे] जीव रक्षा के वास्ते जो उपकरण

लिया हुआ है उसमें [अवि] तथा [अप्पणो वि] अपनी [देहंमि] देहमें भी [ममाइयं] ममता भाव [नायरंति] अंगीकार नहीं करते ॥३२॥

भावार्थ—धर्मशास्त्र के ज्ञाता मुनिजन, जीवरक्षा के वास्ते ली हुई उपधि पात्र, रजोहरण, मुखवस्त्रिका (सामान) में तथा अपने शरीर में किसी प्रकार की ममता नहीं करते ॥३२॥

मूलम्—तुम्हाणं भंते ! सासणे कया हायमाणे भविस्संति कया उदिए भविस्संति केवइयं कालं सासणे ठिइए भविस्सइ ? गोयमा ! एगवीसं वाससहस्सेहिं मम सासणे ठिए भविस्सइ अंतराय दो वासं सहस्सेहिं मम सासणे हायमाणे भविस्सइ । से केणट्ठेणं भंते एवं वुच्चइ ? गोयमा ! मम जम्मनक्खत्ते भासरासी नामे महग्गहे संकंते तस्स पहावेणं दो वाससहस्सेहिं साहूणं वा

साहूणीणं वा सावयाणं वा सावियाणं वा नो उदए पूया भविस्सइ गोयमा ! बहवे मुणी सच्छंदयारी भविस्संति।

सयमेव संजमिया भविस्संति बहवे मुणी मम सलिंगं मुहे मुहपत्तिबंधणं वज्जइत्ता दव्वलिंगधारी समइए णं भविस्संति बहवेणं कुलिंगधारी भविस्संति बहवे णिण्हवा भविस्संति बहवे मुणिणामधारी सेयं वत्थ रयहरण मुहपत्ति मादियं उवहिणं सलिंगं ण मन्निस्संति केइ मुणिणो मुहपत्तिबंधणं कालपमाणं करिस्संति ते सव्वे मुणी अविहिमग्गेणं उवएसं करिस्संति बहवे मुणिणो जिणपडिमं कराविस्संति बहवे मुणिणो जिणपडिमाणं पइट्ठं कराविस्संति बहवे मुणिणो जिणपडिमाणं ठावया भविस्संति जाव सव्वे वि अविहिमग्गे पडिस्संति ते सव्वे पव्वुत्ताइं कज्जाइं संछंदेणं करिस्संति गोयमा ! जया

भासग्गहे णिवट्टिए भविस्सइ पुणो मम सासणेणं उदय पूया भविस्सइ साहुणीणं वि सावयाणं वि सावियाणं उदय पूया भविस्सइ ॥३३॥

शब्दार्थ—अब गौतमस्वामी पूछते हैं–[भंते] हे भगवन् [तुम्हाणं] आपका [सासणे] शासन [कया] कब [हायमाणे] हीयमान [भविस्संति] होगा [कया] कब फिर [उदिए] उदित [भविस्सति] होगा? [केवइयं कालं] कितने काल तक [सासणे] शासक [ठिइए] स्थित–स्थिर [भविस्सति] होगा? [गोयमा] हे गौतम! [एगवीसं वाससहस्सेहिं] एकवीस हजार वर्ष पर्यन्त [मम] मेरा [सासणे] शासन [ठिए] स्थिर [भविस्सइ] रहेगा [अंतराय] उस बीच में [दो वाससहस्सेहिं] दो हजार वर्ष पर्यन्त [मम सासणे] मेरा शासन [हायमाणे] हीयमान [भविस्सति] होगा।

[से केणट्ठेणं] वह किस कारण से [भंते] हे भगवन् [एवं] इस प्रकार से [वुच्चइ] आप कहते हैं–[गोयमा!] हे गौतम! [मम] मेरे [जम्मनक्खत्ते] जन्म नक्षत्र के उपर

[भासरासी] भस्मराशी नाम का [महग्गहे] महाग्रह [संकंते] संक्रमण करता है [तस्स] उसके [पभावेणं] प्रभाव से [दो वाससहस्सेहिं] दो हजार वर्ष पर्यन्त [साहूणं] साधुओंका [वा] अथवा [साहुणीणं] साध्वियों का अथवा [सावयाणं वा सावियाणं वा] श्रावक और श्राविकाओं का [उदए] उदय और [पूया] पूजा–सत्कार [णो भविस्सइ] नहीं होगा [बहवे मुणी] बहुत से मुनि [सच्छंदयारी] स्वच्छन्द आचार पालनेवाले [भविस्संति] होंगे [सयमेव] अपने आप [संजमिया] संयमी [भविस्संति] होंगे [बहवे मुणी] अनेक मुनि [मम] मेरा [सलिंग] स्वलिंग साधुलिंग [मुहे] मुख के ऊपर [मुहपत्ति बंधणं] मुखवस्त्रिका का [वज्जिस्संति] त्याग करेगा। [बहवे मुणी] बहुत से मुनि [दव्वलिंगधारी] द्रव्यलिंग को धारण करनेवाले [स मइए] अपनी ही मति से [भविस्संति] होंगे [बहवे] अनेक [कुलिंगधारी] कुलिंग को धारण करनेवाले [भविस्संति] होंगे [बहवे] अनेक [णिण्हवा] निह्नव अर्थात् सच्चे अर्थ को छिपानेवाले [भविस्संति] होंगे।

[से केणट्ठेणं] किस कारण से [भंते] हे भगवन् ऐसा आप कहते हैं? [गोयमा] हे गौतम [बहवे] अनेक [मुणिणामधारी] मुनि के नाम को धारण करनेवाले अर्थात् नाम मात्र से मुनि कहलाने वाले [सेयं वत्थं] श्वेत वस्त्र को [रयहरण] रजोहरण [मुहपत्तिमादियं] मुहपत्ति आदि [उवहिं] उपधि को [ण सलिंगं मन्निस्संति] स्वलिंग नहीं मानेंगे [केइ मुणिणो] कितनेक मुनि [मुहपत्तिबंधणं] मुहपत्ति बंधण को [कालपमाणं] समय प्रमाण अर्थात् अमुक समय में बांधने का उपदेश [करिस्संति] करेंगे। [ते सव्वे मुणी] वे सब मुनि [अविहिमग्गेणं] अविधि मार्ग से [उवएसं] उपदेश [करिस्संति] करेंगे [बहवे मुणिणो] अनेक मुनिगण [जिणपडिमं कराविस्संति] जिनप्रतिमा को करावेंगे [बहवे मुणिणो] बहुत से मुनि [जिण पडिमाणं] जिन मूर्तियों की [पइट्ठं] प्रतिष्ठा [कराविस्संति] करावेंगे [बहवे मुणिणो] बहुत से मुनि [जिणपडिमाणं] जिन प्रतिमा की [ठावया] स्थापना करनेवाले [भविस्संति] होंगे [जाव] यावत् यहां तक [सव्वे वि] ये

सभी [अविहिपंथे] अविधि मार्ग में [पडिस्संति] पड जायेंगी [ते सव्वे] वे सभी [पुव्वुत्ताइं] पहले कहे गये [कज्जाइं] कार्यों का [सछंदेणं] स्वच्छंदपने से [करिस्संति] करेंगे [गोयमा !] हे गौतम ! [जयाणं] जब [भासग्गहे] भस्मग्रह [णिवट्टिए भविस्सइ] निवर्तित होगा तब [पुणो] फिर से [मम] मेरे [सासणेणं] शासन में [उदए] उदय [पूया] पूजा-सत्कार [भविस्संति] होंगे [साहूणं] साधुओं का तथा [साहुणीणं वि] साध्वियों का तथा [सावयाणं वि] श्रावकों का [सावियाणं वि] श्राविकाओं का भी [उदय पूया भविस्संति] उदय और पूजा सत्कार होगा ॥३३॥

भावार्थ—गौतमस्वामी श्री महावीर प्रभु को प्रश्न करते हैं कि—हे भगवन् आपका शासन कब होयमान होगा ? कब पुनः उदित होगा ? और कितने काल पर्यन्त शासन स्थिर होगा ? इन प्रश्नों के उत्तर में प्रभुश्री गौतमस्वामि से कहते हैं—हे गौतम ! एकवीस हजार वर्ष पर्यन्त मेरा शासन स्थिर रहेगा उसके बीच में दो हजार वर्ष पर्यन्त

मेरा शासन हीयमान होगा ।

फिर से श्री गौतमस्वामी पूछते हैं कि–हे भगवन् आप किस कारण से इस प्रकार से कहते हैं? उत्तर में प्रभुश्री कहते हैं हे गौतम! मेरे जन्म नक्षत्र के उपर भस्मराशी नामका महाग्रह संक्रमण करता है, उसके प्रभाव से दो हजार वर्ष पर्यन्त साधुओं का अथवा साध्वियों का अथवा श्रावक और श्राविकाओं का उदय और पूजा सत्कार नहीं होगा। बहुत से मुनि स्वच्छन्द आचार पालनेवाले होंगे। अपने आप संयमी होंगे। अनेक मुनि मेरा स्वलिंग रूप मुख के ऊपर मुखवस्त्रिका का त्याग करेगा। बहुत से मुनि द्रव्यलिंग को धारण करनेवाले होंगे अनेक निह्नव अर्थात् सच्चे अर्थ को छिपानेवाले होंगे। हे भगवन् किस कारण से आप ऐसा कहते हैं? हे गौतम! अनेक मुनि के नामको धारण करनेवाले अर्थात् नाम मात्र से मुनि कहलानेवाले श्वेत वस्त्रको रजोहरण मुहपत्ति आदि उपधि को स्वलिंग नहीं मानेंगे, कितनेक मुनि मुहपत्ति

वंधन को समय प्रमाण अर्थात् अमुक समय में बांधने का उपदेश करेंगे। वे सब मुनि अविधि मार्गसे उपदेश करेंगे। अनेक मुनिगण जिन की प्रतिमा करावेंगे। बहुत से मुनि जिन मूर्तियों की प्रतिष्ठा करावेंगे। बहुत से मुनि जिनप्रतिमा की स्थापना करनेवाले होंगे। यावत् यहां तक ये सभी अविधिमार्ग में पड जायेंगे। वे सभी पहले कहे गये कार्यों को स्वच्छंद पने से करेंगे। हे गौतम! जब भस्मग्रह निवर्तित होगा तब फिरसे मेरे शासन में उदय पूजा सत्कार होंगे। साधुओं का तथा साध्वीयों की तथा श्रावकों का और श्राविकाओं का भी उदय और पूजा सत्कार होगा ॥२३॥

मूलम्—जइ णं भंते अमुगे जीवे मिच्छा मोहणिय उदएण बालजीवा देवाणुप्पियेण पडिमं करावेइ पडिमाणं वा पइट्ठं करावेंति तेणं जीवा किं जण-यंति ? गोयमा ! ते बालजीवा एगंतेणं पावाइं कम्माइं जणयंति से केण-

ट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ? गोयमा ! ते बाल जीवा मिच्छाभावे पडिवन्ने अजीवं जीवभावं मन्निस्सइ छण्हं जीवणिकायाणं वहं करिस्सइ मम मग्गस्स णं हीलणं कराविस्सइ मम सासणस्स उदयं णो करिस्सइ मए अत्थित्तं अत्थिवुत्तं नत्थित्तं नत्थिवुत्तं से जीवे अत्थित्तं नत्थि वदिस्संति नत्थित्तं अत्थि वदिस्संति से तेणट्ठेणं गोयमा ! से जीवे एगंतेणं पावाइं कम्माइं जणयइ मिच्छामोहणिज्जं कम्मं निबंधइ ॥३४॥

शब्दार्थ—[जइ णं] यदि [भंते] हे भगवन् [अमुगे जीवे] अमुक जीव [मिच्छामोहणिय उदएण बालजीवा] मिथ्यामोहनीय के उदय से बाल जीव [देवाणुप्पियाणं] देवानुप्रिय की [पडिमं] प्रतिमा [करावेइ] करावे [पडिमाणं वा पइट्ठं करावेइ] अथवा प्रतिमा की प्रतिष्ठा करावे [तेणं जीवे] वह जीव [किं जणयइ] क्या–किस प्रकार के

कर्म का उपार्जन–बंध करता है? [गोयमा] हे गौतम! [से जीवे] वह जीव [एगंतेणं पावाइं कम्माइं] एकान्त रूप से पाप कर्मों का [जणयइ] उपार्जन करता है। [से केणट्ठेणं] वह किस कारण से [भंते] हे भगवन् [एवं वुच्चइ] इस प्रकार से आप कहते हैं- [गोयमा!] हे गौतम! [से जीवे] वह जीव [मिच्छाभावपडिवन्ने] मिथ्यात्व भाव को प्राप्त करके [अजीवं] अजीव को [जीवभावे] जीवभाव से [सन्निस्सइ] मानेगा [छण्हं जीवणिकायाणं] छ जीवनिकायों का [वहं] वध [करिस्सइ] करेगा [मम मग्गस्स णं] मेरे मार्ग की [हीलणं] अवहेलना [कराविस्सइ] करावेगा [मम सासणस्स] मेरे शासन का [उदयं] उदय [णो करिस्सइ] नहीं करेगा [मए] मैंने [अत्थित्तं] अस्तित्व को [अत्थिवुत्तं] अस्ति ऐसा कहा है [नत्थित्तं] नास्तित्व को [नत्थिवुत्तं] नास्ति ऐसा कहा है [से जीवे] वह जीव [अत्थित्तं] अस्तित्व को [नत्थि वदिस्संति] नहीं है ऐसा कहेगा [नत्थित्तं] नास्ति भाव को [अत्थि वदिस्संति] अस्तिभाव से कहेगा [से तेण-

ट्ठेणं] इस कारण से [गोयमा] हे गौतम! [से जीवे] वह जीव [पावाइं कम्माइं] पाप कर्म का [जयणइ] उपार्जन करता है और [मिच्छा मोहणिज्जं कम्मं निबंधइ] मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का बंध करते हैं ॥३४॥

भावार्थ—हे भगवन् अमुक वाल जीव मिथ्या मोहनीय के उदय से देवानुप्रिय की प्रतिमा करावे अथवा प्रतिमा की प्रतिष्ठा करावे वह जीव किस प्रकार के कर्म का उपार्जन–बंध करता है? हे गौतम! वह जीव एकान्त रूप से पाप कर्मों का उपार्जन करता है। गौतमस्वामी पूछते हैं–हे भगवन्! किस कारण से इस प्रकार से आप कह रहे हैं? भगवान् गौतमस्वामी से कहते हैं–हे गौतम! वह जीव मिथ्यात्व भाव को प्राप्त करके अजीव को जीव भाव से मानेगा छह जीवनिकायों का वध करेगा, मेरे मार्ग की अवहेलना करावेगा। मेरे शासन का उदय नहीं करेगा मैंने अस्तित्व को (अस्ति) ऐसा कहा है। नास्तित्व को (नास्ति) ऐसा कहा है। वह जीव अस्तित्व को

नहीं है ऐसा कहेगा नास्ति भाव को अस्ति भाव से कहेगा इस कारण से हे गौतम! वह जीव पाप कर्म का उपार्जन करता है, और मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का बंध करते हैं॥३४।

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं भंते दूसमे काले केरिसए आयारभाव-पडोयारे भविस्सइ? गोयमा! पुणो पुणो दुब्भिक्खा पडिस्संति रायाणो बहवे भविस्संति पयाणं अहियं कारया उस्सुक्का अइसया भविस्संति वाहीरोगमारीय पुणो-पुणो भविस्संति जाव पायकाले चउद्दिसि हाहाकारा भविस्संति बहवे जणा मयपक्खगहिया असच्चभासिणो भविस्संति। केवइयाणं भंते लिंग पण्णत्ता? गोयमा! पंचलिंगपण्णत्ता तं जहा—गिहिलिंगे १, अण्णलिंगे २, कुलिंगे ३, दव्वलिंगे ४, सलिंगे ५। कइ विहेणं भंते सलिंगे पण्णत्ते? गोयमा! सलिंगे पंचविहे पण्णत्ते तं जहा—अरिहंते १, आयरिया २, उवज्झाया ३,

साहूणो ४, साहूणी णं ५ ॥३५॥

शब्दार्थ—[तेणं कालेणं] उस काल [तेणं समएणं] उस समय [भंते] हे भगवन् [दूसमे काले] दूषम काल में [केरिसए] किस प्रकार का [आयारभावपडोयारे] आचार भाव [भविस्सइ] होगा [गोयमा] हे गौतम ! [पुणो पुणो] वारंवार [दुब्भिक्खा पडिस्संति] दुर्भिक्ष अर्थात् दुष्काल पडेगा [रायाणो] राजा [बहवे भविस्संति] बहुत से होंगे [पयाणं] प्रजा का [अहियकारया] अहित करने में [उस्सुका] उत्साहवाले [अइराया-भविस्संति] बहुत से राजा होंगे [वाहि] व्याधि [रोगे] रोग [मारीय] महामारी [पुणो पुणो] बारबार [भविस्संति] होंगी [जाव] यावत् यहां तक कि [पायकाले] प्रातः काल होते ही [चउद्दिसिं] चारों–दिशाओं में [हाहाकारा] हाहाकार शब्द [भविस्सइ] होंगे। [बहवे जणा] अनेक मनुष्य [मयपक्खगहिया] अपने मत का पक्ष ग्रहण करके [असच्च भासिणो] असत्य भाषी–असत्य बोलने वाले [भविस्संति] होंगे। [बहवे वाममग्गा

भविस्संति] बहुत से हिंसादि में धर्म माननेवाले होंगे। फिर गौतमस्वामी पूछते हैं-[भंते] हे भगवन् [केवइयाणं लिंगा पण्णत्ता] लिंग कितने प्रकार के कहे गये हैं-उत्तर में प्रभु फरमाते हैं-[गोयमा] हे गौतम! [पंचलिंगा पण्णत्ता] लिंग पांच प्रकार के होते हैं [तं जहा] वह इस प्रकार [गिहिलिंगे] गृहस्थलिंग १, [अण्णलिंगे] अन्य-लिंग २, [कुलिंगे] कुलिंग ३, [दव्वलिंगे] द्रव्यलिंग ४ और पांचवां [सलिंगे] स्वलिंग ५। गौतम पूछते हैं-[भंते] हे भगवन् [कइविहेणं] कितने प्रकार के [सलिंगे पण्णत्ते?] स्वलिंग कहे गये हैं [गोयमा] हे गौतम! [सलिंगे पंचविहे पण्णत्ते] स्वलिङ्ग पांच प्रकार के कहे गये हैं [तं जहा] वे इस प्रकार-[अरिहंते] अर्हन्त भगवन्त १, [आयरिए] आचार्य २, [उवज्झाए] उपाध्याय ३, [साहूणो] साधु ४ [साहुणीओ] साध्वियां ५ ॥३५॥

भावार्थ--हे भगवन् उस काल और समय में-दूषम काल में किस प्रकार का आचारभाव होगा? हे गौतम! वारंवार दुर्भिक्ष अर्थात् दुष्काल पडेगा एवं

प्रजाका अहित करने में उत्साह वाले बहुत से राजा होंगे। व्याधि, रोग, महामारी बार बार होंगी, यावत् यहां तक कि प्रातःकाल होते ही चारों दिशाओं में हाहाकार शब्द होंगे। अनेक मनुष्य अपने मत का पक्ष लेकर असत्य बोलने वाले होंगे। बहुत से हिंसादि में धर्म माननेवाले होंगे। फिर से गौतमस्वामी पूछते हैं—हे भगवन् लिङ्ग कितने प्रकार के कहे गये हैं? उत्तर में प्रभु फरमाते हैं—हे गौतम! लिंग पांच प्रकार के होते हैं, वह इस प्रकार से है—गृहस्थलिंग १, अन्यलिंग २, कुलिंग ३, द्रव्य-लिंग ४ और स्वलिंग ५। गौतमस्वामी प्रभु से पूछते हैं—हे भगवन् कितने प्रकार के स्वलिंग कहे गये है? उत्तर में प्रभुश्री कहते हैं—हे गौतम! स्वलिंग पांच प्रकार के कहे गये हैं अर्हंत भगवन्त १, आचार्य २, उपाध्याय ३, साधु ४ एवं साध्वियां ५ ॥३५॥

मूलम्—कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा पंचवत्थाइं धारित्तए वा परिहरित्तए वा तं जहा—जंगिए १, भंगिए २, साणए ३, पोत्तिए ४, तिरिड-

पट्टए ५, णामं पंचमए। कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा पंचरयहरणाइं धारित्तए वा परिहरित्तए वा तं जहा—उग्गिहे १, उदिए २, साणए ३, पच्चापिच्चयए ४ मुंजापिच्चए ५ नामं पंचमए ॥३६॥

शब्दार्थ—[कप्पइ] कल्पता है [णिग्गंथाण वा] साधुओं को [णिग्गंथीण वा] साध्वीओं को [पंचवत्थाइं] पांच प्रकार के वस्त्र [धरित्तए वा] धारण करने योग्य [परिहरित्तए वा] पहनने के लिये [तं जहा] जैसे [जंगिए] ऊनके वस्त्र [भंगिए] पाट (रेशम) का बना हुआ कपडा [साणए] सनका बना हुआ कपडा [पोत्तिए] सूत का कपडा [तिरीडपट्टए णामं पंचमए] वृक्ष—विशेष की छाल का बना हुआ कपडा। [कप्पइ] कल्पता है [निग्गंथाण वा] साधुओं को [निग्गंथीण वा] साध्वीओं को [पंच रयहरणाइं] पांच प्रकार के रजोहरण [धरित्तए वा] धारण करने योग्य [परिहरित्तए वा] व्यवहार में

रखने योग्य [तं जहा] जैसे–[उग्गिहे] ऊनका [उदिए] ऊंट की जटा का [साणए] सनका [पच्चापिच्चयए] डाभ का [मुंजापिच्चए] मुंज का बना हुआ रजोहरण कल्पता है ॥३६॥

भावार्थ––साधुओं को अथवा साध्वीओं को पांच प्रकार के वस्त्र धारण करने योग्य पहनने को कल्पता है–वे इस प्रकार हैं–ऊनके वस्त्र १ पाट (रेशम) का बना हुवा वस्त्र२, शनका बना हुवा वस्त्र३, सूतका कपडा ४, वृक्षविशेष की छाल का बना हुवा कपडा ५ इसी प्रकार के रजोहरण धारण करने योग्य एवं व्यवहार में रखने योग्य हैं, जो इस प्रकार हैं–ऊनका १, ऊंट की जटा का २, सन का ३, डाभ का ४, और मुंजका ५, बना हुआ रजोहरण कल्पता है ॥३६॥

मूलम्–दोण्हं पुरिमपच्छिमअरिहंताणं सलिंगे वा भंडोवगरणोवही णियमेणं एगं सेयं वण्णओ प० ॥३७॥

भावार्थ—प्रथम एवं अंतिम इन दो अरिहंतों के साधु साध्वीओं को भंडोपकरण वस्त्र पात्र उपधी नियम से श्वेत वर्ण सफेद रंग की कल्पता है ॥३७॥

मूलम्—तीहिं ठाणेहिं वत्थे धरेज्जा, तं जहा—हिरिवत्तियं, दुगंछावत्तियं, परिसहवत्तियं ॥३८॥

शब्दार्थ—[तीहिं ठाणेहिं वत्थे धरेज्जा] तीन कारणों से वस्त्र धारण करना मुनि-राजों को कल्पता है–[तं जहा] जैसे–[हिरिवत्तियं] संयम के आराधना के लिये १, [दुगंछा वत्तियं] लोकनिन्दा के निवारण के लिये [परिसहवत्तियं] परीषह जीतने के लिये अथवा परिषह रोकने के लिये वस्त्र रखना कल्पता है ॥३८॥

भावार्थ—तीन कारणों से वस्त्र धारण करना मुनिराजों को कल्पता है वे इस प्रकार हैं–संयम के आराधना के लिये १, लोकनिन्दा के निवारण के लिये २, परीषह जीतने के

लिये अथवा परीषह रोकने के लिये३, वस्त्र रखना कल्पता है ॥३८॥

मूलम्—कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा तओ पायाइं धरित्तए वा परिहरित्तए वा, तं जहा-लाउयपाए वा दारुपाए वा मिट्टियापाए वा ॥३९॥

शब्दार्थ—[कप्पइ] कल्पता है [णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा] निर्ग्रंथों को अथवा निर्ग्रंथियों को [तओ] तीन प्रकार के [पायाइं] पात्रा को [धरित्तए वा] धारण करने को अथवा [परिहरित्तए वा] उपभोग करने का कल्पता है, वे इस प्रकार है—[लाउयपाए वा] तुंबे का पात्र १ [दारुपाए वा]२ लकडी का बना पात्र अथवा [मट्टियापाए वा] मृत्तिका के पात्र ॥३९॥

भावार्थ—निर्ग्रन्थों को एवं निर्ग्रन्थीयों को तुंबे के पात्र १ लकडी का बनापात्र २, अथवा मिट्टि का बना पात्र ये तीन प्रकार के पात्रों को धारण करना या उपभोग में लेने को कल्पता है ॥३९॥

सामाचारी का वर्णन

मूलम्—सामायारिं पवक्खामि, सव्वदुक्खविमोक्खणिं ।
जं चरित्ता ण निग्गंथा, तिण्णा संसारसागरं ॥१॥

भावार्थ—श्रीसुधर्मा स्वामी जंबूस्वामी से कहते हैं कि हे जम्बू ! समस्त शारीरिक एवं मानसिक दुःखो से छुटकारा दिलानेवाली साधुजनों के कर्तव्य रूप सामाचारी को मैं कहूंगा। जिस सामाचारी का सेवन करके निर्ग्रन्थ साधु नियमतः संसाररूप दुस्तर समुद्र को पार होते हैं, हुए हैं और आगे भी होंगे ॥१॥

मूलम्—पढमा आवस्सिया नाम, बिइया य निसीहिया ।
आपुच्छणा य तइया, चउत्थी पडिपुच्छणा ॥२॥
पंचमा छंदणा नामं, इच्छाकारो य छट्ठओ ।
सत्तमो मिच्छाकाराउ, तहक्कारो य अट्ठमो ॥३॥

अब्भुट्ठाणं नवमा, दसमा उवसंपया ।
एसा दसंगा साहूणं, सामायारी पवेइया ॥४॥

भावार्थ–अब सूत्रकार उस समाचारी के दस प्रकारों को कहते है। आवश्यकी सामाचारी–बिना किसी प्रमाद के आवश्यक कर्तव्य करने को कहते हैं, यह प्रथम सामाचारी है (२) 'नैषेधिकी' सामाचारी–गुरुमहाराजने जो कार्य करने को कहा उतना ही करना चाहिये अन्य नहीं। कथित कार्य को करके उपाश्रय में आता है तो नैषेधिकी कहता है। यह दूसरी सामाचारी है। (३) 'आप्रच्छना' सामाचारी–शिष्य गुरुदेव से विनय के साथ सब कार्य पूछता है यह तीसरी सामाचारी है। (४) 'प्रतिप्रच्छना' सामाचारी–कार्य की आज्ञा होने पर भी फिर गुरू से पुनः पूछना। यह चौथी सामाचारी है। (५) 'छन्दना' सामाचारी–अपने आहार आदि के लिये अन्य साधुओं को यथा क्रम निमंत्रित करना। यह पांचवी सामाचारी है। (६) 'इच्छाकार' सामाचारी–बिना प्रेरणा के साधर्मी का

कार्य करना। यह छठी सामाचारी है। (७) 'मिथ्याकार' सामाचारी–किसी भी प्रकार के अतिचार की संभावना होने पर मिच्छामि दुक्कडं का देना, वह सातमी सामाचारी है। (८) 'तथाकार' सामाचारी–गुरु के आदेश को 'तथेति' कहकर शिष्य को स्वीकार करना वह आठवी सामाचारी है। (९) 'अभ्युत्थान' सामाचारी–आचार्य या बडे साधुजन के आने पर खडे हो जाना उनकी सेवा के लिये तत्पर रहना। वह नवमी सामाचारी है। (१०) 'उपसम्पत्' सामाचारी–ज्ञानादिक गुणों की प्राप्ति के लिये दूसरे स्थान में जाना। वह दसवीं सामाचारी है।

इन दस सामाचारीओं का पालन मुनिजन करते हैं।

मूलम्–गमणे आवस्सियं कुज्जा, ठाणे कुज्जा णिसीहियं।
आपुच्छणा सयंकरणे परकरणे पडिपुच्छणा ॥५॥

भावार्थ–किसी कारण से साधु को उपाश्रय से बाहिर जाना पडे तो साधु को

आवश्यकी सामाचारी करनी चाहिये। जब उपाश्रय में प्रवेश करे तब नैषेधिकी सामाचारी करे। जो काम स्वयं करने का है उसमें (यह मैं करूं या नहीं) इस प्रकार पूछने रूप आप्रच्छना सामाचारी करे। जब गुरु शिष्य के पूछने पर कार्य करने की आज्ञा दे देवें तो शिष्य जब वह उस कार्य का आरंभ करे पुनः आज्ञा लेवे इसका नाम प्रतिप्रच्छना सामाचारी है ॥५॥

मूलम्—छन्दणा दव्वजायणं, इच्छाकारो य सारणे।
मिच्छाकारो य निंदाए, तहक्कारो पडिस्सुए ॥६॥

भावार्थ—पूर्वगृहीत अशनादि सामग्री द्वारा शेष मुनिजनों को आमंत्रित करना यह छंदना है। अपने या दूसरे के कार्य में प्रवर्तन होने में इच्छा करना इच्छाकार है। अतिचार हो जाने पर 'मिच्छामिदुक्कडं' देना (मिथ्याकार) है। गुरुजनों के वाचना आदि देते समय (ऐसा ही है) कहकर अंगीकार करना तथाकार है ॥६॥

मूलम्–अब्भुट्ठाणं गुरुपूया, अच्छणे उवसंपया ।
एवं दुपंचसंजुत्ता, सामाचारी पवेइया ॥७॥

भावार्थ–गुरुजनों के आचार्य आदि पर्याय ज्येष्ठों के निमित्त आसन छोडकर खडे होना और बाल साधुओं की सेवा में उद्यमशील रहना, अभ्युत्थान है। ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र की प्राप्ति के निमित्त आचार्य अन्यगणों के पास रहना उपसम्पत् सामाचारी है ।७।

मूलम्–पुव्विल्लंमि चउब्भागे, आइच्चम्मि समुट्ठिए ।
भंडगं पडिलेहित्ता, वंदित्ता य तओ गुरुं ॥८॥
पुच्छिज्जा पंजलीउडो, किं कायव्वं मए इह ।
इच्छं निओइउं भंते ! वेयावच्चे व सज्झाए ॥९॥

भावार्थ–सूर्य के उदित होने पर प्रथम पौरूषी में पात्र, वस्त्रादिकों की मुखव-

स्त्रिका सहित प्रतिलेखना करके, आचार्यादिक बडों को वंदना करके दोनों हाथ जोड करके इस समय क्या करना चाहिये ऐसा पूछे। वैयावृत्य एवं स्वाध्याय करने की आज्ञा मांगे ॥८-९॥

मूलम्—वेयावच्चे निउत्तेणं कायव्वं आगलायओ ।
संज्झाये वा निउत्तेण, सव्वदुक्खविमोक्खणे ॥१०॥

भावार्थ—चतुर्गतिक संसार के दुःखो के निवारक ऐसे साधु को शारीरिक परिश्रम का ख्याल न करके वैयावृत्य अच्छी प्रकार करना चाहिए, बिना किसी ग्लानभाव के स्वाध्याय करना चाहिये ॥१०॥

मूलम्—दिवसस्स चउरो भाए, कुज्जा भिक्खू वियक्खणे ।
तओ उत्तरगुणे कुज्जा, दिणभागेसु चउसु वि ॥११॥

भावार्थ—मेधावी साधु दिवस के चार भाग कर लेवे और इन चारों ही भागों में वह स्वाध्याय आदि करने रूप उत्तर गुणों का पालन करता रहे ॥११॥

मूलम्—पढमं पोरिसि सज्झायं, बीयं झाणं झियायइ।
तइयाए भिक्खायरियं, पुणो चउत्थीइ सज्झायं ॥१२॥

भावार्थ—दिवस के प्रथम प्रहर में, वाचनादिकरूप स्वाध्याय करना, द्वितीय प्रहर में सूत्रार्थ चिन्तन रूप ध्यान करे, तृतीय प्रहर में भिक्षावृत्ति करे और चतुर्थ प्रहर में प्रतिलेखका आदि करे ॥१२॥

मूलम्—आसाढे मासे दुपया, पोसे मासे चउप्पया।
चित्तासोएसु मासेसु, तिपया हवइ पोरिसि ॥१३॥

भावार्थ—आषाढ मास में द्विपदा पौरूषी होती है। पौष मास में चतुष्पदा पौरुषी

होती है। चैत्र एवं आश्विन मास में त्रिपदा पौरूषी होती है ॥१३॥

मूलम्—अंगुलं सत्तरत्तेणं, पक्खेणं तु दुअंगुलं।
वड्ढए हायए वावि, मासेणं चउरंगुलं ॥१४॥

भावार्थ—साढे सात ७॥ दिनरात के काल में एक अंगुल पौरूषी बढती है। एक पक्ष में दो अंगुल पौरूषी बढती है। एक मास में चार अंगुल बढती है। तथा उत्तरायण में इसी क्रम से घटती है। ये प्रत्याख्यान आदि में अपेक्षित होती है ॥१४॥

मूलम्—आसाढ बहुलपक्खे, भद्दवए कत्तिए य पोसे य।
फग्गुण वइसाहेसु य, जायव्वा ओमरत्ताओ ॥१५॥

भावार्थ—१४ दिनों का पक्ष, आषाढ कृष्णपक्ष में, भाद्र कृष्णपक्ष में कार्तिक कृष्ण पक्ष में, पौष कृष्णपक्ष में, फाल्गुन वैशाख कृष्णपक्ष में १४–१४ दिन के पक्ष होते हैं ॥१५॥

मूलम्—जेट्ठा मूले आसाढ—सावणे, छहिं अंगुलेहिं पडिलेहा।
अट्ठहिं बिइतियम्मि, तइए दस अट्ठहिं चउत्थे ॥१६॥

भावार्थ—जेष्ठ महिने में, आषाढ सावन में पहिले लिखे हुये पौरूषी प्रमाणमें छह अंगुलों के प्रक्षिप्त करने से निरीक्षण रूप प्रतिलेखना करनी चाहिये। इससे पादोन पौरूषी का ज्ञान होता है। भाद्र, आश्विन, कार्तिक महीनों में आठ अंगुलों को प्रक्षिप्त करके, मगसिर, पौष एवं माघ मास में दश अंगुलोंको प्रक्षिप्त करके फाल्गुन, चैत्र एवं वैसाख मास में आठ अंगुलों को प्रक्षिप्त करके प्रतिलेखना करनी चाहिये ॥१६।

मूलम्—रत्तिंपि चउरो भाए, भिक्खू कुज्जा वियक्खणो।
तओ उत्तरगुणे, कुज्जा, राईभागेसु चउसु वि ॥१७॥

भावार्थ—बुद्धिशाली मुनि रात्री के भी चार भाग कर लेवे और उन रात्रि के चार भागों में भी वह स्वध्याय आदिरूप उत्तर गुणों की आराधना करे ॥१७॥

मूलम्–पढमं पोरिसि सज्झाय, बीयं झाणं झियायइ ।
तइयाए निद्दमोक्खं तु, चउत्थी भुज्जो वि सज्झायं ॥१८॥

भावार्थ–साधु रात्रि के प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करे, दूसरे प्रहर मे चिन्तवन करे, तीसरे प्रहर में निद्रा लेवे, चतुर्थ प्रहर में स्वाध्याय करे ॥१८॥

मूलम्–जं नेइ जया रत्तिं, नक्खत्तं तम्मि नहचउब्भाए ।
संपत्ते विरमेज्जा, सज्झाय पओसिकालम्मि ॥१९॥

भावार्थ–मुनिको रात्रि के चार प्रहररूप चारों भागों के उपाय जानने का मार्ग दिखाते हैं। जिस नक्षत्रके उदित होने पर रात्रिका प्रारम्भ होता है और उसीके अस्त होने पर रात्रिका अन्त होता है। ऐसा वह नक्षत्र जब आकाशके पहिले चतुर्थ भागमें प्राप्त हो तो रात्रि के प्रथम प्रहर में की हुई स्वाध्यायका परित्याग करे। इस प्रकार मुनि के समस्त रात्रि कर्तव्यको बताया है॥१९॥

मूलम्–तम्मेव य नक्खत्ते, गयणचउब्भाय सावसेसम्मि ।
वेरत्तियं पि कालं, पडिलेहित्ता मुणी कुज्जा ॥२०॥

भावार्थ–फिर वही नक्षत्र जब तृतीय भाग के अंतिम भागयुक्त चौथे भागरूप आकाशमें आवे तब मुनि तृतीय प्रहरकी चारों दिशाओ में आकाशकी प्रतिलेखना करके स्वाध्याय करे ॥२०॥

मूलम्–पुव्विलम्मि चउब्भागे, पडिलेहित्ताण भंडगं ।
गुरूं वंदित्तु सज्झायं, कुज्जा दुःखविमोक्खणं ॥२१॥

भावार्थ–दिवसके सूर्योदय के प्रथम प्रहर में मुनि सविनय सवन्दन गुरुके आदेश को प्राप्त करके वर्षाकल्प आदिके योग्य वस्त्र एवं पात्रादिकोंकी प्रतिलेखना करके गुरुको वन्दना करे और पश्चात् शारीरिक एवं मानसिक समस्त दुःखोके नाशक स्वाध्याय करे ॥२१॥

मूलम्–पोरसीए चउब्भागे, वंदित्ताणं तओ गुरुं ।
अपडिक्कमित्ता कालस्स, भायणं पडिलेहए ॥२२॥

भावार्थ–पौरुषीके अवशिष्ट चतुर्थभागमें गुरु महाराज को वंदना करके, बादमें काल प्रतिक्रमण नहीं करके उपकरण मात्र की प्रतिलेखना करे स्वाध्याय के बाद काल प्रतिक्रमण करना चाहिये। चतुर्थ पौरुषीमेंभी स्वाध्याय करनेका विधान है। ॥२२॥

मूलम्–मुहपोत्तियं पडिलेहित्ता, पडिलेहिज्ज गोच्छगं ।
गोच्छगलइयंगुलिओ, वत्थाइं पडिलेहए ॥२३॥

भावार्थ–प्रतिलेखनाकी विधिका वर्णन कहते हैं कि मुनि आठ पुटवाली सदोरकमुखवस्त्रिकाकी सर्व प्रथम प्रतिलेखना करे। इसके बाद प्रमार्जिकाकी, रजोहरणकी, और वस्त्रों की प्रतिलेखना करे ॥२३॥

मूलम्—उड्ढं थिरं अतुरियं, पुव्वं ता वत्थमेव पडिलेहे ।
तो बिइयं पप्फोडे, तइयं च पुणो पमज्जिज्ज ॥२४॥

भावार्थ—उत्कुटुक आसन से बैठकर मुनि वस्त्रको तिरछा फैलाकर स्थिरता से वस्त्रों की प्रतिलेखना करे। यदि जीव जंतु उसपर चलता, फिरता तथा बैठा नजर आवे तो उसको यतनापूर्वक सुरक्षित स्थान पर पूंजणी से पूंजे और रख देवें, झटकारे नहीं ॥२४॥

मूलम्—अणच्चावियं अवलियं, अणाणुबंधि अमोसलिं चेव ।
छप्पुरिमा नवखोडा, पाणीपाणी विसोहणं ॥२५॥

भावार्थ—प्रतिलेखन करते समय वस्त्रको नचावे नहीं, मोडे नहीं, वस्त्रका विभाग स्पष्ट दिखाई दे, भीत आदिका संघाटा न होवे इस प्रकार प्रतिलेखन करें। यतनापूर्वक छ बार वस्त्रका प्रतिलेखन करे प्रस्फोटन करे और नौ वार प्रमार्जना करे। उसके

बाद दोनों हाथोंका प्रतिलेखनारूप विशोधन करें, हाथ पर जीवजंतु हो तो उसका एकान्त स्थान पर परिष्ठान करें ॥२५॥

मूलम्—आरभडा सम्मद्दा, वज्जेयव्वा य मोसली तइआ।
पप्फोडणा चउत्थी, विक्खित्ता वेइया छट्ठा ॥२६॥

भावार्थ—मुनिको आरभटा दोष प्रतिलेखना में छोडना चाहिये। इसका दोष समग्र वस्त्रकी प्रतिलेखना नहीं करके, बीच में अन्य वस्त्रों को शीघ्रतासे लेना इसको आरभटा दोष कहा है। दूसरा दोष संमर्द है,—वस्त्र के कोनों का मोडना, तीसरा दोष है, मौशली-ऊंचा, नीचा, तीरछा संघटन होना। चौथा दोष है प्रस्फोटना—धूलि से युक्त वस्त्रको फटकारना। पांचवा दोष विक्षिप्त है—प्रतिलेखना किया हुआ वस्त्र अप्रतिलेखित के साथ मिला देना। वेदिका छठा दोष है। इन छ दोषों को साधुको प्रतिलेखना में त्यागना चाहिये ॥२६॥

मूलम्—पसिढिल—पलंब—लोला, एगा मोसा अणेगरूवधुणा ।
कुणइ पमाणि पमायं, संकिए गणणोवगं कुज्जा ॥२७॥

भावार्थ—जो साधु प्रतिलेख्यमान् वस्त्रको ढीला पकडता है, कोनोंको लटकाये रखता है, भूमिमें अथवा हाथों में उसे हलाता रहता है, बीचमें घसीटते हुये खेंचता है और प्रमाद्वश हाथोंकी अंगुलियों की रेखाको स्पर्श करके गिनती करता है। यह प्रतिलेखना में दोष माने गये हैं उनका त्याग बतलाया गया है ॥२७॥

मूलम्—अणूणाइरित्त पडिलेहा, अविवच्चासा तहेव य ।
पढमं पयं पसत्थं, सेसाणि उ अप्पसत्थाणि ॥२८॥

भावार्थ—प्रतिलेखना निर्दिष्ट प्रमाणके अनुसार ही साधुको करनी चाहिये। न न्यून करनी चाहिये। और न अधिक करनी चाहिये। इसी प्रकार पुरुष विपर्यास, उपधि विपर्यासका भी परित्याग करना चाहिये। प्रथम पद के सिवाय शेष ७ भंग सदोष हैं ॥२८॥

मूलम्—पडिलेहणं कुणंतो, मिहो कहं कुणइ जणवयवहं वा ।
देइ व पच्चक्खाणं, वाएइ सयं पडिच्छइ वा ॥२९॥
पुढवि आउक्काए, तेउवाऊवणस्सइतसाणं ।
पडिलेहणापमत्तो, छण्हंपि विराहओ होइ ॥३०॥

भावार्थ—प्रतिलेखना करता हुआ जो मुनि कथा करता है अथवा जनपद कथा स्त्री आदि की कथा करता है, अथवा दूसरों को प्रत्याख्यान देता है, वाचना देता है, या ग्रहण करता है, वह असावधान मुनि पृथ्वीकाय अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय एवं त्रसकाय इन छहकाय के जीवोंका विराधक होता है ॥२९–३०॥

मूलम्—पुढवी—आउक्काए, तेऊ—वाऊ—वणस्सइत्तसाणं ।
पडिलेहणा आउत्तो, छण्हंपि आराहओ होई ॥३१॥

भावार्थ-प्रतिलेखना में सावधान मुनि पृथ्विकाय, अप्काय, 'पुढवी' तेजस्काय वायु-काय' वनस्पतिकाय एवं त्रसकाय इन छह जीवनिकायोंका आराधक माना जाता है ॥३२॥

मूलम्-तइयाए पोरिसीए, भत्तपाणं गवेसए ।
छण्हमन्नयरागम्मि, कारणम्मि समुट्ठिए ॥३२॥

भावार्थ--मुनि छह कारणों में से किसी एक कारण के उपस्थित होने पर तृतीय पौरुषी में भक्तपानकी गवेषणा करे ॥३२॥

मूलम्-वेयण वेयावच्चे, इरियट्ठाए य संजमट्ठाए ।
तह पाणवत्तियाए, छट्ठं पुण धम्मचिंताए ॥३३॥

भावार्थ--मुनि इन छह कारणों से (१) क्षुधा अथवा पिपासाकी वेदनाकी शान्ति के लिये (२) गुरु आदि मुनिजनों की सेवारूप वैयावृत्ति करने के लिये (३) ईर्यासमिति की आराधना करने के लिये (४) संयम पालन करने के लिये (५) तथा प्राणोंकी

रक्षा के लिये (६) धर्मध्यानकी चिंता के लिये भक्तपान की गवेषणा करे ॥३३॥

मूलम्—निग्गंथो धिइमंतो, निग्गंथी वि न करिज्ज छहिं च वे ।
ठाणेहिं तु इमेहिं अणातिक्कमणा य से होई ॥३४॥

भावार्थ—धर्माचरण के प्रति धैर्यशाली निर्ग्रन्थ साधु अथवा साध्वी ये दोनों भी इस वक्ष्यमाण छह स्थानों के उपस्थित होने पर भक्तपानकी गवेषणा न करे, ऐसा करने से उनके संयम योगोंका उल्लंघन होता है ॥३४॥

मूलम्—आयंके उवसग्गे, तितिक्खया बंभचेरगुत्तीसु ।
पाणिदया तवहेउं, सरीरवोच्छेयणट्ठाए ॥३५॥

भावार्थ—(१) ज्वरादिक रोग के होने पर (२) देव मनुष्य एवं तिर्यञ्चकृत उपसर्ग होने पर (३) ब्रह्मचर्य रक्षण के लिये (५) चतुर्थ भक्तादिरूप तपस्या करने के लिये (६) तथा उचित समय में अनशन कनेके लिये भक्तपानकी गवेषणा नहीं करना चाहिये ॥३५॥

मूलम्—अवसेसं भंडगं गिज्झा, चक्खुसा पडिलेहए ।
परमद्धजोयणाओ, विहारं विहरए मुणी ॥३६॥

भावार्थ—मुनि समस्त वस्त्रपात्ररूप उपकरणों की पहिले नेत्रोंसे प्रतिलेखना करे ताकि कोई जीवजन्तु उसपर न हो। बाद में उन्हें लेकर ज्यादा से ज्यादा आधे योजन तक आहार पानी की गवेषणा निमित पर्यटन करे। क्योंकि दो कोसके ऊपरका अशन-पानादिक साधुको अकल्पनीय कहा गया है ॥३६॥

मूलम्—चउत्थीए पोरिसीए, निक्खवित्ताण भायणं ।
सज्झायं च तओ कुज्जा, सव्वभाव विभावणं ॥३७॥

भावार्थ—मुनि आहारपानी करके चौथी पौरूषी में पात्रोंको वस्त्रमें बांध कर रक्खे, पश्चात् जीवादिक समस्त तत्त्वों के निरूपक स्वाध्यायको करे ॥३७॥

मूलम्—पोरसीए चउब्भागे, वंदित्ताण तओ गुरुं ।
पडिक्कमित्ता कालस्स, सिज्जं तु पडिलेहए ॥३८॥

भावार्थ—मुनि दिनकी चौथी पौरूषीके चतुर्थ भागमें स्वाध्यायको समाप्तकर गुरु महाराजको और बडोंको वन्दना करें। उसके बाद काल प्रतिक्रमण करके अपनी शय्याकी प्रतिलेखना करे ॥३८॥

मूलम्—पासवणुच्चारभूमिं च, पडिलेहिज्ज जयं जई ।
काउसग्गं तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥३९॥

भावार्थ—यतवान् मुनि दिनकी अन्तिम पौरूषीके चौथे भाग उच्चार प्रस्त्रवण के स्थंडिल के २४ मंडलोंकी प्रतिलेखना करें प्रस्त्रवणादि भूमिकी प्रतिलेखना करलेने के बाद मुनि शारीरिक एवं मानसिक तापका निवारक कायोत्सर्ग करे ॥३९॥

मूलम्—देवसियं अईयारं, चिंतिज्ज अणुपुव्वसो ।
नाणे य दंसणे चेव, चरितम्मि तहेव य ॥४०॥

भावार्थ—मुनि दिवस संबंधी अतिचारों का प्रभात समयकी प्रतिलेखनासे लगाकर संपूर्ण दिन के अतिचारोंका क्रमशः विचार करना यही कायोत्सर्ग है। ज्ञानके विषयमें दर्शन के विषयमें तथा चरित्रके विषयमें जो अतिचार लगे हो उनका विचार करे ॥४०॥

मूलम्—पारिय काउस्सग्गो, वंदित्ताणं तओ गुरूं ।
देवसियं तु अईयारं, आलोइज्ज जहक्कमं ॥४१॥

भावार्थ—अतिचारोंकी आलोचना करने के बाद मुनि कायोत्सर्ग को पारे—समाप्त करे। इसके पश्चात् गुरुवंदन कर दिवस संबंधी अतिविचार गुरुके समीप प्रकाशित करे।४१।

मूलम्—पडिक्कमित्तु निस्सल्लो, वंदित्ताण तओ गुरुं ।
काउस्सग्गं तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥४२॥

भावार्थ—अतिचारोंकी आलोचनाके बाद प्रतिक्रमण भावशुद्धिरूप मनसे, सूत्र-पाठरूप वचन से, मस्तकके झुकानेरूप काय से करके, मायादि शल्य रहित होकर गुरुवंदनकर मुनिसमस्त दुःखोंका नाश करनेवाला कायोत्सर्ग—ज्ञान, दर्शन चारित्रकी शुद्धिके निमित्त व्युत्सर्ग तप करे ॥४२॥

मूलम्—पारियकाउस्सग्गो, वंदित्ताणं तओ गुरुं।
थुईमंगलं च काउं, कालं, संपडिलेहए ॥४३॥

भावार्थ—कायोत्सर्ग पालनकर मुनि गुरुको वंदना करे। वंदना करके पश्चात् नमोत्थुणं लक्षणरूप स्तुतिद्वयको पढे। पढनेके बाद प्रदोषकाल संबंधी कालकी प्रतिलेखना करे ॥४३॥

मूलम्—पढमं पोरिसि सज्झायं, बीयं झाणं झियायई।
तइयाए निद्दमोक्खं तु, सज्झायं तु चउत्थीए ॥४४॥

भावार्थ—रात्रिकी प्रथम पौरुषी में स्वाध्याय करे दूसरी पौरुषी में ध्यान करे,

तीसरी पौरुषी में निद्रालेवे और चौथी पौरूषी में फिर स्वाध्याय करे ॥४४॥

मूलम्—पोरिसीए चउत्थीए, कालं तु पडिलेहए ।
सज्झायं तु तओ कुज्जा, अबोहिंतो असंजए ॥४५॥

भावार्थ—रात्रिकी चतुर्थ पौरूषी मेंमुनि वैरात्रिक कालकी प्रतिलेखना करके गृहस्थ-जन जग न जावें इस रूपसे अर्थात् मंद स्वरसे स्वाध्याय करे ॥४५॥

मूलम्—पोरिसीए चउब्भागे, वंदित्ताणं तओ गुरुं ।
पडिक्कमित्ता कालस्स, कालं तु पडिलेहए ॥४६॥

भावार्थ—स्वाध्याय करनेके बाद चतुर्थ पौरूषीका चतुर्थभाग बाकी रहे तब गुरुको वंदन करके 'अकाल' आ गया है, ऐसा समझकर प्रभातिक कालकी प्रतिलेखना करे अर्थात् राइसी प्रतिक्रमण करे ॥४६॥

मूलम्—आगए कायवुस्सग्गे, सव्वदुक्खविमोक्खणे ।
काउसग्गं तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥४७॥

भावार्थ—सर्व दुःखोका निवारक कायोत्सर्गका समय जब आजावे तब मुनि सर्व दुःख निवारक कायोत्सर्ग करे ॥४७॥

मूलम्—राइयं च अईयारं, चिंतिज्ज अणुपुव्वसो ।
नाणम्मि दंसणम्मि, चरित्तम्मि तवम्मि य ॥४८॥

भावार्थ—मुनि ज्ञान के विषयमें दर्शन के विषय में चारित्र के विषय में तप के विषय में एवं वीर्यके विषय में रात्रिमें जो भी अतिचार लगेहों उनका चिंतवन करे ॥४८॥

मूलम्—पारिकाउस्सग्गो, वंदित्ताणं तओ गुरुं ।
राइयं च अईयारं, आलोएज्ज जहक्कमं ॥४९॥

भावार्थ--कायोत्सर्गको पारकर गुरुको वंदना करके रात्रि संबंधी अतिचारोंकी यथा क्रम अनुक्रमसे आलोचना करे ॥४९॥

मूलम्-पडिक्कमितु निस्सल्लो, वंदित्ताण तओ गुरुं ।
काउसग्गं तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥५०॥

भावार्थ-प्रतिक्रमण करके माया, मिथ्या, निदान शल्यों से रहित बना हुआ मुनि गुरु महाराजको वंदना करे चतुर्थ आवश्यकके अन्तमें वंदना करके पंचम आवश्यक का प्रारंभ करे । इसके बाद सर्व दुःखविनाशक कायोत्सर्ग करे ॥५०॥

मूलम्-किं तवं पडिवज्जामि, एवं तत्थ विचिंतए ।
काउसग्गं तु पारित्ता, वंदइ उ तओ गुरुं ॥५१॥

भावार्थ-कायोत्सर्ग में मुनि विचार करे मैं नमस्कार सहित नौकारसी आदि किस तपको धारण करूं । पश्चात् कायोत्सर्ग पार कर गुरु महाराजको वंदना करे ॥५१॥

मूलम्—पारिय काउसग्गो, वंदित्ताणं तओ गुरुं ।
तवं संपडिवज्जित्ता, करिज्ज सिद्धाणं संथवं ॥५२॥

भावार्थ—कायोत्सर्ग के पश्चात् मुनि गुरु महराजको वंदन करे और यथाशक्ति चिन्तित तपको स्वीकारकर 'नमोत्थुणं' के पाठ को दो बार पढें ॥५२॥

मूलम्—एसा सामायारी, समासेण वियाहिया ।
जं चरित्ता बहू जीवा, तिण्णा संसारसागरं तिबेमि ॥५३॥

भावार्थ—अनन्तरोक्त यह दस प्रकारकी समाचारी मैंने संक्षेपसे कही है, जिस सामाचारी को पालन करके अनेक मुनि जीव इस संसार सागरसे पार हुए हैं। सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामी से कहते हैं हे जंबू! भगवान के समीप जैसा मैंने सुना है वैसा ही कहता हूं। ॥५३॥

'सामाचारी' अध्ययन समाप्त।

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं चंदणबाला भगवओ केवलुप्पत्तिं विण्णाय पव्वज्जं गहिउं उक्कंठिया समाणी पहुसमीपे संपत्ता। सा य पहुं आदक्खिणं पदक्खिणं करेइ। करित्ता वंदइ णमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी-इच्छामि णं भंते! संसार भउव्विग्गाहं देवाणुप्पियाणं अंतिए पव्वइसुं तएणं समणे भगवं महावीरे तं चंदणबालं एवं वयासी—अहा सुहं देवाणुप्पिया मा पडिबंधं करेह तए णं सा चंदणबाला उग्गभोगरायण्णामच्चप्पभिईणं रायकण्णगाणं सह उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ अवक्कामित्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेह। तए णं सीलसेणा देवी ताओ सदोरगमुहपत्ती रयहरणाणि अदंडिय गोच्छगाणि पडिग्गहाणि वत्थाणिय पडिच्छइ सव्वे वि णिग्गंथिवेसं धारेह तएणं चंदणबालं अग्गे काउं सव्वा वि जेणेव समणे भगवं महावीरे

चन्दन-
बालादि
राज-
कन्यकानां
दीक्षा-
ग्रहणादिकं

तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—अलित्तेणं भंते लोए जाव धम्ममाइक्खह तए णं समणे भगवं महावीरे चंदणबालं अग्गे काउं तासं रायकण्णयाणं सयमेव पव्वावेइ तए णं सा चंदणबाला पामोक्खा अज्जाओ संजमइ जाव गुत्तबंभचारिणी जाया। पुणो य बहवे उग्गभोगाइं कुलप्पसूया नरा नारीओ य पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं एवं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जिय समणोवासया जाया।

तए से समणे भगवं महावीरे तित्थयरनामगोयकम्मक्खवणट्ठं समण समणी सावयसावियारूवं चउव्विहं संघं ठाविय इंदभूइ पभिईणं गणहराणं—'उप्पन्ने वा विगमे वा धुवे वा' इय तिवइं दलइ। एयाए तिवईए गणहरा दुवालसंगं गणिपिडगं विरइयंति। एवं एगारसण्हं गणहराणं नव गणा जाया।

चन्दनबालादि राजकन्यकानां दीक्षाग्रहणादिकं

तं जहा—सतण्हं गणहराणं परोप्परभिन्न वायणाए सत्तगणा जाया। अकंपिया-यलभायाणं दुण्हंपि परोप्परं समाणवायणाए एगो गणो जाओ। एवं मेयज्ज-पभासाणं दुण्हंपि एगवायणाए एगो गणो जाओ। एवं नव गणा संभूया। तए णं से समणे भगवं महावीरे मज्झिमपावापुरीओ पडिनिक्खमइ। पडि-निक्खमित्ता अणेगे भविए पडिबोहमाणे जणवयं विहारं विहरइ। एवं अणेगेसु देसेसु विहरमाणे भगवं जणाणं अण्णाणदिण्णमवणीय ते णाणाइ संपत्ति जुए करीअ। जहा अंबरम्मि पगासमाणो भाणू अंधयारमवणीय जगं हरिसेइ तहा जगभाणू भगवं मिच्छत्तांधयारमवणीय णाणप्पगासेण जगं हरिसीअ। भवकूव-पडिए भविए णाणरज्जुणा बाहिं उद्धरीअ भगवं जलधरो व अमोहधम्मदेस-णा मियधाराए पुहविं सिंचीअ। एवं विहारं विहरमाणस्स भगवओ एगचत्ता-

चन्दन-
बालादि
राज-
कन्यकानां
दीक्षा-
ग्रहणादिकं

लीसं चाउम्मासा पडिपुण्णा। तं जहा—एगो पढमो चाउम्मासो अत्थियगामे१, एगो चंपानयरीए२, दुवे पिट्ठिचंपानयरीए४, बारस वेसालीनयरी वाणियग्गाम-निस्साए १६। चउद्दस रायगिहनगरनालंदाणाम य पुरसाहानिस्साए३०। छ मिहिलाए३६। दुवे भद्दिलपुरे३८। एगो आलंभियाए नयरीए३९। एगो सावत्थीए नयरीए४०। एगो वज्जभूमि नामगे अणारिय देसे जाओ४१। एवं एग चत्तालिसा चाउम्मासा भगवओ पडिपुण्णा४१। तए णं जणवयविहारं विहरमाणे भगवं अपच्छिमं बायालीसइमं चाउम्मासं पावापुरीए हत्थिपाल-रण्णो रज्जुगसालाए जुण्णाए ठिए ॥४०॥

शब्दार्थ—[तेणं कालेणं तेणं समएणं चंदणबाला भगवओ केवलुप्पत्तिं विण्णाय पव्वज्जं गहीउं उक्कंठिया समाणी पहुसमीवे संपत्ता] उसकाल और उस समय में चंदन-

बाला भगवान महावीर प्रभु को केवली हुए जानकर दीक्षा ग्रहण करने के लिए ऊत्कण्ठित हुई प्रभु के पास पहुंची। [सा य पहु आदक्खिणं पदक्खिणं करेइ] उसने प्रभुको आदक्षिण प्रदक्षिणापूर्वक [वंदइ नमंसइ,] वन्दन–नमस्कार किया [वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी-] वन्दना–नमस्कार कर ऐसा कहा–[इच्छामि णं भंते 'संसार भउव्विग्गाहं देवाणुप्पियाणं अंतिए पव्वइउं] हे भगवन्! संसार के भयसे उद्विग्न होकर मैं देवानुप्रिय के समीप प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहती हूं। [तए णं समणे भगवं महावीरे] तब श्रमण भगवान् महावीरने [तं चंदणबालं एवं वयासी] उस चन्दनबालाको इस प्रकार कहा–[अहासुहं देवाणुप्पिया मा पडिबंधं करेह] भो देवानुप्रिये तुमको सुख उपजे वैसा करो उसमें विलम्ब मत करो [तए णं सा चंदनबाला] तदन्तर उस चन्दनबालाने [उग्गभोगरायण्णामच्चप्पभिईणं रायकण्णगाणं सह] उग्रकुल भोगकुल राजकुल की एवं अमात्यादि राजकन्याओं के साथ [उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ] उत्तर पूर्वदिशा–ईशान-

चन्दनबालादि राजकन्यकानां दीक्षाग्रहणादिकं

कोण की ओग गये [अवक्काभित्ता] जाकरके [सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेह] अपने आप पंचमुष्ठिक लोच किया [तए णं] तत्पश्चात् [सीलसेणा देवी] शीलसेना देवीने [ताओ] उन सबको [सदोरह मुहपत्ती] सदोरक मुखवस्त्रिका [रयहरणाणि] रजोहरण [अदंडिय गोच्छगाणि] विना दंडके गोच्छ के [पडिगाहाणि] पात्रा [वत्थाणिय] एवं वस्त्र [पडिच्छइ] उन सबको दिये, [सव्वे वि निग्गंथिवेसं धारेह] उन सभीने निर्ग्रन्थिके वेशधारण किये। [तएणं चंदणबालं अग्गेकाउं] तत्पश्चात् चन्दनबालाको आगे करके [सव्वा वि] वे सभी [जेणेव समणे भगवं महावीरे] जहां पर श्रमण भगवान् महावीर प्रभु विराजमान थे [तेणेव उवागच्छइ] वहां पर गये [उवागच्छित्ता] वहां जाकरके [समणं भगवं महावीरं] श्रमण भगवान् महावीरको [वंदइ णमंसइ] वंदना की नमस्कार किया [वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी] वंदना नमस्कार कर इस प्रकार कहा—[आलित्तेणं भंते लोए] हे भगवन् यह लोक चारों तरफ से जलता हैं [जाव धम्ममाईक्खह] यावत्

चन्दन-
बालादि
राज-
कन्यकानां
दीक्षा-
ग्रहणादिकं

भगवानने धर्मोपदेश दिया [तएणं समणे भगवं महावीरे] तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीरने [चंदणबालं अग्गेकाउं] चन्दनबाला को प्रधान करके [तासं रायकण्णगाणं] वे सभी राजकन्याओं को [सयमेव पव्वावेइ] अपने हाथ से दीक्षा दी, [तएणं चंदणबाला पामोक्खा अज्जाओ] तदनन्तर चंदनबाला आदिआर्यायें [संजमइ] संयमवती बनी [जाव गुत्तबंभयारिणीजाया] यावत् गुप्त ब्रह्मचारिणी हुई [पुणो य बहवे उग्ग भोगाइ कुलप्पसूया नरानारीओ य पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं एवं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जिय समणोवासया जाया] फिर बहुत से उग्रकुल भोगकुल आदि में जन्मे हुए स्त्री पुरुषोंने पांच अणुव्रत एवं सात शिक्षाव्रतवाले–बारह प्रकारके गृहस्थ धर्म को स्वीकार किया और श्रमणोपासक बने। [तए णं से समणे भगवं महावीरे तित्थयरनामगोयकम्मक्खवणट्ठं] उसके बाद श्रमण भगवान् महावीरने तीर्थंकर नाम गोत्रका क्षय करने के लिये [समणसमणी सावयसावियारूवं चउव्विहं संघ-

चन्दन-
बालादि
राज-
कन्यकानां
दीक्षा-
ग्रहणादिकं

ठाविय] साधु साध्वी श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध संघकी स्थापना करके [इंद-भूइप्पभिईणं गणहराणं-'उप्पन्ने वा विगमे वा धुवे वा' इय तिवइं दलइ] इन्द्रभूति आदि गणधरों को उत्पाद व्यय औ ध्रौव्य इस प्रकारकी त्रिपदा प्रदान की। [एयाए तिवईए गणहरा दुवालसंगं गणिपिडगं विरइयंति] इस त्रिपदी के आधार से गणधरोंने द्वादशांग गणिपिटक की रचना की। [एवं एगारसण्हं गणहराणं नव गणा जाया] इस प्रकार ग्यारह गणधरोंके नौ गण हुए [तं जहा-सत्तण्हं गणहराणं परोप्परभिन्न वायणाए सत्त गणा जाया] वे इस प्रकार-सात गणधरों की भिन्न भिन्न वाचनाएँ होने से सात गण हुए। [अकंपियायलभायाणं दुण्हंपि परोप्परं समाणवायणयाए एगो गणो जाओ] अकम्पित और अचलभ्राता दोनों की परस्पर समान वाचना होनेसे एक गण हुआ [एवं मेयज्जपभासाणं दुण्हंपि एगवायणयाए एगो गणो जाओ] इस प्रकार मेतार्य और प्रभास दोनों की भी एक सी वाचना होने से एक गण हुआ।

[एवं नव गणा संभूया] इस प्रकार नौ गण हुए।

[तए णं से समणे भगवं महावीरे मज्झिमपावापुरीओ पडिनिक्खमइ] तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीरने मध्यम पावापुरी से विहार कर दिया [पडिनिक्खमित्ता अणेगे भविए पडिबोहमाणे जणवयविहारं विहरइ] विहार करके अनेक भव्य जीवों को प्रतिबोध देते हुए जनपद में विचरने लगे [एवं अणेगेसु देसेसु विहरमाणे भगवं जणाणं अण्णाणदिण्णमवणीय ते णाणाइसंपत्तिजुए करीअ] इस प्रकार अनेक देशों में विहार करते हुए भगवान ने लोगों की अज्ञान रूपी दरिद्रता को दूर करके उन्हें ज्ञानादि संपत्ति युक्त किया [जहा अंबरम्मि पगासमाणो भाणू अंधयारमवणीय जगं हरिसेइ] जैसे आकाश में प्रकाशमान होता हुआ सूर्य अंधकारको दूर करके जगतको हर्षित करता है [तह जगभाणू भगवं मिच्छत्तांधयारमवणीय णाणप्पगासेण जगं हरिसीअ] उसी प्रकार जगद् भानु भगवानने मिथ्यात्व रूपी अन्धकारका निवारण करके ज्ञानके

चन्दन-
बालादि
राज-
कन्यकानां
दीक्षा-
ग्रहणादिकं

आलोक से लोकको आल्हादित किया [भवकूवपडिए भविए णाणरज्जुणा बाहिं उद्ध-रीअ] भवरूपी कूप में पडे हुए भव्यों को ज्ञानरूपी डोरे से बाहर निकाला [भगवं जल-धरोइव अमोहधम्मदेसणामियधाराए पुढविं सिंचीअ] भगवान् ने मेघ की भांति अमोघ धर्मोपदेश की अमृतमयी धारा से पृथ्वी को सिंचन किया [एवं विहारं विहरमाणस्स भगवओ एगचत्तालीसं चाउम्मासा पडिपुण्णा] इस प्रकार विहार करते हुए भगवान के इकतालीस चातुर्मास पूर्ण हुए। [तं जहा–] वे इस प्रकार–[एगो पढमो चाउम्मासो अत्थियगामे] प्रथम चातुर्मास अस्थिक ग्राम में [एगो चंपाए नयरीए] एक चंपानगरी में [दुवे पिट्ठचंपाए नयरीए] दो चातुर्मास पृष्ठ चंपा में [बारस वेसाली णयरी वाणिय-ग्गामनिस्साए] बारह वैशाली नगरी में और वाणिज्य ग्राम में [चउद्दस रायगिह णगर नालंदा णाम य पुरसाहा निस्साए] चौदह राजगृह नगरके अन्तर्गत नालंदा पाडे में [छ मिहिलाए] छह मिथिलामें [३६] [दुवे भद्दिलपुरे] दो भद्दिलपुरमें [३८] [एगो आलं-

भियाए नयरीए] एक आलंभिका नगरीमें [३९] [एगो सावत्थीए नयरीए] एक श्रावस्ति नगरी में [४०] [एगो वज्जभूमिनामगे अणारियदेसे जाओ] और एक वज्रभूमि नामक अनार्य देशमे [४१] हुआ [एवं एगचत्तालिसा चाउम्मासा भगवओ पडिपुण्णा] इस प्रकार भगवान के इकतालीस चातुर्मास व्यतीत हुए। [तए णं जणवयविहारं विहरमाणे भगवं अपच्छिमं बायालीसइमं चाउम्मासं पावापुरीए हत्थिपालरण्णो रज्जुगसालाए जुण्णाए ठिए] उसके बाद जनपद विहार करते हुए भगवान अन्तिम बयालीसवां चौमासा करने के लिए पावापुरीमे हस्तिपाल राजा के पुराने राजभवनमे स्थित हुए ॥४०॥

भावार्थ—'तेणं कालेणं' इत्यादि। उस काल और उस समय में चन्दनबाला भगवान महावीर प्रभु को केवली हुए जानकर दीक्षा ग्रहण करने के लिये उत्कंठित होकर प्रभु के समीप पहुंची। उसने प्रभुको आदक्षिणप्रदक्षिणपूर्वक वन्दन—नमस्कार करके इस

प्रकार निवेद किया 'भगवन्' संसार के भयसे उद्विग्न होकर मैं देवानुप्रिय के समीप प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहती हूं। तब श्रमण भगवान् महावीरने उस चंदनवाला को इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिये तुमको सुख उपजे वैसा करो. उस में विलम्ब मत करो तत्पश्चात् उस चंदनबालाने उग्रकुल, भोगकुल, राजकुल एवं अमात्य आदि की राजकन्याओं के साथ ईशानकोने की ओर गये—वहां जाकर अपने हाथों से स्वयमेव पंचमुष्ठिक लोच किया तदनन्तर शीलसेना देवीने उन सभी को सदोरक मुखवस्त्रिका, रजोहरण, विना दंडे के गोछा, पात्रा एवं वस्त्र दिये, वे सभी कन्याओने निर्ग्रन्थि के वेश को धारण किया, तत्पश्चात् चंदनबाला को आगे करके वे सभी जहां पर श्रमण भगवान् महावीर प्रभु बिराजमान थे वहां पर गये। वहां जाकर के श्रमण भगवान् महावीर प्रभु को वंदना की नमस्कार किया, वंदणा नमस्कार करके इस प्रकार कहा—हे भगवन् यह लोक चारों ओर से जल रहा हैं यावत् भगवानने धर्मदेशना दी

चन्दन-
बालादि
राज-
कन्यकानां
दीक्षा-
ग्रहणादिकं

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीरने चंदनबाला को आगे करके वे सभी राजकन्याओं को अपने हाथ से दीक्षा प्रदान की, तदनन्तर चंदनबाला आदि आर्यायें संयमवति हुई यावत् गुप्त ब्रह्मचारिणी बनी। फिर बहुत से उग्रकुल, भोगकुल आदि में जन्मे हुए नरों तथा नारियोंने पांच अणुव्रत एवं सात शिक्षाव्रतवाले बारह प्रकार के गृहस्थधर्म को स्वीकार किया, और उन्होंने श्रावक–श्राविका का पद पाया। तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीरने तीर्थंकर नाम गोत्रका क्षय करने के लिये साधु, साध्वी श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध संघकी स्थापना करके इन्द्रभूति आदि गणधरों को 'उत्पाद' व्यय और ध्रौव्य, इस प्रकार की त्रिपदी प्रदान की। इस त्रिपदी के आधारसे गणधरों ने द्वादशांग गणिपिटक की रचना की। ग्यारह गणधरों के नौ गण हुए। वे इस प्रकार– सात गणधरोंकी भिन्न भिन्न वाचनाएं होने से सात गण हुए। अकम्पित और अचल भ्राता दोनों की परस्पर समान वाचना होने से एक गण हुआ। इसी प्रकार मेतार्य

चन्दन-
बालादि
राज-
कन्यकानां
दीक्षा-
ग्रहणादिकं

और प्रभास की भी एकसी वाचना होने से एक गण हुआ। इस प्रकार नौ गण हुए। तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर मध्यम पावापुरी से विहार कर अनेक भव्य जीवोंको प्रतिबोध देते हुए जनपद विहार विचरने लगे। इस प्रकार अनेक देशों में विहार करते हुए भगवान् ने लोगों की अज्ञान रूपी दरिद्रता को दूर करके उन्हें ज्ञानादि की सम्पत्तिसे युक्त किया। जैसे आकाश में प्रकाशमान होता हुआ भानु अन्धकार को दूर करके जगत को हर्षित करता है, उसी प्रकार जगद्भानु भगवान् ने मिथ्यात्वरूपी अन्धकार का निवारण करके ज्ञान के आलोकसे लोकको आह्लादित किया। भवरूपी कूप में पडे हुए भव्यों को ज्ञानरूपी डोरे से बाहर निकाला। भगवान् ने मेघ की भांति अमोघ धर्मोपदेश की अमृतमयी धारा से पृथ्वी को सिंचन किया। इस प्रकार विहार करते हुए भगवान् के इकतालीस चातुर्मास पूर्ण हुए। वे इस प्रकार पहला चातुर्मास अस्थिक ग्राम में (१) एक चम्पानगरी में (२) दो चातुर्मास पृष्ठ चम्पा में (४) बारह

वैशालीनगरी और वाणिज्य ग्राम में (१६) चौदह राजगृह नगर में—नालंदा नामक पाडे में (३०) छह मिथिला में (३६) दो भद्दिलपुर में (३८) एक आलंभिका नगरी में (३९) एक श्रावस्ती नगरी में (४०) और एक वज्रभूमि नामक अनार्य देश में (४१) हुआ। इस प्रकार भगवान् के इकतालीस चौमासे व्यतीत हुए। तत्पश्चात् जनपद विहार करते हुए भगवान् अन्तिम बयालीसवां चौमासा करने के लिये पावापुरि में हस्तिपाल राजा के पुराने चुंगीघर (जकातस्थान) में स्थित हुए ॥४०॥

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं सक्के देविंदे देवराया जेणेव पावापुरी नयरी जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ० एवं वयासी—पभो निव्वाणसमयं संनिकिट्ठं जाणिऊण सांजलिपुटं निवेययामो गब्भ, जम्म, दिक्खा, केवलणाण

समए हत्थोत्तरा नक्खत्तं आसी—अहुणा भासरासी महग्गहो संकंतो हवइ, दो सहस्स वरिसपज्जंतं उदिए पूया सक्कारेइ पवत्तति। घटिका दुयं आउस्सं अभिविड्ढिं कुरू। दुट्ठग्गहो भासरासी महग्गहो सांतो भविस्सइ। भगवं-आह—सक्का मेरूं अंगुलिणा उट्ठाविउं समत्थोह्मि किंतु निरुपम आउसं खण-मवि नूणाहियं करणे न समत्थोह्मि। रत्तीए दिवसं करिउं सक्केमि, दिवसस्स रत्तीं करिउं सक्कोह्मि किंतु निरुवम आउसं खणमवि नूणाहियं करणे न समत्थोह्मि।

कइविहेणं भंते उग्गहे पण्णत्ते, सक्का पंचविहे उग्गहे पण्णत्ते, तं जहा—देविंदोग्गहे रायग्गहे गाहावइ उग्गहे सागारिय उग्गहेसाहम्मिय उग्गहे। जे इमे भंते अज्जत्ताए समणा निग्गंथा विहरंति, एएसि णं अहं उग्गहे अणु-जाणामी तिकट्टु समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता,

आयुषः अल्पत्वदी-र्घत्वकरणे असमर्थत्वम्

तमेव दिव्वं जाणविमाणं दुरूहइ दुरूहित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए। भंते त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—सक्केणं भंते देविंदे देवराया किं सावज्जं भासं भासइ अणवज्जं भासं भासइ, गोयमा! सावज्जंपि भासं भासइ, अणवज्जंपि भासं भासइ, से केणट्ठेणं भंते एवं वुच्चइ सावज्जंपि जाव अणवज्जंपि भासं भासइ, गोयमा! जाहे णं सक्के देविंदे देवराया सुहुमकायं अणिज्जूहित्ता णं भासं भासइ, ताहे णं सक्के देविंदे देवराया सावज्जं भासं भासइ, जाहे णं सक्के देविंदे देवराया सुहुमकायं निज्जूहित्ताणं भासं भासइ ताहे णं सक्के देविंदे देवराया अणवज्जं भासं भासइ ॥४१॥

भावार्थ—उसकाल और उससमय देवेन्द्र देवराज शक्र जहां पर पावापुरी नगरी थी एवं

जहां पर श्रमण भगवान् महावीर बिराजमान थे वहां गया वहां जाकरके श्रमण भगवान् महावीरको वंदनाकी नमस्कार किया वंदना नमस्कार करके श्रमण भगवान् महावीर प्रभुसे धर्मका श्रवण कर उसे हृदयमें धारण करके हृष्ट तुष्ट होकर प्रभुको इस प्रकार कहा हे प्रभो निर्वाणका समय समीपवर्त्ति जानकर हाथ जोडकर प्रार्थना करता हूं गर्भ, जन्म, दीक्षा और केवलज्ञान उत्पत्ति के समय हस्तोत्तरा नक्षत्र था, अब भासराशी नाम का महाग्रह संक्रांत हुवा है दो हजार वर्ष पर्यन्त आपके साधु साध्वीयोंका पूजा सत्कार प्रवर्तेगा दो घटि की आयुष्यकी वृद्धि कीजिए क्यों की तब तक भस्मराशी महाग्रह शांत हो जायगा भगवान ने कहा—हे शक्र! में मेरु पर्वतको एक अंगुलीसे उठाने में शक्तिमान् हूं, परंतु निरुपम आयुष्य एकक्षण भी न्यून अथवा अधिक करनेमें समर्थ नहीं हूं, रात्रि मे दिवस करनेको समर्थ हूं, और दिवस में रात्री बनाने में समर्थ हूं परंतु निरुपम आयुष्य एकक्षण भरका भी न्यूनाधिक करने में समर्थ नहीं हूं।

हे भगवन् उपग्रह कितने प्रकार का है? हे शक्र! उपग्रह पांच प्रकार का कहा गया है जैसे देवेन्द्र उपग्रह, राजग्रह गाथापति उपग्रह सागारिक उपग्रह साधर्मि उपग्रह ये जो श्रमण निर्ग्रन्थ विचरते हैं उनको हम उपग्रह–आज्ञा, देता हूं ऐसा कह कर श्रमण भगवान् महावीरको वंदना की नमस्कार किया वंदना नमस्कार करके वही दिव्य यानविमान में बैठकर जिस दिशासे आये थे वहीं पर चले गये तत्पश्चात् हे भदन्त! इस प्रकार संबोधन करके भगवान् गौतम स्वामीने भगवान्‌को वंदना नमस्कार करके इस प्रकार कहा–हे भगवान् देवेन्द्र देवराज सावद्य भाषा बोलते हैं अथवा निर-वद्य भाषा बोलते हैं? हे गौतम! सावद्य भाषा भी बोलते हैं निरवद्य भाषा भी बोलते हैं हे भगवन् आप ऐसा किस हेतु से कहते है कि सावद्य और निरवद्य दोनों प्रकारकी भाषा देवेन्द्र बोलते हैं? हे गौतम! जब देवेन्द्र देवराज शक्र मुहपत्ति न बांधकर सूक्ष्म-काय जीव की हिंसा हो इस प्रकार से बोलते हैं तब शक्र सावद्य भाषा बोलते हैं और

जब देवेन्द्र देवराज शक्र मुहपत्ती अथवा उत्तरासंग रखकर सूक्ष्मकाय की रक्षा हो इस प्रकार से बोलते है तब देवेन्द्र देवराज निरवद्य भाषा बोलते हैं ॥४१॥

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे आसन्नं नियनिव्वाणतिहिं अणुहविय मज्झ पेमाणुरागरत्तस्स अस्स मम निव्वाणं दट्ठूण केवलनाणुप्पत्ति पडिबंधो मा भवउ त्ति कट्टु गोयमसामिं देवसम्ममाहण पडिवोहणट्ठं आसन्न गामंसि दिवसे पेसीअ। तेणं समणं भगवं महावीरे तीसं वासाइं आगारवासमज्झे वसिअ साइरेगाइं दुवालसवासाइं छउमत्थ-परियाए, देसूणाइं तीसं वासाइं केवलिपरियाए एवं बायालीसं वासाइं सामण्ण परियाए वसिय, बावत्तरिवासाइं सव्वाउयं पालइत्ता खीणे वेयणिज्जाउय-नामगुत्तकम्मे इमीसे ओसप्पिणीए दूसमसुसमाए समाए वहुवीइक्कंत्ताए तीहिं

बासेहिं अद्धनवमेहि य मासेहि सेसेहि पावाए णयरीए हत्थिवालस्स रण्णो रज्जुगसालाए जुण्णाए तस्स दुचत्तालीस इमस्स वासावासस्स जे से चउत्थे मासे सत्तमे पक्खे कत्तियबहुले, तस्स णं कत्तियबहुलस्स पन्नरसी पक्खेणं जा सा चरमा रयणी, तीए अद्धरत्तीए एगे अबीए छट्ठेणं भत्तेणं अपाणए णं संपलियंकनिसण्णे दस अज्झयणाइं पावफलविवागाइं, दस अज्झयणाइं पुण्णफलविवागाइं कहित्ता, छत्तीसं च अपुट्ठवागरणाइं वागरित्ता एवं छप्प-ण्णं अज्झयणाइं कहित्ता पहाणं नाम मरुदेवज्झयणं विभावेमाणे अंतोमुहुत्ता-युसेसे जोगे निरुंभमाणे लोउज्जोए सिया पहू सेलेसिं पडिवज्जइ, तया कम्मं खवित्ताणं सिद्धिगइं गच्छइ नीरओ, सिद्धिं गमित्ता लोगमत्थयत्थो हवइ सासओ। एवं कालगए विइक्कंते समुज्जाए। छिन्नजाइ जरामरणबंधणे सिद्धे

बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खपहीणे जाए। तेणं कालेणं तेणं समएणं चंदे नामं दोच्चे संवच्छरे पीइवद्धणे मासे नंदिवद्धणे पक्खे। अग्गिवेस्से उवसमित्ति अवरे नामे दिवसे, देवाणंदा निरतित्ति अवरणामा रयणी। अच्चे लवे, मुहुत्ते पाणू, सिद्धे थोवे, नागे करणे, सव्वट्ठसिद्धे मुहुत्ते साइनक्खत्ते चंदेण सद्धिं जोगमुवागए यावि होत्था।

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए तं रयणिं च णं बहूहिं देवेहि देवीहि य ओवयमाणेहि य उप्पयमाणेहि य देवुज्जोए देवसण्णिवाए देवकहकहे उप्पिंजलगभूए यावि होत्था ॥४२॥

शब्दार्थ—[तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे आसन्ननियनिव्वाणतिहिं अणुहविय] उस काल और उस समयमे श्रमण भगवान महावीरने अपने

निर्वाण का दिन समीप जानकर [मज्झ पेमाणुरागरत्तस्स अस्स 'मम निव्वाणं दट्ठूण केवलणाणुप्पत्तिपडिबंधो मा भवउ' त्ति] मेरे प्रेम में अनुरक्त इन्द्रभूति को मेरा निर्वाण देखकर केवलज्ञान की उत्पत्ति में विघ्न न हो, ऐसा विचार कर [गोयमसामिं देवसम्म माहणपडिबोहणट्ठं आसन्नगामम्मि दिवसे पेसीअ] गौतमस्वामि को देवशर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देने के लिए पास के एक ग्राम में दिन में भेज दिया। [तेणं समणे भगवं महावीरे तीसंवासाइं अगारवासमज्झे वसिय] वे श्रमण भगवान महावीर तीस वर्ष गृहवास में रहें [साइरेगाइं दुवालसवासाइं छउमत्थपरियाए] कुछ समय अधिक बारह वर्ष तक छद्मस्थ पर्याय में रहे। [देसूणाइं तीसं केवलिपरियाए] तथा कुछ कम तीस वर्ष केवली पर्याय विचरे [एवं बायालिसं वासाइं सामण्णपरियाए वसिय] इस प्रकार बयालीस वर्ष श्रमण पर्याय में रहकर [बावत्तरिवासाइं सव्वाउयं पालयित्ता] एवं बहत्तर वर्ष की समग्र आयुको भोगकर [खीणे वेयणिज्जाउयनामगुत्तकम्मे] तथा

वेदनीय आयुष्क नाम और गोत्र कर्म के क्षीण होने पर [इमीसे ओसप्पिणीए दूसमसुसमाए समाए बहुवीइक्कंताए तीहिं वासेहिं अद्धनवमेहिं य मासेहि सेसेहि] इस अवसर्पिणी काल के दुष्षम सुषम आरे का अधिक भाग बीत जाने पर, तीन वर्ष और साढे आठ मास शेष रहने पर [पावाए णयरीए हत्थिवालस्स रण्णो रज्जुगसालाए जुण्णाए] पावापुरी में राजा हस्तिपाल के जीर्ण चुंगीघर में [तस्स दुचत्तालीसइमस्स वासा वासस्स जे से चउत्थे मासे सत्तमे पक्खे कत्तियबहुले तस्स णं कत्तियबहुलस्स पण्णरसी पक्खेणं जा सा चरमा रयणी] बयालीसवें चौमासे के चौथे मास और सातवें पक्ष में कार्तिक मास के कृष्णपक्ष में और कार्तिक कृष्णपक्ष की अमावस्या के दिन [ताए अद्धरत्तीए एगे अबीए छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं संपलियंकणिसण्णे] अन्तिम रात्रि के अर्द्धभाग में अकेले निर्जल षष्ठ भक्त की तपस्या करके पर्यकासन से विराजमान हुए। [दस अज्झयणाइं पावफलविवागाइं] उस समय दुःख विपाक के दस अध्ययन पाप

फल–विपाक के और [दस अज्झयणाइं पुण्णफलविवागाइं कहित्ता] और सुखविपाक के दस अध्ययन–पुण्य के फल–विपाक के कहकर [छत्तीसं च अपुट्ठवागरणाइं वागरित्ता एवं छप्पण्णं अज्झयणाइं कहित्ता] तथा उत्तराध्ययन के छत्तीस अध्ययन विना पूछे प्रश्नों का उत्तर देकर–इस प्रकार छप्पन अध्ययन फरमाकर [पहाणं नाम मरुदेवज्झयणं विभावेमाणे अंतोमुहुत्तायुसेसे] प्रधान नामक मरुदेव के अध्ययन का प्ररूपण करते हुए अन्तर्मुहूर्त्त आयुशेष रहने पर [जोगे निरुंभमाणे] मन वचन एवं कायके योग का निरोध करने पर [लोउज्जोए सिया] तीनों लोक में प्रकाश हुवा, [पहू सेलेसिं पडिवज्जइ] प्रभुने शैलेशी अवस्था प्राप्त की [तया कम्मं खवित्ता सिद्धिगइं गच्छइ] तब आठों कर्म को खपा करके कर्मरजरहित सब कर्मों से मुक्त होकर मोक्षगति को प्राप्त की [सिद्धिगइं गमित्ता] सिद्धिगति को प्राप्त करके [लोगमत्थयत्थो] लोक के अग्रभाग पर स्थित रहते हुए [सिद्धो हवइ सासओ] शाश्वत नित्यपने से सिद्ध

हो कर रहते हैं [कालगए विइक्कंते समुज्जाए] कालधर्म को प्राप्त हुए [छिन्न जाइ जरा-मरणबंधणे सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे जाए] संसार से निवृत्त हुए, पुनरागमन–रहित उर्ध्वगति–कर गये, जन्म जरा और मरण के बन्धन से रहित हो गये। सिद्ध हुए, बुद्ध हुए, मुक्त हुए, परमशांति को प्राप्त हुए, और समस्त दुःखों से रहित हुए।

[तेणं कालेणं तेणं समएणं चंदे नामं दोच्चे संवच्छरे] उस काल और उस समय में चन्द्रनामक द्वितीय संवत्सर था [पीइवद्धणे मासे नंदिवद्धणे पक्खे] प्रीतिवर्द्धन मास था, नन्दिवर्द्धन पक्ष था [अग्गिवेस्से उवसमित्ति अवरनामे दिवसे] अग्निवेश्य–जिसका दूसरा नाम उपशम है दिन था [देवानंदा निरतित्ति अवरनामा रयणी] देवानन्दा, अपरनाम निरति नामक रात्रिथी [अच्चे लवे] अर्द्ध नामक लव था [मुहुत्ते पाणू] मुहूर्त नामक प्राण था [सिद्धे थोवे] सिद्ध नामक स्तोक था [नागे करणे] नाग नामक करण था

[सव्वट्ठसिद्धे मुहुत्ते] सर्वार्थसिद्ध नामक मुहूर्त्त था [साई नक्खत्ते चंदेण सद्धिं जोगमुवागए यावि होत्था] और स्वाती नक्षत्र का चन्द्रमा के साथ योग था [जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए] जिस रात्रि में श्रमण भगवान महावीर का निर्वाण हुआ [तं रयणिं च णं बहुहिं देवेहि देवीहि य ओवयमाणेहि य उप्पयमाणेहि य देवुज्जोए देवसण्णिवाए देवकहकहे उप्पिंजलगभूए यावि होत्था] उस रात्रि में बहुत से देवों और देवियों के नीचे आने और ऊपर जाने के कारण देव-प्रकाश हुआ, देवों का कल कल हुआ। देवों की बहुत बडी भीड लगी ॥४२॥

भावार्थ—उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीरने अपने निर्वाण के दिन समीप जानकर 'मेरे उपर स्नेह रखनेवाले गौतम को मेरा निर्वाण देखकर केवलज्ञान की प्राप्ति में विघ्न न हो' इस प्रकार विचार कर गौतमस्वामी को देवशर्मा नामक ब्राह्मण को प्रतिबोध देने के लिये पावापुरी के समीपवर्ती किसी ग्राम में दिनके

पीछले समय भेज दिया। श्रमण भगवान् महावीर तीस वर्ष तक गृहवास में रहे कुछ समय अधिक बारह वर्ष पर्यन्त छद्मस्थावस्था में रहे। और कुछ समय कम तीस वर्ष केवली पर्याय में रहे। इस प्रकार बयालीस वर्षों तक चारित्र पर्याय में रहे। जन्मकाल से आरंभ करके समग्र आयु बहत्तर वर्ष की भोगी। तत्पश्चात् वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र नामक चार अघातिक कर्मों का क्षय हो जाने पर इसी अवसर्पिणी काल के दुषम—सुषम नामक चौथे आरे का अधिक भाग बीत जाने पर और सीर्फ तीन वर्ष तथा साढे आठ महीने शेष रहने पर पावापुरी में हस्तिपाल राजा की पुरानी शुल्क-शाला में बयालीसवें चौमासे के चौथे मास और सातवें पक्ष में कार्तिक मासके कृष्ण-पक्ष में और कार्तिक कृष्णपक्ष की अमावस्या तिथि में, अन्तिम रात्रि के अर्ध भाग में अर्थात् आधी रात के समय में अकेले—दूसरे मोक्षगामी जीव के साथ के विना ही जलपान रहित बेले की तपस्या के साथ पद्मासन से विराज़मान हुए। उस

समय विपाक सूत्र के प्रथम स्कन्ध नाम से प्रसिद्ध, पाप का फल विपाक दर्शानेवाले दस दुःख विपाक नामक अध्ययनों को तथा विपाकसूत्र के द्वितीय अध्ययन के नाम से प्रसिद्ध पुण्य का फल बतलानेवाले दस सुख विपाक नामक अध्ययनों को कह कर और उत्तराध्ययन के नाम से प्रसिद्ध छत्तीस अध्ययन रूप अपृष्ट व्याकरणों को अर्थात् पूछे विना ही किये गये व्याकरणों को कहकर और इस प्रकार सब छप्पन अध्ययन फरमाकर प्रधान नामक मरुदेव अध्ययन का प्ररूपण करते हुए अन्तर्मुहूर्त्त आयु शेष रहने पर भगवान् ने मन वचन एवं काय के योग का निरोध करने पर तीनों लोगो में प्रकाश हुवा। प्रभुने शैलेशी अवस्था प्राप्त की तव आठों कर्मों को खपाकर कर्म रजरहित–सब कर्मो से मुक्त होकर मोक्षगति को प्राप्त की सिद्धि गति को प्राप्त करके लोकके अग्रभाग पर स्थित रहते हुए शाश्वत–नित्यरूप से सिद्ध होकर रहते हैं। कालधर्म को प्राप्त हुए, अर्थात् कायस्थिति और भवस्थिति से

मुक्त हुए पुनरागमन रहित गति को प्राप्त हुए। जन्म और मरण के बन्धन से मुक्त हुए, परमार्थ को साधकर सिद्ध हुए, तत्वार्थ को जानकर बुद्ध हुए और समस्त कर्मों के समूह से मुक्त हुए, उनके समस्त दुःख दूर हो गये। किसी भी प्रकार का संताप न रहने से परम शांति को–निर्वाण को प्राप्त हुए, और इस कारण समस्त शारीरिक और मानसिक दुःखों से रहित हो गये। उस काल और उस समय में अर्थात् भगवान् के निर्वाण के अवसर पर चन्द्र नामक द्वितीय संवत्सर था। प्रीतिवर्धन नामक मास, नन्दिवर्धक नामक पक्ष, उपशम जिस का दूसरा नाम है ऐसा अग्निवेश्य नामक दिवस था। देवानन्दा, जिसका दूसरा नाम निरति है, रात्रि थी। अर्ध नामक भव, मुहूर्त्त नामक प्राण, सिद्ध नामक स्तोक, नाग नामक करण, सर्वार्थसिद्ध नामक मुहूर्त्त था और स्वाती नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का संबंध को प्राप्त था। जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर का निर्वाण हुआ उस रात्रि में बहुत से देवों और देवियों के नीचे आने और ऊपर जाने से देवप्रकाश

हुआ, देवों का संगम हुआ, देवों का कलकल नाद हुआ और देवों की बहुत बडी भीड भी हुई ॥४२॥

मूलम्–तए णं से गोयमसामी समणस्स भगवओ महावीरस्स निव्वाणं सुणिय वज्जाहए विव खणं मोणमोलंबिय थद्धो जाओ। तओ पच्छा मोहवसंगओ सो विलवइ–भो ! भो ! भदंत महावीर ! हा ! हा ! वीर ! एयं किं कयं भगवया, जं चरणपज्जुवासगं मं दूरे पेसिय मोक्खं गए। किमहं तुम्हं हत्थेण गहियं अचिट्ठिस्सं, किं देवाणुप्पियाणं निव्वाणविभागं अपत्थिस्सं, जे णं मं दूरे पेसीअ। जइ दीणसेवगं मं सएणं सद्धिं अनइस्सं तो किं मोक्खणयरं संकिण्णं अभविस्सं ? महापुरिसा उ सेवगं विणा खणंपि न चिट्ठंति, भदंतेण सा नीइ कहं विसरिया। इमा पवित्ती विपरिया जाया। सह णयणं

गौतम-
स्वामिनः
विलापः
केवलज्ञान-
प्राप्तिश्च

ताव दूरे चिट्ठउ परं अंतसमए ममं दिट्ठिओऽवि दूरे पक्खिवीअ। को अवराहो मए कओ जं एवं कयं। अहुणा को ममं गोयमगोयमेत्ति कहिय संबोहिस्सइ, कमहं पण्हं पुच्छिस्सामि, को मे हिययगयं पण्हं समाहिस्सइ। लोए मिच्छंधयारो पसरिस्सइ। तं को णं अवाकरिस्सइ। एवं विलवमाणे गोयमसामी मनंसि चिंतीअ सच्चं जं वीयरागा रागरहिया चेव हवंति। जस्स नामं चेव वीयरागो से कंसि रागं करेज्जा! एवं मुणिय ओहिं पउंजइ। ओहिणा भवकूवपाडिणं मोहकलियं वीयरागोवालंभरूवं नियावराहं जाणिय तं खामिय पच्छायावं करेइ अणुचिंतेइ य को मम? अहं कस्स? एगो एव अप्पा आगच्छइ गच्छइ, य न को वि तेणं सद्धिं आगच्छइ गच्छइ य।

'एगो हं नत्थि मे कोइ नाहमन्नस्स कस्स वि।
एवमप्पाणमणसा, अदीणमणुसासए ॥

वयणेण एगत्तभावणा भावियस्स गोयमसामिस्स कत्तियसुक्कपाडिवयाए दिणयरोदयसमयंसि चेव लोयालोयालोयणसमत्थं निव्वाणं कसिणं पडिपुण्णं अव्वावाहयं निरावरणं अणंतं अणुत्तरकेवलवरणाणदंसणं समुप्पण्णं। तया भवणवइवाणमंतरजोइसियविमाणवासीहि देवदेवीविंदेहिं सय सय इड्ढी समिद्धेहि आगंतूण केवलमहिमा कया। तेलुक्कम्मि अमंदाणंदो संजाओ। महापुरिसाणं सव्वावि चेट्ठा हियहरा हवंति। तहाहि—अहंकारो वि बोहस्स, रागो वि गुरुभत्तिओ। विसाओ केवलस्सासी, चित्तं गोयमसामिणो

जं रयणिं च णं समणं भगवं महावीरे कालगए, सा रयणी देवेहिं उज्जे-

विया। तप्पभियं सा रयणी लोए दीवालियत्ति पसिद्धा जाया। नवमल्लई नवलेच्छइ कासी कोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो संसारपारकरं पोसहोववासदुगं करिंसु। बीए दिवसे कत्तियसुद्धपडिवयाए गोयमसामिस्स केवलमहिमा देवेहिं कया, तेणं तं दिवसं नूयणवरिसारंभदिवसत्तणेण पसिद्धं जायं। भगवओ जेट्ठभाऊणा नंदिवद्धणेण भगवं मोक्खगयं सोच्चा सोगसायरे निमज्जिएण चउत्थं कयं। सुदंसणाए भइणीए तं आसासिय नियगिहे आणाविय चतुत्थस्स पारणगं कारियं तेण सा कत्तियसुद्धविइया भाउबीयत्ति पसिद्धिं पत्ता ॥४३॥

शब्दार्थ—[तए णं से गोयमसामी समणस्स भगवओ महावीरस्स निव्वाणं सुणिय] उसके बाद गौतमस्वामीने श्रमण भगवान महावीर का निर्वाण हुआ सुनकर [वज्जाहए विव खणं मोणमवलंविय थद्धो जाओ] क्षणभर मौन रहकर वज्राहत की तरह सुन्न हो

गये [तओ पच्छा मोहवसंगओ सो विलवइ] उसके बाद मोह के वशीभूत होकर वे विलाप करने लगे [भो ! भो ! भदंत महावीर ! हा ! हा ! वीर ! एयं किं कयं भगवया जं चरणपज्जुवासगं मं दूरे पेसिय मोक्खं गए] हे भगवन् ! महावीर ! हा ! हा ! वीर ! यह आपने क्या किया ? मुझ चरण सेवक को दूर भेज कर आप मोक्ष चले गये ! [किमहं हत्थेण गहिय अचिट्ठिस्सं] मैं क्या आपका हाथ पकड कर बैठ जाता ? [किं देवाणुप्पियाणं निव्वाणविभागं अपत्थिस्सं] क्या देवानुप्रिय के मोक्ष में हिस्सा बटाने की मांग करता [जे णं मं दूरे पेसीअ] जिससे मुझे दूर भेज दिया [जइ दीणसेवगं मं सएण सद्धिं अनइस्सं तो किं मोक्खणयरं संकिण्णं अभविस्सं ?] यदि इस दीन सेवक को भी साथ लेते जाते तो मोक्ष नगर संकडा हो जाता–वहां जगह नहीं मिलती ? [महापुरिसाउ सेवगं विणा खणंपि न चिट्ठंति] महापुरुष सेवक के बिना क्षणभर भी नहीं रहते। [भदंतेण सा नीई कहं विसरिया] आपने यह नीति कैसे भूला दी [इमा

गौतम-स्वामिनः विलापः केवलज्ञान-प्राप्तिश्च

गौतम-
स्वामिनः
विलापः
केवलज्ञान-
प्राप्तिश्च

पवित्ती विपरिया जाया] यह तो विपरीत ही बात हुइ ! [सह णयणं ताव दूरे चिट्ठउ परं अंतसमए ममं दिट्ठीओऽवि दूरे पक्खित्तीअ] अरे साथ लेजाना तो दूर रहा किन्तु अन्तिम समय में मुझे नजरों से भी ओझल फैंक दिया [को अवराहो मए कओ जं एवं कयं] मैंने ऐसा क्या अपराध किया था जो आपने ऐसा किया [अहुणा को ममं गोयमगोयमेत्ति कहिय संबोहिस्सइ] अब गौतम ! गौतम कह कर कौन मुझे संबोधन करेगा ? [कमहं पण्हं पुच्छिस्सामि] अब मैं किससे प्रश्न पूछूंगा [को मे हिययगयं पण्हं समाहिस्सइ] कौन मेरे हृदयगत प्रश्न का समाधान करेगा ? [लोए मिच्छंधयारो पसरिस्सइ तं कोणं अवाकरिस्सइ] लोक में मिथ्यात्व का जो अंधकार फैलेगा, उसे कौन दूर करेगा ? [एवं विलवमाणे गोयमसामी मणंसि चिंतीअ] इस प्रकार विलाप करते करते गौतमस्वामीने मन में विचार किया [सच्चं जं वीयरागा रागरहिया चेव हवंति] सच है वीतराग, रागरहित ही होते हैं [जस्स नामं चेव वीयरागो से कंसि रागं करेज्जा ?]

जिसका नाम ही वीतराग है वह किस पर राग करेगा ? [एवं मुणिय ओहिं पउंजइ] यह जानकर गौतमस्वामीने अवधिज्ञान का प्रयोग किया [ओहिणा भवकूवपाडिणं मोहकलियं वीयरागोवालंभरूपं नियावराहं जाणिय तं खामिय पच्छातावं करेइ] अवधि-ज्ञान से भवकूप में गिरानेवाला, मोहयुक्त और वीतराग को उपालंभ देने रूप अपने अपराध को जानकर और खमाकर पश्चात्ताप किया और विचार किया [को मम ?] मेरा कौन है ? [अहं कस्स ?] मैं किसका ? [एगो एव अप्पा आगच्छइ गच्छइ य] अकेला ही आत्मा आता है और अकेला ही जाता है [न कोवि तेण सद्धिं आगच्छइ गच्छइ य] न कोइ उसके साथ आता है और न जाता है। कहा भी है [एगो हं नत्थि मे कोइ, नाहमन्नस्स कस्स वि] मैं अकेला हूं, मेरा कोई नही है और न मैं ही किसी अन्य का हूं [एवमप्पाणमणसा अदीणमणुसासए] इस प्रकार मन से अपने दैन्य रहित–उदार आत्मा का अनुशासन करें। [वयणेण एगत्तभावना भावियस्स गोयमसामिस्स] इत्यादि

वचन से एकत्वभावना से भावित गौतमस्वामी को [कत्तियसुक्कपडिवयाए दिणयरोदय-समयंमि चेव लोयालोयणसमत्थं निव्वाणं कसिणं पडिपुण्णं अव्वावाहयं निरावरणं अणंतं अणुत्तरकेवलवरणाणदंसणं समुप्पण्णं] कार्तिक शुक्ला प्रतिपद के दिन सूर्योदय के समय लोक और अलोक को देखने में समर्थ, निर्वाण का कारण सब पदार्थों को साक्षात्कार करनेवाला प्रतिपूर्ण अव्याहत, निरावरण, अनंत और अनुत्तर श्रेष्ठ केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हो गया। [तया भवणवइ वाण-मंतरजोइसिय विमाणवासीही देवदेवीविंदेहि सयसयइड्ढीसमिद्धेहि आगंतूण केवल-महिमा कया] उस समय भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष्क और विमानवासी देवों और देवियों के समूहने अपनी ऋद्धि और समृद्धि के साथ आकर केवलज्ञान की महिमा की [तिलुक्कम्मि अमंदाणंदो संजाओ] तीनों लोक में अमन्द आनंद हो गया [महापुरि-साणं सव्वावि चेट्ठा हियकरा एव हवंति] महापुरुषों की सभी चेष्टाएं हितकर ही होती

गौतम-स्वामिनः विकापः केवलज्ञान-प्राप्तिश्च

है [तहा हि] कहा भी है–[अहंकारो वि बोहस्स रागो वि गुरुभत्तिओ] आश्चर्य है कि गौतमस्वामी का अहंकार बोध प्राप्ति का कारण बन गया राग गुरुभक्ति का कारण बना [विसाओ केवलस्सासी चित्तं गोयमसामिणो] और शोक केवलज्ञान का कारण बन गया।

[जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए] जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर मोक्ष पधारे [सा रयणी देवेहिं उज्जोविया] उस रात्रि में देवों ने खूब प्रकाश किया [तप्पभिइं सा रयणी लोए दीवालियत्ति पसिद्धा जाया] तभी से वह रात्रि लोक में दीपावली के नाम से प्रसिद्ध हुई। [नवमल्लइ नवलेच्छइ कासीकोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो संसारपारकरं पोसहोववासदुगं करिंसु] काशी देश के नौ मल्लकी और कोशल देश के नौ लेच्छकी इस प्रकार अठारहों गणराजाओं ने संसार से पार करनेवाले दो दो पौषधोपवास किये। [बीए दिवसे कत्तियसुद्धपडिवयाए गोयमसामिस्स केवल

गौतम-
स्वामिनः
विलापः
केवलज्ञान-
प्राप्तिश्च

महिमा देवेहिं कया] दूसरे दिन कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को देवों ने गौतमस्वामी के केवलज्ञान की महिमा की [तेणं तं दिवसं नूयणवरिसारंभदिवसत्तणेण पसिद्धं जायं] इस कारण वह दिन नूतन वर्षारंभ का दिन प्रसिद्ध हुआ [भगवओ जेट्ठ भाऊणा नंदिवद्धणेण भगवं मोक्खगयं सोच्चा सोगसागरे निमज्जिएण चउत्थं कयं] भगवान को मोक्ष गया सुनकर शोक सागर में डूबे हुए भगवान के ज्येष्ठ भ्राता नन्दिवर्धन ने उपवास किया। [सुदंसणाए भइणीए तं आसासिय नियगिहे आणाविय चउत्थस्स पारणगं कारियं तेण सा कत्तियसुद्धबिइया भाउबीयत्ति पसिद्धिं पत्ता] सुदर्शना बहन ने उनको सान्त्वना देकर और अपने घर पर लाकर उपवास का पारणा करवाया। इस कारण कार्तिक शुक्ला द्वितीया (भाइदूज) के नाम से प्रसिद्ध हुइ ॥४३॥

भावार्थ—तब गौतमस्वामी श्रमण भगवान् महावीर का निर्वाण हुआ सुनकर, मानो वज्र से आहत हुए हों, इस प्रकार क्षणभर मौन रह कर सुन्न हो गये। तत्पश्चात्

गौतमस्वामिनः विलापः केवलज्ञानप्राप्तिश्च

मोह के वश होकर वह विलाप करने लगे, हे भगवन् ! महावीर ! हा ! हा ! वीर आपने यह क्या किया ? मुझ चरण सेवक को दूर भेज दिया और आप स्वयं मोक्ष चल दिये। क्या मैं आप को हाथ पकड कर बैठ जाता ? क्या आपके मोक्ष में हिस्सा मांग लेता ? फिर क्यों मुझे दूर भेज दिया ? अगर मुझ गरीब सेवक को आप साथ लेते जाते तो क्या मोक्षनगर में जगह न मिलती ? महापुरुष सेवक के बिना क्षण भर भी नहीं रहते, भदन्त ने यह परिपाटी कैसे भुला दी ? यह तो उल्टी ही बात हो गई। खेर, साथ ले जाना तो दूर रहा, मुझे आंखों से भी ओझल फेंक दिया। क्या अपराध किया था मैंने, जिससे आपने ऐसा किया ? अब आप देवानुप्रिय के अभाव में कौन 'गोयमा, गोयमा' कह कर मुझे संबोधन करेगा ? किससे में प्रश्न पूछूंगा ? कौन मेरे मनके प्रश्न का समाधान करेगा ? लोक में मिथ्यात्व का अंधकार फैल जायगा, अब कौन उसे दूर करेगा ? इस प्रकार विलाप करते हुए गौतमस्वामी ने मनमें विचार किया-सत्य है,

वीतराग, राग से वर्जित होते हैं। जिसका नाम ही वीतराग हो वह किस पर राग रक्खेगा ? किसी पर भी नहीं । ऐसा जानकर गौतमस्वामीने अवधिज्ञान का उपयोग लगाया अवधिज्ञान का उपयोग से उन्हें मालूम हुआ कि यह भगवान् को उपालंभ देना मेरा अपराध है। यह अपराधभवरूपी कूप में गिरानेवाला और मोहजनित है। यह जानकर उन्होंने अपने अपराध के लिये पश्चात्ताप किया और विचार कियाकि संसार में मेरा कौन है? और मैं किसका हूं। क्योंकि यह आत्मा न किसी दूसरे आत्मा के साथ आता है, न साथ जाता है। कहा भी है-'मैं अकेला हूं-अद्वितीय हूं। मेरा कोई नहीं है और मैं किसी का नहीं हूं। इस प्रकार मनसे अपने दैन्य रहित उदार आत्मा का अनुशासन करे।' इस प्रकार एकत्व भावना से प्रभावित हुए गौतमस्वामी को कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को, ठीक सूर्योदय के समय ही लोक और अलोक को जानने देखने में समर्थ, मोक्ष के कारणभूत, समस्त पदार्थों कों प्रत्यक्ष करनेवाले, अविकल-

सम्पूर्ण, सब प्रकारकी रुकावटों से रहित, सब प्रकारके आवरणों से रहित, सब प्रकार की द्रव्य क्षेत्र काल भाव संबन्धी परिधियों से रहित तथा शाश्वतस्थायी और सर्वोत्तम केवल ज्ञान और केवल दर्शन उत्पन्न हो गया। भगवान् गौतम सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो गये। उस समय भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषिक और विमानवासी चारों निकायों के देवों और देवियों ने अपनी-अपनी ऋद्धि-समृद्धि के साथ गौतम स्वामी के पास आकर केवल ज्ञानका महोत्सव मनाया। उस समय तीनों लोकों में खूब आनन्द ही आनन्द हो गया। महापुरुषों की सभी क्रियाएं हितकारिणी ही होती हैं। देखिए न, गौतमस्वामी को अपनी विद्याका अहंकार हुआ तो उससे उन्हें सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई। अर्थात् अहंकार से प्रेरित होकर वे भगवान् को पराजित करने चले तो सम्यक्त्व प्राप्त हुआ। इसी प्रकार उनका राग भाव गुरुभक्ति का कारण बना। भगवान् के वियोग से उत्पन्न हुआ खेद केवलज्ञान की प्राप्तिका कारण हो गया। इस प्रकार

गौतम स्वामीका समग्र चरित्र आश्चर्यजनक है—अनोखा है। जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर कालधर्मको प्राप्त हुए, वह रात्रि देवोंने दिव्य प्रकाशमय बनादी थी, तभी से वह रात्रि 'दीपावलिका' इस नाम से प्रसिद्ध हुई। मल्लकी—जाति के काशी-देशके नौ गणराज्यों ने तथा लेच्छकी जातिके कोशलदेशके नौ गणराजाओंने, इस प्रकार अढारहों गणराजाओं ने संसार जन्ममरणका अन्त करने वाले दो—दो पोषधोपवास किये। पोष अर्थात् धर्मकी पुष्टि करने वाला उपवास पोषधोपवास कहलाता है। अथवा धर्मका पोषण करनेवाला, अष्टमी आदि पर्व-दिनों में किया जानेवाला, आहार आदिका त्याग करके जो धर्मध्यानपूर्वक निवास किया जाता है, वह पोषधोपवास कहलाता है। दूसरे दिन अर्थात् कार्त्तिक शुक्ल प्रतिपदा को देवोंने गौतमस्वामी के केवलज्ञान प्राप्ति का महोत्सव मनाया था। इस कारण वह दिन—कार्त्तिक शुक्ल प्रतिपद् नवीन वर्षके आरंभका दिन कहलाया। भगवान् महावीरके ज्येष्ट भ्राता नन्दिवर्धनने, भगवान् को

गौतम-
स्वामिनः
विलापः
केवलज्ञान-
प्राप्तिश्च

मोक्ष प्राप्त हुआ सुनकर, शोकके सागर में निमग्न होकर उपवास किया था, तव नन्दिवर्धनकी बहिन सुदर्शनाने उन्हें सान्त्वना देकर और अपने घरमें लाकर उपवास का पारणा करवाया, इस कारण-कार्त्तिक शुक्ल द्वितीया 'भाई-दुजा' के नामसे विख्यात हो गई ॥४३॥

भगवओ परिवारवण्णणं

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स इंद-भूईप्पभिईणं (१४००) चउद्दस सहस्ससाहूणं उक्किट्ठा साहूसंपया होत्था। चंदणबालापभिईणं (३६०००) छत्तीस समणीसाहस्सीणं उक्किट्ठा समणी-संपया। संखपोक्खलिप्पभिइणं (१५९०००) एगूणसट्ठिसहस्सब्भहियाणं एग-सयसहस्स समणोवासगाणं उक्किट्ठा समणोवासगसंपया। सुलसा रेवईपभिईणं

(३१८०००) अट्ठारस सहस्सब्भहियाणं तिसयसहस्स समणोवासियाणं उक्किट्ठा समणोवासियसंपया। अजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खरसन्निवाईणं जिण-स्सेव अवितहं वागरमाणाणं तिसयाणं चउद्दसपुव्वीणं उक्किट्ठा चउद्दसपुव्वि संपया। अइसयपत्ताणं तेरससयाणं ओहिनाणीणं उक्किट्ठा ओहिनाणि संपया। उप्पण्णवरणाणदंसणधराणं सत्तसयाणं केवलनाणीणं उक्किट्ठा केवलनाणिसंपया। अदेवाणं देविड्ढिपत्ताणं सत्तसयाणं वेउव्वीणं उक्किट्ठा वेउव्वियसंपया। अड्ढाइज्जेसु दीवेसु दोसु य समुद्देसु पज्जत्तगाणं सन्नि पंचिंदियाणं मणोगए-भावे जाणमाणाणं पंचसयाणं विउलमईणं उक्किट्ठा वाइसंपया होत्था। सिद्धाणं जाव सव्वदुक्खप्पहीणाणं सत्तसयाणं अंतेवासीणं उक्किट्ठा संपया। एवं चेव चउद्दससयाणं अज्जियासिद्धाणं उक्किट्ठा संपया। एवं सव्वा एगवीसइसया

सिद्धसंपयाणं अट्ठसया अणुत्तरोववाइयाणं गइकल्लाणाणं ठिइकल्लाणाणं आगमेसिभद्दाणं उक्कोसिया अणुत्तरोववाइयसंपया होत्था। दुविहा य अंतगड-भूमी होत्था। तं जहा—जुगंतगडभूमी य परियायंतगडभूमी य ॥४४॥

शब्दार्थ—[तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स इंदभूइप्प-भिईणं (१४०००) चउद्दससहस्ससाहूणं उक्किट्ठा साहुसंपया होत्था] उस काल और उस समयमें श्रमण भगवान् महावीरकी इन्द्रभूति आदि चौदह हजार साधुओंकी उत्कृष्ट साधु संपदा थी [चंदनबाला पभिईणं (३६०००) छत्तीस समणी साहस्सीणं उक्किट्ठा समणीसंपया] चन्दनबाला आदि छत्तीस हजार साध्वियोंकी उत्कृष्ट साध्वी संपदा थी (संखपोक्खलिप्पभिईणं (१५९०००) एगूणसट्ठिसहस्सब्भहियाणं एगसय सहस्स समणोवासियाणं उक्किट्ठा समणोवासिय संपया] शंख पुष्कलि आदि एकलाख उनसठ हजार श्रावकों की उत्कृष्ट श्रावक सम्पदा थी [सुलसा रेवइपभिईणं (३१८०००)

अट्ठारससहस्सब्भहियाणं तिसयसहस्ससमणोवासियाणं उक्किट्ठा [समणोवासियसंपया] सुलसा रेवती आदि तीन लाख अठार हजार श्राविकाओं की उत्कृष्ट श्राविका संपदा थी [अजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खरसन्निवाईणं जिंनस्सेव अवितहं वागरमाणाणं] जिन नहीं परन्तु जिन के समान सर्वाक्षर सन्निपाती और जिन की भांति ही सत्यप्ररूपणा करने वाले [तिसयाणं चउद्दसपुव्वीणं उक्किट्ठा चउद्दस पुव्विसंपया] चौदह पूर्वधरकों की उत्कृष्ट तीनसौ चउदह पूर्वधरों की सम्पदा थी। [अइसयपत्ताणं तेरस सयाणं ओहिनाणीणं उक्किट्ठा ओहिनाणिसंपया] अतिशयको प्राप्त तेरहसौ अवधि ज्ञानियों की उत्कृष्ट अवधिज्ञानी संपदा थी [उप्पन्न वरणाणदंसणधराणं सत्तसयाणं केवलनाणीणं उक्किट्ठा केवलनाणिसंपया] सातसौ उत्पन्नवर ज्ञानदर्शनको धारण करने वाले केवलियों की उत्कृष्ट केवली संपदा थी [अदेवाणं देविड्ढिपत्ताणं सत्तसयाणं वेउव्वीणं उक्किट्ठा वेउव्वियसंपदा] देव न होने पर भी देव ऋद्धि

को प्राप्त सातसौ वैक्रियलब्धि के धारकों की उत्कृष्ट वैक्रियिक सम्पदा थी। (अड्ढाइज्जेसु दीवेसु दोसु य समुद्देसु पज्जत्तगाणं सन्निपंचिंदियाणं मणोगए भावे जाणमाणाणं पंचसयाणं विउलमईणं उक्किट्ठा विउलमइसंपया] ढाई द्वीपों और दो समुद्रों के पर्याप्त संज्ञीपंचेन्द्रिय जीवों के मनोगत भावों को जाननेवाले पांचसौ विपुलमति ज्ञानियोंकी विपुलमति–सम्पदा थी [सदेवमणुयासुराए परिसाए वाए अपराजियाणं चउसयाणं वाईणं उक्किट्ठा वाइसंपया होत्था] देवों मनुष्यों और असुरों सहित परिषद् में वाद विवाद में पराजित न होनेवाले चारसौ वादियोंकी उत्कृष्ट वादी सम्पदा थी [सिद्धाणं जाव सव्वदुक्खप्पहीणाणं सत्तसयाणं अंतेवासीणं उक्किट्ठा संपया] सिद्धो यावत् समस्त दुःखों से रहित सातसौ सिद्धोंकी उत्कृष्ट सिद्ध सम्पदा थी [एवं चेव चउद्दससयाणं अज्जियासिद्धाणं उक्किट्ठा संपया] इसी प्रकार चौदह सौ आर्यिका सिद्धों की उत्कृष्ट सम्पदा थी [एवं सव्वा एगवीसइसया सिद्धसंपयाणं] इस प्रकार दोनों को

मिलाकर इक्कीससौ सिद्धोंकी सम्पदा थी [अट्ठसया अणुत्तरोववाइयाणं गइकल्लाणाणं ठिइकल्लाणाणं आगमेसिभद्दाणं उक्कोसिया अणुत्तरोववाइयाणं संपया होत्था] गति-कल्याण स्थिति कल्याण भावीभद्र आठसौ अनुत्तरोपपातिकों की उत्कृष्ट अनुत्तरोपपातिक सम्पदा थी। [दुविहा य अंतरागडभूमी होत्था—तं जहा—] दो प्रकार की अन्तकृत भूमि थी जैसे—[जुगंतगडभूमी य परियंतगडभूमि य] युगांतकृत भूमि[1] और पर्यायान्तकृतभूमि[2]

१—कालकी एक प्रकारकी अवधिको युग कहते हैं। युगक्रम से होते हैं। इस समानता के कारण गुरु, शिष्य, प्रशिष्य आदि के क्रम से होनेवाले पुरुष भी युग कहलाते हैं। उन युगों से प्रमित मोक्ष गामियों के काल को युगांतकृत् भूमि कहते हैं। भगवान महावीर तीर्थ में भगवान महावीर के निर्वाण से आरंभ करके जम्बूस्वा[illegible] निर्वाण पर्यन्तका काल युगांतकृत् भूमि है। इसके बाद मोक्ष गमनका बिच्छे[illegible]

भावार्थ—उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर की इन्द्रभूति आदि चौदह हजार साधुओं की उत्कृष्ट साधु—सम्पदाथी, अर्थात् भगवान् के चौदह हजार साधु थे। चन्दनवाला आदि छत्तीसहजार साध्वियों की उत्कृष्ट साध्वी—संपदा थी, अर्थात् छत्तीस हजार साध्वियां थी। शंख, शतक—अपरनाम वाले तथा पुष्कलि वगैरह एकलाख उनसठ हजार [१५९०००] आदि तीन लाख अठारह हजार श्राविकाओंकी उत्कृष्ट श्राविका सम्पदा थी। जिन अर्थात् सर्वज्ञ न होने पर भी सर्वज्ञ और सर्वाक्षर—सन्निपाती अर्थात् सम्पूर्ण

२—मुक्ति मार्ग की भूमि पर्यायान्तकृत् भूमि कहलाती है। भगवान् की केवली-पर्याय को यहां 'पर्याय' कहा है। वह पर्याय होने पर जिन्होंने भवका अन्त किया—मोक्ष पाया, उनकी भूमि पर्यायान्तकृत्भूमि कहलाती है। भगवान् महावीर को केवली—पर्याय उत्पन्न होने के अनन्तर चार वर्ष के वाद प्रारंभ हुई मोक्ष मार्गकी भूमि पर्यायान्तकृत्भूमि है। यह दो भूमियां थी ॥४४॥

श्रुतके ज्ञाता तथा यथार्थ अर्थात् सर्वज्ञ जैसा उत्तर देने वाले चौदह पूर्वधारियों की तीनसौ उत्कृष्ट चतुर्दशपूर्वधारी सम्पदा थी। अवधिज्ञान को धारण करनेवाले प्रभावशाली तेरह सौ मुनियों की उत्कृष्ट अवधिज्ञानी सम्पदा थी। उत्पन्न हुए ज्ञान और दर्शनको धारण करनेवाले सातसौ केवलज्ञानियों की उत्कृष्ट केवली–सम्पदा थी। देव न होने पर भी देव–ऋद्धि अर्थात् वैक्रिय लब्धि को धारण करनेवाले सातसौ मुनियों की उत्कृष्ट–सम्पदा थी। जम्बूद्वीप, धातकी खण्डद्वीप और पुष्करार्धद्वीप=इस तरह अढाई द्वीपोंके तथा लवण समुद्र और कालोदधि समुद्र–इन दो समुद्रों के पर्याप्त संज्ञीपंचेन्द्रिय जीवों मनके भावों पर्यायों को जानने वाले पांचसौ विपुलमति–मनःपर्ययज्ञान के धारक विपुलमतियों की उत्कृष्ट सम्पदा थी। देवों, मनुष्यों और असुरोंसे सहित सभामें शास्त्रार्थ के विचार में पराजित न होनेवाले चारसौ वादियों की उत्कृष्ट वादी–सम्पदा थी। सिद्ध और 'यावत्'–पदसे–बुद्ध, मुक्त परिनिर्वृत तथा सब दुःखोंका अन्त करनेवाले

सातसौ सिद्धों की उत्कृष्ट संपदा थी। इसी प्रकार चौदहसौ सिद्धि के धारक साध्वियों की उत्कृष्ट संपदा थी। इस प्रकार सब मिलाकर इक्कीससौ सिद्धोंकी उत्कृष्ट सिद्ध–सम्पदा थी। अगले अनन्तर भवमें मुक्ति पानेवाले; देवलोक में तेतीस सागरोपम की स्थिति प्राप्त करनेवाले तथा जो अगले भवमें मनुष्य होकर मोक्षरूप भद्रको प्राप्त करेंगे, ऐसे आठसौ अनुत्तरोपपातिकों [अनुत्तरविमान में जानेवालों] की उत्कृष्ट अनुत्तरोपपातिक सम्पदा थी। तथा–दो प्रकारकी अन्तकृत् भूमि थी–(१) युगाकृत्भूमि और २ पर्यायान्तकृत्भूमि। कालकी एक प्रकारकी अवधिको युग कहते हैं। युग–क्रम से होते हैं इस समानता के कारण गुरु, शिष्य, प्रशिष्य आदि के कर्म से होनेवाले पुरुष भी युग कहलाते हैं। उन युगों से प्रमित मोक्षगामियों के कालको युगान्तकृत्भूमि कहते हैं। आशय यह है कि भगवान्–महावीर के तीर्थ में, भगवान् महावीर के निर्वाणसे आरंभ करके जम्बूस्वामी के निर्वाण पर्यन्तका काल युगान्तकृत्-

भूमि है। इसके पश्चात् मोक्षगमनका विच्छेद हो गया। मुक्तिमार्ग की भूमि पर्यायान्तकृत्भूमि कहलाती है। भगवान् के केवली–पर्यायको यहां 'पर्याय' कहा है। वह पर्याय होने पर जिन्होंने भवका अन्त किया–मोक्ष पाया, उनकी भूमि पर्यायान्तकृत्भूमि कहलाती है। तात्पर्य यह है कि भगवान् महावीर की केवली–पर्याय उत्पन्न होनेके अनन्तर, चार वर्ष बाद प्रारंभ हुई मोक्ष–मार्गकी भूमि पर्यायान्तकृत्भूमि है। यह दो भूमियां थी ॥४४॥

मूलम्–तेणं कालेणं तेणं समएणं, समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी अज्ज सुहम्मे णामं थेरे–जाइसंपन्ने, कुलसंपन्ने, बाल-रूव-विणयणाणदंसणचरित्तलाघवसंपन्ने, ओयंसी, तेयंसी, वच्चंसी, जसंसी, जियकोहे जियमाणे, जियमाए, जियलोहे, जिइंदिए, जियनिद्दे, जियपरिसहे, जीवियासामरण

भयविप्पमुक्के, तवप्पहाणे, गुणप्पहाणे, एवं-करण-चरण-णिग्गह-णिच्छय-अज्जव-मद्दव-लाघव-खंति-गुत्ती-मुत्ती-विज्जामंत-बंभचेर-वेय-णिय-णियम -सच्च-सोय-णाणदंसण-चरित्तप्पहाणे ओराले घोरे, घोरवए, घोर तवस्सी, घोर बंभचेर-वासी, उच्छूढ सरीरे, संखित्ते विउलतेउलेसे, चोद्दस पुव्वी चउणाणोवगए ॥४५॥

भावार्थ–उस काल और उस समय में श्रमण भगवंत श्री महावीर स्वामीजी के ज्येष्ठ अंतेवासी–शिष्य आर्य सुधर्मास्वामी स्थविर कैसे थे सो कहते हैं–जाति संपन्न–मातृपक्ष निर्मल था, कुल संपन्न–पितृपक्ष निर्मल था, बल संपन्न–वज्रऋषभनाराच संघयनवाले थे, रूपक–सर्वांगसुन्दर अर्थात् समचतुस्र संस्थान के धारक, विनय नम्र सम्पन्न कोमल स्वभाववाले ज्ञान–मति श्रुत अवधि व मनःपर्यव चार ज्ञानके धारक, दर्शन–क्षायिक सम्यक्त्व के धारक, चारित्र–सामायिकादि उत्तम चारित्र के धारक, लघुता–

द्रव्य से उपधिकर और भाव से कषाय व तीनों गर्व से रहित हलके ओजस्वी–मन के चढते परिणाम वाले, तेजस्वी शरीर की अच्छी प्रभावाले, यशस्वी–सौभाग्यादि गुण सहित उत्तम यशवंत, क्रोध, मान, माया, लोभ, इन्द्रिय, निद्रा, परिषह इनको जीतने–वाले, निज जीविताश व मृत्यु के भय से मुक्त अनशनादि तप, संयमादिगुण पिंडविशुद्धादिक चरणसितरी, दशविध यति धर्मादि करण सितरी के गुणयुक्त रागादि शत्रु का निग्रह करता करणि के फल में निश्चय करनेवाले में प्रधान, ऋजुता, मृदुता, क्षमा, गुप्ति, मुक्ति. विद्या, मंत्र, ब्रह्मचर्य, वेद लोकिक, लोकोत्तर शास्त्र, नैगमादिनय, अभिग्रहादि निगम, वचनादि सत्यता, मनादि शौचता, ज्ञान, दर्शन व चारित्र में उदार, इन गुणों में प्रधान, घोर करणी करने वाले घोर व्रत पालने वाले, घोर तपस्वी, घोर ब्रह्मचर्य पालने वाले, शरीर की शुश्रूषा रहित संक्षिप्त विपुल तेजोलेश्यावाले चउदह पूर्व के पाठी और चार ज्ञानयुक्त थे ॥४५॥

सुधर्म-
स्वामि
परिचयः

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स पट्टम्मि सिरि सुहम्मसामि अहेसि ॥४६॥

शब्दार्थ—[तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स] उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के [पट्टम्मि सिरि सुहम्म सामी अहेसि] पाट पर सुधर्मा स्वामी थे ॥४६॥

भावार्थ—उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के पाट पर श्री सुधर्मा स्वामी थे। श्री गौतम स्वामी केवली हो चुके थे, अतः पाट पर नहीं बैठे; इस कारण सुधर्मा स्वामी पाट पर प्रतिष्ठित किये। इसका कारण यह है—आगम में 'हे आयुष्मन्। मैंने सुना है, उन भगवान ने ऐसा कहा है, ऐसा उल्लेख है। अगर पाट पर केवली की स्थापना होती तो केवली सर्वदर्शी-सर्वज्ञ होते हैं, उन्हें किसी से कुछ सुनने की आवश्यकता नहीं होती, तो फिर वह ऐसा न कहते कि—भगवान् ने

ऐसा कहा है, मैंने सुना है । अतएव केवली पाट पर प्रतिष्ठित नहीं किये जाते ॥४६॥

सुहम्मसामि परिचओ

मूलम्—कोल्लागसन्निवेसे धम्मिल्लविप्पस्स भद्दिलाभज्जाए जाओ सुहम्मसामी चउद्दसविज्जापारगो पण्णासवरिसंते पव्वइओ । तीसं वासाइं सिरि वद्धमाणसामिस्स अंतिए निवसिय भगवओ निव्वाणाणंतरं बारसवरिसाइं छउमत्थपरियागं पाउणित्ता जम्मओ वाणउइवरिसंते गोयमसामि निव्वाणाणंतरं केवलणाणं पाविय अट्ठवरिसाइं केवलिपरियागे ठिच्चा एगसयवरिसाइं सव्वाउयं पालइत्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स निव्वाणाणंतरं वीसइवरिसेसु वीइक्कंतेसु जंबूसामिणं नियपट्टे ठाविय सिवं गए ॥४७॥

शब्दार्थ—[कोल्लागसन्निवेसे धम्मिल्लविप्पस्स भद्दिलाभज्जाए जाओ सुहम्म-

सामी चउद्दस विज्जापारगो पण्णासवरिसंते पव्वइओ] कोल्लागसन्निवेश के निवासी धम्मिल ब्राह्मण की पत्नी भद्दिला से उत्पन्न चउदह विद्याओं के पारगामी सुधर्मास्वामी पचास वर्ष की आयु में भगवान महावीर के पास प्रव्रजित हुए [तीसं वासाइं सिरि-वद्धमाणसामिस्स अंतिए निवसिय] तीस वर्ष तक श्रीवर्धमान स्वामी के समीप रहकर [भगवओ निव्वाणाणंतरं बारसवरिसाइं छउमत्थपरियागं पाउणित्ता जम्मओ वाणउइ-वरिसंते] भगवान् के निर्वाण के बाद बारह वर्ष तक छद्मस्थ अवस्था में रहकर जन्म से लेकर बानवें वर्ष के अंत में [गोयमसामिनिव्वाणाणंतरं केवलणाणं पाविय] गौतमस्वामी के निर्वाण के अनन्तर केवलज्ञान प्राप्त करके [अट्ठवरिसाइं केवलपरियागे ठिच्चा एगसय-वरिसाइं सव्वाउयं पालइत्ता] आठ वर्ष तक केवली अवस्था में रहकर, एक सौ वर्ष की समग्र आयु भोगकर [समणस्स भगवओ महावीरस्स निव्वाणाणंतरं] श्रमण भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् [वीसइवरिसेसु बीइक्कंतेसु जंबूसामिणं नियपट्टे ठाविय

सिवं गए] वीस वर्ष बीत जाने पर जम्बूस्वामी को अपने पाट पर स्थापित करके मोक्ष गये ॥४७॥

भवार्थ—कोल्लाक नामक ग्राम में, धम्मिल नामक ब्राह्मण था। उसकी पत्नि भद्दिला थी। सुधर्मास्वामी उसी के उदर से उत्पन्न हुए। वह ऋगवेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद में शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्यौतिष और छन्द इन छह वेदांगों में तथा मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र और पुराण इन सब चौदह विद्याओं में पारंगत थे। पचासवें वर्ष के अन्त में उन्होंने दीक्षा अंगीकार की। उसके बाद तीस वर्ष तक श्री वर्धमान स्वामी के समीप निवास करके, भगवान् महावीर स्वामी के पश्चात् बारह वर्ष तक छद्मस्थ-पर्याय में रहकर, जन्म से बानवें (९२) वर्ष के अन्त में, गौतमस्वामी के मोक्ष जाने के बाद केवलज्ञान प्राप्त करके, आठ वर्ष तक केवली—पर्याय में स्थिर रहकर एक सौ वर्ष की समस्त आयु भोगकर, श्रमण भगवान् महावीर के मोक्षगमन के

पश्चात् वीस वर्ष व्यतीत होने पर जम्बूस्वामीको अपने पाट पर स्थापित करके मोक्ष पधारे ॥४७॥

जंबूसामि परिचओ

मूलम्—रायगिहे नयरे उसभदत्तस्स सेट्ठिणो धारणीए अंगजाओ पंचम देवलोगाओ चुओ जंबूनाम पुत्तो होत्था सो य सोलसवरिसाओ सिरि सुहम्म-सामि समीवे धम्मं सोच्चा पडिबुद्धो पडिवण्ण सीलसम्मत्तो अम्मापिऊणं दढा-गहेण अट्ठ कण्णाओ परिणीअ। विवाहरत्तीए सो ससिणेहाहि—ताहि पेम-संमियवाणीहिं न वा मोहिओ। सो य परोप्परं कहापडिकहाहिं ता अट्ठ वि इत्थीओ पडिबोहीअ। तीए रत्तीए चोरियट्ठं गिहे पविट्ठं नवनवइ अब्भहिएहिं चउहिं चोरसएहिं परिवुडं पभवाभिहं चोरंपि पडिबोहिअ। तओ

पच्छा उइयम्मि दिणयरे पंचसयचोरभञ्जट्ठग—तज्जणगजणणीहि सद्धिं सयं पंचसयसत्तवीसइइमो होऊणं णवणवईओ कणगकोडीओ परिच्चज्ज सुहम्मसामि समीवे पव्वइओ। से णं सिरिजंबूसामी सोलसवरिसाइं गिहत्थत्ते, वीसं वासाइं छउमत्थे, चोयालीसं वासाइं केवलिपज्जाए, एवमसीइं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता पभवं अणगारं नियपट्टे ठाविय सिरि वीरनिव्वाणाओ चउसट्ठितमे वरिसे सिद्धिं गए।

सिरि जंबूसामी जाव मोक्खं गओ नासी ताव एवं भरहेवासे दसठाणा भविंसु, तं जहा—मणपज्जवणाणं १ परमोहिणाणं २ पुलागलद्धी ३ आहारगसरीरं ४ खवगसेणी ५ उवसमसेणी ६ जिणकप्पो ७ संजमत्तिगं ८ केवलणाणं ९ सिज्झणा १० य त्ति। मोक्खं गए उ तस्सिं एया ठाणा वुच्छिण्णा भवंति।

एत्थ दुवे संगहणी गाहाओ–

बारसवरिसेहि गोयमु, सिद्धो वीराउ वीसहि सुहम्मो।
चउसट्ठीए जंबू, वुच्छिन्ना तत्थ दस ठाणा।

मण १ परमोहि २ पुलाए ३ आहारग ४ खवग ५ उवसमे ६ कप्पे ७ संजमतिग ८ केवल ९ सिज्झणा १० य जंबुम्मि वुच्छिन्ना ॥२॥ ॥४८॥

शब्दार्थ–[रायगिहे नयरे उसभदत्तस्स सेट्ठिणो धारणीए अंगजाओ पंचमदेवलोगाओ चुओ जंबूनाम पुत्तो होत्था] राजगृह नगर में ऋषभदत्त श्रेष्ठी की धारिणी नामक भार्या की कूंख से उत्पन्न पंचम देवलोक से आये हुए जंबू नामक पुत्र थे [सो य सोलसवरिसाओ सिरि सुहम्मसामि समीवे धम्मं सोच्चा पडिबुद्धो] सोलह वर्ष की उम्र में सुधर्मा स्वामी के समीप धर्म को सुनकर प्रतिबोध पाया [पडिवण्ण सील

सम्मत्तो अम्मापिउणं दढागहेण अट्ठकण्णाओ परिणीअ] शीलव्रत और सम्यक्त्व धारण किया। माता पिता के प्रबल आग्रह से आठ कन्याओं के साथ विवाह किया [विवाहरत्तीए सो ससिणेहाइ ताहि वाणीहिं न वामोहिओ] सुहागरात में वह स्नेहवती पत्नियों की प्रेम पूर्ण वाणी से मोहित न हुए [सो य परोप्परं कहापडिकहाहिं ता अट्ठवि इत्थीओ पडिबोहीअ] उन्होंने परस्पर कथाओं के उत्तर में कथाएं कहकर आठों पत्नियों को प्रतिबोधित किया। [तीए रत्तीए चोरियट्ठं गिहे पविट्ठं नवनवइ अब्भहिएहिं चउहिं चोरसएहिं परिवुडं पभवाभिहं चोरंपि पडिबोहिअ] उसी रात्रि में चोरी करने के लिये घर में घुसे चारसौ निन्यानवे (४९९) चोरों सहित प्रभव नामक चोर को भी प्रतिबोधित किया [तओ पच्छा उइयम्मि दिणयरे पंचसयचोरभज्जट्ठग तज्जणगजणणीहि सिद्धिं] उसके बाद दिन उगने पर पांचसौ चोरों आठों पत्नियों के माता पिता एवं अपने माता पिता के साथ [सयं पंचसयसत्तवीसइइमो होउणं णवणवईओ कणगकोडीओ

परिच्चइज्ज सुहम्मासामिसमीवे पव्वइओ] स्वयं पांचसौ सत्ताईसवें होकर निन्यानवें क्रोड सौनैया का त्याग करके सुधर्मा स्वामी के समीप संयम धारण किया । [सेणं सिरि जंबू सामी सोलसवरिसाइं गिहत्थत्ते] वे सोलह वर्ष गृहस्थावस्था में [वीसं वासाइं छउमत्थे] वीस वर्ष छद्मस्थ अवस्था में [चोयालीसं वासाइं केवलिपज्जाए] चवालीस वर्ष केवली अवस्था में [एवमसीइं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता पभवं अणगारं नियपट्टे ठाविय सिरि वीरनिव्वाणाओ चउसट्ठितमे वरिसे सिद्धिं गए] इस प्रकार कुल अस्सी वर्ष की आयु पालकर प्रभव अणगार को अपने पाट पर स्थापित करके श्रीवीर निर्वाण से चौसठवें वर्ष में सिद्धि को प्राप्त हुए ।

[सिरि जंबू सामी जाव मोक्खं गओ आसी ताव एव भरहेवासे दस ठाणा विच्छिंसु] श्रीजम्बूस्वामी जब मोक्ष गये तब इस भरत क्षेत्र में दस बातों का विच्छेद हो गया [तं जहा] वह इस प्रकार है–[मणपज्जवणाण] मनःपर्यवज्ञान [परमोही-

णाणं] परमावधिज्ञान [पुलागलद्धी] पुलाकलब्धि [आहारगसरीरं] आहारक शरीर [खवगसेणी] क्षपक श्रेणी [उवसमसेणी] उपशम श्रेणी [जिणकप्पो] जिनकल्प [संजमत्तिगं] तीन संयम-परिहार विशुद्धि सूक्ष्म सांपराय, यथाख्यात [केवलणाणं] केवलज्ञान [सिज्झाणा] मोक्ष। [मोक्खंगए उ तस्सिं एया ठाणा वुच्छिण्णा] जंबू स्वामी के मोक्ष पधारने पर यह दस बाते बिच्छिन्न हो गई। [भवंति एत्थ दुवे संगहणी गाहाओ] यहां दो संग्रहणी गाथाएं है-[बारस बरिसेहि गोयमु सिद्धो वीराउ वीसइ सुहम्मो] श्रीवीर निर्वाण से बारह वर्ष बीतने पर श्रीगौतमस्वामी का वीस वर्ष बीतने पर सुधर्मास्वामी का [चउसट्ठीए जंबू वुच्छिन्ना तत्थ दस ठाणा] तथा चौसठ वर्ष के बीतने पर जंबू स्वामी का निर्वाण हुआ। उसके बाद दस स्थानों का विच्छेद हो गया। वे दस स्थान ये हैं-[१ मण २ परमोहि ३ पुलाए ४ आहारग ५ खवग ६ उवसमे ७ कप्पे ८ संजमतिग ९ केवल १० सिज्झगा] मनःपर्यवज्ञान, परमावधिज्ञान, पुलाक लब्धि

आहारक शरीर क्षपकश्रेणी, उपशमश्रेणी जिनकल्प तीन संयम, केवलज्ञान, और मुक्ति।४८।

भावार्थ—राजगृह नगर में ऋषभदत्त सेठ की धारिणी नामक पत्नि के उदर=अङ्ग-जात ब्रह्म नामक पांचवें देवलोक से च्यवकर आये हुए जंबू नामक पुत्र थे। सोलह वर्ष की उम्र में उन्होंने सुधर्मा स्वामी से धर्म का उपदेश सुना और प्रतिबोध प्राप्त किया। प्रतिबोध पाकर शील और सम्यक्त्व अंगीकार किया। माता–पिता के तीव्र अनुरोध से आठ कन्याओं के साथ विवाह किया। मगर विवाह की रात्रि–सुहागरात में वह जंबूकुमार अनुरागवती उन आठों कन्याओं की प्रणय–परिपूर्ण वाणी से मोहित न हुए। उनके साथ जंवूकुमार की आपस में कथाएं–प्रतिकथाएं हुई। आठों रमणियोंने जंबूकुमार को अपनी और आकृष्ट करने के लिए अनेक कथाएं कहीं। उनके उत्तर में जंवूकुमार ने भी कथा कही। इस प्रकार उत्तर–प्रत्युत्तर होने पर आठों नवविवाहिता–पत्नियों को भी प्रतिबोध प्राप्त हुआ। उसी–विवाह की रात्रि में चारसौ निन्न्यानवें

चोरों को साथ लेकर प्रभव नामक प्रसिद्ध चोर चोरी करने के लिये जंबूकुमार के घर में घुसे। उन्हें भी उन्होंने प्रतिबोधित किया। तत्पश्चात् सूर्योदय होने पर पांचसौ चोरों के साथ आठों पत्नीयों के साथ, पत्नीयों के माता-पिता के साथ और अपने माता-पिता के साथ; आप स्वयं पांचसौ सत्ताईसवें होकर दहेज की निन्न्यानवें कोटि स्वर्ण-मुद्राओं को तथा अपने घरकी अखूट संपत्ति को त्याग कर सुधर्मास्वामी के पास प्रव्रजित हो गये। जंबूस्वामी सोलह वर्ष तक गृहवास में रहे, वीस वर्ष तक छद्मस्थ पर्याय में रहे, चवालीस वर्ष तक केवली-पर्याय में रहे। इस प्रकार अस्सी वर्ष समस्त आयु भोग कर प्रभव अनगार को अपने पाटपर प्रतिष्ठित करके श्री महावीर भगवान् के निर्वाणकाल से चौसठवें वर्ष में मोक्ष गये। जब तक जंबूस्वामी मोक्ष नहीं गये थे तब तक भरतक्षेत्र में आगे कहे दस स्थान थे। यथा-(१) मनःपर्यवज्ञान, (२) परमावधिज्ञान, (३) पुलाकलब्धि (४) आहारकशरीर (५) क्षपकश्रेणी (६) उपशमश्रेणी (७)

जिनकल्प (८) तीन चारित्र–परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यात (९) केवल-ज्ञान और १० मोक्ष। जंबूस्वामी के मुक्त होने पर यह दस स्थान विच्छिन्न हुए ॥४८॥

मूलम्–सिरि जंबूसामिम्मि मोक्खं गए तप्पट्टे सिरि पभवसामी उवाविसीय। तउप्पत्ती चेवम्–विंझायल समीवे जयपुराभिहाणं नयरं आसि। तत्थ विंझो णाम णरवइ होत्था। तस्स पुत्तदुगं आसि एगो जेट्ठ पभवाभिहाणो, अवरो कणिट्ठ पभवाभिहाणो। तत्थ जेट्ठपभवो केणवि कारणेणं कुद्धो जयपुरनयराओ निस्सरिय विंझायलस्स विसमत्थले अभिणवं गामं वासित्ता तत्थ निवसीअ। सो य चोरिय लुंटणाइगरिहवित्तिं ओलंबीअ। एगया तेण आकण्णियं जं रायगिहे नयरे जंबू नामगो उसभदत्तसेट्ठिपुत्तो अट्ठ सेट्ठि कण्णाओ परिणीअ। दाये तेणं ससुरेहिंतो णवणवइ कोडि परिमियाओ सुवण्णमुद्दाओ लद्धाओ त्ति।

एवं सोच्चा सो पभवो चोरो णवणवइ अहिएहिं चउहिं चोरसएहिं परिवुडो रायगिहे नयरे जंबुकुमारस्स गिहे चोरियट्ठं पविट्ठो। तत्थ सो ओसावणीए विज्जाए सव्वे जणे निद्दिए करीअ भावसंजयम्मि जंबुकुमारम्मि सा विज्जा निप्फला जाया। सो जागरमाणो चेव चिट्ठीअ। तप्पभावेण तस्स अट्ठवि भज्जा जागरमाणीओ चेव ठिया। तओ सो पभवो चोरो चोरेहिं सद्धिं ताओ सुवण्णमुद्दाओ गहिय चलिउ मारद्धो। तया जंबुकुमारो नमुक्कारमंतप्पभावेण तेसिं गइं थंभीअ। नियगइं थंभियं दट्ठूण पभवो विम्हिओ किं कायव्व विमूढो य जाओ। तस्स एरिसिं ठिइं दट्ठूण जंबूकुमारो हसीअ तस्स हासं सोच्चा पभवो तं कहीअ महाभागा! जं मम इयं ओसावणी विज्जा अमोहा अत्थि। सा वि तुमंम्मि णिप्फला जाया। तए पुण अम्हाणं गई चावि थंभिया

अओ तुवं को वि विसिट्ठो पुरिसो पडिभासि तुमं ममोवरि किवं किच्चा थंभणिं विज्जं मम देहि। अहं च तुब्भं ओसावणिं विज्जं दलामि। तस्स इमं वयणं सोच्चा जंबूकुमारो कहीअ इमाओ लोइयविज्जाओ दुग्गइकारणाओ संति। तुज्झं विज्झाए मज्झम्मि पभावो न जाओ। तुब्भाणं गई जं मए थंभिया, एत्थ न का वि विज्जाकारणं। अयं पहावो नमुक्कारमंतस्स अत्थि। एवं कहिय जंबूकुमारो तस्स चारित्तधम्मं उवादिसीअ। तं सोच्चा पभवाईणं चोराणं मणांसि वेरग्गं संजायं। तओ बीए दिवसे सपरिवारो जंबूकुमारो तेहिं पभवाईएहिं चोरेहिं सद्धिं सुहम्मसामिसमीवे पव्वइओ।

जंबू सामिम्मि मोक्खं गए तप्पट्टे पभवसामी उवाविसीअ। सो उ जंगम कप्परुक्खोव्व भव्वजीवाणं मणोरहं पूरेमाणो सुयणाणसहस्सकिरणकिरणेहिं

मिच्छत्ततिमिरपडलं विणासेंतो भव्वहिययकमलाइं वियासेंतो सुहम्मसामि परिपोसियं चउव्विहसंघवाडियं देसणामिएणं अहिसिंचिय उवसम-विवेग वेरमणाइ पुप्फेहिं पुप्फियं अत्तकल्लाणफलेहिं फलियं च कुव्वंतो विहरइ। एवं विहरमाणो सो कालमासे कालंकिच्चा सग्गं गओ। तओ चुओ सो महाविदेहे खित्ते समुप्पज्जिअ सासओ सिद्धो भविस्सइ ॥४९॥

शब्दार्थ—[सिरि जंबूसामिम्मि मोक्खं गए तप्पट्टे सिरि पभवसामी उवाविसीअ] जंबूस्वामी के मोक्ष पधारने पर श्री प्रभवस्वामी उनके पाट पर बैठे [तउप्पत्ती चेवम्] उनकी उत्पत्ति इस प्रकार है [विंझायलसमीवे जयपुराभिहाणं नयरं आसि] विन्ध्याचल पर्वत के समीप जयपुर नामका नगर था [तत्थ विंझो णाम णरवई होत्था] वहां विन्ध्य नामका राजा था [तस्स पुत्तदुगं आसि] उसके दो पुत्र थे [एगो जेट्ठपभवाभिहाणो,

अवरो कणिट्ठपभवाभिहाणो] एक ज्येष्ट प्रभव कहलाता था और दूसरा कनिष्ट (छोटा) प्रभव कहलाता था [तत्थ जेट्ठपभवो केणवि कारणेणं कुद्धो जयपुरनयराओ निस्सरिय विंझायलस्स विसमत्थले अभिणवं गामं वासित्ता तत्थ निवसिय] उनमें से ज्येष्ठ प्रभव किसी कारण से क्रोधित होकर जयपुर नगर से निकलकर विन्ध्याचल के एक विषम स्थान में एक नया गांव बसाकर वहीं रहने लगे [सो य चोरिय–लुंटणाइगरिहियवित्तिं ओलंवीअ] उन्होंने चोरी एवं लूटपाट आदि निन्दित आजीविका का अवलंबन किया [एगया तेण आकण्णियं जं रायगिहे नयरे जंबू नामगो उसभदत्त सेट्ठिपुत्तो अट्ठसेट्ठि कण्णाओ परिणीअ] एक वार उसने सुना कि राजगृह नगर में जंबू नामक ऋषभदत्त सेठ के पुत्र का आठ श्रेष्ठी कन्याओं के साथ विवाह हुआ है। [दाये तेण ससुरेहिंतो णवणवइ कोडी परिमियाओ सुवण्णमुद्दाओ लद्धाओत्ति] उन्हें अपने श्वसूरों से निन्न्यानवें करोड स्वर्णमुद्राएं दहेज में मिली हैं [एवं सोच्चा सो पभवो चोरो णवणवइ

अहिएहिं चउहिं चोरसएहिं परिवुडो रायगिहे णयरे जंबूकुमारस्स गिहे चोरियट्ठं पविट्ठो] यह सुनकर प्रभव चोर अपने साथी ४९९ चोरों के साथ राजगृह नगर में आकर चोरी करने के लिए जंबूकुमार के घर में घुसे [तत्थ सो ओसावणीए विज्जाए सव्वे जणे निद्दिए करीअ] उन्होंने अवस्वापिनी विद्या से वहां के सब लोगों को निद्राधीन कर दिया [भावसंजयम्मि जंबूकुमारम्मि सा विज्जा निप्फला जाया] किन्तु जंबूकुमारतो भाव साधु हो चुके थे। अतः उनपर अवस्वापिनी विद्या का असर नहीं हुआ [सो जागरमाणो चेव चिट्ठीअ] वे जगते ही रहें [तप्पभावेण तस्स अट्ठ वि भज्जा जागरमाणीओ चेव ठिया] उनके प्रभाव से उनकी आठों पत्नियां भी जागती ही रहीं [तओ सो पभवो चोरो चोरेहिं सद्धिं ताओ सुवण्णमुद्दाओ गहिय चलिउ मारद्धो] उसके पीछे प्रभव चोर अपने साथी चोरों के साथ उन सब सुवर्णमुद्राओं को बटोर कर चलने को उद्यत हुए [तया जंबूकुमारो नमुक्कारमंतप्पभावेण तेसिं गइं थंभीअ] तब जंबू-

कुमारने नमस्कार मंत्र के प्रभाव से उनकी गति स्तंभित कर दी [नियगइं थंभियं दट्ठूण पभवो विम्हिओ किं कायव्वविमूढो य जाओ] अपनी गति स्तंभित हुइ देख प्रभव चकित रह गया और उन्हें सूझ न पडा कि अब क्या करना चाहिए [तस्स एरिसिं ठिइं दट्ठूण जंबुकुमारो हसीअ] उनकी यह स्थिति देखकर जंबूकुमार को हंसी आगइ। [तस्स हासं सोच्चा पभवो तं कहीअ] उनकी हंसी सुनकर प्रभवने उनसे कहा—[महाभाग ! जं मम इयं ओसावणी विज्जा अमोहा अत्थि सा वि तुमंमि निप्फला जाया] महाभाग ! मेरी यह अवस्वापिनी विद्या अमोघ है कभी निष्फल नहीं जाती किन्तु उसका भी आप पर असर नहीं हुआ [तए पुण अम्हाणं गई चावि थंभिया] आपने हमारी गति भी स्तंभित कर दी हैं [अओ तुवं को वि विसिट्ठो पुरिसो पडिभासि] इस से मालूम होता है कि आप कोई विशिष्ट पुरुष है [तुमं ममोवरि किवं किच्चा थंभणिं विज्जं मम देहि] आप कृपा करके स्तंभनी विद्या मुझे दीजिए [अहं च तुब्भं

ओसावणिं विज्जं दलामि] ओर मैं आपको अवस्वापिनी विद्या सिखा देता हूं। [तस्स इमं वयणं सोच्चा जंबुकुमारो कहीअ] उसके यह वचन सुनकर जंबूकुमारने कहा–[इमाओ लोइयविज्जाओ दुग्गइकारणाओ संति] यह लौकिक विद्याएं अधोगति का कारण हैं [तुज्झ विज्जाए मज्झम्मि पभावो न जाओ] तुम्हारी विद्या का मुझ पर प्रभाव नहीं पडा [तुब्भाणं गई जं मए थंभिया, एत्थ न कावि विज्जा कारणं] और मैंने जो तुम्हारी गति स्तंभित कर दी इस में कोई विद्या का कारण नहीं है। [अयं पहाओ नमुक्कारमंतस्स अत्थि] यह तो नमस्कार मंत्र का प्रभाव है [एवं कहिय जंबुकुमारो तस्स चारित्तधम्मं उवादिसीअ] इस प्रकार कहकर जंबूकुमारने प्रभव को चारित्र-धर्म का उपदेश दिया [तं सोच्चा पभवाईणं चोराणं मणांसि वेरग्गं संजायं] वह उपदेश सुनकर प्रभव आदि सभी चोरों के मनमें वैराग्य उत्पन्न हो गया [तओ बीए दिवसे सपरिवारो जंबूकुमारो तेहिं पभवाइएहिं चोरेहिं सद्धिं सुहम्मसामि समीवे पव्वइओ]

उसके बाद दूसरे दिन जंबूकुमार उन प्रभव आदि चोरों के साथ सुधर्मास्वामी के समीप दीक्षित हुए।

[जंबूसामिम्मि मोक्खं गए तप्पट्टे पभवसामी उवाविसीअ] जंबूस्वामी के मौक्ष पधारने पर प्रभवस्वामी उनके पट्ट पर बैठे [सो उ जंगम कप्परुक्खोव्व भव्वजीवाणं मनोरहं पूरेमाणो] वे चलते फिरते कल्पवृक्ष के समान भव्य जीवों के मनोरथों को पूर्ण करते हुए [सुयणाण सहस्सकिरणकिरणेहिं मिच्छत्ततिमिरपडलं विणासेंतो] श्रुतज्ञान रूपी सूर्य की किरणों से मिथ्यात्व रूपी अन्धकारके पटल का विनाश करते हुए [भव्व हिययकमलाइं वियासेंतो] भव्य जीवों के हृदयकमल को विकसित करते हुए [सुहम्म-सामि परिपोसियं चउव्विहसंघवाडियं देसणामिएणं अहिसिंचिय] सुधर्मास्वामी द्वारा पोषित चतुर्विध संघरूपी वाटिका को अपने उपदेशामृत से सींचते हुए [उवसमविवेग-वेरमणाइ पुप्फेहिं पुप्फियं अत्त कल्लाणफलेहिं फलियं च कुव्वंतो विहरइ] उपशम और

विरमण आदि पुष्पों से पुष्पित करते हुए और आत्मकल्याण रूप फलों से फलवान् बनाते हुए विचरने लगे। [एवं विहरमाणो सो कालमासे कालं किच्चा सग्गं गओ] इस प्रकार विचरते हुए प्रभवस्वामी कालमास में काल करके-अर्थात् यथा समय देहत्याग कर देवलोक में गये। [तओ चुओ सो महाविदेहे खित्ते समुप्पज्जिय सासओ सिद्धो भविस्सइ] देवलोक से चवकर वे महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्ध पद प्राप्त करेंगे ॥४९॥

उवसंहार

नयसार भवो भूमी आलवालं च भावणा।
समत्तं बीय मक्खायं जलं निस्संकिया इयं ॥१॥
अंकुरो नंद जम्मं च वुत्ती ठाणग वीसइ।
रुक्खो वीरभवो जस्स साहाओ गणहारिणो ॥२॥

चउस्संघो पसाहाओ, सामायारी दलानि य।
पुप्फावलि य तिवई बारसंगी सुगंधओ ॥३॥
फलं मोक्खो निराबाहा णंताक्खयि सुहं रसो।
वीरस्स भवरुक्खोऽमू, कप्पसुत्तस्स रूवगो ॥४॥
भव्व संकप्प कप्पहु—कप्पो चिंतिय दायगो।
सेवियो विणया णिच्चं देइ सिद्धिमणुत्तरम् ॥५॥ ॥५०॥

॥ इय कप्पसुत्तं संपूण्णं ॥

उपसंहार

अब सूत्रकार इस कल्पसूत्र को कल्पवृक्ष के समान निरूपित करते हुए और फल बतलाते हुए उपसंहार करते हैं—[वीरस्स भवरूक्खोऽमू] भगवान महावीर का कल्पसूत्र

रूप यह भववृक्ष है। [नयसार भवो भूमि] नयसार का भव इसकी भूमि है [आलवालं च भावणा] भावनाएं इसकी क्यारी है [समत्तं बीयमक्खायं] सम्यक्त्व बीज है [जलं निस्संकिया इयं] निःशंकित आदि जल है [अंकुरो नंदजम्मं च] नन्द का जन्म अंकुर है [वुत्ती ठाणग वीसइ] वीस स्थानक वाड है [रूक्खो वीरभवो] वीर का भव वृक्ष है [जस्स साहाओ गणहारिणो] जिसकी शाखाएं गणधर है [चउस्संघो पसाहाओ] चतुर्विध संघ इसकी प्रशाखाएं है [सामायारि दलाणिय] सामाचारी इसके पत्ते हैं [पुप्फावलि य तिवइ] त्रिपदी फूल है [बारसंगी सुगंधओ] बारह अंग इसका सौरभ है—सुगंध है [फलं मोक्खो] मोक्ष इसका फल है [निराबाहाणंताक्खयि सुहं रसो] अव्याबाध अनन्त असीम और अक्षय सुख इसका रस है [वीरस्स भवरुक्खोऽमू कप्पसुत्तस्स रूवगो] इस प्रकार यह कल्पसूत्र वीर भगवान का भववृक्ष—रूप है [भव्वसंकप्प कप्पहु—कंप्पो चिंतिय दायगो] यह कल्पसूत्र भव्य जीवों का मनोरथ सफल करने के लिये कल्पवृक्ष के

समान है। अभीष्ट प्रदान करनेवाला है [सेवियो विनया निच्चं देइ सिद्धि मणुत्तरम्] विनयपूर्वक नित्य सेवन किया हुआ यह सूत्र सर्वोत्कृष्ट सिद्धि प्रदान करता है।

सिरि महावीरसामिकयतवकोट्ठगं—

	तवाण नामाणि	संखा	तवदिवसा	पारणा दिवसो
१	छम्मासियं	१	१८०	१
२	पंचदिवसूणं छम्मासियं	१	१७५	१
३	चउमासियं	९	१०८०	९
४	तिमासियं	२	१८०	२
५	अड्ढत्तिमासियं	२	१५०	२
६	दुमासियं	६	३६०	६
७	अद्धेगमासियं	२	९०	२

८	एगमासियं	१२	३६०	१२
९	अड्ढमासियं	७२	१०८०	७२
१०	अट्ठभत्तं	१२	३६	१२
११	छट्ठभत्तं	२२९	४५८	२२९
१२	भद्दपडिमा	१	२	१
१३	महाभद्दपडिमा	१	४	१
१४	सव्वओभद्दपडिमा	१०	१०	१
	योगफलम्	३१५	४१६५	३५१

ग्यारह वर्ष छ मास पचीस दिन की तपस्या हुई, और ग्यारह मास इक्कीस दिन पारणा के हुए।

उपसंहार

भावार्थ—अब सूत्रकार इस कल्पसूत्र को कल्पवृक्ष के समान निरुपित करते हुए और

फल बतलाते हुए उपसंहार करते हैं–भगवान् महावीर का कल्पसूत्र रूप यह भव–वृक्ष है। नयसार का भव इस की भूमि है। भावनाएं इसकी क्यारी हैं। समकित बीज है। निःशंकित आदि जल है ॥१॥ नन्द का जन्म अंकुर है। वीस स्थानक बाड है। महावीर का भव वृक्ष है, जिसकी शाखाएं गणधर है ॥२॥ चतुर्विध संघ प्रशाखाएं (टहनियां) है। सामाचारियां पत्ते हैं। त्रिपदी फूल हैं। बारह अंग सौरभ–सुगंध है ॥३॥ मोक्ष इसका फल है। अव्याबाध, अनन्त, अक्षय सुख इसका रस है। इस प्रकार यह कल्पसूत्र वीर भगवान् का भववृक्ष रूप है ॥४॥ यह कल्पसूत्र भव्य जीवों का मनोरथ सफ़ल करने के लिये कल्पवृक्ष के समान है। अभीष्ट प्रदान करनेवाला है विनयपूर्वक नित्यसेवन किया हुआ यह सूत्र सर्वोत्कृष्ट सिद्धिप्रदान करता है।

सब से पहले वृक्ष की उत्पत्ति के योग्य अच्छी भूमि देखभाल कर क्यारी बनाकर, आम्र आदि रसदार फलों के बीज वहां बोये जाते हैं। फिर उन्हें जल

से सींचे जाते हैं। तत्पश्चात् वे बीज अंकूररूप से उगते हैं। उनकी रक्षा के लिये वाड लगाई जाती है। इस प्रकार के प्रयत्न से वे बीज पत्तों, शाखाओं, प्रशाखाओं (टहनियां) से युक्त वृक्षों के रूप में परिणत हो जाते हैं। उन वृक्षों में सरस और सुगंधित पुष्प और फल लगते हैं। इसी प्रकार यह कल्पसूत्र भगवान् के भव-वृक्ष के समान है। इसकी भूमि-उत्पत्ति स्थान नयसार का भव है। अनित्य, अशरण आदि बारह भावनाएं इसकी क्यारी है। इसका बीज समकित कहा गया है। निःशंकित आदि सम्यक्त्व के आठ आचार इसे सींचने के लिये जल के समान हैं। वीस स्थानक इसकी वाड है। ऐसा यह वीर-भव वृक्ष के समान है। गौतम आदि गणधर इस वृक्ष की शाखाएं हैं। चतुर्विध संघ प्रशाखाएं-शाखाओं की शाखाएं है। आवश्य आदि-साधु-आचार रूप दस प्रकार की सामाचारियां इसके पत्ते हैं। उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यरूप त्रिपदी इसकी पुष्पावली है। द्वादशांगी इसका सौरभ है। मोक्ष इसका

फल है। अव्याबाध, अनन्त असीम और अक्षय सुख इसका रस है। कल्पसूत्र वीरका यह भववृक्ष है ऐसा समझना चाहिए। यह कल्पसूत्र मुमुक्षु जीवों की अभिलाषा पूर्ण करने में कल्पवृक्ष के समान है; अतएव सभी अभिष्ट पदार्थों का दाता है। विनयपूर्वक इसका नित्य पठन-पाठन श्रवण श्रावण मनन आदिरूप आराधना करने से यह सर्वोत्कृष्ट सिद्धि प्रदान करता है ॥१-५॥ प्रियव्याख्यानी संस्कृत-प्राकृतवेत्ता, जैनागम-निष्णात पूज्यश्री घासीलालजी महाराज के प्रधान शिष्य पण्डित मुनिश्री कन्हैयालालजी महाराज द्वारा रचित श्री कल्पसूत्र की कल्पमंजरी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥

इतिश्री विश्वविख्यात-जगद्वल्लभ प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललितकलापालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक वादिमानमर्दक-श्री शाहूछत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त 'जैनशास्त्राचार्य' पदभूषित-कोल्हापुरराजगुरु बालब्रह्मचारी-जैनाचार्य-जैनधर्म-दिवाकर-पूज्यश्री-घासीलालव्रतिविरचितं-श्रीकल्पसूत्रम् सम्पूर्णम् ॥

मज्झजंबूदीवे भारहे वासे भूतकालस्स चउव्वीसइ तित्थयराणां नामाणि

मूलम्—सिरि मज्झजंबूदीवे भारहे वासे भूतकालस्स चउवीसाए तित्थयराणां नामाइं तेसु पढमो केवलनाणी१, निव्वाणी२, सायर३, महाजसो४, विमलप्पभू५, सव्वाणुभूई६, सिरिधरो७, दत्त८, दामोयरो९, सुतेजो १०, सामिनाउ ११, मुणिसुब्बओ१२, समिइजिणो १३, सिवगई १४, अत्थंगो १५, नमीसरो १६, अणिलनाहो १७, जसोहरो १८, कयत्थाओ १९. जिणेसरो २०, सुद्धमई २१, सिवसंवरो२२, सियानंदनाहो२३, संपाओ२४।

भावार्थ—जंबूद्वीप में भरतक्षेत्र के भूतकाल के २४ तीर्थंकरों के नाम=श्री केवलज्ञानजी१ श्री निर्वाणजी२, श्री सागरजी३, श्री महायशजी४, श्री विमलप्रभुजी५, श्री सर्वानुभूतिजी६, श्री श्रीधरजी७, श्री दत्तजी८, श्री दामोदरजी९, श्री सुतेजजी१०,

श्री स्वामिनाथजी११, श्री मुनिसुव्रतजी१२, श्री समितिजिनजी१३, श्री शिवगतिजी१४, श्री अस्तांगजी१५, श्री नमीश्वरजी१६, श्री अनिलनाथजी१७, श्री यशोधरजी१८, श्री कृत्तार्थजी१९, श्री जिनेश्वरजी२०, श्री शुद्धमतीजी२१, श्री शिवशंकरजी२२, श्री स्यान्दन नाथजी२३, श्री सम्प्रातजी२४ ।

अट्ठारसकोडाकोडीसागरोवमं पच्छा उसभजिणो हवइ ।

उसभदेवपहुस्स चरित्तं—

मूलम्—मज्झ जंबूदीवे पुव्वविदेह ठिए पुक्कलावईविजए लवणसमुद्दसमीवे पुंडरिगिणी णयरी आसी। तत्थ वज्जसेणो नाम राया। तस्स धारिणी नामा राणी। तस्स पुत्तो वज्जनाभो आसी। पुत्ते रज्जे ठवित्ता वज्जसेनसमीवे पव्वज्जा गहिया। तत्थ उक्किट्ठतवसंजमं आराहणं किच्चा तित्थगरनाम

गोयं कम्मं निबंधिइ । तओ आउयं पुण्णं किच्चा तेत्तीसं सागरोवमं उक्किट्ठं आउयं सव्वट्ठसिद्धे विमाणे देवो उववण्णो ।

सव्वट्ठसिद्धविमाणाओ चइऊण कोसलदेसे विणीया णयरीए नाभिराया मरुदेवीए मायाए आसाढकिण्ह चउत्थदिणे गब्भम्मि बीउक्कंते । चेइय किण्हा अट्ठमीए जम्मो जाओ बीसलक्खपुव्वं कुमारपए, तिसट्ठिलक्खपुव्वं रज्जलच्छी अणुहविय, सुदंसणा सिविया, चेइय किण्हा नवमीए चत्तारिसहस्स परिवारिहिं सद्धिं दिक्खिओ जाओ, पढमभिक्खादाणे सेज्जंसकुमारो, पढमभिक्खाए इक्खुरसो लभीअ, छउमत्थो एगसहस्सवरिसो, चेइयरुक्खो णाम नग्गोहतले, फग्गुणवई एक्कारसे केवलणाणं, निव्वाणकल्लाणयमाह किण्हा तेरसीए, देहपमाणं पंचसय धणुप्पमाणं, कंचणवण्णो, उसभलक्खणो, उसभसेणो गण-

हरो, मुखसाहूणी वंभी, एगलक्खपुव्व पव्वज्जाकालो उसभस्स, चउरासीइं गणहरा, चउरासीइसहस्सा साहूसंखा, साहुणीसंखा तिण्णिलक्ख पंचसहस्सा, सावयाणं संखा तिण्णिलक्खो पंचसहस्सा, सावियाणं संखा पंचलक्ख चउव्वन्न-सहस्सा, वाससहस्स केवलिसाहुणो, चत्तालीससहस्सा केवलिसाहुणीणं संखा, ओहिणाणिणं णवसहस्सा, मणपज्जवनाणिणो दुवालससहस्सा छ सया पन्नासा, चउद्दसपुव्विणं चत्तारिसहस्सा सत्तसया पन्नासा, वीससहस्स छ सया वेउ-व्वियलद्धिधराण संखा, बारससहस्सा छ सया पन्नासा बाईणं संखा, बावीस-सहस्सा नव य सया अणुत्तरोववाईयाणं, पन्नासलक्खकोडिसागरोवमं सासण-कालो, असंखेज्जा पट्टा मोक्खं गया, सासणदेवो गोमुहो, सासणदेवीओ चक्केसरीअ हवीअ ॥

ऋषभदेव भगवान् का पूर्वभव–

भावार्थ—जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह स्थित पुष्कलावती विजय में लवणसमुद्र के समीप पुण्डरिकिणी नामकी नगरी थीं। वहां बज्रसेन नाम के राजा थे। उनकी रानी का नाम धारिणी था। उनके पुत्र का नाम वज्रनाभ था। वज्रनाभ ने अपना राज्य अपने पुत्र को सौंपकर भगवान् बज्रसेन के समीप प्रव्रज्या ग्रहण की। वहां पर उत्कृष्ट आराधना करके तीर्थंकर गोत्र को उपार्जन किया। वे वहां से आयुष्य पूर्ण करके तैंतीस सागरोपम की उत्कृष्ट आयुवाले सर्वार्थसिद्ध विमान में देव हुए।

सर्वार्थसिद्ध विमान से चवकर कौशल देश में (विनीता नगरी) नाभिराजा और मरु देवी माता के अषाढकृष्ण चौथ के दिन गर्भ में आये। चैत्र कृष्ण अष्टमी जन्म लिया। बीसलाखपूर्व कुंवरपद, त्रैसठ लाख पूर्व राज्यगादी समय, सुदर्शना शिबिका, चैत्र कृष्ण नवमी चार हजार के सहित दीक्षा और पहली भिक्षा देनेवाले श्रेयांसकुमार,

पहली भिक्षा में शेरडी का रस, छद्मस्थ एक हजार वर्ष, चैत्यवृक्ष के नाम न्यग्रोध (वड) केवलकल्याणक फाल्गुन कृष्ण एकादशी, निर्वाण कल्याणक माघकृष्ण त्रयोदशी, देह-प्रमाण पांचसौ धनुष्य, वर्ण कांचन, लक्षण वृषभ मुख्य गणधर ऋषभसेन, मुख्य (प्रथम) साध्वी ब्राह्मी, प्रव्रज्या काल एकलाख पूर्व, गणधर चौरासी, उत्कृष्ट साधु संख्या चौरासीहजार, उत्कृष्ट साध्वी संख्या तीन लाख पांच हजार, श्रावक संख्या तीन लाख पांच हजार, श्राविका संख्या पांच चौपन हजार, साधु केवली बीस हजार, साध्वी केवली चालीस हजार, अवधिज्ञानी नव हजार, मनःपर्यवज्ञानी बार हजार छहसौ पचास, चतुर्दश पूर्वधर चार हजार सात सौ पचास, वैक्रियलब्धिवाले बीस हजार छसौ, वादी १२६५० बारह हजार छसौ पचास और अणुत्तरविमानवासी बावीसहजार नवसो मुनि थे। शासनकाल पचासलाख क्रोड सागरोपम। असंख्याता पाट मोक्ष में गया। शासन देव गोमुख, शासनदेवी चक्रेश्वरी।

अजियनाह पहुस्सचरित्तं—

मूलम्—अह बीओ अजियनाहो वच्छदेसे—सुसीमा णामं णयरी होत्था। विमलवाहणो णाम राया, अरिंदम मुणि समीवे पवज्जा गहीअ, तत्थ वीस ठाणाइं आराहिऊण तित्थगर नाम गोय कम्मं उवाजिऊं। तओ कालमासे कालं किच्चा विजय नामं अणुत्तरविमाणे तेत्तीस सागरोवमाठिईओ देवो उववण्णो।

तओ पच्छा आउक्खवएणं भवक्खवएणं ठिइक्खवएणं अयोज्झा नयरीए जयसत्तु-रायस्स, विजया नाम देवीए कुक्खंमि वेसाइ सुक्क तेरसीए दिवसे पुत्तत्ताए उव-वण्णो, माहकिण्हा अट्ठमी दिवसे जम्म गहीअ, अट्ठारसलक्खपुव्वं कुमारपए, तेवण्णलक्खपुव्वं रज्जपए आरूढो हवइ, तओ पच्छा सहस्स परिवारेण सद्धिं वेसाह सुक्कनवमीए दिवसे सुप्पभानाम सिवियाए उववेसिऊण दिक्खिओ

जाओ, पढमभिक्खादायारो बंभदत्तो आहेसि। पढमभिक्खाए खीरं लद्धं, दुवालसवारिसं छउमत्थं पालिउं सत्तवण्ण नाम चेइयरुक्खतले पोससुक्क एक्कारस दिवसे केवलणाणं, केवलदंसणं समुप्पण्णं बीयस्स अजियनाह पहुस्स चेइयसुक्किले पंचमी दिणे निव्वाणं पाविअ। अजियपहू देहपमाणं पन्नासोत्तर चत्तारिसय धणूपमाणं, कंचणवण्णो, लक्खणं गयस्स, गणहरो गणनायगो सीहसेणो, मुहा साहुणी फग्गुणी, तस्स पव्वज्जाकालो एगलक्खपुव्वं, गणहराणां संखा णवइ, साहुसंखा एगलक्खं, साहुणीणं संखा तीससहस्सोत्तरतिलक्खा, सावगाणं संखा अट्ठाणउइ सहस्सोत्तर दोलक्खा, सावियाणं चउवण्णसहस्सोत्तर पंचलक्खा, केवली साहूणं संखा बीससहस्सा, केवलीसाहुणीणं संखा चत्तालीससहस्सा, ओहिनाणीणं संखा चत्तारि सयोत्तर नवसहस्सा, मणपज्ज-

वनाणीणं संखा पंचसय पन्नासोत्तर दुवालससहस्सा, चउद्दसपुव्विणं संखा सत्तसय बीसोत्तर तिसहस्सा, वेउव्वियलद्धिधारिणं संखा चत्तारि सयोत्तर-बीससहस्सा, वाईणं संखा चत्तारि सयोत्तर बीससहस्सा, सासणकालो तीस कोडि सागरोवमा, असंखेज्जा पट्टा मोक्खं गया, सासणदेवो महाजक्खो, सासणदेवी अजिया आसी।

अजितनाथ भगवान् के पूर्वभव—

वत्स नामक देश में सुसीमा नाम की नगरी थी। विमलवाहन नामका राजा था। उन्होंने अरिंदम मुनि के पास दीक्षा ली। वहां पर बीस स्थानक की आराधना करके तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया। वहां से मरकर विजय नामक अनुत्तर विमान में तैंतीस सागरोपम की आयुवाला देव हुआ।

अयोध्या नगरी में पिता का नाम जयशत्रु था। माता का नाम विजया था। विजय विमान में तेतीस सागरोपम का आयुपूर्ण करके उनकी कुक्षि में वैशाख शुद् त्रयोदशी के दिन आये, माघ कृष्ण अष्टमी के दिन जन्म हुआ। अठारह लाख पूर्व कुंवरपद और त्रैपनलाख पूर्व राज्यगादी पर आरुढ थे। सुप्रभा नामकी शिबिका में बैठकर वैशाख सुदि नवमी के दिन एक हजार परिवार सहित दीक्षा ग्रहण की। पहेली भिक्षा देनेवाले का नाम ब्रह्मदत्त था। पहेली भिक्षा में क्या मिला? खीर मिला, छद्मस्थ अवस्था के बारह वर्ष, चैत्यवृक्ष का नाम सप्तवर्ण, पोषशुक्ल एकादशी के दिन केवल कल्याणक, चैत्र शुक्ल पंचमी के दिन निर्वाण कल्याणक हुआ। उनका देहप्रमाण चारसौ पचास धनुष्य, वर्णकांचन, लक्षण गज, नायक गणधर सिंहसेन, अग्रणी साध्वी फाल्गुणी, प्रव्रज्या समय एक लाख पूर्व, गणधर संख्या नव्वे, साधु संख्या एक लाख, साध्वी संख्या तीन लाख तीस हजार, श्रावक संख्या दो लाख अट्ठानवे हजार, श्राविका संख्या

पांच लाख चौपन हजार, केवली साधु बीस हजार, केवली साध्वी की संख्या चालीस हजार, अवधिज्ञानी की संख्या नौ हजार चारसौ, मनःपर्यवज्ञानी की संख्या बारह हजार पांच सौ पचास, चतुर्दशपूर्वी की संख्या तीन हजार सातसौबीस वैक्रियलब्धिधारी की संख्या बीस हजार चारसौ, वादी की संख्या बीस हजार चारसौ, शासनकाल तीस क्रोड सागरोपम, असंख्याता पाट मोक्ष में गया. शासनदेव महायक्ष, और शासनदेवी अजिता थी।

३ संभवनाहपहुस्स चरित्तं—

मूलम्—धायइसंडे दीवे एरवए खेत्तम्मि 'खेमपुरी' णामा नयरी होत्था, तत्थ विउलवाहणो नाम राया, तस्स रज्जं अप्पणो पुत्ते विमलकीत्तिं दच्चा सयंपभाचारसमीवे दीक्खिओ जाओ। तत्थ बीस ठाणाइं आराहिउण तित्थ-गर नाम गोयं कम्मं उव्वजिऊं तत्थ आउसं पालयित्ता नवमे उवरिल्ले गेवे-

यगे समुप्पन्ने।

तओ देवलोगाओ चइऊण सावत्थी णयरीए जितारि णामं राया, तस्स सेणादेवीए कुक्खे फग्गुणी सुक्किले अट्ठमी दिवसे गब्भम्मि उववण्णे। मिग्गसिर सुक्किल्ल चउदसीए जम्मकल्लाणं जायं, कुमारपए पंचदसलक्खपुव्वं, रज्जे-चत्तालीसलक्खपुव्वं पालिऊण, एगसहस्सपरिवारेण सद्धिं सिद्धत्था सिविया रूढो मिग्गसिर सुक्कपुण्णिमाए दीक्खिओ जाओ, पढम भिक्खादायारो सुरिंद-दत्तो, पढमे भिक्खाए खीरं लद्धं, छउमत्था वत्थाकालो चउद्दससहस्सवरिसो, कत्तिय किण्ह पंचमीए साल नाम चेइयरुक्खतले केवलणाणं, चेइय सुक्किल्ल पंचमी निव्वाणं, देहपमाणं चउस्सय धणुपमाणं, कंचणवण्णो, हयलक्खणो, गणहरो गणणायगो चारुजिओ, सोमाणामं अग्गणी साहुणी, पवज्जाकालो

लक्खपुव्वो, गणहरसंखा दुआहियं सयं, साहूणं संखा दोलक्खा, साहूणीणं संखा छत्तीससहस्सोत्तर तिलक्खा, सावयाणं संखा तेणउइ सहस्सोत्तर दो-लक्खा, सावियाणं संखा छत्तीस सहस्सोत्तर छलक्खा, केवली साहूणं संखा पन्नरससहस्सा, केवलीसाहूणी संखा तीससहस्सा, ओहिणाणीणं संखा छसयो-त्तर छसहस्सा, मणपज्जवनाणीणं संखा एगसय पन्नासोत्तर दुवालससहस्सा, चउद्दसपुव्वाणं संखा एगसयपन्नासोत्तर दो सहस्सा, वेउव्वियलद्धिधराणं संखा अट्ठसयोत्तर सोलससहस्सा, वाईणं संखा दुवालससहस्सा, सासणकालो दसलक्ख कोडिसागरोवमो, पट्टाणुपट्टं असंखेज्जा मोक्खं गया, सासणदेवो तिरुक्खो, सासणदेवी दुरितारि ॥

३–संभवनाथ भगवान् के पूर्वभव–

धातकीखण्ड द्वीप के ऐरवत क्षेत्र में 'क्षेमपुरी' नामकी एक प्रसिद्ध नगरी थी। वहां पर 'विपुलवाहन' नाम का राजा था। उन्होंने अपना राज्य अपने पुत्र 'विमल-कीर्ति' को सौंपकर स्वयं 'स्वयंप्रभाचार्य' के समीप दीक्षित हो गया। वहां पर आराधना करने से तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया। वहां पर अपना आयुष्य पूर्ण करके नौवें ग्रैवेयक में उत्पन्न हुए।

देवलोक का आयु पूर्ण करके 'श्रावस्ती' नगरी के 'जितारी' नाम के राजा की 'सेनादेवी' रानी की कुक्षि में फाल्गुन शुक्ल अष्टमी के दिन गर्भ में आये। जन्म कल्याणक मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्दशी, कुंवरपद १५ लाख पूर्व, राज्यगादी चौवालीस लाखपूर्व, शिबिका सिद्धार्था, दीक्षा कल्याणक एक हजार के साथ मार्गशीर्ष शुक्ल पूर्णिमा, पहेली भिक्षा के देनेवाले का नाम सुरेन्द्रदत्त, पहली भिक्षा में क्या मिला?

खीर, छद्मस्थ अवस्था के चौदह हजार वर्ष, चैत्य वृक्ष के नाम शाल, केवल कल्याणक कार्तिक कृष्ण पंचमी, चैत्र शुक्ल पञ्चमी निर्वाण कल्याणक, देहप्रमाण चारसौ धनुष्य प्रमाण, वर्ण कंचन, लक्षण, तुरी, नायक गणधर चारुजी, अग्रणी साध्वी सोमा, प्रव्रज्या एकलाख पूर्व, गणधर संख्या एक सौ दो, साधु संख्या दो लाख, साध्वी संख्या तीन लाख छत्तीस हजार, श्रावक संख्या दो लाख तीरान्नवे हजार, श्राविका संख्या छलाख छत्तीस हजार, केवली साधु संख्या पन्द्रह हजार, केवली साध्वी संख्या तीस हजार, अवधिज्ञानी छ हजार छसौ, मनःपर्यायी बारह हजार एकसौ पचास, चतुर्दश पूर्वी दो हजार एकसौ पचास, वैक्रिय लब्धिधारी सोल हजार आठसौ, वादी संख्या वारहहजार शासनकाल दस लाख क्रोड सागरोपम, कितने पाट मोक्ष में गया असंख्याता, शासनदेव–तिरुक्ख और शासनदेवी दुरितारी ॥

४—अभिनंदणपहुस्स चरित्तं—

मूलम्—जंबूदीवे पुव्वविदेहे मंगलावई विजए रयणसंचया नयरी होत्था, तत्थ महाबलो नामं राया। संसारासारं जाणिऊण विरत्तो जाओ, विमलारिए समीवे दीक्खिओ जाओ, तत्थ तित्थगर नाम गोयं कम्मं उव्वाजियं अणसण-पुव्वं देहं चइऊण जयंत नामग चउत्थ अणुत्तरविमाणे महड्ढिओ देवो जाओ।

जंबूदीवे भारहेवासे विणीयाए नयरीए होत्था, तत्थ इक्खुवंसतिलगो संवरो राया होत्था, तस्स सिद्धत्था नामं देवी आसी। जयंत विमाणाओ चइत्ता वेसाहे सुक्क चउत्थी दिणे सिद्धत्थाए देवीए कुच्छिंसि उववण्णो। माह सुक्क बीईयाए दिवसे जम्मकल्लाणगं हवीअ, अद्धदुवालसलक्खपुव्वं कुमारपए, अद्ध-सहियं छत्तीसलक्खपुव्वं रज्जं पालिउं, सहस्सपरिवारेण सद्धिं सुप्पसिज्जा सिबियाए

दूरुहिय माह सुक्कचउद्दसीए दीक्खिओ जाओ, पढम भिक्खा दायगो इंददत्तो आसी, भिक्खाए खीरं लद्धं, अट्ठारससहस्सवरिसं छउमत्था वत्थायां, पोससुक्क चउद्दसीए पियंगु णाम चेइय रुक्खतले केवलकल्लाणं हवीअ, वेसाह सुक्क अट्ठमीए दिवसे निव्वाणकल्लाणगं, अद्धसहियं तिसयधणूपमाणं, वण्णो कंचणं, लक्खणं कवी, वज्जणामो गणहरो अंतराणी णाम अग्गणी साहुणी, पव्वज्जा समयो एग-लक्खपमाणो, साहुसंखा तिलक्खा, साहुणीसंखा तीस सहस्सोत्तर छलक्खा, सावगाणं संखा अट्ठ सहस्सोत्तर दो लक्खा, साबियाणं संखा सत्तावीससह-स्सोत्तर पंचलक्खा, केवली साहुसंखा चउद्दससहस्सा, केवली साहुणीणं संखा चउद्दससहस्सा, ओहिनाणीणं संखा अट्ठसया, मणपज्जवनाणीणं संखा छसय पन्नासोत्तर एक्कारससहस्सा, चउद्दसपुव्विणं पंचसयोत्तर एगसहस्सा, वेउव्विय

लद्धिधारिणं संखा सोलससहस्सा, वाईणं संखा एक्कारससहस्सा, सासणकालो नवलक्खकोडिसागरोवमो, असंखेज्जा पट्टा मोक्खं गया। सासणदेवो ईसरो, सासण देवी काली णाम ॥

४-श्री अभिनंदन स्वामी का पूर्वभव-

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में मङ्गलावती नामक विजय में 'रत्नसंचया' नाम की नगरी थी। वहां 'महाबल' नाम का राजा था। उन्होंने संसार से विरक्त होकर विमल आचार्य के पास दीक्षा ग्रहण की। वहां पर तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया। वह अन्त में अनशन पूर्वक देह त्याग कर जयन्त नामक अनुत्तर विमान में महर्द्धिक देव बना।

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में 'अयोध्या' नामकी नगरी थी। वहां इक्ष्वाकुवंश तिलक' 'संवर' नामके राजा थे। उस संवर राजा के 'सिद्धार्था' नामकी रानी थी। जयन्त विमान से चवकर वैशाख शुक्ला चतुर्थी के दिन महारानी 'सिद्धार्था' की कुक्षि में

उत्पन्न हुआ। माघ शुक्ल द्वितीया के दिन जन्म कल्याणक, साढे बारह लाख पूर्व कुंवरपद साढे छत्तीस लाख पूर्व राज्यगादी समय, सुप्रसिद्धा नामकी शिविका माघ शुक्ल चतुर्दशी को दीक्षा एक हजार के साथ, पहली भिक्षा देनेवाले का नाम इन्द्रदत्त, पहली भिक्षा में क्या मिला ? खीर। अठारह हजार वर्ष छद्मस्थ अवस्था, चैत्य वृक्ष का नाम प्रियक, पोष शुक्ल चतुर्दशी के दिन केवल कल्याणक, वैशाख सुदी अष्टमी के दिन निर्वाण कल्याणक, देहप्रमाण ३५० धनुष्य, वर्ण कंचन, लक्षण कपि, नायक गणधर वज्रनाभ, अग्रणी साध्वी अन्तरानी, प्रव्रज्या समय १ एक लाख पूर्व, साधु संख्या तीन लाख, साध्वी संख्या छ लाख तीस हजार, श्रावक संख्या दो लाख अठारह हजार, श्राविका संख्या ५ लाख सत्तावीस हजार, केववली साधुओं की संख्या चौदह हजार केवली वाध्वी की संख्या चौदह हजार, अवधिज्ञानी की संख्या आठ सौ, मनःपर्यायज्ञानी की संख्या ग्यारह हजार छ सौ पचास, चतुर्दश पूर्वी एक हजार पांच

सौ, वैक्रिय लब्धिधारी की संख्या सोलह हजार, वादी संख्या ग्यारह हजार, शासन काल नौ लाख क्रोड सागरोपम कितनेक पाट मोक्ष में गये असंख्याता; शासनदेव ईश्वर शासन देवी काली थी।

सुमईनाहपहुस्स चरित्तं–

मूलम्–धायइसंडे पुव्वविदेहे पुक्कलावईविजए संखपुर नाम णयरी होत्था, तत्थ जयसेणो नाम राया। तस्स सुदंसणा नाम देवी आसी, तस्स पुत्तो पुरिससीहो, सो विजयनंदण आयरियसमीवे दिक्खिओ जाओ। तत्थ वीस ठाणाइं समाराहुण तित्थगरनामगोयं कम्मं उवाजियं। तओ आउं पुण्णं किच्चा जयंतनामगे अणुत्तरविमाणे उववण्णो।

तओ चइऊण मज्झ जंबूदीवे भारहे वासे विणेया नयरी आसी। तत्थ

मेहरहो नाम राया, तस्स देवी मंगला नामासी, तओ चइऊण सावणसुक्क बीइए दिवसे मंगलादेवीए गब्भंमि पुत्तत्ताए उववण्णे, वेसाहसुक्क अट्ठमी दिणे जम्मकल्लाणगं हवीअ, चत्तालीसलक्खपुव्वं आउ, दसलक्खपुव्वं कुमारपए, एगतीसलक्खपुव्वं रज्जं पालिय विजया नाम सिविया रूढो वेसाहसुक्क नवमीए दीक्खिओ जाओ एगसहस्स परिवारेण सद्धिं, पढमभिक्खादायगो पउमनामा, पढमे भिक्खाए खीरं लद्धं, छउमत्थावत्था वीसं वरिसाइं पियंगु चेइय रुक्खतले केवलणाणं चेइय सुक्क एक्कारस दिवसे निव्वाणकल्लाणगं, तिसयधणूंसि देहप्पमाणं, कंचणवण्णो, कौंचपक्खीलक्खणं, चमर णामो मुक्ख गणहरो, अग्गणी साहुणी कस्सपी, पव्वज्जासमयो एगलक्खपुव्वं एगसयं गणहराणं संख, तिलक्ख बीससहस्साइं साहूसंखा, पंचलक्ख तीससहस्साइं साहुणीणं

संखा एगासीइसहस्सोत्तर दोलक्खा सावयाणं संखा, सोलससहस्सोत्तर पंच-लक्खा सावियाणं संखा, तेरससहस्सा, केवलीसाहु संखा, छब्बिससहस्सा केवलिसाहुणीणं संखा, एक्कारससहस्सा ओहिणाणिणं संखा, दससहस्सा, मण-पज्जवनाणिणं संखा, छसया पन्नासोत्तर दससहस्सा बाईणं संखा, वेउव्वियल-द्धिधराणं संखा, चत्तारिसयोत्तर अट्ठारससहस्सा णवइकोडीसहस्सा सागरोवमो सासणकालो, असंखेज्जा पट्टा मोक्खं गया, सासणदेवो तुंबरु सासणदेवी महाकाली।

(५)—श्री सुमतिनाथ स्वामीका पूर्वभव—

धातकी खण्ड के पूर्वविदेह में पुष्कलावती विजय में 'शंखपुर' नामका नगर था। वहां 'जयसेन' नामका राजा था। उसकी 'सुदर्शना' नामकी रानी थी। उसके पुत्रका नाम 'पुरुषसिंह' था। उन्होंने 'विजयनन्दन' नामक आचार्य के समीप दीक्षा ग्रहण

किया। वहां पर तीर्थकर नाम कर्म उपार्जन किया। वहां आयु पूर्ण करके अनुत्तर नामक 'जयन्त' विमान में उत्पन्न हुआ।

वहां से च्यव करके जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में 'अयोध्या' नामकी नगरी थी। वहां मेघरथ नाम के राजा थे। उनकी रानी का नाम 'मंगला देवी' था। देवलोक का आयु पूर्णकर श्रावण शुक्ला द्वितीया के दिन 'मंगला देवी' रानी की कुक्षि में गर्भपने उत्पन्न हुए। चालीस लाख पूर्वका आयु था। वैशाख शुक्ल अष्टमी के दिन जन्म कल्याणक, दसलाख पूर्व कुंवरपद पर, उनतीस लाख पूर्व राज्यगादी पर आरूढ हुए। विजया नामकी शिबिका वैशाख शुक्ल नवमी दीक्षा कल्याणक एक हजार के साथ, पहली गोचरी के दाता का नाम पद्म, पहली गोचरी में क्या मिला ? खीर। छद्मस्थ अवस्था का वरस २० बीस वर्ष, चैत्य वृक्ष का नाम प्रियंगु, केवल कल्याणक, चैत्र शुक्ल एकादशी, निर्वाण कल्याणक चैत्र शुक्ल नवमी, देह प्रमाण तीन सौ धनुष, वर्ण कंचन, लक्षण क्रौंच पक्षी,

नायक गणधर चमरजी, अग्रणी साध्वी काश्यपी, प्रव्रज्या समय एक लाख पूर्व गणधर संख्या एक सौ साधु संख्या तीन लाख बीस हजार, साध्वी संख्या ५ लाख तीस हजार, श्रावक संख्या दो लाख ८१ एकासी हजार, श्राविका संख्या ५ पांच लाख १६ सोलह हजार, साधु केवली १३ तेरह हजार, साध्वी केवली २६ छवीस हजार अवधि ज्ञानी ११ ग्यारह हजार, मनःपर्यायी १० दस हजार वैक्रियलब्धिधारीकी संख्या १८४०० अठारह हजार चारसौ, वादी संख्या १०६५०. शासनकाल ९० नव्वे हजार करोड साग-रोपम. कितना पाट मोक्ष में गया असंख्याता. शासनदेव तुंबरू शासन देवी महाकाली ॥५॥

पउमप्पह तित्थयरस्स चरित्तं

मूलम्—धायइसंडे पुव्वविदेहे वच्छ विजयम्मि सुसीमा नाम णयरी होत्था, तत्थ अपराजिओ नाम सूरो वीरो राया रज्जं कासी। सव्वा पजा सुह-

पुव्वगं आसी। एगया तत्थ णयरीए अरिहंतो भगवंतो समवसरिअ। अपराजिओ राया अरिहंत भगवं तस्स दंसणट्ठं आगओ। भगवंतस्स देसणं सोच्चा वेरग्गं जाओ, नीजपुत्ते रज्जं ठवित्ता भगवंत समीवे दीक्खिओ जाओ। उक्किट्ठं तवसंजमं आराहिऊण तित्थगरनामगोयं कम्मं उवाजियं अंतसमए संलेखणा पुव्वगं देहं चइऊण उवरिम गेवेयगस्स महड्ढिओ देवो जाओ।

एगतीस सागरोवमं ठिइं पालित्ता तओ पच्छा आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कोसांबी नयरी सिरीधर राया सुसमादेवी गब्भंमि पुत्तत्ताए माहकिण्हछट्ठदिणे, जम्मकल्लाणगं कत्तिय किण्ह बारसे दिवसे हविय, अड्ढसहियं सत्तलक्खपुव्वं कुमारपए, अड्ढसहियं एक्कीसलक्ख-

पुव्वं रज्जं पालिय, एगसहस्स परिवारेण सद्धिं वेजयंत सिवियंआरोहिय-कत्तिय किण्हा तेरसे दीक्खिओ जाओ। पडम भिक्खादायारो सोमदेवो, भिक्खाए खीर लद्धं, छउमत्थावत्था कालो छम्मासा, छत्ताभचेइय रुक्खतले केवलणाणं, चेइय सुक्कपुण्णिमाए निन्नावं, अड्ढाइज्जसयधणूदेहपमाणं, वण्णो रत्तो, लक्खणं पउमकमलं, गणनायको गणहरो सुव्वयो, अग्गी साहुणी रयणा, पवज्जाकालो एकलक्खपुव्वो, सत्त अहियं सया गणहराणं संखा, तीससहस्सोत्तर तिल-क्खा साहुसंख, बारससहस्सोत्तर चत्तारि लक्खा साहुणी संखा, छावत्तरिसह-स्सोत्तर दोलक्खा सावगाणं संखा, पंचसहस्सोत्तर पंचलक्खा सावियाणं संखा, केवली साहुसंखा बारस सहस्सा, केवलीसाहूणी संखा चउव्वीससहस्सा, ओहिणाणीणं संखा दससहस्सा, मणपज्जवनाणीणं तिसयोत्तर दससहस्सा,

चउद्दसपुव्वी संखा तिसयोत्तर दोंसहस्सा, वेउव्वियलद्धिधराणं संखा अट्ठसयोत्तर सोलससहस्सा, वाईणं संखा छण्णउइ सया, सासणकालो नवकोडिसागरोवमो, असंखेज्जा पट्टा मोक्खं गया, सासणदेवो कुसुमो, सासणदेवी अच्चुया नामा॥

६—पद्मप्रभस्वामी का पूर्वभव

धातकी खण्डद्वीप के पूर्व विदेहक्षेत्र के वत्स विजय में सुसीमा नामकी नगरी थी। वहां 'अपराजित' नामके शूरवीर राजा राज्य करते थे। उनके राज्य में सारी प्रजा सुख पूर्वक निवास करती थी।

एक बार अरिहंत भगवान् का नगरी में आगमन हुआ। राजा भगवान् के दर्शन करने गया और उनकी वाणी सुनने लगा। भगवान् की वाणी सुनकर उसे वैराग्य हो गया। उसने अपने पुत्र को राजगद्दी पर बिठला कर उत्सव पूर्वक भगवान् के समीप

दीक्षा ग्रहण कर ली। दीक्षा ग्रहण के बाद उत्कृष्ट तप संयम की आराधना करते हुए उसने 'तीर्थङ्कर' नाम कर्म का उपार्जन किया। अन्तिम समय में संलेखना पूर्वक देह का त्याग कर वह सर्वोच्च ग्रैवेयक में महान ऋद्धि सम्पन्नदेव बना। वहां से च्यवकर ग्रैवेयक देवलोक की स्थिति ३१ एकत्तीस सागरोपम जन्मनगरी कौशाम्बी, पिता का नाम श्रीधर राजा, माता का नाम सुषमा, आयुष्य ३० तीसलाख पूर्व, गर्भ कल्याणक माघ कृष्ण छट्ठ, जन्म कल्याणक कार्तिक कृष्ण १२ द्वादशी, कुंवरपद साढे सातलाख पूर्व, राज्य गादी समय २१॥ साढे एकीसलाख पूर्व, शिबिका वैजयन्त, दीक्षा कल्याणक कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी, एकहजार के साथ, पहली गोचरी देनेवाला का नाम सोमदेव पहली गोचरी में क्या मिला खीर, छद्मस्थावस्था का काल छ महीना, चैत्यवृक्ष का नाम छत्राभ, केवली कल्याणक चैत्र शुक्ल पूर्णिमा, निर्वाण कल्याणक मार्गशीर्ष कृष्ण एकादशी, देहप्रमाण २५० धनुष, वर्ण लाल, लक्षण पद्मकमल, नायक गणधर सुव्रतजी,

अग्रणी साध्वीजी रत्ना, प्रव्रज्या समय एकलाख पूर्व, गणधर संख्या १०७ एकसौ सात साधु संख्या तीनलाख तीस हजार, साध्वी संख्या चार लाख बारह हजार, श्रावक संख्या दो लाख ७६ छिहतर हजार, श्राविका संख्या पांच लाख ५ पांच हजार, साधु केवली बारह हजार साध्वी केवली २४ चौबीस हजार, अवधिज्ञानी १० दस हजार, मनःपर्यायी १० हजार तीनसौ, चतुर्दशपूर्वी दो हजार तीनसौ वैकुर्विक सोलह हजार एकसौ आठ वादी संख्या ९६०० छियानवे सौ। शासन काल नव हजार करोड सागरोपम, कितना पाट मोक्ष में गया असंख्याता, शासनदेव कुसुम, शासन देवी अच्युता ॥६॥

सत्तमं सुपासनाह चरित्तं—

मूलम्—धायइसंडे दीवे पुव्वविदेहम्मि खेमपुरी' णाम रमणिज्ज णयरी होत्था, तत्थ णंदीसेणो नाम पतावी राया होत्था, स धम्मिओ आसी, धम्मेण चेव वित्तिं कप्पेमाणा संसारमसारं जाणिऊण विरत्तिभावो हविअ। सो अरि-

मद्दण थेर आयरिय समीवे दीक्खिओ जाओ। वीस ठाणाइं आराहिऊण तित्थ-गर नाम गोयं कम्मं उवाजियं अंतसमए संलेहणं संथारगं किच्चा समाहि-मरणं किच्चा गेवेज्जविमाणे देवत्ताए उववण्णो।

छट्ठ गेवेज्जग देवलोगस्स अट्ठाइस सागरोवमं ठिइं पालिऊण तओ चविय वाणारसीए नयरीए जम्मकल्लाणं हवीअ, तस्स पिया नाम पतिट्ठसेणो, माया नाम पुढवी आसी, आऊ बीसलक्खपुव्वं आसी, गब्भकल्लाणग भद्दवयकिण्ह अट्ठमीदिणे, जम्मकल्लाणगं जेट्ठ सुक्कबारस दिवसे, पंचलक्खपुव्वं कुमारपए, चउद्दसलक्खपुव्वं रज्जं किच्चा, एगसहस्स परिवारेण सह जयंती नाम सिविया-रूढो जेट्ठसुक्कतेरसे दिवसे दीक्खिओ जाओ। पढम भिक्खादायारो माहिंद नामा, पढमे भिक्खाए खीरं लद्धं, छउमत्थावत्था नवमासा, सिरीस नाम चेइयरुक्खतले

फग्गुणकिण्ह छट्ठदिवसे केवलणाणं सुपासपहुस्स समुप्पण्णं । फग्गुण किण्हा सत्तमी दिवसे निव्वाणं, द्विसयधणुप्पमाण देहमाणं, कंचणवण्णो देहो, सोवत्थियलक्खणं, गणणायग गणहरो विदब्भो, अग्गणी साहुणी सोमा, पव्वज्जाकालो एकलक्खपुव्वो, चत्तारिसयोत्तर अट्ठसहस्सा वाईणं संखा, पंचाणउइगणहराणां संखा, तिलक्खा साहूसंखा, तीससहस्सोत्तरा चउलक्खा, साहूणीणं संखा, सत्तावण्णसहस्सोत्तर दो लक्खा सावगाणं संखा तेणउइ सहस्सोत्तर चउलक्खा सावियाणं संखा, एक्कारससहस्सा केवली साहूसंखा, बावीस सहस्सा, केवलीसाहूणीणं संखा, ओहिणाणीणं संखा नवसहस्सा, मणपज्जवनाणीणं संखा एगसय पन्नासोत्तर नवसहस्सा, चउद्दसपुव्वी संखा तिसयपन्नासोत्तर दो सहस्सा, वेउव्वियलद्धिधराणं संखा तिसयोत्तरपन्नरससहस्सा,

सासणकालो नवसयकोडिसागरोबमो, असंखेज्जा पट्टा मोक्खं गया, सासणदेवो मायंगो, सासणदेवी सांता आसी ।

७—श्रीसुपार्श्वनाथजी का पूर्वभव

धातकी खण्ड द्वीप के पूर्वविदेह में 'क्षेमपुरी' नामकी रमणीय नगरी थी। वहां 'नन्दिषेण' नामका प्रतापी राजा राज्य करते थे। वे धर्मात्मा थे। धर्ममय जीवन व्यतीत करने के कारण उन्हें संसार के प्रति विरक्ति हो गई। उन्होंने 'अरिमर्दन' नामक स्थविर आचार्य के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। उत्कृष्ट भावना से तप और संयम की साधना करते हुए 'नंदिषेण' मुनिने तीर्थङ्कर नामकर्मका उपार्जन किया। अन्तिम समय में संलेखना संथारा करके समाधि पूर्वक देह का त्याग किया और काल धर्म पाकर ग्रैवेयक विमान में देवरूप से उत्पन्न हुए।

वहां से च्यवकर छट्ठा ग्रैवेयक देवलोक का स्थिति २८ अठाईस सागरोपम, जन्म

नगरी वाणारसी, पिता का नाम प्रतिष्ठसेन, माता का नाम पृथ्वी आयुष्य वीसलाख पुर्व, गर्भकल्याणक भाद्रपद कृष्णअष्टमी जन्मकल्यणक ज्येष्ठशुक्ल द्वादशो, कुंवरपद ५ लाख पूर्व, राज्यगादी समय १४ चौदहलाख पूर्व, शिबिका जयन्ती, दीक्षा कल्याणक ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी १ एक हजार के साथ, पहली गोचरी देनेवाले का नाम महेन्द्र पहली गोचरी में क्या मिला खीर, छद्मस्थ अवस्था का ९ मास चैत्यवृक्ष का नाम शिरिष, केवल कल्याणक फाल्गुन कृष्ण छट्ठ, निर्वाण कल्याणक फाल्गुन कृष्ण सप्तमी, देह प्रमाण दो सौ धनुष, वर्ण कंचन, लक्षण स्वस्तिक. नायक गणधर विदर्भजी, अग्रणी साध्वी सोमा, प्रव्रज्या समय १ एकलाख पूर्व, वादी संख्या ८४०० चौरासी सौ, गणधर संख्या ९५, साधु संख्या तीन लाख, साध्वी संख्या चारलाख तीसहजार, श्रावक संख्या दो लाख ५७ हजार, श्राविका संख्या ४ लाख ९३वें हजार, साधु केवली ११ ग्यारह हजार, साध्वी केवली २२ बावीस हजार अवधिज्ञानी ९ नौ हजार, मनःपर्यायी नव हजार एक

सौ ५० पचास, चतुर्दश पूर्वी दो हजार तीनसौ पचास, वैकुर्विक १५ पन्द्रह हजार तीन सौ, शासन काल ९ नौ सौ करोड सागरोपम, कितना पाट मोक्ष में गया असंख्याता शासनदेव मातंग शासन देवी शान्ता ॥७॥

अट्ठम चंदप्पभसामिचरित्तं–

मूलम्–धायइसंडे दीवे पुव्वविदेहे मंगलावई विजए रयणसंचया नाम णयरी होत्था, तत्थ पउम नाम वीर राया होत्था, सो संसारे वसंतो वि विरतो आसी, किमवि कारणं पाविऊण संसाराओ विरत्तो जाओ, सो जुगंधर आयरिय समीवे दिक्खिओ जाओ, चिरकालं उक्किट्ठ तवसंजमं पालिऊण तित्थगर नाम गोयं कम्मं उवाजिऊं, आउपुण्णं किच्चा पउमनाभ मुणी वेजयंत नामगविमाणे इड्ढिसंपण्णो देवो जाओ।

तेंतीस सागरोवमं ठिइं पुण्णं किच्चा तओ चविय चंदपुरी णयरीए तस्स जम्मं हविअ। तस्स पिया महासेणो, माया नाम लच्छी, आउ दसलक्खपुव्वं, गब्भकल्लाणगं चेइय किण्हपक्ख पंचमीए, पोस किण्हबारसाहे दिवसे जम्म-कल्लाणं हविअ, कुमारपए अद्ध तइयलक्खपुव्वं, अद्धसत्तलक्खपुव्वं रज्जं पालिय, तओ पच्छा सहस्स परिवारेण सद्धिं अपराजिया सिविया रूढोपोस-किण्हा तेरसे दिवसे दिक्खिओ जाओ, पढम भिक्खादायारो सोमदत्तो, पढम भिक्खाए खीरं लद्धं, छउमत्थावत्था छमासा, फग्गुणी किण्ह सत्तमीए नाग-रुक्ख चेइय रुक्खतले केवलणाणं, भद्दवकिण्ह अट्ठमीदिणे निव्वाणं, एगसय पन्नासं धणूंसि देहपमाणं, गोरवण्णं, चंदलक्खणं, णायग गणहरो दीन कण्णो, अग्गणी साहूणी सोमाणी, एगलक्खपुव्व पव्वज्जाकालो, गणहराणं संखा

तिणउवइ, साहु संखा दुलक्खा पन्नाससहस्सा, साहुणी संखा तिलक्ख असीइं सहस्सा, सावगसंखा पंचसहस्सोत्तर दोलक्खा, सावियाणं संखा एगणवइसहस्सोत्तर चत्तारिलक्खा, केवली साहूणं संखा दससहस्सा, केवली-साहुणीणं संखा बीससहस्सा, ओहिनाणीणं संखा अट्ठसहस्सा, मणपज्जवनाणीणं संखा अट्ठसहस्सा, चउद्दसपुव्विणं संखा दोसहस्सा, वेउव्वियलद्धिणं संखा चउद्दससहस्सा, वाईणं संखा छावत्तरिसया, सासणकालो णउइकोडिसागरो-वमो, असंखेज्जा पट्टा मोक्खं गया, सासणदेवो विजयो, सासणदेवीअ जाला।

८—चन्द्रप्रभस्वामी का पूर्वभव

धातकी खण्ड द्वीप के पूर्वविदेह क्षेत्र में मंगलावती विजय में 'रत्न संचया' नाम की नगरी थी। वहां 'पद्म' नाम के वीर राजा राज्य करते थे। वे संसार में रहते हुए

भी जल कमलवत् निरासक्त थे। कोई कारण पाकर उन्हें संसार से विरक्ति हो गई और उन्होंने युगन्धर नाम के आचार्य के समीप दीक्षा ग्रहण कर ली। चिरकाल तक संयम का उत्कृष्ट भाव से पालन करते हुए उन्होंने तीर्थङ्कर नाम कर्म का उपार्जन किया। आयु पूर्ण होने पर पद्मनाभमुनि वैजयन्त नामक विमान में ऋद्धि सम्पन्न देव हुए।

वहां से च्यवकर वजयन्त विमान की स्थिति तेंतीस सागरोपम जन्म नगरी चन्द्रपुरी पिता का नाम महासेन माता का नाम लक्ष्मी आयुष्य १० लाख पूर्व गर्भ कल्याणक चैत्र कृष्णपक्ष पंचमी जन्म कल्याणक पौष कृष्ण द्वादशी. कुंवरपद अढाई लाख पूर्व राज्यगादी समय साढे छ लाख पूर्व, शिविका अपराजिता. दीक्षा पौषकृष्ण त्रयोदशी एक हजार के साथ, पहली गोचरी देनेवाले का नाम सोमदत्त, पहली गोचरी में क्या मिला खीर, छद्मस्थ अवस्था छमास, चैत्य वृक्ष का नाम नाग क्ष. केवल कल्याणक फाल्गुन कृष्ण सप्तमी निर्वाणकल्याक भाद्रपद कृष्ण अष्टमी, देह प्रमाण एक सौ ५०

पचास धनुष वर्ण श्वेत, लक्षण चन्द्र, नायक गणधर दीन कर्ण; अग्रणी साध्वी सोमाणी, प्रव्रज्या समय एक लाख पूर्व, गणधर संख्या ९३ तेरानवे, साधु संख्या दो लाख पचास हजार, साध्वी संख्या तीन लाख अस्सी हजार, श्रावक संख्या दो लाख ५ पांच हजार, श्राविका संख्या ४ चार लाख ९१ वे हजार, साधु केवली १० दशहजार, साध्वी केवली २० बीस हजार अवधिज्ञानी आठ हजार, मनः पर्यायी आठ हजार चतुर्दश पूर्वी दो-हजार वैकुर्बिक १४ चौदह हजार, वादी ७६०० छिहोत्तर सौ, शासनकाल ९० नव्वेकरोड सागरोपम, कितना पाट मोक्ष में गया असंख्याता. शासनदेव विजय शासन देवीज्वाला ॥८॥

नवमं सुविहिनाहचरित्तं—

मूलम्—पुक्खरवरदीबड्ढे पुव्वविदेहम्मि पुक्खलावई विजयो होत्था। तस्स णयरी पुंडरिगिणी आसी। तत्थ महापउमो राया आसी। सो महा-धम्मसीलो पजावच्छलो आसी। सो संसाराओ विरत्तो जाओ, स जगण्णद्

नाम थेरसमीवे दिक्खिओ जाओ, एगावलि पभिइओ घोर तवं किच्चा महापउम मुणीना तित्थगरनामं गोयं कम्मं उवाजियं। अंते सुभज्झवसाएण कालावसरे कालं किच्चा आणय देवविमाणे महड्ढिओ देवो जाओ।

एगूणवीसं सागरोवमं ठिइं पुण्णं किच्चा तओ चइऊण काकंदिए नयरीए, सुग्गीवो नाम राया, रामा देवी गब्भंमि आगच्छिय, फग्गुण किण्ह नवमीए गब्भकल्लाणगं, मिग्गसिर किण्हपंचमीए जम्मकल्लाणग, आउदुलक्खपुव्वं, कुमारपए पन्नाससहस्सपुव्वं, एकलक्खपुव्वं रज्जं पालिऊण अरुणपभासिवियारूढो सहस्सपरिवारेण सद्धिं मिग्गसिरकिण्हछट्ठीए दिवसे दिक्खीओ जाओ, पढमभिक्खादायारो पुस्सो, पढमे भिक्खाए खीरं लद्धं, छउमत्थावत्था कालो चत्तारि सहस्स वरिसा, भावी नाम चेइय रुक्खतले कत्तिय

सुक्कतइयदिवसे केवलणाणं, भद्दव सुक्कनवमीए निव्वाणं, एगसयधणुपमाणं देहमाणं, गोरवण्णो, मच्छलक्खणं, वराह नाम नायग गणहरो, अग्गणी साहुणी वारुणी, पव्वज्जाकालो पन्नास सहस्सपुव्वो, गणहराणं संखा अट्ठा-सीइ, साहुणं संखा दोलक्खा, साहुणीणं संखा, तिलक्खबीससहस्सा, सावगाणं दोलक्खएगूणतीससहस्सा, सावियाणं संखा, चत्तारिलक्ख एगसत्ततिसहस्सा, केवलीसाहूणं संखा, पंचसयोत्तर सत्तसहस्सा, केवलिसाहुणीणं संखा, पण्ण-रससहस्सा, ओहिणाणिणं संखा, चउरासीइसया, मणपज्जवनाणिणं संखा, पन्नत्तरिसया, चउदसपुव्वी पण्णरससया, वेउव्वियलद्धिधराणं संखा तेरस-सहस्सा, वाईणं संखा छसहस्सा, सासणकालो नवकोडी सागरोवमो, असंखेज्जा पट्टा मोक्खं गया, सासणदेवो अजियो नामा, सासणदेवी सुयारा ॥

९—श्रीसुविधिनाथ का पूर्वभव

पुष्करवर द्वीपार्ध के पूर्व विदेह में पुष्कलावती विजय है। उसकी नगरी 'पुंडरीकिनी' थी। महापद्म वहां का राजा था। वह बडा ही धर्मात्मा तथा प्रजावत्सल था। वह संसार से विरक्त हो गया और उसने जगन्नद नामक स्थविर मुनि के पास दीक्षा ग्रहण की। एकावली जैसी कठोर तपश्चर्या करते हुए महापद्म मुनि ने तीर्थङ्कर नाम कर्म का उपार्जन किया। अन्त में वे शुभ अध्यवसाय से मर कर आणत नामक देव विमान में महर्द्धिकदेव रूप में उत्पन्न हुए।

वहां से च्यवकर ९ देवलोक की स्थिति १९ सागरोपम, जन्मनगरी कांकदी, पिता के नाम सुग्रीव, माता का नाम रामा आयुष्य २ लाख पूर्व गर्भ कल्याणक फल्गुन कृष्ण नवमी जन्म कल्याणक मार्गशीर्ष कृष्ण ५ पञ्चमी, कुंवरपद ५० पचास हजार पूर्व, राजगादी समय एकलाख पूर्व, शिबिका अरुण प्रभा, दीक्षा कल्याणक मिगसरवद छट्ठ ९

एक हजार के साथ, पहली गोचरी के दाता पुष्य, पहली गोचरी में क्या मिला खीर, छद्मस्थ अवस्था का काल ४ हजार वर्ष, चैत्यवृक्ष का नाम मावी, केवल कल्याणक कार्तिक शुक्लतृतीया, निर्वाण कल्याणक भाद्रपद शुक्लनवमी, देह प्रमाण १ एक सौ धनुष वर्ण श्वेत, लक्षण मच्छ, नायक गणधर वराह, अग्रणी साध्वी वारुनी, प्रव्रज्या ५० पचास हजार पूर्व, गणधर संख्या ८८, साधु संख्या दोलाख, साध्वी संख्या तीन लाख वीस हजार, श्राबक संख्या दो लाख २९ हजार, श्राविका संख्या चार लाख ७१ हजार, साधु केवली ७ हजार पांच सौ साध्वी केवली १५ पन्द्रह हजार, अवधिज्ञानी ८४००, मनःपर्यायी ७५००, चतुर्दश पूर्वी १५ सौ, वैकुर्विक १३ तेरह हजार, वादी संख्या छ हजार, शासन काल ९ करोड सागरोपम, कितना पाट मोक्ष में गया असंख्याता, शासन देव अजीत, शासनदेवी सुतारा ॥९॥

१० सीयलनाह पहुस्स चरित्तं—

मूलम्—पुक्खरद्धदीवस्स वज्जनाभविजए सुसीमा नाम णयरी होत्था, तत्थ पउमोत्तरराया रज्जं करीअ सो संसारं असारं जानिअ वेरग्गं जायं तस्स, सो अत्थग्घ आयरियसमीवे दीक्खिओ जाओ, उग्गं तवं किच्चा तित्थयर नाम गोयं कम्मं निबद्धं, अंतसमए संलेखणं संथारगं किच्चा आणय-विमाणे देवत्ताए उववन्नो। बीससागरोवमं ठिइं पुण्णं किच्चा तओ दसम देवलोगाओ चविय भद्दिलपुरे दढरहो राया णंदा देवी कुक्खे पुत्तत्ताए उवव-ण्णो। तओ पच्छा वेसाहकिण्ह छट्ठ दिवसे जम्मं हविय, आऊ एकलक्ख-पुव्वं, कुमारपए पणवीससहस्सपुव्वं, रज्जं पन्नाससहस्सपुव्वं, चंदप्पभा सिवियारूढो एगसहस्सपरिवारेण सद्धिं माहकिण्हा दुबालसदिवसे दिक्खिओ

जाओ । पढमभिक्खादायारो पुणव्वसु नाम, भिक्खायं खीरं लद्धं, छउमत्थावत्था तिमासा, पिलंगु नामा चेइयरुक्खतले पोसकिण्हा चउद्दसीए केवलणाणं, वेसाहकिण्हबीइयाए निव्वाणं, णउइधणूपमाणं देहमाणं, कंचणवण्णो, सिरिवच्छलक्खणं, नायक गणहरो आणंदो, अग्गणी साहुणी सुलसा, पव्वज्जा कालो पणवीससहस्सो, गणहराणां संखा एगासीइ, साहुसंखा एगलक्खा, साहुणीणं संखा छसहस्सोत्तर एगलक्खा, सावगसंखा एगूणणवइसहस्सोत्तर दोलक्खा, सावियाणं संखा अट्ठावण्णसहस्सोत्तर चउलक्खा, केवलिसाहुणं संखा सत्तसहस्सा, केवलिसाहुणीणं संखा चउदससहस्सा, ओहिनाणीणं संखा दुसयोत्तर सत्तसहस्सा, मणपज्जवनाणीणं संखा पंचसयोत्तर सत्तसहस्सा, चउद्दसपुव्वाणं संखा चत्तारि सयोत्तर एगसहस्सा, वेउव्वियलद्धिधराणं संखा

दुवालससहस्सा, वाईणं संखा अट्ठावण्णसयाइं, सासणकालो एगसयछावट्ठि-लक्ख छव्वीससहस्सवरिसं ऊनं एगकोडिसागरोवमं, असंखेज्जा पट्टा मोक्खं गया। सासणदेवो बंभणो, सासणदेवी असोगा ॥१०॥

१०–श्रीशीतलनाथ प्रभु का चरित्र–

पुष्करार्द्ध द्वीप के वज्र नामक विजय में 'सुसीमा' नामकी नगरी थी। वहां 'पद्मोत्तर' नामके राजा राज्य करते थे। उन्हें संसार की असारता का विचार करतु हुए वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने अस्ताद्य नाम के आचार्य के समीप दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा लेकर वे कठोर तप करने लगे। तीर्थङ्कर नाम कर्म उपार्जन के बीस स्थानों में से कंई स्थानों का आराधनकर उन्होंने तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया। अन्त समय में संथारा कर वे प्राणत नामक देव विमान में देवरूप से उत्पन्न हुए।

वहां से चयवकर १० दसवें देवलोक, देवलोक की स्थिति २० बीस सागरोपम, जन्म नगरी भद्दीलपुर, पिता का नाम दृढरथ, माता का नाम नंदा, आयुष्य १ एकलाख पूर्व, गर्भ कल्याणक वैशाख कृष्ण षष्ठी' जन्म कल्याणक माघ कृष्ण द्वादशी, कुंवरपद पचीस हजार पूर्व, राज्यगादी समय ५० हजार पूर्व, शिबिका चन्द्रप्रभा, दीक्षा कल्याणक माघ कृष्ण द्वादशी, एकहजार के साथ, पहली गोचरी दाता का नाम पूनर्वसु पहली गोचरी में क्या मिला खीर, छद्मस्थावस्था का तीन मास, चैत्य वृक्ष पिलंगु वृक्ष, केवल कल्याणक पौष कृष्ण १४ चतुर्दशी, निर्वाण कल्याणक वैशाख कृष्ण द्वितीया, प्रमाण ९० धनुष, वर्ण कंचन, लक्षण श्रीवत्स, नायक गणधर आनन्द, अग्रणी साध्वी-सुलसा, प्रव्रज्या समय २५ हजार वर्ष, गणधर संख्या ८१, साधु संख्या १ लाख, साध्वी संख्या १ एक लाख छ हजार, श्रावक संख्या दो लाख ८९ नवासी हजार, श्राविका संख्या ४ लाख ५८ हजार, साधु केवली सात हजार, साध्वी केवली १४ हजार, अव-

धिज्ञानी ७ सात हजार दो सौ, मनः पर्यायी ७ सात हजार पांच सौ, चतुर्दश पूर्वी १ एक हजार चार सौ, वैकुर्विक १२ हजार वादी संख्या ५८०० अठावनसौ, शासन काल १ करोड सागरोपम में से १६६ लाख २६ हजार वर्ष कम, कितना पाट मोक्ष में गया असंख्याता; शासन देव ब्रह्मा, शासन देवी अशोका ॥१०॥

११ सेज्जंसनाहपहुस्स चरित्तं—

मूलम्—पुक्खरद्धदीवस्स पुव्वंमि कच्छविजयस्स खेमा नाम णयरी होत्था, तत्थ णलिणीगुम्म नाम तेयंसी राजा होत्था, धारिणी देवी, कयाचि अणिच्चभावणापरायणो नलिनीगुम्ममहारायस्स हियए वेरग्गं पाविअ, वज्जदत्त आयरियसमीवे दिक्खिओ जाओ, उक्किट्ठ तवसंजमं पालिऊण तित्थगर नाम गोयं कम्मं निबंधइ, बहूणि वरिसाणि तवसंजमं आराहिय

आऊ पुण्णं किच्चा पाणय देवलोए महड्ढिअ देवत्ताए उववण्णो। वाईस सागरोवमं ठिइं पुण्णं किच्चा तओ देवलोगाओ चविऊण सीहपुरीए नयरीए विण्हूसेणो राया, विण्हादेवी कुक्खंमि गब्भत्ताए उववण्णो आउ चउरासीइ लक्खवरिसं, जेट्ठ किण्हा छट्ठी दिणे गब्भंमि आगओ, जम्मकल्लाणगं फग्गुण किण्हा दुवालसदिणे, कुमारपए इक्कीसलक्खवरिसाणि, दुचत्तालीसलक्खवरिसं रज्जं पालिअ, छसय परिवारेण सद्धिं सुरप्पभासिवियारूढो फग्गुणकिण्हतेरसे दिवसे दिक्खिओ जाओ, पढम भिक्खादायारो पुण्णाणंदो, भिक्खाए खीरं लद्धं, छउमत्थावत्थाकालो दोमासा, माहकिण्ह अमावस्साए तिंदुरुचेइयरुक्खतले केवलणाणं, सावण किण्हा बितीयाए निव्वाणं, असीइ धणूप्पमाणं देहमाणं, कंचणवण्णो, खग्गलक्खणं, गणनायगो गणहरो कोत्थुभो, अग्गणी साहुणी

धरणी, पव्वज्जाकालो इक्कीसलक्खवरिसो, गणहराणं संखा छावत्तरि, साहु-संखा चउरासीइसहस्सा, साहुणीणं संखा तिसहस्सोत्तर एगलक्खा, सावगाणं संखा उन्नासीइसहस्सोत्तर दोलक्खा, सावियाणं संखा अडयालीससहस्सोत्तर चत्तारि लक्खा, साहु केवलीणं संखा पंचसयोत्तर छसहस्सा, केवली साहुणीणं संखा तेरससहस्सा, ओहिनाणीणं संखा छसहस्सा, मणपज्जवनाणीणं संखा छसहस्सा, चउद्दसपुव्वीणं संखा तिसयोत्तर एगसहस्सा, वेउव्वियलद्धिधराणं संखा एक्कारससहस्सा, वाईणं संखा पंचसहस्सा, सासणकालो चउवण्णं सागरो-वमो, असंखेज्जा पट्टा मोक्खं गया, सासणदेवो मनुजो, सासणदेवी सिरिवच्छा।११।

११–श्रीश्रेयांसनाथ प्रभु का चरित्र–

पुष्करार्द्ध द्वीप के पूर्व में कच्छ विजय के अन्दर 'क्षेमा' नामकी नगरी थी वहां

'नलिनीगुल्म' नामका तेजस्वी एवं पराक्रमी राजा था।

एक बार अनित्य भावनाओं में लीन हुए महाराजा नलिनीगुल्म के हृदय में वैराग्य बस गया-उन्होंने वज्रदत्त मुनि के पास प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। साधना में उत्तरोत्तर वृद्धि करते हुए उन्होंने तीर्थंकर नामकर्म का बंध किया। वे बहुत वर्षों तक तप संयम का पालन करते हुए आयु पूर्ण करके बारहवें देवलोक में महर्द्धिकदेव रूप से उत्पन्न हुए।

वहां से च्यवकर स्थिति बाईस सागरोपम, जन्म नगरी सिंहपुरी, पिता के नाम विष्णु-सेन, माता का नाम विष्ना, आयुष्य ८४ लाख वर्ष, गर्भ कल्याणक ज्येष्ठ कृष्णा षष्ठी, जन्मकल्याणक फाल्गुन कृष्ण द्वादशी, कुंवरपद २१ लाख वर्ष, राज्यगादी समय ४२ लाख वर्ष, शिबिका सूरप्रभा, दीक्षा कल्याणक फाल्गुण कृष्ण त्रयोदशी. छ सौ के साथ पहली गोचरी के दाता का नाम पूर्णानंद, पहली गोचरी में क्या मिला खीर 'छद्मस्थ

अवस्था का समय दो मास. चैत्र वृक्ष का नाम तिंदुरु. केवल कल्यणक माघ कृष्ण अमावास्या. निर्वाण कल्याणक श्रावण कृष्ण द्वितीया. देहप्रमाण अस्सी धनुष. वर्ण कंचन. लक्षण खड्ग नायक गणधर कौस्तुभ. अग्रणी साध्वी धरणी. प्रव्रज्या समय २१ लाख वर्ष. गणधर संख्या ७६, साधु संख्या ८४ हजार, साध्वी संख्या १ एक लाख तीन हजार. श्रावक संख्या २ लाख ७९ उन्नासी हजार. श्राविका संख्या ४ चार लाख ४८ अडतालीस हजार. साधु केवली ६ हजार ५ पांचसौ. साध्वी केवली १३ हजार, अवधिज्ञानी छहजार मनःपर्यायी ६ हजार. चतुर्दश पूर्वी १ हजार तीन सौ वैकुर्विक ११ ग्यारह हजार. वादी संख्या ५ पांच हजार, शासनकाल ५४ सागर, कितना पाट मोक्ष में गया असंख्याता, शासनदेव मनुज, शासन देवी श्रीवत्सा ॥११॥

१२ वासुपुज्जपहुचरित्तं–

मूलम्–पुक्खरदीवड्ढे पुव्वविदेहे मंगलावई विजए रयणसंचया नाम

णयरी होत्था, तत्थ पउमोत्तर नाम राया आसी, धम्मिट्ठो नाई पजापालगो परक्कमी आसी, सो संसारं चइऊण वेरग्गभावेण वज्जनाभ मुणीरायसमीवे दिक्खिओ जाओ। उग्ग तव संजम पभावेन तित्थगर नाम गोयं कम्मं निबंधइ, तत्थ आउ पुण्णं किच्चा पाणए दुवालसदेवलोए महड्ढिओ देवो जाओ।

तओ पच्छा चविऊण दसमे देवलोगे देवलोगस्स वीससागरोवमं ठिइं पुण्णं किच्चा तओ चविऊण चंपानयरीए जम्म, पिया वसुराया, माउस्स नाम जया आसी, दुसत्तरिलक्खवरिसं आऊ, जेट्ठसुक्क नवमीए गब्भम्मि आगओ, फग्गुणकिण्हा दुवालसदिवसे जम्मकल्लाणगं, कुमारपए अट्ठारसलक्खवरिसं, रज्जं करीअ, एगसहस्स परिवारेण सद्धिं फग्गुणकिण्हा तइआ दिवसे अग्गि-सप्पभा सिबियारूढो दिक्खिओ जाओ। पढम भिक्खादायारो सुणंदो नाम,

पढमे भिक्खाए खीरं लद्धं। छउमत्थावत्था एगो मासो, पाडल नामग चेइय-रुक्खतले माहसुक्क वीइयाए केवलणाणं, आसाढ सुक्क चउद्दसी दिवसे निव्वाणं, देहमानं सत्तरिधणुप्पमाणं, रत्तवण्णो, महीखलक्खणो, णायगगणहरो सुहमो (सुधर्म), अग्गणी साहुणी धारिणी, पव्वज्जाकालो चउव्वन्नलक्खवरिसो, गण-हराणं संखा छासट्ठ, साहुसंखा दुसत्तरिसहस्सा, साहूणी संखा, एगलक्खा सावगाणं संखा पण्णरससहस्सोत्तर दो लक्खा, सावियाणं संखा छत्तीससहस्सो-त्तर चत्तारिलक्खा साहू केवली छसहस्सा, साहूणीकेवलीणं संखा, दुवालस सहस्सा, ओहिणाणीणं संखा चत्तारिसयोत्तरपंचसहस्सा, मणपज्जवनाणीणं संखा छसहस्सा, चउद्दसपुव्वी दोसोत्तरं एगसहस्सं वेउव्वियलद्धिधराणं संखा दस सहस्सा, वाईणं संखा सत्तसयोत्तरचत्तारिसहस्सा, सासणकालो

तीससागरोवमो, असंखेज्जा पट्टा मोक्खं गया। सासणदेवो सुकुमारो सासण-देवी पवरा आसी ॥१२॥

१२–श्रीवासुपूज्यभगवान् का चरित्र–

पुष्कर द्वीपार्ध के पूर्व विदेह क्षेत्र के मंगलावती विजय में रत्न संचया नाम की नगरी थी। वहां के शासकका नाम पद्मोत्तर था, वह धर्मात्मा न्यायी प्रजापालक और पराक्रमी था। उसने संसार का त्याग करके 'वज्रनाभ' मुनिराज के पास दीक्षा धारण की। संयम की कठोर साधना करते हुए उसने तीर्थंकर गोत्र का बंध किया और आयुष्य पूर्ण करके प्राणत कल्प में महर्द्धिक देव बना।

वहां से च्यवकर १० वें देवलोक, देवलोक की स्थिति २० सागरोपम, जन्म नगरी चंपानगरी, पिता का नाम वसुराजा, माता का नाम जया, आयुष्य ७२ लाख वर्ष, गर्भ कल्याणक ज्येष्ठ शुक्ल नवमी, जन्म कल्याणक फाल्गुन कृष्ण द्वादशी, कुंवर पद १८

लाख वर्ष, राज्यगादी समय, राज नहीं किया । शिविका अग्नि सप्रभा, दीक्षा फाल्गुन कृष्ण तृतीया, एक हजार के साथ, पहली गोचरी दाता का नाम सुनंदा पहली गोचरी में क्या मिला खीर, छद्मस्थ अवस्था का है एकमास, चैत्यवृक्ष का नाम पाटल, केवल कल्याणक माघ शुक्ल द्वितीया, निर्वाण कल्याणक अषाढ शुक्ल चतुर्दशी, देह प्रमाण ७० धनुष वर्ण लाल, लक्षण महीष, नायक गणधर सुधर्म, अग्रणी साध्वी धारिणी, प्रव्रज्या समय ५४ लाख वर्ष, गणधर संख्या ६६ साधु संख्या ७२ हजार, साध्वी संख्या दो लाख पन्द्रह हजार, श्राविका संख्या ४ लाख छत्तीस हजार, साधु केवली ६०००, साध्वी केवली १२ हजार, अवधिज्ञानी ५ हजार चार सौ, मनःपर्यायी छ हजार, चतुर्दश पूर्वी १ हजार दो सौ, वैकुर्विक १० हजार, वादी संख्या ४७०० सेंतालीस सौ, शासन काल ३० सागरोपम, कितना पाट मोक्ष में गया असंख्याता; शासनदेव सुकुमार, शासनदेवी प्रवरा ॥१२॥

१३ विमलनाहपहुस्स चरित्तं—

मूलम्—धायइसंडदीवे पुव्वविदेहंमि भरहनामगविजए महापुरी नाम नयरी होत्था। तत्थ पउमसेणो नाम राया आसी। स धम्मिट्ठो नायसिलो आसी। सो सव्वगुत्त आयरियसमीवे दिक्खिओ जाओ, वीस ठाणाइं आराहित्ता तित्थगरनामगोयं कम्मं उवाजियं। अंतसमए संलेखणं संथारगं किच्चा आउं पुण्णं किच्चा सहस्सारे देवलोगे देवो जाओ।

अट्ठमे देवलोगस्स ठिइं अट्ठारस सागरोवमं पुण्णं किच्चा तओ चविऊण कंपिलपुरे जम्म, पियस्स नाम कित्तीभाणु, माउस्स नाम सामा, आउ सट्ठि लक्खवरिसं, गब्भकल्लाणगवेसाहसुक्कदुवालसदिणे, जम्मकल्लाणग माहसुक्कतइआ, कुमारपए पण्णरसलक्खवरिसं तीसलक्खवरिसं रज्जं करीअ, एग-

सहस्सपरिवारेण सद्धिं माहसुक्कचउत्थीए विमला सिवियारूढो दिक्खिओ जाओ, पढम भिक्खादायारो जयनामा, भिक्खाए खीरं लद्धं, छउमत्थाकालो दो मासा, पोससुक्क छट्ठदिणे जंबूनाम चेइय रुक्खतले केवलणाणं, आसोइसुक्क सत्तमीए निव्वाणं, सट्ठि धणुप्पमाणं देहपमाणं, कंचणवण्णो, सुरलक्खणो, णायग गणहरो मंदिर, अग्गणी साहूणी धरणीहरा, पव्वज्जाकालो पण्णरस-लक्खवरिसं, गणहराणं संखा सत्तवण्ण (सप्तपञ्चाशत् ५७) साहु संखा अट्ठा-सट्ठिसहस्सा, साहुणी संखा अट्ठासयोत्तर एगलक्खा, सावगाणं संखा अट्ठ-सहस्सोत्तरं दोलक्खा, सावियाणं संखा चौवीससहस्सोत्तरं चत्तारिलक्खा, केवली साहूणं संखा पंचसयोत्तरं पंचसहस्सा, केवलीसाहुणीणं संखा एक्कारस-सहस्सा, ओहिनाणीणं संखा अट्ठसयोत्तर चत्तारि सहस्सा, मणपज्जवनाणीणं संखा

पंचसयोत्तरपंचसहस्सा, चउद्दसपुव्विणं संखा एगसयोत्तर एगसहस्सा, वेउव्वियलद्धिधराणं संखा छसहस्सा, वाईणं संखा छत्तीससयाइं, सासणकालो नव सागरोवमो, असंखेज्जा पट्टा मोक्खं गया, सासणदेवो छमुहो, सासणदेवी विजया।

१३–विमलनाथ प्रभु का चरित्र–

धातकी खण्डद्वीप के प्राग्विदेह क्षेत्र में भरतनामक विजय में महापुरी नामकी नगरी थी। वहां पद्मसेन नाम के राजा राज्य करते थे। वे धर्मात्मा एवं न्याय प्रिय थे। उन्होंने सर्वगुप्त नाम के आचार्य के पास दीक्षा ग्रहण की और साधना के सोपान पर चढते हुए तीर्थंकर नाम कर्मका उपार्जन किया। कालान्तर में आयुष्य पूर्ण करके सहस्रार देवलोक में उत्पन्न हुए।

वहां से च्यवकर आठवें देवलोक में, देवलोक की स्थिति १८ सागरोपम, जन्म नगरी कंपीलपुर, पिता का नाम कीर्तिभानु, माता का नाम श्यामा, आयुष्य ६० साठ

लाख वर्ष, गर्भ कल्याणक वैशाख शुक्ल द्वादशी, जन्म कल्याणक माघ शुक्लतृतीया. कुंवरपद १५ पन्द्रह लाख वर्ष, राज्यगादी समय ३० तीस लाख वर्ष. शिबिका विमला. दीक्षा कल्याणक माघ शुक्ल चौथ १ एक हजार के साथ. पहली गोचरी दाता का नाम जय. पहली गोचरी में क्या मिला खीर. छद्मस्थ अवस्था काल दो मास चैत्यवृक्षका नाम जम्बू. केवल कल्याणक पौषशुक्ल षष्ठी, निर्वाण कल्याणक आश्विन कृष्ण सातम, देह प्रमाण ६० धनुष वर्ण कंचन. लक्षणासूर नायक गणधर मन्दिर, अग्रणी साध्वी धरणीधरा. प्रव्रज्या समय १५ पन्द्रह लाख वर्ष गणधर ५७, साधु संख्या ६८ हजार. साध्वी संख्या १ एक लाख आठ सौ, श्रावक संख्या दो लाख आठ हजार, श्राविका संख्या ४ लाख २४ हजार, साधु केवली ५ पांच हजार पांच सौ, साध्वी केवली, ११ हजार अवधिज्ञानी ४ हजार ८ आठसौ, मनःपर्यायी ५ पांच हजार पांच सौ, चतुर्दश पूर्वी १ हजार एक सौ, वैकुर्वीक छह हजार, वादी संख्या ३६ छत्तीस सौ, शासन काल ९ नव सागरोपम

कितने पाट मोक्ष में गया असंख्याता, शासनदेव षणमुख, शासन देवी विजया ॥

१४ अनंतनाहपहुस्स चरित्तं—

मूलम्—धायइसंडे दीवे पुव्वविदेहखेत्ते एरावयविजए अरिट्ठ नाम णयरी होत्था, तत्थ पउमरहो नाम राया, सो चित्तरक्खो आयरियसमीवे दिक्खिओ जाओ। बीस ठाणाइं आराहिय तित्थयर नामगोयं कम्मं निबंधं, कालंतरे आउपुण्णं किच्चा पाणए देवलोए बीस सागरोवमठिईओ देवो जाओ, तओ पच्छा दसमाओ देवलोगाओ चविय विणेयाए नयरीए सीहसेणो राया, सुजसा देवीए गब्भंमि पुत्तत्ताए उववण्णो, आउतीसलक्खवरिसं, सावणकिण्हसत्तमीए गब्भकल्लाणगं, जम्मकल्लाणगं, वेसाहकिण्हा तेरसदिवसे, कुमारपए अद्धसहियं सत्तलक्खवरिसं, पण्णरसलक्खबरिसं रज्जं करेइ, एगसहस्सपरिवारेण

सद्धिं वेसाहकिण्हा चउद्दसी दिवसे पंचवण्णा सिवियारूढो दिक्खिओ जाओ। पढमभिक्खादायारो नाम विजयो, पढमे भिक्खाए खीरं लद्धं, छउमत्थावत्थाए तिण्णिवरिसा, चेतकिण्हा चउत्थदिणे अस्सत्थचेइयरुक्खतले केवलणाणं, चेत्तसुक्क पंचमीदिणे निव्वाणं, पन्नासधणुप्पमाणं देहमाणं, कंचणवण्णो, सीह-लक्खणो, नायक गणहरो, जसो हरो, अग्गणी साहुणी पउमावई, पव्वज्जाकालो अट्ठुत्तर सत्तलक्खवरिसो, गणहराणं संखा पन्नासा, साहुणं संखा छावट्ठि-सहस्सा, साहुणीणं संखा विसट्ठिसहस्सा, सावयाणं संखा छसहस्सोत्तर-दोलक्खा, सावियाणं संखा चउद्दससहस्सोत्तर चत्तारि लक्खा, साहु केवलीणं संखा पंचसहस्सा, साहुणी केवलीदससहस्सा, ओहिणाणीणं संखा, तिण्णि सयोत्तर चत्तारि सहस्सा मणपज्जवनाणीणं संखा, पंचसहस्सा, चउद्दसपुव्वीणं

संखा एगसहस्सा, वेउव्वियलद्धिधराणं संखा अट्ठसहस्सा, वाईणं संखा बत्तीस सयाइं, सासणकालो चत्तारि सागरोवमो, असंखेज्जा पट्टा मोक्खं गया, सासण-देवो पायालो, सासणदेवी अगुसा ॥

१४ श्रीअनन्तनाथ प्रभु का चरित्र

भावार्थ—धातकीखण्ड द्वीप के प्राग्विदेहक्षेत्र में ऐरावत नामक विजय में अरिष्ट नाम की नगरी थी। वहां पद्मरथ नाम के राजा राज्य करते थे। वे धर्मात्मा एवं न्याय-प्रिय थे। उन्होंने चित्ररक्ष नाम के आचार्य के पास दीक्षा ग्रहण की और साधना के सोपान पर चढते हुए तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन किया। कालान्तर में वे आयुष्य पूर्ण करके प्राणत देवलोक में उत्पन्न हुए।

वहां से च्यवकर दसवें देवलोक, देवलोक की स्थिति २० सागरोपम, जन्म नगरी

अयोध्या, पिता का नाम सिंहसेन, माता का नाम सुयशा, आयुष्य ३० लाख वर्ष, गर्भकल्याणक श्रावण कृष्ण सप्तमी, जन्म कल्याणक वैशाख कृष्ण त्रयोदशी, कुंवरपद ७॥ साढे सात लाख वर्ष, राज्यगादी समय १५ लाख वर्ष, शिविका पञ्चवर्णा, दीक्षा कल्याणक वैशाख कृष्ण चौदस एक हजार के साथ, पहली गोचरी दाता का नाम विजय, पहली गोचरी में क्या मिला खीर, छद्मस्थ अवस्था का तीन वर्ष, चैत्यवृक्ष का नाम अश्वत्थ केवल कल्याणक चैत्रकृष्ण चौथ निर्वाण कल्याणक चैत्र शुक्ला पंचमी, देह-प्रमाण ५० धनुष, वर्ण कंचन, लक्षण सिंह, नायक गणधर यशोधर, अग्रणी साध्वी पद्मावती, प्रव्रज्या समय साढे सात ७॥ लाख वर्ष, गणधर संख्या ५०, साधु संख्या ६६ हजार, साध्वी संख्या ६२ हजार, श्रावक संख्या दोलाख छह हजार, श्राविका संख्या चार लाख १४ हजार, साधु केवली पांच हजार, अवधिज्ञानी ४ चार हजार तीनसौ, मनःपर्यायी ५ पांच हजार, चतुर्दशपूर्वी एक हजार, वैकुर्विक आठ हजार, वादी संख्या

३२०० बत्तीस सौ, शासनकाल ४ सागरोपम, कितना पाट मोक्ष में गया असंख्याता, शासनदेव पाताल, शासनदेवी अकुशा ॥१४॥

१५ धम्मनाह पहुस्स चरित्तं–

मूलम्–धायइसंडे दीवे पुव्वविदेहम्मि भरहनामविजए भद्दिलपुर नाम णयरी होत्था। तत्थ दढरहो नाम राया, विमलवाहण आयरियसमीवे दीक्खिओ जाओ। वीस ठाणाइं आराहिऊण तित्थगर नामगोयं कम्मं उवाजियं। अंतसमए संलेखणं संथारगं किच्चा आलोय पडिकंतिए कालं किच्चा वेजयंतविमाणे महड्ढिओ देवो जाओ।

बत्तीससागरोवमं ठिइं पुण्णं किच्चा रयणपुरी णयरीए जम्म। तत्थ भाणुसेणो नाम राया, सुवत्तादेवी कुक्खंमि पुत्तत्ताए उववण्णो। आऊ दस-

लक्खवरिसं, गब्भकल्लाणगं वेसाहसुक्कसत्तमीए, माहसुक्कतइयाए जम्मकल्लाणगं, कुमारपए अद्धतइयलक्खवरिसं, पंचलक्खवरिसं रज्जं करीअ, एगसहस्सपरिवारेण सद्धिं सागरदत्ता सिवियारूढो माहसुक्कतेरसे दिवसे दिक्खिओ जाओ। पढमभिक्खादायारो धम्मसीहो, भिक्खाए खीरं लद्धं,। छउमत्थावत्था कालो दो वरिसा, दहिवण्ण चेइयरुक्खतले पोससुक्कपुण्णिमाए केवलणाणं, जेट्ठसुक्कपंचमीए निव्वाणं, देहप्पमाणं, पणयालीसधणुपडिमाणं, कंचणवण्णो, वज्जपक्खीलक्खणं, णायगगणहरो अरिट्ठनामा, अग्गणी साहुणी सिवा, पव्वज्जाकालो अद्धतइयलक्खवरिसो, गणहराणं तिचत्तालीससंखा, साहुणं चउसट्ठिसहस्स संखा, साहुणीणं संखा चउसयोत्तर दिसट्ठिसहस्सा, सावगाणं चत्तारिसहस्सोत्तर दोलक्ख संखा, सावियाणं तेरससहस्सोत्तरचत्तारिलक्ख-

संखा, साहुकेवलीणं पंचसयोत्तर चत्तारिसहस्स संखा, केवलिसाहुणीणं नव सहस्स संखा, छ सयोत्तर तिण्णिसहस्स ओहिनाणीणं संखा पंचसयोत्तर चत्तारि सहस्स, मणपज्जवनाणीणं संखा, चउद्दसपुव्वीणं नवसया संखा, वेउव्वियलद्धि-धराणं सत्तसहस्ससंखा, वाईणं अट्ठाइससया संखा, सासणकालो तिण्णि-पल्लोवमो णूणं तिण्णिसागरोवमं, असंखेज्जा पट्टा मोक्खं गया। सासणदेवो किन्नरो, सासणदेवी पण्णगा ॥

१५ श्रीधर्मनाथ प्रभु का चरित्र

भावार्थ—धातकीखण्ड द्वीप के पूर्वविदेह में भरतनामक विजय में भद्दिलपुर नाम का नगर था। वहां दृढरथ नाम का राजा राज्य करता था। उसने विमलबाहन मुनि के समीप दीक्षा ली और कठोर साधना कर तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया। अन्तिम

समय में संथारा लिया और काल कर वैजयन्त विमान में महर्द्धिक देव बना ।

वहां से च्यवकर देवलोक की स्थिति ३२ सागर, जन्म नगरी रत्नपुरी, पिता का नाम भानुसेन, माता का नाम सुवृत्ता, आयुष्य १० लाख वर्ष, गर्भ कल्याणक वैशाख शुक्ल सप्तमी, जन्मकल्याणक माघ शुक्ल तृतीया, कुंवरपद अढाई लाख वर्ष, राज्यगादी समय ५ लाख वर्ष, शिबिका सागरदत्ता. दीक्षा कल्याणक माघ शुक्ल त्रयोदशी, एक हजार के साथ, पहली गोचरी दाता का नाम धर्मसिंह, पहली गोचरी में क्या मिला खीर, छद्मस्थ अवस्था का समय दो वर्ष, चैत्यवृक्ष का नाम दधिपर्ण, केवल कल्याणक पौष शुक्ल पूर्णिमा, निर्वाण कल्याणक ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी देहप्रमाण ४५ धनुष, वर्णकंचन लक्षण वज्रपक्षी, नायक गणधर अरिष्ट, अग्रणी साध्वी शिवाजी, प्रव्रज्या समय अढाई लाख वर्ष, गणधर संख्या ४३ तेंतालीस, साधु संख्या ६४ हजार, साध्वी संख्या ६२ हजार चारसो, श्रावक संख्या दोलाख चार हजार, श्राविका संख्या ४ लाख १३ तेरह

हजार, साधु केवली चार हजार पांचसौ, साध्वी केवली ९ नौ हजार, अवधिज्ञानी ३ तीन हजार ६ सौ । मनःपर्यायी ४ हजार पांचसौ, चतुर्दशपूर्वी ९ नौ सौ, वैकुर्विक सात हजार, वादी संख्या २८०० अठावीस सौ, शासनकाल ३ तीन सागरोपम ०॥। पल कम, कितना पाट मोक्ष में गया, असंख्याता, शासनदेव किन्नर शासन देवी पन्नगा ॥१५॥

१६ सांतिनाहपहुस्स चरित्तं—

मूलमू—जंबुदीवे भारहे वासे पुंडरिगिणी णयरी होत्था, तत्थ मेहरहो राया रज्जं करेइ । मेहरहो राया सत्तसया पुत्तै सद्धिं चत्तारिसहस्स रायभि सद्धिं निज लहुभायरो दढरह सद्धिं धनरहतित्थगरसमीवे दिक्खिओ जाओ । एगलक्खपुव्वं विसुज्झ तवसंजमं आराहिऊण तित्थगर नाम गोयं कम्मं उवा-जियं, अणसणपुव्वगं कालधम्मं किच्चा सव्वत्थसिद्धविमाणे तेत्तीस सागरो-

वमं ठिइओ देवो जाओ। तओ पच्छा ताओ देवलोगाओ चविऊण हत्थिणा-उरे जम्मं गहीय पिऊ नाम विस्ससेणो, माउस्स नाम अइरा। आउ एगलक्ख-वरिसं, गब्भकल्लाणं भद्दवण किण्हसत्तमी, जम्मकल्लाणग जेट्ठकिण्हा तेरसे दिवसे, कुमारपए पणवीससहस्सवरिसं, पन्नाससहस्सवरिसं रज्जं कुणेअ, एगसहस्स परिवारेण सद्धिं नागदत्त सिबियारूढो जेट्ठकिण्हा चउद्दसी दिवसे दिक्खिओ जाओ। पढम भिक्खादायारो सुमित्त नामा, भिक्खाए खीरं लद्धं, छउमत्थावत्थाकालो एगवरिसा, णंदिरुक्ख चेइयरुक्खतले पोससुक्क नवमी दिणे केवलणाणं, जेट्ठ किण्हा बारसे दिवसे निव्वाणं, चत्तालीस धणूप्पमाणं देहमाणं, कंचणवण्णो, मिगलक्खणं, नायकगणहरो चक्काजुहो, अग्गणी साहुणी सूइ, पव्वज्जाकालो पणवीससहस्सो, गणहराणं संखा छत्तीसा, साहुणं

संखा दिसट्ठिसहस्सा साहुणीणं संखा छसयोत्तर एगसट्ठिसहस्सा, सावगाणं संखा दोलक्ख णवईसहस्सा, सावियाणं संखा तिलक्ख, ति नवईसहस्सा, साहु केवलीणं संखा तिसयोत्तर चत्तारि सहस्सा साहुणी केवलीणं संखा छसयोत्तर अट्ठसहस्सा, ओहिनाणीणं संखा तिसहस्सा, मणपज्जवनाणीणं संखा चत्तारि सहस्सा, चउद्दसपुव्वीणं संखा छसयातीसा वेउव्वियलद्धिधराणं छसहस्सा, वाईणं संखा चउव्वीससया, सासणकालो अद्धपल्लोवमं, असंखेज्जा पट्टा मोक्खं गया, सासणदेवो गरुडो, सासणदेवी निप्पण्णा ॥

१६ श्रीशान्तिनाथप्रभु का चरित्र—

भावार्थ—जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में पुण्डरीकिणीनगर में मेघरथ राजा राज्य करते थे। मेघरथ राजाने अपने सात सौ पुत्रों, चार हजार राजाओं एवं अपने लघु भ्राता

दृढरथ के साथ धनरथ तीर्थंकर के समीप दीक्षा ग्रहण की। एक लाख पूर्व तक विशुद्ध तप संयम का पालन कर और तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन कर अनशन पूर्वक काल-धर्म पाकर सर्वार्थ सिद्ध विमान में देवरूप से उत्पन्न हुए।

वहां से च्यवकर सर्वार्थसिद्धविमान देवलोक की स्थिति ३३ सागरोपम, जन्म नगरी हस्तिनापुर पिता का नाम विश्वसेन, माता का नाम अचिरा, आयुष्य एकलाख वर्ष, गर्भकल्याणक भाद्रपद सप्तमी, जन्मकल्याणक ज्येष्ठ कृष्ण त्रयोदशी, कुंवरपद २५ हजार वर्ष, राज्यगादी ५० हजार वर्ष, शिविका नागदत्त दीक्षा ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशी, एकहजार के साथ, पहली गोचरी दाता का नाम सुमित्र, पहली गोचरी में क्या मिला खीर, छद्मस्थावस्था का समय १ एक वर्ष, चैत्यवृक्ष का नाम नन्दिवृक्ष, केवल कल्याणक पौष शुक्ल नवमी, निर्वाण कल्याणक ज्येष्ठ कृष्ण द्वादशी, देहप्रमाण ४० धनुष, वर्ण कंचन, लक्षण मृग, नायक गणधर चक्रायुद्ध, अग्रणी साध्वी सुई, प्रव्रज्या समय २५ हजार वर्ष,

गणधर संख्या ३६, साधु संख्या ६२ हजार, साध्वी संख्या ६१ हजार छसौ, श्रावक संख्या दो लाख ९० हजार, श्राविका संख्या तीन लाख ९३ हजार, साधु केवली ४ हजार तीन सौ, साध्वी केवली आठ हजार छसौ, अवधिज्ञानी तीन हजार, मनःपर्यायी ४ हजार, चतुर्दशपूर्वी छसौ तीस, वैकुर्विक छ हजार, वादी संख्या २४०० चौबीससौ, शासनकाल आधापल्योपम, कितना पाट मोक्ष में गया असंख्याता, शासनदेव गरुड, शासनदेवी निपर्णा ॥१६॥

१७ कुंथुनाहपहुस्स चरित्तं—

मूलम्—जंबूदीवे पुव्वविदेहे आवत्त नामक देसो आसी। तत्थ खग्गी नाम णयरी होत्था, तत्थ सीहावह नाम राया आसी। निज पुत्ते रज्जं दच्चा संवरायरियसमीवे दिक्खिओ जाओ। उग्गतवसंजमं आराहिय साहु वेया-

वच्चं किच्चा तित्थगर नाम गोयं कम्मं उवाजियं। सव्वट्ठसिद्धविमाणे अह-मिंदो देवो जाओ। सव्वट्ठसिद्धविमाणस्स तेंतीससागरोवमं आउपुण्णं किच्चा तओ चविऊण गजपुरे जम्मं, पिउस्स नाम सुरसेणो, माउस्स नाम सिरीदेवी, आउ पंचनउईसहस्सवरिसं, सावणकिण्हा नवमी दिवसे गब्भकल्लाणगं, विसाहकिण्ह चउद्दसी दिवसे जम्मकल्लाणगं, कुमारपए तेवीससहस्स पन्ना-सोत्तरं सत्तसया वीसा, सत्तचत्तालीस सहस्सवरिसं रज्जं करीअ, एगसहस्स-परिवारेण सद्धिं अभयकरा सिवियारूढो वेसाहकिण्हा पंचमीए दिक्खिओ जाओ। पढम भिक्खादायारो नाम वग्घसीहो, पढमे भिक्खाए खीरं लद्धं, छउमत्थावत्था सोडसवरिसा, तिलगनाम चेइयरुक्खतले चेत्त सुक्कतइया केव-लणाणं, वेसाहकिण्हा पडिवया निव्वाणं, पणतीसधणुप्पमाणं देहमाणं, कंचण-

वण्णो, अयलक्खणो, गणणायग गणहरो संभु, अग्गणी साहुणी अज्जू, पव्वज्जाकालो तेवीससहस्स पन्नासोत्तरं सत्तसयावरिसा, गणहराणं संखा पणतीसा, साहु संखा सट्ठिसहस्सा, साहुणी संखा छसयोत्तर सट्ठिसहस्सा, सावगाणं संखा एगलक्ख एगोन असीइसहस्सा, सावियाणं संखा तिलक्ख एकासीइसहस्सा, साहुकेवली दोसयोत्तर तिंण्णिसहस्सा, साहुणि केवलि चत्तारि सयोत्तर छसहस्सा, ओहिणाणीणं संखा एगसयोत्तर छसहस्सा, मणपज्जवनाणीणं संखा एगसयोत्तर अट्ठसहस्सा, चउद्दसपुव्वीणं संखा छसया चत्तारि, वेउव्वियलद्धिधराणं संखा एगसयोत्तर पंचसहस्सा, वाईणं संखा दो सहस्सा, पल्लोवमस्स चउत्थे भागे एगसहस्स कोडिवरिसं नूण सासणकालो, पंचअहिओ पणवीससया पट्टा मोक्खं गया, सासणदेवो गंधव्वो, सासणदेवी अच्चुया ॥

श्रीकुन्थुनाथप्रभु का चरित्र–

भावार्थ–जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह में आवर्तनामक देश है। उस में खड्गी नाम की नगरी थी। वहां सिंहावह नाम का राजा राज्य करता था। संवराचार्य के आगमन पर वह उनके दर्शन के लिये गये। उनका उपदेश सुनकर उसे संसार के प्रति वैराग्य उत्पन्न हो गया ओर उसने अपने पुत्र को राज्यगद्दी पर स्थापित कर दीक्षा ग्रहण की वे दीक्षा लेने के बाद उच्च कोटि का तप और मुनियों की सेवा करने लगे, जिससे उन्होंने तीर्थकर नामकर्म का उपार्जन कर अन्तिम समय में समाधिपूर्वक काल पाकर सर्वार्थसिद्ध विमान में अहमिन्द्र देव बने।

वहां से च्यवकर सर्वार्थसिद्ध देवलोक की स्थिति ३३ सागरोपम, जन्मनगरी गजपूर, पिता का नाम सूरसेन, माता का नाम श्रीदेवी, आयुष्य ९५ हजार वर्ष, गर्भ-श्रावण कृष्ण नवमी, जन्मकल्याणक वैशाख कृष्ण चतुर्दशी, कुंवरपद २३७५०

तेईस हजार सातसो पचास वर्ष, राजगादी समय ४७ संतालीस हजार वर्ष, शिविका अभयकरा. दीक्षा कल्याणक वैशाख कृष्ण पंचमी, एक हजार के साथ पहली गोचरी दाता का नाम व्याघ्रसिंह, पहली गोचरी में क्या मिला खीर, छद्मस्थावस्था का समय १६ वर्ष, चैत्र वृक्ष का नाम तिलकवृक्ष, केवल कल्याणक चैत्र शुक्ल तृतीया, निर्वाण-कल्याणक वैशाख कृष्ण प्रतिपदा, देहप्रमाण ३५ धनुष, वर्ण कंचन. लक्षण अज, नायक गणधर शंभूजी, अग्रणी साध्वी अंजू, प्रव्रज्या समय २३७५० वर्ष, गणधर संख्या ३५, साधु संख्या साठ हजार, साध्वी संख्या ६० हजार छसो, श्रावक संख्या १ लाख ७९ उन्नासी हजार. श्राविका संख्या तीन लाख ८१ हजार. साधु केवली ३ तीन हजार दोसौ, साध्वी केवली चारसौ. अवधिज्ञानी छहजार एकसौ, मनःपर्यायी आठ हजार एकसौ चतुर्दश पूर्वी छसौ सत्तर, वैकुर्विक ५ पांच हजार १ एकसौ. वादी संख्या दो हजार, शासनकाल पाव पल्योपम में १ हजार करोड वर्ष कम. कितना पाट मोक्ष में

गया २५००५, शासनदेव गन्धर्व शासन देवी अच्युता ॥१७॥

१८ अरहनाहपहु चरित्तं—

मूलम्—जंबुद्दीवे पुव्वविदेहे सुसीमा नाम णयरी होत्था। तत्थ धणवई-राया आसी। रज्जं कुणंतो वि जिनधम्मरागं रंजिअ संवरनामा आयरियस्स उवएसं सोच्चा वेरागं जायं। तओ पच्छा नियपुत्तं रज्जं ठाविऊण संवरारिय समीवे दिक्खिओ जाओ, बीसं ठाणाइं आराहिऊण तित्थगरनामगोयं कम्मं निबंधिइ, अणसणं किच्चा समाहिपुव्वगं मरणं कुणिअ सव्वट्ठसिद्धविमाणे तेत्तीसं सागरोवम ठिईओ देवो जाओ। तओ चविऊण हत्थिणाउरे जम्मं हविअ। तत्थ राया सुदंसणा, माउस्स नाम देवो, आउ चोरासीइ सहस्स-वरिसं, फग्गुण सुक्क चउत्थ दिणे गब्भकल्लाणगं, मिग्गसिर सुक्कएकारस

दिवसे जम्मकल्लाणगं, कुमारपए इक्कीससहस्सवरिसं, बायालीस सहस्सवरिसं रज्जं कूणिअ, एगसहस्स परिवारेण सद्धिं निव्वित्तिकरा सिवियारूढो मिग्गसिर सुक्कएक्कारस दिवसे दिक्खिओ जाओ। पढमभिक्खादायारो अपराजिओ भिक्खाए खीरं लद्धं, छउमत्थावत्थाकालो नवमासोत्तर तओ वरिसा, अंबनामकचेइयरुक्खतले कत्तिय सुक्कबारसदिणे केवलणाणं, मिग्गसिर सुक्कदसमीए दिणे निव्वाणं, देहप्पमाणं तीसधणूसमाणं, कंचणवण्णो, नंदावत्तलक्खणं, णायग गणहरो कुंभो, अग्गणी साहुणी रक्खिया पव्वज्जाकालो इक्कीस सहस्स वरिसं, गणहराणं संखा तेत्तीसा, साहु संखा पन्नाससहस्सा, साहुणी संखा सट्ठिसहस्सा, सावयाणं संखा एगलक्खचोरासीइसहस्सा, सावियाणं संखा तिलक्खबावत्तरिसहस्सा, साहु केवली अट्ठसयोत्तर दो सहस्सा, साहुणी केवली-

संखा छसयोत्तर पंचसहस्सा, ओहिणाणीणं संखा, छसयोत्तर दो सहस्सा, मणपज्जवनाणीणं संखा, दोसहस्स पंचसया एक्कावन्नं, चउद्दसपुव्वीणं संखा दसोत्तर छसया, वेउव्वियलद्धिधराणं संखा तओ सयोत्तर सत्तसहस्सा, वाईणं संखा सोलससया, सासणकालो एकसहस्स, कोडिवरिसं, तेवीससहस्स, सत्त सया पन्नासा पट्टा मोक्खं गया, सासणदेवो जक्खिंदो, सासणदेवी धारणी ॥

१८ श्रीअरहनाथप्रभु का चरित्र–

भावार्थ—जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह में सुसीमा नाम की नगरी थी। वहां धनपति राजा रहते थे। वे राज्य का संचालन करते हुए भी जिनधर्म का हृदय से पालन करते थे। संवर नाम के आचार्य का उपदेश सुनकर उन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने अपने पुत्र को राज्यगद्दी पर स्थापित कर संवराचार्य के समीप दीक्षा धारण कर ली।

प्रव्रजित होकर कठोर तप करने लगे। बीस स्थान की शुद्ध भावना से आराधना करते हुए उन्होंते तीथकर नामकर्म का उपार्जन किया। संयम की आराधना कर अन्तिम समय में अनशन किया और समाधिपूर्वक कालधर्म पाकर सर्वार्थसिद्ध विमान में अहमिन्द्र पद प्राप्त किया।

वहां से च्यवकर सर्वार्थसिद्ध देवलोक की स्थिति ३३ सागरोपम, जन्म नगरी हस्तिनापुर, पिता का नाम सुदर्शन माता का नाम देवी, आयुष्य ८४ हजार वर्ष, गर्भकल्याणक फाल्गुनशुक्ल चौथ, जन्मकल्याणक मार्गशीर्ष शुक्लएकादशी, कुंवरपद २१ हजार वर्ष, राज्यगादी ४२ हजार वर्ष शिबिका निवृत्तिकरा दीक्षा कल्याणक मार्गशीर्ष शुक्लएकादशी एक हजार के साथ, पहली गोचरी के दाता का नाम अपराजित, पहली गोचरीमें क्या मिला खीर, छद्मस्थ अवस्था का समय ३ तीन वर्ष, ९ नौ मास, चैत्यवृक्ष का नाम आमवृक्ष, केवल कल्याणक कार्तिक शुक्ल द्वादशी निर्वाण कल्याणक मार्गशीर्ष शुक्ल दशमी देहप्रमाण

३० धनुष, वर्ण कंचन, लक्षण नन्दावर्त, नायक गणधर कुंभ, अग्रणी साध्वी रखिया, प्रव्रज्या समय २१ हजार वर्ष गणधर संख्या ३३, साधु संख्या ५० हजार, साध्वी संख्या ६० हजार, श्रावक संख्या एकलाख ८४ हजार, श्राविका संख्या तीन लाख ७२ हजार, साधु केवली दो हजार, ८ आठसौ, साध्वी केवली ५ हजार, ६ सौ, अवधिज्ञानी दो हजार, छसौ, मनःपर्यायी दो हजार पांचसौ ५१ एकावन, चतुर्दशपूर्वी छसौ दस, वैकुर्विक सात हजार, तीन सौ, वादी संख्या १६०० सोलह सौ, शासनकाल १ एक हजार करोड वर्ष, कितना पाट मोक्ष में गया २३७५०, शासनदेव यक्षेन्द्र, शासनदेवी धारणि ॥१८॥

१९ मल्लीनाहपहुस्स चरित्तं–

मूलम्–जंबुद्दीवे महाविदेहे सलिलावई विजय होत्था। तत्थ रायहाणी वीईसोगा आसी, तत्थ महब्बलो नाम राया, तत्थ णयरीए धम्मघोस नामा

आयरिय समोसरिओ, धम्मघोसस्स देसणं सोच्चा महब्बलो राया संसाराओ विरत्तो जाओ, धम्मघोससमीवे दिक्खिओ जाओ, उग्गतवसंजमं आराहिऊण तित्थगर नाम गोयं कम्मं उवाजिऊं, बत्तीससागरोवमं ठिईओ जयंत विमाणे महड्ढिओ देवो जाओ, तओ चविऊण मिहिला णयरीए जम्मं गहीय, पिउस्स नाम कुंभसेणो, माउस्स नाम पभावई, आउ पणपन्नं सहस्सवरिसं, फग्गुण सुक्क चउत्थदिणे गब्भकल्लाणगं, मिग्गसिर सुक्कएक्कारस दिवसे जम्मकल्लाणगं, कुमारपए सयवरिसं, रज्जं ण कुणिअ, तिण्णि सहस्सपरिवारेण सद्धिं मनोरमा सिबियारूढो मिग्गसिर सुक्कएक्कारसे दिणे दिक्खिओ जाओ। पढम भिक्खा-दायारो विस्ससेणो, भिक्खाए खीरं लद्धं, छउमत्थावत्थाकालो एगपहरो, असोग नामक चेइयरुक्खतले पोस सुक्कएक्कारस दिणे केवलणाणं, चेइय सुक्कचउत्थ-

दिणे निव्वाणं, देहप्पमाणं पणवीसं धणूइंमाणं, नीलोवण्णो, कुंभलक्खणं, णायगगणहरो भिप्फनामा, अग्गणी साहुणी बधूमई, पव्वज्जाकालो नवसयोत्तर चउवन्नसहस्सो, गणहराणं संखा अट्ठावीसं, साहुणं संखा चत्तालीससहस्सा, साहुणीणं संखा पणपन्नसहस्सा, सावयाणं संखा एगलक्ख चउरासीइसहस्सा, सावियाणं संखा तिलक्खपणसट्ठिसहस्सा, साहु केवली दो सयोत्तर तिण्णिसहस्सा, साहुणी केवली चत्तारिसयोत्तर छसहस्सा, ओहिणाणीणं संखा दो सहस्सा, मणपज्जवनाणीणं संखा अट्ठसया, चउद्दसपुव्विणं संखा अडसट्ठुत्तर छसया, वेउव्वियलद्धिधराणं संखा पणतीससया, वाईणं संखा चउद्दससया, सासणकालो चउवन्नलक्खवरिसो, सासणदेवो कुबेर, सासणदेवी वेरट्टा ॥

१९–श्रीमल्लीनाथप्रभु का चरित्र–

भावार्थ—प्राचीन काल में जम्बूद्वीप के अन्तर्गत महाविदेह क्षेत्र में सलिलावती विजय था। इस विजय की राजधानी का नाम वीतशोका था। वहां महाबल नाम का राजा राज्य करते थे। कुछ समय के बाद धर्मघोष मुनि का इस नगरी में आगमन हुआ। उनका उपदेश सुनकर महाराजा महाबल के मन में संसार के प्रति विरक्ति हो गई और दीक्षा धारण कर ली। दीक्षा धारणकर महाबल मुनिने उत्कृष्ट भावना से अनेक प्रकार की कठोर तपस्या प्रारंभ कर दी जिस के फल स्वरूप उन्होने तीर्थंकर नाम कर्म का बंध किया।

देवलोक से च्यवन जयंत विमान देवलोक की स्थिति ३२ सागरोपम, जन्मनगरी मिथिला पिता का नाम कुंभसेन, माता का नाम प्रभावती, आयुष्य ५५ हजार वर्ष, गर्भ कल्याणक फाल्गुन शुक्ल चौथ, जन्म कल्याणक मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी,

कुंवरपद १०० वर्ष, राज्यगादी समय राज्य नहीं किया। शिबिका मनोरमा दीक्षा कल्याणक मिग्गसिर शुक्ल एकादशी तीन हजार के साथ, पहली गोचरी दाता का नाम विश्वसेन, पहली गोचरी में क्या मिला खीर. छद्मस्थ अवस्था का समय एक प्रहर, चैत्यवृक्ष का नाम अशोक, केवल कल्याणक मिग्गसिर शुक्ल चौथ, देह प्रमाण २५ धनुष, वर्ण नील, लक्षण कुम्भ नायक गणधर भिषम, अग्रणी साध्वी बन्धुमती, प्रव्रज्या समय ५४९०० चौपन हजार नौ सौ वर्ष, गणधर संख्या २८ साधु संख्या ४० हजार, साध्वी संख्या ५५ हजार, श्रावक संख्या एक लाख ८४ हजार, श्राविका संख्या तीन लाख ६५ पैंसठ हजार, साधु केवली तीन हजार दो सौ, साध्वी केवली छ हजार चार सौ, अवधिज्ञानी दो हजार, मनःपर्यायी आठ सौ, चतुर्दशपूर्वी छसौ, ६८ अडसठ, वैकुर्वीक ३५०० पेंतीस सौ, वादी संख्या १४०० चौदह सौ, शासनकाल ५४ लाख वर्ष, शासनदेव कुबेर, शासनदेवी वैराटय ॥१९॥

२० मुणीसुव्वयपहुस्स चरित्तं–

मूलम्–जंबुदीवे अवरविदेहे भरहनाम विजयम्मि चंपा नाम णयरी होत्था। तत्थ मूरसेट्ठि नामग राया आसी, सो नंदमुणि समीवे दिक्खिओ जाओ। बीस ठाणाइं आराहिऊण तित्थगर नाम गोयं कम्मं निबंधिय अंतसमए संलेखणं संथारगं किच्चा अपराजियविमाणे बत्तीससागरोवमं ठिईओ महड्ढिओ देवो जाओ। तओ पच्छा ताओ देवलोगाओ चविऊण रायगिहे णयरीए जम्मं, पिउस्स नाम सुमित्तसेणो, माउस्स नाम पउमावई, आउ तीस सहस्स वरिसं, सावणसुक्क पुण्णिमाए गब्भकल्लाणगं, जेट्ठ किण्णा अट्ठमीए जम्मकल्लाणगं, कुमारपए अद्धसहियं सत्तसहस्सवरिसं, पन्नरससहस्सवरिसं रज्जं करीय, एगसहस्सपरिवारेण सद्धिं मणोहरा सिवियारूढो फग्गुण किण्हबारसे दिणे

दिक्खिओ जाओ। पढम भिक्खादायारो पभवसेणो, भिक्खाए खीरं लद्धं, छउमत्थावत्थाकालो एकारसमासा, चंपग नाम चेइयरुक्खतले फग्गुण किण्ह बारसे दिणे केवलणाणं, पोस किण्हा नवमीए दिणे निव्वाणं, देहमाणं वीस धणूपमाणं, सामवण्णो, कुम्मलक्खणं, णायगगणहरो इंदकुंभो, अग्गणी साहुणी पुप्फवई, पव्वज्जाकालो अद्धसहियं सत्तसहस्सवरिसो, गणहराणं संखा अट्ठारस, साहु संखा तीससहस्सा, साहुणी संखा पन्नाससहस्सा, साव-गाणं संखा एगलक्ख बावत्तरिसहस्सा, सावियाणं संखा तिण्णिलक्ख पन्नाससहस्सा, साहुकेवली संखा अट्ठसयोत्तर एगसहस्सा, साहुणी केवली छ सयोत्तर तिण्णिसहस्सा, ओहिनाणीणं संखा अट्ठसयोत्तर एगसहस्सा, मण-पज्जवनाणीणं संखा पंचसयोत्तर एगसहस्सा, चउद्दसपुव्वीणं संखा, पंचसया,

वेउव्वियलद्धिधराणं संखा, दो सयोत्तर दो सहस्सा, वाईणं संखा, बारससया सासणकालो छलक्खवरिसो, संखेज्जा पट्टा मोक्खं गया, सासणदेवो वरुणो सासणदेवी अवखुत्ता ॥

२०–श्रीमुनिसुव्रतप्रभु का चरित्र–

भावार्थ–जम्बूद्वीप के अपरविदेह में भरत नामक विजय में चंपानाम की नगरी थी। वहां सुर श्रेष्ठ नाम का राजा राज्य करता था। उसने नन्दनमुनि के पास दीक्षा ग्रहण की और तपस्या कर तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन किया। अन्तसमय में संथारा कर वह अपराजित देवलोक में अहमिन्द्र देव हुआ।

वहां से चवकर अपराजित देवलोक की स्थिति ३२ सागरोपम, जन्म नगरी राजगृह, पिता का नाम सुमित्रसेन, माता का नाम पद्मावती, आयुष्य तीस हजार वर्ष, गर्भकल्याणक श्रावण शुक्ल पूर्णिमा, जन्मकल्याणक ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी, कुंवरपद साढे

सात हजार वर्ष, राज्य गादी समय १५ हजार वर्ष, शिविका मनोहरा, दीक्षा कल्याणक फाल्गुन शुक्ल द्वादशी एक हजार के साथ, पहली गोचरी देनेवाले का नाम प्रभवसेन, पहली गोचरी में क्या मिला खीर, छद्मस्थ अवस्था का समय ११ ग्यारह मास चैत्यवृक्ष का नाम चंपक, केवल कल्याणक फाल्गुन कृष्ण द्वादशी, निर्वाण कल्याणक पौष कृष्ण-नवमी, देह प्रमाण २० बीस धनुष, वर्ण श्याम, लक्षण कूर्म, नायक गणधर इन्द्रकुंभ; अग्रणी साध्वी पुष्पवती, प्रव्रज्या समय साढे सात हजार वर्ष, गणधर संख्या तीस हजार, साध्वी संख्या पचास हजार, श्रावक संख्या एकलाख ७२ बहत्तर हजार, श्राविका संख्या तीन लाख ५० पचास हजार, साधु केवली एक हजार आठसौ, साध्वी केवली तीन हजार छसौ, अवधिज्ञानी एक हजार ८ आठसौ, मनःपर्यायी एक हजार पांचसौ, चतुर्दशपूर्वी ५सौ, वैकुर्विक दो हजार दोसौ, वादी संख्या १२०० बारहसौ, शासन काल छ लाख वर्ष, कितना पाट मोक्ष में गया संख्याता, शासन देव वरुण, शासन देवी अक्षुता।२०।

२१ नेमिनाहपहुस्स चरित्तं–

मूलम्–जंबुद्दीवे पच्चत्थिमविदेहे भरहनाम विजयम्मि कोसंबी नाम णयरी होत्था। तत्थ सिद्धत्थ नाम राया, सो संसाराओ विरत्तो जाओ, सुदसणं नामग मुणि समीवे दिक्खिओ जाओ, उग्गतवसंजमं आराहिऊण तित्थगर नामगोयं कम्मं निबंधिय, अणसणं किच्चा पाणए देवलोगे बीससागरोवमो ठिईओ महड्ढिओ देवो जाओ, देवलोगाओ चविऊण मिहिलाए णगरीए विजयसेण राया, माउस्स नाम विप्पा, आउ दससहस्सवरिसं, आसाढ सुक्कपुण्णिमाए गब्भकल्लाणगं, सावणकिण्ह अट्ठमीए जम्मकल्लाणगं, अद्धतइयसहस्सवरिसं कुमारपए, पंचसहस्सवरिसं रज्जं करीअ, एगसहस्सपरिवारेण सद्धिं आसोअ किण्ह नवमीए देवकुस सिवियारूढो दिक्खिओ जाओ, पढम भिक्खादायारो

दत्त नामा, भिक्खाए खीरं लद्धं, छउमत्थावत्थाकालो नव मासा, बकुल नाम चेइयरुक्खतले मिग्गसिर सुक्कएक्कारसदिवसे केवलणाणं, वेसाह सुक्कदसमी दिणे निव्वाणं, देहप्पमाणं पन्नरसधणूमाणं, कंचणवण्णो, नीलुप्पललक्खणं, णायगगणहरो कुंभो, अग्गणी साहुणी अणिला, पव्वज्जाकालो अद्धतइय-सहस्सवरिसं, गणहराणं संखा सत्तरस, साहु संखा बीससहस्सा, साहुणी संखा एकचत्तालीससहस्सा, सावगाणं संखा एगसत्तरिसहस्सउत्तरं एगलक्खा सावि-याणं संखा चउरासीइसहस्सउत्तरं तिण्णिलक्खा, साहु केवली संखा छसयोत्तर एगसहस्सा, साहुणी केवली संखा दो सयोत्तर तिण्णिसहस्सा, ओहिनाणीणं संखा छसयोत्तर तिण्णिसहस्सा, मणपज्जवनाणीणं संखा दो सया पन्नासोत्तर एगसहस्सा, चउद्दसपुव्वीणं संखा चत्तारिसया पन्नासा, वेउव्वियलद्धिधराणं

संखा पंचसहस्सा, वाईणं संखा एगसहस्सा, सासणकालो पंचलक्खवरिसो संखेज्जा पट्टा मोक्खं गया, सासणदेवो भिउडिनामा, सासणदेवी गंधारी ॥

२१ श्रीनेमीनाथप्रभु का चरित्र–

भावार्थ—जम्बूद्वीप के पश्चिमविदेह में भरत नामक विजय में कौशांबी नामकी नगरी थी। वहां सिद्धार्थ नाम का राजा राज्य करता था. उसने संसार से विरक्त होकर सुदर्शन नामक मुनि के समीप दीक्षा ग्रहण की। राजर्षि सिद्धार्थने कठोर तप करते हुए तीर्थंकर नामकर्म के बीस स्थानों की सम्यक् आराधना कर तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन किया। अन्तिम समय में अनशन कर वे प्राणत नामक विमान में देवरूपसे उत्पन्न हुए।

देवलोक से च्यवन १०वें देवलोककी स्थिति २० बीस सागरोपम, जन्मनगरी मिथिला, पिताका नाम विजयसेन, माताका नाम विप्रा; आयुष्य १० हजार वर्ष, गर्भ कल्याणक आषाढ शुक्ल पूर्णिमा. जन्म कल्याणक श्रावण कृष्ण अष्टमी, कुवरपद अढाई २॥ हजार

वर्ष, राज्यगादी समय ५ हजार वर्ष शिविका देवकुश, दीक्षा कल्याणक अश्विन कृष्ण नवमी एक हजार के साथ, पहली गोचरी के दाता का नाम दत्त, पहली गोचरी में क्या मिला खीर, छद्मस्थ अवस्था का समय ९ नौ मास, चैत्य वृक्ष का नाम बकुल, केवलकल्याणक मार्ग शीर्ष शुक्ल एकादशी, निर्वाण कल्याणक वैशाख शुक्ल दशमी, देह प्रमाण १५ धनुष वर्णकंचन, लक्षण नीलोत्पल कमलनायक, गणधर कुंभ, अग्रणी साध्वी अनिला, प्रव्रज्या समय अढाई हजार वर्ष गणधर संख्या १६, साधु संख्या बीस हजार, साध्वी संख्या ४१ हजार, श्रावक संख्या एक लाख ७१ हजार, श्राविका संख्या तीन लाख ८४ हजार, साधु केवली एक हजार छहसौ साध्वी केवली तीन हजार दोसौ, अवधिज्ञनी तीन हजार छहसौ, मनःपर्यायी एक हजार दोसौ पचास, चतुर्दशपूर्वी चारसौ पचास, वैकुर्विक ५ पांच हजार, वादी संख्या १ एक हजार, शासनकाल ५ लाख वर्ष, कितना पाट मोक्ष में गया संख्याता शासनदेव भृकुटि, शासन देवी गान्धारी ॥२१॥

२२ अरिट्ठनेमिपहुस्स चरित्तं–

मूलम्–जबुद्दीवे भरहखेत्ते अचलपुर नामणयरे होत्था। तत्थ विक्कम-धणो नाम पतावी राया रज्जं करीअ, संखस्स पुव्वजम्मबंधु सूरो सोमोवि आरणदेवलोगाओ चविय सिरिसेण गिहे जसोहरो गुणहरो य नामो पुत्तो जाओ। संख राया दिक्खिओ जाओ, संखो राया बीसठाणाइं आराहिऊण तित्थगर नामं गोयं कम्मं निबंधिअ, तओ पच्छा अपराजिय देवलोग बत्तीस सागरोवमो ठिईओ महड्ढिओ देवो जाओ, तओ चविऊण सोरीपुरे जम्मं, पिउस्स नाम समुद्दविजओ, माउस्स नाम सिवा देवी, आउ एगसहस्सवरिसं, कत्तिय किण्हा बारसे दिणे गब्भकल्लाणगं, सावण सुक्कपंचमी दिणे जम्मकल्लाणगं, कुमारपए तिण्णिसयावरिसा, एगसहस्सपरिवारेण सद्धिं उत्तर नाम सिबियारूढो सावण-

सुक्क छट्ठिए दिक्खिओ जाओ, पढम भिक्खादायारो नाम वरदत्तो, भिक्खाए खीरं लद्धं, छउमत्थावत्थाकालो चउवन्नं दिवसा, वेतसरुक्ख नाम चेइयरुक्खतले आसिण किण्हा अमावसा दिणे केवलणाणं, आसाढसुक्क अट्ठमी दिणे निव्वाणं, दसधणूप्पमाणं देहमाणं, सामवण्णो, संखलक्खणो, णायग गणहरो वरदत्त नामा, अग्गणी साहुणी जक्खणी, पव्वज्जाकालो सत्तसयावरिसा, गणहराणं संखा अट्ठारस साहु संखा अट्ठारससहस्सा, साहुणी संखा चत्तालीससहस्सा, सावगाणं संखा एगलक्ख एगूणसत्तरिसहस्सा, सावियाणं संखा तिण्णिलक्ख छत्तीससह-स्सा, साहुकेवलीणं संखा पंचसयोत्तर एगसहस्सा, साहुणी केवलिणं संखा तिण्णि-सहस्सा, ओहिणाणीणं संखा पंचसयोत्तर एगसहस्सा, मणपज्जवनाणीणं संखा एगसहस्सा, चउद्दसपुव्वीणं संखा चत्तारिसया, वेउव्वियलद्धिधराणं संखा पंच-

सयोत्तर एगसहस्सा, वाईणं संखा अट्ठसया, सासणकालो, पाउण चउरासीइ सहस्सवरिसा, संखेज्जा पट्टा मोक्खं गया, सासणदेवो गोमेधो, सासणदेवी अम्बा ॥

२२ अरिष्टनेमि प्रभु का चरित्र—

भावार्थ—जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में अचलपुर नामके नगर में विक्रमधन नाम के प्रतापी राजा राज्य करते थे। शंख के पूर्व जन्म के बन्धु सूर और सोम भी आरण देवलोक से च्यवकर श्रीषेण के घर यशोधर और गुणधर नाम से पुत्र हुए। शंख राजा ने दीक्षा ग्रहण की। शंख ने बीस स्थानों की आराधना कर तीर्थंकर नाम कर्मका उपार्जन किया।

वहां से चवकर अपराजित देवलोक की स्थिति ३२ सागरोपम, जन्म नगरी सोरीपुर, पिताका नाम समुद्रविजय, माताका नाम शिवादेवी, आयुष्य एक हजार वर्ष, गर्भकल्याणक कार्तिक कृष्ण द्वादशी जन्म कल्याणक श्रावण शुक्ल पंचमी, कुंवरपद

तीनसौ ३०० वर्ष, राजगादी समय, नहीं। शिविका उत्तर, दीक्षा कल्याणक श्रावण शुक्ल षष्ठी. एक हजार के साथ, पहली गोचरी के दाता का नाम वरदत्त, पहली गोचरी में क्या मिला खीर, छद्मस्थ अवस्था का काल ५४ दिन, चैत्यवृक्ष, का नाम वेतस वृक्ष, केवल कल्याणक अश्विन कृष्ण अमावास्या, निर्वाण कल्याणक आषाढ शुक्ल अष्टमी, देहप्रमाण १० धनुष, वर्ण श्याम, लक्षण शंख, नायक गणधर वरदत्त. अग्रणी साध्वी यक्षणी, प्रव्रज्या का समय ७०० सातसौ वर्ष, गणधर संख्या १८, साधु संख्या १८हजार, साध्वी संख्या चालीस हजार, श्रावक संख्या एकलाख ६९हजार, श्राविका संख्या तीनलाख ३६ हजार, साधु केवली एक हजार पांचसौ, साध्वी केवली तीन हजार, अवधिज्ञानी एक हजार पांचसौ मनःपर्यायी एक हजार, चतुर्दशपूर्वी चारसौ वैकुर्विक एकहजार पांचसौ, वादी संख्या ८०० आठसौ, शासन काल ४३॥। पौनेचौरासी हजार वर्ष, कितना पाट मोक्ष में गया संख्याता। शासनदेव गोमेध, शासनदेवी अम्बा ॥ २२ ॥

२३ पासनाहपहुस्स चरित्तं—

मूलम्—जंबुद्दीवे पुव्वविदेहे पुराणपुरे णयरे होत्था, तत्थ वज्जबाहु नाम राया, एगया जगन्नाह तित्थयरो पुराणपुरे णयरे समवसरिओ, वज्जबाहू परिवारसहिओ तस्स दंसणट्ठं गओ, देसणं सोच्चा राया विरत्तो जाओ। पुत्ते रज्जं ठवित्ता जगन्नाह तित्थयर समीवे दिक्खिओ जाओ, उग्गतव संजमं आराहिऊण तित्थगर नाम गोयं कम्मं निबंधिइ, दसमदेवलोगस्स बीस सागरोवमो ठिईओ देवो जाओ। तओ चविऊण वाणारसीए जम्मं, पिउस्स नाम अस्ससेणो, माउस्स नाम वामादेवी, आउ सयवरिसो, चेइय किण्ह चउत्थ दिणे गब्भकल्लाणगं, पोसकिण्ह दसमीए जम्मकल्लाणगं कुमारपए तीसं वरिसा, तिण्णिसयपरिवारेण सद्धिं विसाला नाम सिवियारूढो पोसकिण्ह एक्कारसे दिवसे दिक्खिओ जाओ। पढम

भिक्खादायारो नाम धन्न, भिक्खाए खीरं लद्धं, छउमत्थावत्थाकालो अद्ध-सहियं तेसीइदिणं, धायइरुक्खतले चेइय किण्ह चउत्थ दिणे केवलणाणं, सावण सुक्क अट्ठमीए निव्वाणं, देहप्पमाणं नव रयणो नीलो वण्णो, सप्पलक्खणो, णायगगणहरो अज्जदत्तो, अग्गणी साहुणी पुप्फचूला, पव्वज्जाकालो सत्तरि-वरिसो, गणहराणं संखा अट्ठ अहवा दस, साहुणं संखा सोलससहस्सा, साहुणी संखा अट्ठतीसं सहस्सा, सावगाणं संखा एगलक्ख चउसट्ठिसहस्सा, सावियाणं संखा तिण्णिलक्ख सत्तावीसं सहस्सा, साहुकेवलीणं एगसहसा, साहुणी केव-लीणं संखा दो सहस्सा, ओहिनाणीणं संखा चत्तारिसयोत्तर एगसहस्सा, मणपज्जवनाणीणं संखा सत्तसया पन्नासा, चउद्दसपुव्वीणं संखा, तिण्णिसया पन्नासा, वेउव्वियलद्धिधराणं संखा, एगसयोत्तर एगसहस्सा, वाईणं संखा

छसया, सासणकालो अड्ढतइयवरिसो, संखेज्जा पट्टा मोक्खं गया, सासणदेवो वामण नामा, सासणदेवी पउमावई ॥

२३—श्री पार्श्वनाथप्रभु का चरित्र—

भावार्थ—जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में पुराणपुर नाम का नगर था। उसमें वज्रबाहु नाम का प्रतापी राजा राज्य करता था। एक बार जगन्नाथ तीर्थंकर का पुराणपुर में आगमन हुआ। वज्रबाहु परिवार सहित उनके दर्शन करने गया। उपदेश सुनकर वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने अपने पुत्रको राज्य भार दे दिया और जगन्नाथ तीथकर के समीप दीक्षा ग्रहण करली। वहां कठोर तप करके उन्होंने तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन किया।

वहां से चवन दशमें देवलोक की स्थिति बीस सागरोपम, जन्म नगरी वाराणसी, पिता का नाम अश्वसेन, माता का नाम वामादेवी, आयुष्य सौ वर्ष, गर्भ कल्याणक चैत्र कृष्ण चौथ, जन्म कल्याणक पौष कृष्ण दशमी, कुंवरपद ३० वर्ष, राज गादी समय

राज्य नहीं किया। शिवीका विशाला, दीक्षा कल्याणक पौष कृष्ण एकादशी तीनसौ के साथ, पहली गोचरी के दाता का नाम धन, पहली गोचरी में क्या मिला खीर, छद्म-स्थ अवस्था का समय साढे तियासी दिन, चैत्यवृक्ष का नाम धातकीवृक्ष, केवल कल्याणक चैत्र कृष्ण चौथ, निर्वाणकल्याणक श्रावण शुक्ल अष्टमी, देह प्रमाण ९ हाथ, वर्ण नील, लक्षण सर्प, नायक गणधर आर्यदत्त, अग्रणी साध्वी पुष्पचूला, प्रव्रज्या समय ७० वर्ष गणधर संख्या आठ अथवा १० दस, साधु संख्या १६ हजार, साध्वी संख्या ३८ हजार, श्रावक संख्या एक लाख ६४ चौसठ हजार, श्राविका संख्या तीन लाख २७ हजार, साधु केवली एक हजार, साध्वीकेवली दो हजार, अवधिज्ञानी एक हजार चारसौ, मनःपर्यायी सातसौ पचास, चतुर्दश पूर्वी तीनसौ पचास, वैकुर्विक एक हजार एकसौ, वादी संख्या ६०० छसौ, शासन काल अढाईसौ वर्ष, कितना पाट मोक्ष में गया संख्याता, शासन देव वामन, शासन देवी पद्मावती ॥२३॥

२४ महावीरपहुस्स चरित्तं–

मूलम्–दसम देवलोगस्स बीससागरोवमं ठिइं भुज्जा तओ चविऊण खत्तियकुंडगामे नयरे आगमिअ, पिऊस्स नाम सिद्धत्थो, माउस्स नाम तिसला आसी, आऊ बावत्तरि वरिसं, आसाढसुक्कछट्ठीए गब्भकल्लाणगं, चेइय सुक्क तेरसदिणे जम्मकल्लाणगं, कुमारपए अट्ठावीसवरिसं, दिनमेकरज्जं करीअ, चंदपभा सिबियारूढो मिग्गसिर किण्हदसमीए दिक्खिओ जाओ। पढम भिक्खा-दायारो बहुलबंभणो, भिक्खाए खीरं लद्धं, छउमत्थावत्थाकालो दुवालसवरिसा अद्धसहियं छम्मासा, चेइयरुक्खतले वेसाह सुक्कदसमीए केवलणाणं, कत्तिय किण्ह अमावासदिणे अद्धरत्तिए निव्वाणं, सत्तरयणी देहप्पमाणं, कंचणवण्णो, सील-लक्खणो, णायगगणहरो इंदभूई, अग्गणी साहुणी चंदणबाला, पव्वज्जाकालो

बायालीसं वरिसं, गणहराणं संखा एक्कारस, साहुणं संखा चउद्दससहस्सा, साहुणीणं संखा छत्तीससहस्सा, सावगाणं संखा एगूणसट्ठिसहस्सोत्तरं एगलक्खा, सावियाणं संखा तिण्णिलक्खा, साहु केवली संखा सत्तसया, साहुणी केवली चत्तारि सयोत्तर एगसहस्सा, ओहिणाणीणं संखा, तिण्णि सयोत्तर एगसहस्सा, मणपज्जवनाणीणं संखा, पंचसया, चउद्दसपुव्वीणं संखा तिण्णिसया वेउव्वियलद्धिधराणं संखा सत्तसया, वाईणं संखा चत्तारिसया, सासणकालो एक्कवीस सहस्सवरिसो, दो पट्टा मोक्खं गया, सासणदेवो मत्तंगो, सासणदेवी सिद्धा ॥

२४–श्री महावीर स्वामी चरित्र–

भावार्थ–श्रीमहावीर प्रभु का देवलोक से च्यवन १० दशवें देवलोक की स्थिति २० वीस

सागरोपम, जन्म नगरी क्षत्रियकुंड, पिता का नाम सिद्धार्थ, माता का नाम त्रिशला, आयुष्य ७२वर्ष, गर्भकल्याणक अषाढ शुक्ल षष्ठी, जन्म कल्याणक चैत्र शुक्ल त्रयोदशी, कुंवर पद २८ वर्ष, राज्य गादी एक दिन शिबिका चन्द्रप्रभा दीक्षा कल्याणक मार्गशीर्ष कृष्ण दशमी, अकेले, पहली गोचरी देने वाले का नाम बहुल, पहली गोचरी में क्या मिला खीर, छद्मस्थ अवस्था का समय १२ वर्ष ६॥ मास. चैत्यवृक्ष, का नाम साल वृक्ष केवल कल्याणक वैशाख शुद दशमी निर्वाण कल्याणक कार्तिक कृष्ण अमावास्या, देह प्रमाण ७ सात हाथ, वर्णकंचन, लक्षण सिंह, नायक गणधर इन्द्रभूति, अग्रणी साध्वी चन्दनबाला, प्रव्रज्या का समय ४२वर्ष, गणधर संख्या ११ ग्यारह, साधु संख्या १४ हजार, साध्वी संख्या ३६ हजार, श्रावक संख्या १ लाख ५९ हजार, श्राविका संख्या तीन लाख १८ हजार, साधु केवली ७०० सातसौ, साध्वी केवली १ एक हजार चारसौ अवधिज्ञानी १ एक हजार तीनसौ, मनःपर्यायी पांचसौ, चतुर्दशपूर्वा तीनसौ, वैकुर्विक सातसौ,

वादी संख्या चारसौ, शासन काल २१हजार वर्ष, कितना पाट मोक्ष में गया दो पाट, शासनदेव मतंग, शासनदेवी सिद्धा, पूर्वभव संबन्धी नाम नन्दन ॥

मूलम्—वंदे उसभ अजियं, संभव मभिणंदणं सुमइ, सुप्पभ—सुपासं सासि, पुप्फदंत सीयलं सिज्जंसं वासुपुज्जं च ॥२०॥ विमल मणंतयधम्मं, संति कुंथुं अरं च मल्लिं च ॥ मुणिसुव्वय नमिरिट्ठनेमि, पासं तहा वद्धमाणं च ॥२१॥

भावार्थ—अब चौवीस तीर्थकरों के गुणानुवाद करते हैं—(१) चौदह स्वप्न में से प्रथम वृषभ स्वप्न देखा इसलिये तथा वृषभ का लंछन देखकर ऋषभदेवजी नाम दिया, २ चोपट पासे के खेल में गर्भ के प्रभावकर हरवक्त राजा से रानी की जीत होती देख अजितनाथ नाम दिया, ३ देश में धान्य का बहुत समूह उत्पन्न हुआ देखकर संभव-नाम दिया, ४ इन्द्रो ने आकर माता पिता का बारम्बार अभिस्तव किया जिससे अभिनन्दन नाम दिया, ५ माता की सुमति हुई देख सुमतिनाथ नाम दिया, ६ पद्म

कमल की शैय्या पर शयन करने के दोहद से तथा पद्म कमल समान शरीर की शोभा देखकर पद्मप्रभु नाम दिया ७ माता के कर के स्पर्श से राजा की पांसुलियां सीधी हो गई इसलिए सुपार्श्वनाथ नाम दिया ८ चन्द्रमा पीने के दोहदसे तथा चंद्र समान शरीर की प्रभा देख चन्द्रप्रभ नाम दिया, ९ माता की सुबुद्धि होने से सुविधीनाथ और पुष्प समान दांत देख पुष्पदंत नाम दिया (नववे तीर्थंकर के दो नाम हैं) १० माता के हाथ के स्पर्श से राजा का दाह ज्वर का रोग जाने से शीतलनाथ नाम दिया। ११ बहुत लोगों का श्रेय करने से तथा देवाधिष्ठित शैय्या पर शयन करने से श्रेयांसनाथ नाम दिया. १२ वासु इन्द्र ने वसु–द्रव्य की वृष्टि की जिससे वासुपूज्य नाम दिया १३ गर्भ में आने से माता का शरीर निर्मल रोग रहित होने से विमलनाथ नाम दिया। १४ अनन्त माता का स्वप्न देखने से अनन्त नाथ नाम दिया। १५ माता पिता की धर्म पर द्रढ प्रीति देख धर्मनाथ नाम दिया १६ देश में मारी का रोग का उपद्रव दूर

करने से शांतिनाथ नाम दिया, १७ वैरीयों का कुंथुवे के समान सूक्ष्म हुये जान कुंथुनाथ नाम दिया, १४ माता ने स्वप्न में रत्नमय आरा देखा जिससे अरनाथ नाम दिया १९ षड्ऋतु के फुलों की माला का स्वप्न देखा जिससे मल्लिनाथ नाम दिया २० बहुत बोली माताने मौन और व्रताचरण किये जान मुनिसुव्रत नाम दिया २१ सर्व वैरीयों को नमे जान नमीनाथ नाम दिया, २२ अरिष्ट रत्न की नेमी (मणि का चक्र की) स्वप्न में देख रिष्टनेमि नाम दिया, २३ अन्धकार में सर्प के पासे के पास से जाता देख पार्श्वनाथ नाम दिया और २४ राज्य में धान्यादि की वृद्धि हुई देख मान वर्धमान नाम दिया यह २४ तीर्थंकरों के गुण निष्पन्न नाम की स्थापना की सो कहा ॥२१॥

मूलम्—पढमित्थ इंदभूई, बीओ पुणहोइ अग्गिभूईत्ति ॥ तइओय वाउभूई तओ वियत्ते सुहम्मेय ॥ मंडिय मोरियपुत्ते, अकंपिए चेव अयलभाया य ॥

मेयज्जेय पभासे, गणहरा हुंति वीरस्स । निव्वुइ पहुसासणयं, जयइ सया सव्व भाव देसणयं ॥ कुसमयमयनासणयं, जिणंदवर वीरसासणयं ॥२४॥

भावार्थः—अब अन्तिम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी के इग्यारे गणधर हुवे उनके नाम १ इन्द्रभूति, २ अग्निभूति, ३ वायुभूति, ४ विगतभूति, ५ सौधर्मस्वामी, ६ मंडितपुत्र, ७ ८ अकम्पित मौर्यपुत्र, ९ अचलभ्रात १० मेतार्य और ११ प्रभास इनका विशेष स्वरूप यन्त्र में देखो इन इग्यारे ही गणधरों में पहिले और पाचवें तो महावीर स्वामी मोक्ष गये बाद और नवगणधर महावीर स्वामी के सन्मुख राजगृही नगरी में एक महीने की संलेहना कर मोक्ष पधारे है पूर्वोक्त ग्यारों ही गणधर सदैव मोक्ष पंथ के साधक, तथा शिक्षक जो सर्वदा सर्वभाव के दर्शक उपदेशक कुशास्त्र की दुर्मति का नाशक, कुत्सित शास्त्रके मद के गालने वाले, जिनेश्वर के संघ में प्रधान मुखी २ जिन शासन के नायक सदैव जयवंत होवो ॥ २४ ॥

संख्या	गणधर नाम	गाम	माताका नाम	पिताका नाम	गोत्र	गृहवास	छद्मस्थ	केवल-पर्याय	सर्वायु	परिवार	शंका
१	इन्द्रभूति	गुब्बर	पृथ्वी	वसुभूति	गौतम	५०	३०	१२	९२	५००	जीवकी
२	अग्निभूति	गुब्बर	,,	,,	,,	४६	१२	१६	७४	५००	कर्मकी
३	वायुभूति	गुब्बर	,,	,,	,,	४२	१०	१८	७०	५००	तज्जीवकी
४	विगतभूति	कोलाकसन्निवेश	वारुणी	धनमित्र	भद्राइन	५०	१२	१८	८०	५००	भूतकी
५	सौधर्मस्वामि	कोलाकसन्निवेश	भद्दिला	धम्मिल	अग्निवेश	५०	४२	८	१००	३५०	तदर्थकी
६	मंडितपुत्र	मौरिकसन्निवेश	विजया	धनदेव	वासिष्ठ	५३	१४	१६	९३	३५०	बंधकी
७	मोर्यपुत्र	मौरिकसन्निवेश	जयंति	मौर्य	कासव	६५	२	१६	९३	३००	देवताकी
८	अकम्पित	कोलाकसन्निवेश	नंदी	देवर	गौतम	४८	९	२१	७८	३००	निर्याकी
९	अचलभ्रात	तुंगिया	वारुणी	वासु	हारीम	४६	१२	१४	७२	३००	पुण्यकी
१०	मेतार्य	वच्छभूमि	देवी	दत्त	कौंडिल	३६	५०	१६	६२	३००	परलोककी
११	प्रभास	राजगृही	अतिभद्रा	बल	,,	१६	८	१६	४०	३००	निर्वाणकी

मूलम्-सुहम्मं अग्गिवेसाणं, जंबू नामं च कासबं पभवं कच्चायणं वंदे, वंच्छं सिज्जं भवं तहा ॥२५॥

भावार्थ—अब अनुपम शुद्धाचार के पालक जिन शासन के प्रवर्तक सतावीस पाटों के नाम गोत्रादि कहते हैं-१ श्री सुधर्मास्वामी अग्निबेसायन गोत्री, २ जम्बूस्वामी काश्यप गोत्री, ३ प्रभव स्वामी कात्यायन गोत्री, ४, सिज्जंभव स्वामी वच्छ गोत्री ॥२५॥

मूलम्-जस भद्दंतुगीयं वंदे, संभुयं चेब माढरं ॥ भद्दबाहुं च पाइन्नं, थुलभद्दं च गोयमा ॥२६॥

भावार्थः—५ यशोभद्र स्वामी तुंगीय गोत्री, ६ संभूति स्वामी माढर गोत्री; ७ भद्रवाहु स्वामी प्राचीन गोत्री ८ स्थुलभद्र स्वामी गौतम गौत्री ॥२६॥

मूलम्-एलावच्च सगोतं, वंदामि महागिरि सुहत्थिं च, ततो कोसिय-

गोत्तं, बहुलस्स बलिस्सहं वंदे ॥२७॥

भावार्थः—९ महावीर स्वामी सुहस्ति स्वामी यह दोनों वच्छगोत्री, १०, वहुल स्वामी कोसिय गोत्री ॥२७॥

मूलम्—हारियगोत्तं सायं च, वंदे मोहारियं च सामज्जं । वंदामि कोसिय-गोत्तं, संडिल्लं अज्जज्जीय धरं ॥२८॥

भावार्थ—११ साइण स्वामी हारिव्य गोत्री, १२ स्यामाचार्य मोहरी गोत्री १३ संडिलाचार्य कौशिक गौत्री शुद्धाचारी ॥२८॥

मूलम्—तिसमुद्दक्खाय किर्त्ति, दीवसमुद्दे सुगहियपेयालं ॥ वंदे अज्जसमुद्दं, अक्खोभिय समुद्दगंभीरं ॥२९॥

भावार्थ—१४ जिन की तीनों दिशा में समुद्र पर्यंत उत्तर में वैताढय पर्वत पर्यंत

कीर्ति का विस्तार पाया था, द्वीप समूह जैसे ऐसे आर्य समुद्र स्वामी को वंदना करता हूं ॥२९॥

मूलम्–मणग करगं चरगं, पभावगं णाणदंसणगुणाणं ॥ वंदामि अज्ज मंगु, सुयसागर पारगंभीरं ॥३०॥

भावार्थ–१५ उपसर्गादि उत्पन्न होने से जो कदापि क्षोभित नहीं होवे, समुद्र की तरह गंभीर बुद्धिवंत, शास्त्र के ज्ञाता, क्रिया कल्पके करने वाले, चारित्रवंत, धैर्यवंत जिनशासन के दीपक, ध्यानी ज्ञानदर्शन चारित्र गुन के धारक, सूत्र समुद्र के पारगामी, ऐसे आर्यमंगू आचार्य वंदना करता हूं ॥३०॥

मूलम्–वंदामि अज्जधम्मं, वंदे तत्तोय भद्दगुत्तं च । तत्तोय अज्जवइरं, तवनियमगुणेहिं वइरसमं ॥३१॥

भावार्थः-१६ आर्य-धर्माचार्य, १७ भद्रगुप्त स्वामी, १८ वइर स्वामी, यह तीनों आचार्य द्वादश तप नियमादि गुणगण करके वज्रहीर समान को वन्दना करता हूं ॥३१॥

मूलम्-वंदामि अज्जरक्खिय, खमणेरक्खिय चरित्त सव्वेसं। रयणकरंडग भूओ, अणुओगो रक्खिओ जेहिं ॥३२॥

भावार्थ-१९ आर्य रक्षित स्वामी क्षमा करने में महा समर्थ मूल गुण उत्तर गुण में दोषरहित, रत्न करंड समान अर्थ ग्रहण करने की रीति के प्रवर्तक है उनको वन्दन करता हूं ॥३२॥

मूलम्-नाणंमि दंसणंमिय तव विणए निच्चकाल मुज्जंत्तं ॥ अज्जे नंदि लक्खणं सिरसा वंदे पसन्नमणं ॥३३॥

भावार्थ-२० ज्ञानदर्शन चारित्र तप ज्ञान विनय में सदैव उद्यमवंत सदैव प्रस-

न्नचित्तवाले क्षमावंत आर्य नंदिला नामक आचार्य को वंदन करता हूं ॥३३॥

मूलम्—वड्ढओ वाखगवंसो यसवंसो अज्जनाग हत्थीणं ॥ वागरणं करणं भंगिय, कम्मप्पयडी प्पहाणाणं ॥३४॥

भावार्थ—२१ आर्य नागहस्ति आचार्य वंश और यश की वृद्धि के कर्ता, संस्कृत प्राकृत व्याकरण के ज्ञाता, अच्छेद प्रश्नोत्तर के दाता, करण सित्तरी चरण सित्तरी द्विभंगी, त्रिभंगी चतुर्भंगी प्रमुख की युक्ति के मेलक, कर्म प्रकृति की विधी, जमाने में प्रधान इनको वंदना ॥३४॥

मूलम्—जच्चंजणधाउ समप्पहाण, मुद्दिय कुवलयनिहाणं ॥ वड्ढओ वायग वंसोरे वइ नक्खत्त नामाणं ॥३५॥

भावार्थ—२२ रेवती आचार्य जाचा हुआ प्रधान अंजन तथा सुरमा जैसी शरीर की प्रभाकांति के धारक द्राक्षवर्णकमल समान, रत्नसमान वर्ण के धारक वंश वृद्धि

के कर्ता को वंदना ॥३५॥

मूलम्—अयलपुरम्मि क्खेत्ते कलियसुय अणुगिए धीरे ॥ बंभद्दीवग सीहे, वायगं पयमुत्तमं पत्ते ॥३६॥

भावर्थ—२३ ब्रह्मदीपक सिंह आचार्य जो अचलपुर से संयम लेकर निकले कालिकसूत्र तथा चारों अनुयोग के धारक धैर्यवंत वाचको में उत्तमपद के प्राप्त करने वाले को वंदना करता हूं ॥३६॥

मूलम्—जेसिं इमो अणुओगो, पयरइअज्जविअद्ध भरहंमि ॥ बहु नयर-निग्गजसे, तं वंदे क्खंदिलायरिए ॥३७॥

भावार्थ—२४ खंदिलाचार्य, आजतक जो अर्थादि की प्रवर्ती हो रही और दक्षिण भरत के नगरों में जिन का यश विस्तार पाया है ॥३७॥

मूलम्—कालियसुय अणुओगस्स, धारए धारएय पुव्वाणं ॥ हिमवंत

खमासमणे, वंदे नागज्जुणायरिए ॥३८॥

भावार्थ—२५ नागार्जुनाचार्य कालिक सूत्र और चार अनुयोग के धारक तथा अर्थ सहित सूत्र के धारक, चुल हिमवंत पर्वत के समान क्षमा श्रमण ॥३८॥

मूलम्—तत्तो हिमवंतमहंत, विक्कमे धिइ परक्कम मणंते ॥ सज्झाय मणंतधूरे, हिमवंत वंदिमो सिरसा ॥३९॥

भावार्थ—वाचकाचार्य महाहिमवंत पर्वत समान महापराक्रमी बलवंत धैर्यवंत अप्रमत्त बहुतसी स्वाध्याय के करने वाले को वंदन ॥३९॥

मूलम्—मिउ मद्दव संपन्ने, अणुपुव्विं वायगत्तणं पत्ते ॥ उहसुय समायारे नागज्जुण वायगे वंदे ॥४०॥

भावार्थ—२६ नागार्जुनाचार्य अत्यन्त मृदु कोमल स्वभाव के धारक अहंकार

रहित सरल स्वभावी अनुक्रम से वाचक पद की प्राप्ति के कर्ता को नमस्कार होवे ।४०।

मूलम्—गोविंदाणंपि नमो, अणुओगी विउल धारणिंदाणं ॥ खंतिदयाणं परूवणे दुल्लभिंदाणं ॥४१॥

भावार्थ—२७ गोविन्दाचार्य बहुत विस्तार सहित सूत्रार्थ के धारक और दातार सदैव क्षमावंत दयावंत सर्व पुरुषों में शुद्ध श्रावक की करणी के प्ररूपक ऐसे पुरुष की प्राप्ति ही इस लोक में बड़ी दुर्लभ है जिनको वंदन ॥४१॥

मूलम्—तत्तो य भूयदिन्नं, णिच्चं तव संजमे अनिव्विणं ॥ पंडिय जण-सामण्णं ॥ वंदामि संजमं विहण्णु ॥४२॥

भावार्थ— तब फिर भूतदिन्न साधुजी सदैव १२ प्रकार तप और १७ प्रकार का संयम पालते हुए थके नहीं पंडित लोग को चारित्र बनाकर साता उपजाने वाले, संयम की विधी के जानकार को वंदन ॥४२।

मूलम्—वरकणग तविय चंपग, विमलवर कमल गब्भसरिस वण्णे। भविय जणहिअय दइए, दयागुणविसारए धीरे ॥४३॥

भावार्थ—अच्छा तपाया हुआ सुवर्ण समान, तथा चम्पा के फूल समान विकसित पद्म कमल के गर्भ समान शरीर का वर्ण धारक, भविक जीवों के हृदय को वल्लभकारी दया के गुणमें प्रधान विचक्षण ॥४३॥

मूलम्—अड्ढभरहप्पहाणे, बहुविह सज्झाय सुमुणिणियपहाणे ॥ अणुउगिय बरवसमे नाइयलकुलवंसनंदिकरे ॥४४॥

भावार्थ—धैर्यवंत, आधे भरतक्षेत्र में युग प्रधान बहुत प्रकार के स्वाध्यायादि युक्त, अच्छे जानकार, सुमुनिश्वर के पंथ के साधक, सुवीनीत, उत्तम अर्थ के कथक प्रधान वृषभसमान, श्री ज्ञातकुल महावीर के वंश में आनन्द के करता ।४४।

मूलम्-भूयहिय अप्पगब्भे, वंदेहं भूयदिन्न मायारिए ॥ भवभय वुच्छेय करे, सीसे नागज्जुणरिसिणं ॥४५॥

भावार्थ--सर्व जीवों के हित करने में बल्लभ ऐसे सतावीसमें पाट में जो भूत दीन नाम के आचार्य है उनको वंदन करता हूं नरक तिर्यंचादि दुर्गति के भय के निवारण करने वाले सर्व भवांतरों के भय के निकन्दन करने वाले नागार्जुन ऋषीश्वर को वंदन ।४५

मूलम्-सुमुणिया णिच्चाणिच्चं सुमुणिय सुत्तत्थ धारयं निच्चं, वंदेहं लोहिच्चे सवभावुभावणाणिच्चं ॥४६।

भावार्थ-शाश्वत अशाश्वत पदार्थों का ज्ञान सम्यक् प्रकार हुवा है, शुद्धाचारी सूत्र अर्थ के धारक जावजीव पर्यंत अखण्डाचार के पालक लोहित नाम के आचार्य होते हुए भाव को सदैव अच्छी तरह दर्शाने वाले को वंदन ॥४६॥

मूलम्—अत्थ महत्थ खाणिंसु, समणवक्खाणं कहण णिव्वाणं, पयडए महुरवाणिं, पयउपणमामि इसगाणिं ॥४७॥

भावार्थ—मोक्ष साधन का ही जिनके महार्थ की ख्याति है तथा प्रथम सूत्र कह-कर फिर उसका महा अर्थ कहे ऐसे सूत्रार्थ के खानी इस प्रकार उत्तम व्याख्यान के दाता, सदैव स्वभाव से समाधी प्रकृति वाले, मिष्ट इष्ट वचनोच्चारक, आत्मसंयम की यत्नावंत, इमाचार्य को नमस्कार ॥४७॥

मूलम्—तव णियम सच्च संजम, विणयज्जव खंति मद्दवरयाणं। सलि-गुणगहियाणं, अणुओगी जुगप्पहाणाणं ॥४८॥

भावार्थ—तप, नियम, सत्य संयम चारित्र, विनय, सरलता, क्षमा, निरहंकार, इत्यादि गुणों में रक्त शीलादि गुणकर गहरे द्वादशांगी के अर्थ में युग प्रधान ॥४८॥

मूलम्—सुकुमाल कोमलतले, तेसिं पणमामि लक्खणं पसत्थे ॥ पएपवाय णीणं, पाडित्थगसएहिं पणिवइएहिं, जे अन्ने भगवंते, कोलियसुय आणुओ-गिए धीरे, तं वंदिऊण सिरसा ॥४९॥

भावार्थ-- अत्यंत, सुकुमार कोमल मनहर हस्त पांव के तलेवाले उत्तम वर्णन करने योग्य लक्षण के धारक उत्तम कीर्ति योग्य प्रवर्तन सिद्धान्त के जानकार स्वगच्छता करके सेकडों साधु के हृदक में रमण बहुत साधुओं के वन्दनीय, अन्य गच्छवाले भी बहुत सूत्रार्थ जिनकें पास लेने आते ऐसे ॥४९॥ और भी बहुत स्थविर भगवंत आचारांगादि कालिक सूत्र के अर्थ के पाठी अच्छी बुद्धिवाले धैर्यवंत जिनको सविनय मस्तक नमकर वंदना नमस्कार होवो.

॥ समाप्त ॥